राष्ट्रीय राजनीति

(रचनाकार से साक्षात्कार)

लेखक व संपादक

सिद्धेश्वर

राष्ट्रीय राजनीति

सिद्धेश्वर

राष्ट्रीय राजनीति

(रचनाकार से साक्षात्कार)

सिद्धेश्वर

प्रकाशक

सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

राष्ट्रीय राजनीति

(रचनाकार से साक्षात्कार)

रचनाकार : सिद्धेश्वर, संस्थापक संपादक 'विचार दृष्टि' दिल्ली पूर्व अध्यक्ष, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड,पटना 'संस्कृति', ए-164, ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा, पत्रा.-आशियाना नगर, पटना-25 मो.-9431037221

प्रकाशक : सुधीर रंजन, सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष-011-2253065, मो.-9811281443,

(c) : सुधीर रंजन, प्रकाशक, दिल्ली

मुद्रक : लोकवाणी प्रिंटिंग प्रेस, पटना
29, शशि पैलेस, नाला रोड, पटना
मो॰: 9801772460

शब्द-संयोजन : अमित कुमार,सुशीला सदन, रोड नं.-17,राजीव नगर,पटना

छायांकन : डॉ. शाहिद जमील, सी-84, बैंक रोड, पटना-1

प्रथम संस्करण : वर्ष 2018

पृष्ठ सं. : 320

मूल्य : आठ सौ रुपए मात्र (Rs Eight Hundred Only)

Rashtriya Rajneeti :
Collection of question-answer during interview of Sidheshwar.
Answer given by Sidheswar.

Price-Rs. 800/-

सिद्धेश्वर : एक नज़र

पूरा नाम : सिद्धेश्वर प्रसाद
संक्षिप्त नाम : सिद्धेश्वर
पिता का नाम : स्व. इन्द्रदेव प्रसाद
माता का नाम : स्व. फूलझार प्रसाद
पत्नी का नाम : श्रीमति बच्ची प्रसाद
जन्म तिथि : 18 मई, 1941
जन्म स्थान : ग्राम+पत्र.-बसनियावाँ, भाया-हरनौत, जिला-नालंदा, बिहार(भारत)
शैक्षिक योग्यता : सन् 1962 में पटना विश्वविद्यालय से श्रम एवं समाज कल्याण विषय में स्नातकोत्तर
तकनीकी शिक्षा : सन् 1973 में भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग से एस.ए.एस. (Subordinate Accounts Service)
सरकारी सेवा : भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के कार्यालय महालेखाकार, राँची एवं पटना में लेखा परीक्षक से प्रोन्नति प्राप्त करते हुए वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर छतीस वर्षो तक सेवा प्रदान करने के पश्चात् सन् 2000 के 31 मई से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर वृहतर एवं व्यापक समाज व राष्ट्रहित में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश।
सार्वजनिक सेवा : 1.भारतीय रेलवे के रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य
2. बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद पर 15 सितंबर, 2008 से 14 सितंबर, 2011 तक कार्यरत।
अभिरुचि : समाज व साहित्य सेवा तथा पत्रकारिता, राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए संघर्षशील तथा रचनात्मक लेखन से जुड़ाव।
रचनाएँ प्रकाशित :1.सामाजिक-'आरक्षण','कल हमारा है', 'समता के सपने', 'आत्ममंथन', बिहार के कुर्मी (निबंध संग्रह) एवं बिहार के कुर्मी (निर्देशिका)
2.स्मृति-'यादें'(भोला प्र. सिंह 'तोमर' की स्मृति में)
3.हाइकु काव्य संग्रह-'पतझड़ की सांझ', 'सुर नहीं सुरीले', 'कवि और कविता'

4. सेन्र्यु काव्य संग्रह–'जागरण के स्वर', 'बुजुर्गो की जिंदगी'
5. काव्य संग्रह–'यह सच है'
6. जीवनी– 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा',
'डॉ. मोहन सिंह: एक तपस्वी मन'
7. शैक्षिक–'समकालीन यथार्थबोध' एवं 'समकालीन संपादकीय'

जीवनी-साहित्य : 1.'सिद्धेश्वर:व्यक्तित्व और विचार'–प्रो. रामबुझावन सिंह
2.'सिद्धेश्वर:अंकों से अक्षर तक' डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

रचनाएँ प्रकाश्य:साक्षात्कार–1.'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर', डॉ. बलराम तिवारी द्वारा संपादित
2. 'इंसानियत की धुँआती आँखें'
3. 'राष्ट्रीय राजनीति'
4. 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले'
5.'वैश्विक कूटनीति'

राजनीति : 'आम आदमी की आवाज'
आत्मकथा–'जीवन रागिनी' तथा हाइकु में 'मेरी जीवन-यात्रा'
संस्मरण–1.'हमें अलविदा ना कहे' 2.'जो जीवित हैं हमारे जेहन में'
संपादन– 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' दो भाग में

सम्मान : देश के विभिन्न सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संगठनों द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित।

विदेश यात्रा : 13-15 जुलाई, 2007 को अमेरिका के न्यूयॉर्क में आयोजित 8वें विश्व हिंदी सम्मेलन में बिहार सरकार की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल में शामिल होकर सम्मेलन के शैक्षिक सत्र में 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' विषय पर आलेख पाठ एवं परिचर्या में सक्रिय भागीदारी।

संप्रति : राष्ट्रीय महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, दिल्ली
संस्थापक संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली

संपर्क : 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष: 011-22530652, मो.-9431037221
'संस्कृति' ए-164, पार्क रोड, ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा,
पत्रा.-आशियाना नगर, पटना-800025,
मो.-9431037221, मो.-9472243949

अनुक्रम

पृष्ठ

सिद्धेश्वर : एक नजर..3

अनुक्रम..5

समर्पण..6

प्राक्कथन 7

अभिमत 1. पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि'..................18

2. डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार...........................21

3. डॉ. एल. एन. शर्मा.....................................25

4. डॉ. शाहिद जमील 29

शुभाशंसा डॉ. साधु शरण 33

प्रथम अध्याय :

राष्ट्रीय प्रश्नोत्तर...36

द्वितीय अध्याय :

राजनीतिक प्रश्नोत्तर...136

तृतीय अध्याय :

प्रष्टाओं का परिचय

1.डॉ. एल. एन. शर्मा...317

2.डॉ. साधु शरण..317

3.श्री नरेन्द्रपति तिवारी..318

4.श्री विजय कुमार सिंह..318

5.श्री मदन कुमार..318

6.डॉ. सूर्यभूषण प्रसाद सिन्हा...318

7.श्री उपेन्द्रनाथ सागर..319

8.श्री राजेन्द्र कुमार प्रसाद..319

9.श्री शिव बालक प्रसाद..320

10.श्री लखन सिंह...320

11.श्री मुरारी प्रसाद सिंह..320

समर्पण

हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली की कार्यशैली में वंशवाद अधिकांश दशकों के बावजूद प्रधानमंत्री के पद पर सामान्य पृष्ठभूमि से आए नरेन्द्र मोदी अपनी मेहनत, हिम्मत और योग्यता के कारण पहुँचे, आम आदमी की आवाज सुनकर जनविश्वास को हासिल करने में जो न केवल अपने को खरा साबित कर जननेता का दर्जा पाया, बल्कि आजादी के सत्तर साल बाद देश के 73 प्रतिशत लोगों का भरोसा पाकर राष्ट्रीय राजनीति में ही नहीं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी एक बड़ा चेहरा बनकर उभरे, विदेश नीति को लेकर एक ही एजेंडा 'इंडिया फर्स्ट' पर जोर देते हुए पुरानी मित्रता में नए रंग भरना जिनकी कूटनीति की एक विशेष खासियत रही, जिन्होंने विदेश नीति और सुरक्षा चुनौतियों से निपटने में उल्लेखनीय कौशल, कल्पनाशीलता और अपनी व्यक्तिगत छाप छोड़ी और युद्ध की बात करके डरा-धमका रहे चीन की धौंस का जवाब संयम का परिचय देते हुए कूटनीति से दिया, जिनके अथक प्रयास ने आतंकवाद के सवाल पर पाकिस्तान को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अलग-थलग कर दिया, जिन्होंने नोटबंदी तथा अन्य आर्थिक फैसले जैसे कड़े कदम उठाकर भारतीय अर्थव्यवस्था का कायाकल्प किया, भ्रष्टाचार और कालेधन पर कड़ी चोट कर आर्थिक क्रांति के द्वार खोल दिए, राजनीति को तात्कालिकता से निकालकर जिंदगी के गहरे सवालों को महत्व देते हुए समाज के रूप में स्वयं को पुरानी मान्यताओं के बंदी गृहों से निकालकर आधुनिक लोकतांत्रिक मनुष्य बनने का संघर्ष करने का आह्वान करते हुए समाज एवं देशहित में वे काम करने के लिए अग्रसर हैं और जिनकी व्यक्तिगत ईमानदारी पर किसी को शक नहीं, पहली बार जो प्रधानमंत्री देश की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाने के लिए कार्यरत हैं और जिसपर हम सभी देशवासियों को गर्व का अनुभव हो रहा है और जो हर दृष्टिकोण से देश को सबल और अंतरराष्ट्रीय मंच पर एक दमदार एवं विकासशील देश के तौर पर पहचान बनाने में सफल रहे हैं और जिन्होंने विश्व में भारत की साख को मजबूत बनाने का काम किया है, को बड़ी विनम्रता के साथ यह कृति समर्पित।

-(सिद्धेश्वर)

प्राक्कथन

भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है और विकास के पैमाने पर भारत के प्रतिमान अमेरिका व यूरोप के विकसित लोकतांत्रिक राष्ट्र ही हो सकते हैं। मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद से भारत के प्रति वैश्विक दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। भारतीय प्रधानमंत्री ने राष्ट्रवाद से प्रेरित एक नई प्रकार की पेशेवर एवं दक्ष कार्य संस्कृति को देश में आगे बढ़ाया है। नरेन्द्र मोदी ने एक ओर जहाँ कई परंपरागत तथा जटिल नियमों को सरल बनाया और उनमें अपेक्षित बदलाव किए, वहीं दूसरी ओर नौकरशाही की भी अधिक जवाबदेही एवं कार्यकुशलता सुनिश्चित की हैं।

और तो और अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा तथा संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बान की मून ने भी भारतीय प्रधानमंत्री के प्रयासों की सराहना करते हुए कहा है कि 'उन्होंने भारत की नौकरशाही की निष्क्रियता को झकझोरा है तथा देश को कार्यकुशलता की दिशा में प्रेरित किया है।' इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने देश की तस्वीर को बदला है, खासकर अधिकारियों के रवैए में पिछले तीन साल में काफी परिवर्तन देखने को मिला है। मंत्रालय एवं विभागों को उन्होंने जिम्मेदार बनाया है और जवाबदेही तय की है। यही वजह है कि इनके बेहतर परिणाम भी आमने आ रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में स्वास्थ्य, शिक्षा, मौद्रिक एवं वित्तीय नीति, मुख्य बजट के साथ रेल बजट को शामिल करने, ईमानदार अधिकारियों एवं कर्मचारियों को कठघरे में खड़ा करने की बजाय भ्रष्ठ अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पकड़ने एवं उनपर कड़ी कार्रवाई करने, देश के सरकारी कार्यालयों की कार्य संस्कृति में पारदर्शिता, चुस्ती-दुरूस्ती और जवाबदेही, संघीय ढाँचे के अनुरूप नदी जल के उपयोग, बँटवारे और उससे जुड़े विवादों के हल के लिए अलग से कोई सर्वमान्य संस्था का गठन, राष्ट्रीय मिशन के तहत इस देश के अपने ब्राँड एवं तकनीक बनाने, लुप्त होती राष्ट्रीयता की भावना, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 को लेकर जम्मू-कश्मीर की समस्या और कश्मीरियत, इंसानियत और जम्हूरियत के खिलाफ आतंकवादियों एवं अलगाववादियों के कहर, देश में बढ़ती बेरोजगारी, भारतीय राष्ट्रवाद, आरक्षण से जुड़े सवाल, राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता पर

मंडराते खतरे के बादल, सेना को विवादों से परे रखने, गाँवों और किसानों की दशा में सुधार, धर्मनिरपेक्षता, भारत की सुरक्षा के लिए बनते खतरे और दूसरों की सफलता आदि राष्ट्रीय मुद्दों से संबंधित प्रबुद्धजनों की जिज्ञासाओं को भी प्रथम अध्याय में 79 प्रश्नों के अपने उत्तर से संतुष्ट करने का मेरा प्रयास रहा है।

अगर हम भारत के इतिहास पर एक नजर डालें तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि हजारों साल तक यह देश बार-बार एक होने और टूटने के कगार पर रहा है। मौर्य एवं गुप्त साम्राज्य भारत की एकता के बाद मुगल साम्राज्य के दौरान फिर से राष्ट्र के एकत्व का नया दौर आता है। इसी प्रकार औरंगजेब के शासन के खत्म होने तक पुनः तीव्र विखंडन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है जिस विखंडन की प्रक्रिया पर दो सौ साल तक ब्रिटिश शासन के दौरान रोक लगती है। फिर स्वतंत्रता आंदोलन एक नई राष्ट्रीय चेतना को जन्म देता है। इसके परिणामस्वरूप एक नए भारत का स्वप्न आजाद मुल्क की एकता की नई राह दिखाता है। नए आजाद भारत की एकता नियोजित आर्थिक विकास और राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता की बुनियाद पर खड़ी थी। इन असीम विविधताओं से भरे, असंख्य सांस्कृतिक भेदोंवाले करोड़ों लोगों की एकता के लिए आधुनिक बहुलतावादी सांस्कृतिक एकता की आज जरूरत है। यदि हम इस सांस्कृतिक एकता के लक्ष्य को आने वाले कुछ दशकों में हासिल नहीं कर पाते हैं तो सारा का सारा आर्थिक विकास और राजनीतिक आजादी धरी की धरी रह जाएगी। संस्कृति के सार्थक तत्वों की प्रचुरता के आधार पर एक नए राष्ट्र का अभ्युदय की प्रचुर संभावना तो है, पर ये सारे तत्व और संभावनाएँ जन-जीवन की गहरी तहों में दबी हैं, क्योंकि सतह पर छिछली राजनीति उतरा रही है।

आजादी के बाद स्वाधीनता सेनानियों के सपनों के अनुरूप भारत को सुखी संपन्न, भेदभाव रहित व स्वाभिमानी देश बनाकर विश्व में अग्रणी राष्ट्र के रूप में खड़ा करने का संकल्प केवल इस छिछली राजनीति और सरकारों के भरोसे पूरा नहीं हो सकता। इसके लिए हम समस्त नागरिकों को भेदभाव से ऊपर उठकर देश की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए नए भारत के निर्माण में योगदान देना होगा और समाज एवं देश विरोधी शक्तियों का मुखालफत करना होगा। आज अपने राष्ट्र में अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर और राष्ट्र में स्वतंत्रता का दुरुपयोग कदम-कदम पर हो रहा है। राष्ट्रीय एकता व अखंडता पर आज खतरे के बादल इसलिए भी

मंडरा रहे हैं, क्योंकि देश की बड़ी आबादी तक समृद्धि और विकास के लाभ नहीं पहुँच सके हैं जिसके परिणामस्वरूप गरीबी, बीमारी और अशिक्षा के साए में करोड़ों जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। इसे देश का दुर्भाग्य ही तो कहा जाएगा कि जिन जनप्रतिनिधियों को देश का भाग्य बदलने की जिम्मेदारी दी गई वे अपने ही भाग्य बदलने में लग गए। देश की जनता के प्रतिनिधि संसद के पूरे सत्र को आरोप-प्रत्यारोप में गुजार देते हैं तो यह देश कैसे बदलेगा?

इस पुस्तक के द्वितीय अध्याय में भारतीय राजनीति से संबंधित 134 प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत किए गए हैं। देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति अपने निम्नतर स्तर पर जा पहुँची है। आखिर वह कौन सा कारण है कि देश की आजादी के 70 वर्ष पूरे होने के बावजूद भारत के लोकतंत्र में परिपक्वता नहीं आ सकी है। दरअसल देश की आजादी के तुरंत बाद के नेता अपने वादों पर खरा उतरे, लेकिन आजकल के राजनीतिज्ञों को प्रतिबद्धता से कोई वास्ता नहीं रहता। आज की राजनीति में न तो कसमों का कोई स्थान है और न वादों व आश्वासनों का। यही कारण है कि ले-देकर नेताओं के वादे और कसमें जनता पर कोई असर भी नहीं डालते। राजनीतिज्ञों में आज के दिन वफादारी इसलिए नहीं दिखती, क्योंकि वे पार्टी के सिद्धांतों पर नहीं, अपितु सत्ता पर उसकी पकड़ को देखते हैं। यदि बारिकी से देखा जाए, तो आज के राजनेता सत्ता प्राप्ति या उसमें बने रहने के लिए गिरगिट की तरह अपना रंग बदलते देखे जाते हैं। आज के नेता दल या देश की नहीं, बल्कि अपनी राजनीतिक और आर्थिक स्थिति को मजबूत करने में विश्वास करते हैं। आज उसी तरह के नेता को चतुर कहा जाता है जो लहर देखकर तत्काल उस पर सवार हो जाए। ऐसे नेताओं की चाल, चरित्र और चेहरे देखकर अब तो वैसे पुराने एवं स्वाभिमानी नेताओं की याद आने लगी है, जो नीति और सिद्धांत को लेकर सत्ता को लात मारने की हिम्मत दिखाया करते थे, मगर देश की आजादी के दो-तीन दशक बाद इस देश और यहाँ की जनता को बंधक बनाकर रखने की राजनीति शिखर-पुरुष चला रहे हैं। सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में जमे हुए मठाधीशों का उपेक्षा भाव निःसंदेह चिंता का विषय है, क्योंकि आम आदमी पुलिस तंत्र और नेता तंत्र के संयुक्त हमले को झेलता हुआ आतंक की छाया में जी रहा है। आपको याद होगा काँग्रेस के पुराने नेता पुरुषोत्तम दास टंडन ने काँग्रेस का अध्यक्ष पद छोड़ दिया था, लेकिन नेहरू के सामने आत्मसमर्पण करना पसंद नहीं

किया। उनके पूर्व नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने गाँधी के इस खुल्लम-खुल्ले उद्घोषित उम्मीदवार सीताभिरम्मैया को काँग्रेस पार्टी के अध्यक्ष के पद पर पराजित कर स्वयं विजयी होकर भी इस पद को ठुकरा दिया था।

कथनी-करनी में अंतर के मामले में राजनीतिक दलों-नेताओं की साख में जारी गिरावट चुनाव के समय तो मानो अपने चरम पर पहुँच जाती है। काँग्रेस, बसपा, सपा, जद(यू), राजद आदि की तो बात ही छोड़िए, भाजपा की पहचान से जुड़े राम मंदिर और समान नागरिक संहिता का इस्तेमाल आखिर चुनाव के वक्त अक्सर क्यों किया जाता है? इसी प्रकार सत्ता की सतहों में बहुत कुछ होता रहा और आज भी हो रहा है पर आमजन जीवन सदियों से संजोए मूल्यों और परिपाटियों के मुताबिक जीता रहा। जड़ होती समाज व्यवस्थाओं के बीच भी सदियों से उत्पीड़ित जन अपनी सरलता, सादगी, कर्मठता और जीवन-सत्य बचाए रहे। पर अब भारत की राजनीति से भारत के आमजन को खतरा महसूस हो रहा है। यह राजनीति जनता के बीच के विभाजनों को खतरनाक ढंग से इस्तेमाल कर इसे और गहरा कर रही है। यह राजनीति इस देश को अंदर ही अंदर तोड़ रही है, जो बड़ी मुश्किल से सदियों के संघर्ष के बाद सचमुच एक देश बनने की प्रक्रिया में था। भारत राष्ट्र को राष्ट्रवाद की इस राजनीति से खतरा है कारण कि एक राष्ट्र जिसे निर्मित करने की जरूरत है, मजबूत करने की जरूरत है, उसकी सांस्कृतिक बहुलता को समरस और उत्पादक, न्यायपूर्ण और समय की जरूरत है उसे राष्ट्रवाद की राजनीति का अखाड़ा बनाने का मतलब उसके नींव की इंटें खिसकाना है, उसके बनने की प्रक्रिया को बाधित करना है।

किसी भी राजनीतिक दल के नेतृत्व को यह ध्यान रखना चाहिए कि आम आदमी की नजर प्रत्येक राजनीतिक पार्टी की कार्यशैली पर रहती है। इसलिए पार्टी को प्रतीकों की राजनीति का मोह त्याग कर आम आदमी के वास्तविक मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। पिछलें दिनों 21 जनवरी, 2017 को जद(यू) द्वारा आयोजित नशामुक्ति के पक्ष में मानव शृंखला में भाजपा ने भी शामिल होने की घोषणा की थी, मगर उसके बिहार प्रदेश के अध्यक्ष सहित अधिकांश नेता उसमें शामिल होने से कन्नी काट गए। हालांकि यह भी सच है कि जद(यू) के राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा बिहार के मुख्यमंत्री चाहे जितना बढ़-चढ़कर मानव शृंखलाओं में भाग लेने की बात करें, आम आदमी की अपेक्षित भागीदारी अनुमान से बहुत कम देखने को मिली। हाँ, विद्यालयों के छात्र-छात्राओं की भागीदारी अवश्य देखी गयी।

इसी प्रकार जब हमारी नजर ममता बनर्जी की पार्टी तृणमूल काँग्रेस पर जाती है, तो हम पाते हैं कि ममता बनर्जी ने राजनीति में जिस दिशा का अनुसरण किया है, वह संघीय व्यवस्था और लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं है, क्योंकि उनके मिजाज में पं. बंगाल में अराजकता पैदा करना है और केंद्र के खिलाफ कुछ ऐसा करना है जिससे बगावत दिखे। नोटबंदी को उन्होंने ऐसे लिया मानों केंद्र ने राज्य सरकारों पर सीधा प्रहार किया हो। वे बगावती मूड में कोलकाता, दिल्ली, पटना और लखनऊ में ऐसे घूम रही थीं मानो केंद्रीय सत्ता को उखाड़ फेकेंगी। वह अहंकार में जनभावनाओं को समझने का ध्यान खो बैठी थीं। उनके बगावती तेवर पटना के धरणा में फिस्स हुए ही, बंगाल में भी फिस्स हो गए। उन्होंने इतनी गैर जिम्मेदारी की कि बंगाल की जनता को भड़काने के लिए सैन्य बलों को भी उन्होंने ओछी सियासत में घसीटने का प्रयास किया, जो निंदनीय है। चिटफंड और सारधा घोटाले में तृणमूल काँग्रेस के एक के बाद एक सांसद फँस रहे हैं। संभवत: हाथ ममता तक भी पहुँच सकते हैं। शायद ममता जी को लोकसभा चुनाव से आभास हो गया था कि अगले विधानसभा चुनाव में भाजपा बढ़त पाएगी। लोकसभा चुनाव 2014 में भाजपा को 17 प्रतिशत वोट मिले। पड़ोसी राज्य असम में भाजपा की सरकार बन गई। अरुणाचल भी उसके हाथ में आ गया है यानी पूर्वोत्तर का भविष्य भाजपा ही है। ममता जी मुगालते में नही रहें, ममता जी का विकल्प भी तैयार होने के कगार पर है। नोटबंदी से ममता जितना परेशान हैं, दिक्कत उनको नहीं जो कतार में लगे, बल्कि उन्हें हुई जिनकी राजनीति फीकी पड़ गई। लोग अब समझ चुके हैं कि नोटबंदी से आतंकवाद, नकली नोटों और कालेधन वालों की समानांतर अर्थव्यवस्था को कितना झटका लगा है , क्योंकि अबतक जिस पैसे का केंद्र सरकार को पता नहीं था अब वह अचानक स्विस बैंक के कब्जे में है जिससे अब देश के लिए सड़कें, पुल, मेट्रो, मिसाइल और मंगल पर जाने वाले यान बनेंगे। जबसे नोटबंदी हुई, तबसे कश्मीर में पत्थर फेंकना बंद हो गया है और नक्सली इलाकों में वारदातें ठप हो गई हैं। अब तो बेनामी संपत्ति पर भी निर्णायक हमला होगा जिससे देश का 35 प्रतिशत भ्रष्टाचार खत्म होगा।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के सत्याग्रह का सौवां साल हम मना रहे हैं। ऐसे वक्त मुझे याद आती है 1922 में स्वतंत्र भारत के भविष्य के बारे में लगातार चिंतन करने वाले महात्मा गाँधी ने एक पत्र में वे चार तत्व लिखे जिनकी वजह से स्वराज आने के बाद भी भारत के लोगों को खुशी नहीं

मिलेगी और वे कहने लगेंगे कि पहले का ब्रिटिश प्रशासन ही बेहतर था, तब न्याय अधिक था और पारदर्शिता थी। ये चार चिंताकारक तत्व थे अन्याय, प्रशासन का बोझ, चुनावों के दोष और अमीरों द्वारा शोषण। आज यही चारों उस समय से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं और देश के सारे कार्यकलाप को विकृत करने में भागीदारी कर रहे हैं, आजादी के सत्तर साल और गाँधी जी के सत्याग्रह के सौ साल बीत जाने के बाद भी आज वस्तुत: हर तरफ गाँधी जी द्वारा 1922 में किसी पत्र में लिखे गए उन चार चिन्हित तत्वों का भयावह रूप हमें हर जगह दिखाई देता है और प्रत्येक नागरिक उसका भुक्तभोगी है।

जहाँ तक गाँधी जी के चिंतन के उन चार तत्वों में से अन्याय का सवाल है आपने देखा नोटबंदी के बाद धनकुबेरों ने बैंक के अधिकारियों और कर्मचारियों से साठगाँठ कर पंक्ति के अंतिम छोर पर खड़े आम आदमी के साथ निर्मम अत्याचार किया। आज यह आम चर्चा है कि जिसके पास संसाधन थे वे पचास प्रतिशत तक कमीशन देकर अपना पैसा काले से सफेद करने में सफल हो गए। जिस ढंग से जनधन खातों में लोगों ने काली कमाई जमा कराई वह शिक्षित समाज में सर्वत्र फैली हुई संवेदनहीनता तथा चारित्रिक दुर्बलता को उजागर करता है।

नोटबंदी के क्रियान्वयन में यदि बैंकों में मानवीय मूल्यों का ईमानदारी से निर्वाह किया जाता, तो आमजन को जो परेशानियाँ हुईं वे एक बड़ी सीमा तक कम हो गई होतीं। कालेधनवाले धनकुबेरों ने तो आमजन के साथ न्याय नहीं किया जिसकी कल्पना गाँधी जी ने 1922 में ही की थी। जहाँ तक दूसरे तत्व प्रशासन के बोझ का सवाल है, प्रशासन का बोझ कितना बढ़ा है, यह हर वह भुक्तभोगी व्यक्ति जानता है जिसने तहसील या जिले स्तर अथवा सचिवालय स्तर के सरकारी कार्यालयों में काम कराया हो। आज प्रशासन किस तरह जनोपयोगी योजनाओं में भी धन उगाही कर लेता है यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। प्रशासन का बोझ तो, इसी से समझा जा सकता है कि छोटे से छोटे काम के लिए भी कर्मचारी से लेकर अधिकारियों तक को रिश्वत देना पड़ता है। वास्तविकता यह है कि अपवादों को छोड़कर संभवत: हर जगह लाभार्थियों को एक निश्चित प्रतिशत सुविधा शुल्क देना पड़ता है। यदि प्रशासनिक व्यवस्था में ईमानदार तथा संवेदनशील लोग ही प्रवेश कर पाते तो प्रशासन का बोझ सामान्य नागरिकों को नहीं उठाना पड़ता।

गाँधी जी के तीसरे तत्व में चुनाव के दोष का सवाल है। आज तो

चुनावों का जनतांत्रिक मूल्यों से जुड़ाव ही समाप्त हो गया है। राजनीतिक दलों ने हर प्रकार के हथकंडे अपना कर धन संग्रह को अपना मूल अधिकार मान लिया और उन्होंने कालेधन के फलने-फूलने के सभी रास्ते खोल दिए। जिस तेजी से कालाधन बढ़ा चुनाव सामांन्य व्यक्ति की पहुँच से बाहर होते गए और जनतांत्रिक मूल्य नव विकसित शहरों की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं के नीचे दब गए वह सभी ने देखा है।

गाँधीजी के अंतिम तत्व थे अमीरों द्वारा शोषण। गाँधी जी कहा करते थे कि असली स्वराज सत्ता कुछ लोगों के हाथ में आ जाने से नहीं आएगा। वह तब आएगा जब लोगों में यह क्षमता आ जाएगी कि वे सत्ता का दुरुपयोग का प्रतिरोध कर सकें। स्वराज नागरिक के इस विश्वास पर निर्भर करता है कि वह सत्तासीनों को नियमित और नियंत्रित कर सकता है।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में सत्ता आम लोगों के हाथ में होती है। वह जन प्रतिनिधियों को चुनकर उन्हें अधिकार सौंपती है। सत्ता में आने के बाद जनप्रतिनिधि यथास्थिति की व्यवस्था के अधीन हो जाता है। उसकी सारी ताकत उसे बनाए रखने में लगती है, क्योंकि इसमें सबका निहित स्वार्थ है, गण के अलावा। गण बार-बार सरकार बदलता है। कई बार तो वह पार्टियों को नेतृत्व बदलने पर भी मजबूर करता है, लेकिन वह हर बार ठगा जाता है। इस नाकामी और निराशा के बावजूद वह हिम्मत नहीं हारता, प्रयास करना नहीं छोड़ता। गाँधी जी ने आजादी के पूर्व यही कहा था और आमजन को जागरूक होने की बात कही थी इसलिए देश, समाज और हालात में बदलाव और भविष्य को सुनहरा बनाने के लिए वर्तमान में इस देश का आमजन या गण, हर तरह की तकलीफ उठाने को तैयार है, बशर्ते की उसे भरोसा हो कि इस रात के बाद सुबह होगी। ओडिशा का पंचायत चुनाव और महाराष्ट्र निकाय चुनाव के नतीजों के जरिए यह साबित हो गया कि राष्ट्रीय राजनीति में भाजपा का कोई विकल्प नहीं। काँग्रेस का दुर्भाग्यपूर्ण क्षरण देश और लोकतंत्र के लिए यों तो शुभ नहीं कहा जाएगा, और उसमें भी तब तो बिल्कुल नहीं जब हरेक छोटे-बड़े राज्यों में परिवारवादी दल उभर आए हैं, किंतु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि काँग्रेस की दुर्गति के लिए सबसे ज्यादा वे लोग जिम्मेदार हैं, जो इस पार्टी को अपने खानदान को जागीर समझते हैं और वे भी कम नहीं जिम्मेदार हैं जो अपरिपक्व ने दल की जी हूजूरी करने में ही अपनी भलाई समझते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि ऐसे जी-हुजूरी करने वाले लोग 'हम तो डूबेंगे सनम, आपको भी ले

डूबेंगे' कहावत को चरितार्थ करने में लगे हैं। राहुल गाँधी मोदी विरोध के नाम पर नकारात्मक की हद तक चले गए। मोदी के खिलाफ राहुल के आरोप थोथे ही अधिक नजर आते हैं।

एक तरफ केंद्र में परिवारवाद कमजोर हुआ है तो दूसरी तरफ राज्यों में उनका मजबूत होना खतरे की घंटी है। भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में राष्ट्रीय स्तर पर दो या तीन परिवारमुक्त पार्टियाँ, सुखद स्थिति ला सकती थीं, किंतु प्रत्येक राज्यों में एक परिवार के पॉकेट में पार्टी का होना चिंताजनक हैं, क्योंकि इससे सबसे ज्यादा नुकसान देश के आम नागरिकों का हो रहा है। दूसरी तरफ चुनाव प्रचार के वक्त प्रतिस्पर्धा पर आरोप लगाना अस्वाभाविक तो नहीं है, पर इसकी आड़ में जैसा जहर जीवन और समाज में घुलने लगा है, वह खतरनाक सीमा पर पहुँच रहा है जिससे नेताओं पर भले ही असर पड़े या नहीं, पर आमजन का नुकसान तो हो ही रहा है।

मुझे आश्चर्य इस बात को लेकर है कि विपक्षी दल तो स्वाभाविक रूप से पिछले लोकसभा चुनाव में प्रचंड बहुमत से सत्ता पर विराजमान होने वाले नरेन्द्र मोदी की सरकार के विरोधी तो दिखेंगे ही, मगर अपने सीमित वैचारिक दायरे में कैद रहने वाले अशोक वाजयेयी जैसे बुद्धिजीवियों ने देश की गरीबी और उससे पीड़ित गरीब का डंका तो खूब बजाया, लेकिन देश का ये अति गरीब जन-मन क्या चाहता है इसे टटोल नहीं पाए। इस महत्वपूर्ण प्रश्न सुलझाने में इन्होंने कभी कोई रुचि प्रदर्शित नहीं की। उलटे उस गरीब को भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और अशिक्षा के जरिए और अधिक विपन्न बनाने वाले शासकों के आजू-बाजू खड़े होकर अपने राष्ट्रघाती एजेंडे को ही धार देने की कोशिश करते रहे। ऐसे में जब देश के जन-मन को मोदी में एक 'राष्ट्रनायक' की छवि नजर आई तो उसने अपने मन की आवाज के अनुरूप उनको इस देश का भाग्यविधाता बना दिया। आज जिस नोटबंदी और जीएसटी की जो लोग आलोचना कर रहे हैं वे प्रत्यक्ष रूप से देश के जन-मन की उस आकांक्षा को दबाने का असफल प्रयास कर रहे हैं जो अब मोदी की ताकत बन चुकी है। अत: मोदी विरोधी अब इस प्रश्न पर विचार करें कि 2014 में देश का जन-मन मोदी के साथ क्यों खड़ा हुआ?

वर्ष 2017 के अंत होते-होते राष्ट्रीय राजनीति के संकेतक यह बता गए कि नरेन्द्र मोदी की लोकप्रियता बदस्तूर जारी है। निश्चित रूप से मेरी नजर में उनकी सफलता के पीछे विदेशी-सक्रियता रही। सामान्य मतदाता उन्हें केवल राष्ट्रीय नीतियों के आधार पर ही नहीं परखता, बल्कि वह

अमेरिका, चीन, जापान, रूस, फ्रांस और पाकिस्तान के बरक्स उनकी रीति –नीति पर भी नजर रखता है। इस लिहाज से देखा जाए तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के साढ़े तीन साल के कार्यकाल के दौरान घरेलू राजनीति, सांस्कृतिक टकरावों, आर्थिक उतार–चढ़ाव और विदेश नीति के गुढ़ प्रश्नों को लेकर वर्ष 2017 कुछ बड़े सबक देकर गया और गुजरात एवं हिमाचल प्रदेश के विधानसभा चुनावों के बाद तो लोगों का भरोसा नरेन्द्र मोदी पर ही कायम रहा। प्यू रिसर्च सेंटर के इस साल के सर्वेक्षण का नतीजा है कि 10 में से 9 भारतीय नरेन्द्र मोदी के प्रति सकारात्मक राय रखते हैं जबकि 2015 में यह 10 में से सात का था। साल के अंतिम दिनों में भारत के दलवीर भंडारी को हेग स्थित अंतरराष्ट्रीय अदालत में स्थान मिलना भी एक बड़ी सफलता मानी जाएगी, पर एनएसजी में चीनी अड़ंगा और मसूद मजहर को आतंकी घोषित करा पाने में विफलता भी साल की सुर्खियों में शामिल रहा, लेकिन इन सबों के बावजूद अच्छी बात यह है कि भारत अपनी कुशल कूटनीति से काफी हद तक स्थितियों को सकारात्मक दिशा दे पाया है।

निःसंदेह विगत दो दशकों में भारतीय राजनीति के राष्ट्रीय दल कमजोर हुए हैं। आज उनकी जो स्थिति है वह पहले कभी नहीं थी। इसके चलते नागरिक हितों का संरक्षण बहुत कम हो गया। कुछ इसी तरह की स्थिति क्षेत्रीय दलों की भी हो गई है। राष्ट्रीय दलों के साथ क्षेत्रीय दलों की लोकप्रियता में तेजी से गिरावट आई है। कोई भी दल ऐसा दल नहीं, जिसमें आंतरिक कमियाँ दूर करने का तंत्र हो, जिसमें परंपरागत नीतियों के लिए वरिष्ठों की मदद ली जाती हो। न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय के विधि प्राध्यापक प्रो. सैम्यूअल इसाफ्राक राजनीतिक दलों की गिरती लोकप्रियता पर किए गये अपने शोध पत्र में कहते हैं कि 'ऐसा भी कोई दल नहीं, जो अपने शासन के जरिए संसदीय नेतृत्व का उपयोग पार्टी पर नियंत्रण करने के लिए करे।' प्रो. इसाफ्राक ने भी लोकतांत्रिक राजनीति के भविष्य को लेकर चिंता जताई है।

मेरा भी ख्याल है कि हमारा देश भारत भी आज उस दौर में है जहाँ लोकतंत्र के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं, जिनकी वजह से राजनीतिक दलों के मूल सिद्धांतों एवं विचारधाराओं को क्षति पहुँच रही है। लोकतंत्र के सामने अनिश्चितताएँ बढ़ गई हैं, नीतियों के संरक्षण के लिए समझौते जैसी स्थिति है। पारदर्शिता बढ़ने की वजह से राजनीतिक दलों की वचन बद्धताएँ खारिज हो रही हैं। विधायिका कमजोर हो रही है। सामाजिक एकता की भावना

धुँधली पड़ रही है और लोकतांत्रिक ताकतों की क्षमता में कमी आ रही है।

कुल मिलाकर हम इस नतीजे पर पहुचे हैं कि अब इस देश के लिए किसी अतीत में, किसी सपने में या किसी कथा-कहानी-पुराण में शरण नहीं है। इसे अब वह सारा ईंट-गारा बदलना होगा जिसपर विगत सत्तर साल से जर्जर होने के बावजूद इसका विशाल भवन खड़ा रहा है। मुझे लगता है कि यहाँ की जनता जिस तेजी से मानसिकता में बदलाव लाती दिख रही है। आने वाले दशक आमूल नवनिर्माण के दशक होंगे जिसकी एक भनक 2014 के लोकसभा चुनाव के बाद मिल गयी है, मगर मुझे अफसोस इस बात का है कि इस नवनिर्माण की राजनीति भारतीय समाज के भीतर से तो निकलती दिख रही है, पर नवनिर्माण के राष्ट्रीय राजनीति रूपी समय रथ को सांप्रदायिक, जातिवादी, भाषावादी, क्षेत्रवादी और पुरातनपंथी किस्म के राजनीतिक क्षत्रपों की महत्वाकांक्षाओं और लोलुपताओं के हाथों में अपनी रास थमाए अंधी गति से भविष्य-पथ पर बढ़ना पड़ रहा है। इसके मद्देनजर आने वाले दशकों में इस देश को अपना मन, जीवन, समाज, संबंध सब कुछ नए सिरे से रचना होगा, परिभाषित करना होगा। समय का यही तकाजा है। यह एक ऐसा देश है जिसका भविष्य है जिसे मैं आशा भरी निगाहों से देख रहा हूँ और जिसकी एक झलक आपको राष्ट्रीय राजनीति से संबंधित हमारे उत्तर में मिल जाएगी।

नोबल शांति पुरस्कार विजेता एवं जाने-माने बाल अधिकार कार्यकर्ता कैलाश सत्यार्थी ने बाल मजदूरी की बुराई खत्म करने के तरीके ढूँढ़ने के क्रम में एक घटना-से उन्होंने एक बात सीखी कि सामाजिक बुराइयों के बारे में पारंपरिक सोच और घिसे-पिटे जवाबों पर भरोसा करने की बजाय सवालों की चिंगारी सुलगाए रखनी चाहिए, ताकि सवालों की यही चिंगारी एक दिन आग बनकर बुराइयों को जला देगी।

कैलाश सत्यार्थी की तरह विभिन्न क्षेत्रों के प्रबुद्धजनों एवं हमारे शुभेच्छु मित्रों के सवालों की चिंगारी को सुलगाए रखने की बात मेरे मन में भी आई और उनके सवालों के जवाब मैंने दिए जो राष्ट्रीय एवं भारतीय राजनीति से जुड़े रहे हैं। मुझे भी ऐसा लगता है कि सवालों की यही चिंगारी एक दिन आग बनकर सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा राजनीतिक बुराईयों को जला देगी। राष्ट्रीय मुद्दों एवं राजनीतिक घटनाओं ने मेरे मन को मजबूत बनाने में बहुत मदद की। वैसे भी मन की मजबूती संकल्पों की दृढ़ता की आधारशिला होती है। मेरा अनुभव है कि राष्ट्रीय एवं राजनीतिक

मुद्दों पर प्रष्टाओं के सवाल और उनके मैंने जो उत्तर दिए हैं, वे जाने-अनजाने दूसरों की बेहतरी के लिए उठने वाला मेरा कदम कभी अकेला नहीं रहेगा, बल्कि हमारे कदमों के साथ लाखों लोगों का चलना तय है जिसका सारा श्रेय हमारे समक्ष प्रस्तुत करने वाले प्रष्टाओं को जाएगा, जिन्होंने मुझसे सवाल पूछकर आग की चिंगारी फैलाई है, जो बुराइयों को जला देगी। हम ऐसे सभी प्रश्नकर्ताओं के प्रति तहेदिल से अपना आभार व्यक्त करते हैं।

इस प्रकार लोकतंत्र के चारों स्तंभों-विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और मीडिया में से कौन सा स्तंभ है जो लोकतंत्र को बचा सकता है? जब इस सवाल का जवाब ढूँढ़ते हैं तो पाते हैं कि लोक में जो स्तंभ आस्था और विश्वास जगा सकता है वहीं स्तंभ सशक्त है। कारण कि विधायिका स्वार्थी होती जा रही है, कार्यपालिका शिथिल होती जा रही है, न्यायपालिका की देवी के हाथ में तराजू है, किंतु आँखों पर काली पट्टी बंधी है जिसकी वजह से वह विधि सम्मत न्याय नहीं कर पा रही है और न्याय करने में जरूरत से अधिक विलंब कर रही है। चौथा स्तंभ मीडिया काफी हद तक बिकाऊ होता जा रहा है। पता नहीं इसके संवेदनशील अंगों को क्या होता जा रहा है। आज के राजनीतिज्ञ आखिर समाज को किस दिशा में ले जाना चाहते है? मुझे तो इस नतीजे पर पहुँचने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है कि अराजकता ही आज उनका फैशन बन गया है। कुछ इन्हीं गतिविधियों को मद्देनजर रखते हुए राष्ट्रीय मुद्दों के साथ-साथ राजनीति से संबंधित मुद्दों को प्रश्नकर्ताओं द्वारा मेरे समक्ष प्रस्तुत 213 प्रश्नों के यथासंभव उत्तर देकर मैंने उनकी जिज्ञासा को पूरा कर उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास किया है।

(सिद्धेश्वर)
पूर्व अध्यक्ष
बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड
पटना

संपर्क:
संस्थापक संपादक, 'विचार दृष्टि'
'संस्कृति', ए-164, ए. जी. कॉलोनी
शेखपुरा, पत्रा.-आशियाना नगर
पटना-800025, मो.-9431037221

अभिमत

सिद्धेश्वर के शब्द-कर्म को चिंहित करती कृतियाँ

□पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि'

राष्ट्रीय विचार मंच के राष्ट्रीय महासचिव तथा दिल्ली से प्रकाशित उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के संस्थापक संपादक सिद्धेश्वर जी एक संघर्षशील संगठनकर्ता के रूप में तो हमलोगों के बीच परिचित हैं ही वैचारिक रूप से भी बौद्धिकजनों के बीच इन्होंने अपनी एक छाप छोड़ी है। अतीत की पड़ताल, वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक संकटों की समझ और आगे की दिशा निर्धारण में भी बहुत गंभीरता और जिम्मेदारी के साथ बाहर और भीतर की लड़ाईयों को ये समझ लेते हैं। दरअसल, सिद्धेश्वर जी में यथार्थ को तटस्थ रूप से देखने की क्षमता है और विवेक भी। काफी लगन, निष्ठा और ईमानदारी से ये अपने कर्तव्य का निर्वह्ण करते हैं। आखिर तभी तो बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्य मंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष का दायित्व तीन साल तक निभाने के पश्चात् उसे छोड़कर लेखन के कार्य में लग गए और विगत तकरीबन छह वर्षों में इनकी एक दर्जन पुस्तकों की पांडुलिपियाँ तैयार हो चुकी हैं जिसमें से 'कवि और कविता' तथा 'बुजुर्गों की जिंदगी' नाम्नी इनके दो हाइकु संग्रहों का लोकार्पण विगत 14 मई, 2017 को पटना में राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से इनके ए. जी. कॉलोनी स्थित 'संस्कृति' निवास की संस्कृति वाटिका में सुधी साहित्यकारों एवं प्रबुद्धजनों के बीच संपन्न हुआ। सिद्धेश्वर जी की जीवन-यात्रा के पचहत्तर वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में आयोजित अमृत महोत्सव के अवसर पर पुस्तक लोकार्पण समारोह में पधारे बिहार विधान परिषद के भाजपा नेता माननीय गंगा प्रसाद ने उन्हें दीर्घायु होने की मंगल कामना करते हुए सिद्धेश्वर जी को शॉल ओढ़ाकर अपनी शुभकामना व्यक्त की। संयोग ऐसा कि उसके कुछ ही महीने बाद गंगा प्रसाद जी को मेघालय का राज्यपाल महामहिम राष्ट्रपति जी के द्वारा नियुक्त किया गया। उल्लेख्य है कि महामहिम राज्यपाल गंगा प्रसाद जी एक लंबे अरसे से सिद्धेश्वर जी द्वारा सामाजिक क्षेत्रों में किए जा रहे कार्यो में तहेदिल से सहयोग करते रहे हैं।

मेरा मानना है कि किसी व्यक्ति का अभ्युदय बिना कारण के नहीं

होता। सिद्धेश्वर जी द्वारा सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में किए जा रहे कार्य साफ-साफ दिख रहे हैं। इन्होंने अपनी कर्तव्यपरायणता से यह सिद्ध कर दिया कि इन्हें किसी रहमोकरम की भीख नहीं चाहिए। इसीलिए तो लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत देशवासियों के नागरिक हकों की दरकार के लिए रेलवे हिंदी सलाहकार समिति तथा राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से पूरे भारत का दौरा कर लोगों में चेतना जागृत करने का प्रयास सिद्धेश्वर जी करते रहे हैं और राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में अनवरत रूप से लगे हैं। इसी के परिणामस्वरूप सिद्धेंश्वर जी से साक्षात्कार के दौरान व्यक्तिगत एवं साहित्यिक प्रश्नों से लेकर शैक्षिक, भाषिक, पत्रकारिता तथा नैतिक प्रश्नोत्तरों को संगृहीत कर पटना विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर हिंदी विभाग के विद्वान पूर्व विभागाध्यक्ष डॉ. बलराम तिवारी के संपादन में एक अच्छी 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' नाम्नी कृति के साथ अन्य पाँच-छह पुस्तकें शीघ्र ही लोगों के समक्ष आने को हैं।

सिद्धेश्वर जी ने इन सारी कृतियों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, न्यायिक एवं सांस्कृतिक तथा वैचारिक लोकतंत्र पर जोर दिया है। इनकी प्रगतिशील विचारधारा से ही क्रांतिकारी विमर्श आगे बढ़ सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है, क्योंकि राजनीति में भी समाज के निम्न एवं मध्य वर्ग की भागीदारी बढ़ी है और उसी से नेतृत्व भी उभरा है। आज राजनीति में उनका महत्व बढ़ा है, पर यह चिंता की बात जरूर है कि आज राजनीति में जातीय अस्मिताओं ने उनको अलग-थलग कर दिया है। वैसे भी चुनौतियाँ वंचित वर्गो के सामने शुरू से रही हैं।

साहित्य के मौन-साधक सिद्धेश्वर जी इधर हाल की कृतियों में अनेक रचनाकारों के अनगिनत आत्मीय रिश्तों को उद्घाटित कर उनके बहुआयामी रचनात्मक पक्षों की पहचान प्रस्तुत की है जिसमें उनके व्यक्तिगत रिश्ते-नाते ही नहीं, प्रायः साहित्य और समाज के सरोकार भी हैं। मैं भी मानता हूँ कि साहित्य की साक्षात्कार विधा के इनके पाँचों संकलन यथा 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर', 'इंसानियत की धुँआती आँखें', 'राष्ट्रीय राजनीति', 'वैश्विक कूटनीति' और 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले' वस्तुतः सिद्धेश्वर जी का जिंदगीनामा है जो इनके शब्द-कर्म को भी चिंहित करते हैं।

यह देखकर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है कि सिद्धेश्वर जी निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर हैं। आपके पास जहाँ स्पंदनशील हृदय है, वहीं वस्तु को देखने वाले सूक्ष्म ज्ञान के नयन भी हैं। राष्ट्रीय विचारधारा से प्रवाहित इन

पाँचों कृतियों का मैं स्वागत करता हूँ, क्योंकि भावना और विचार की दृष्टि से इनमें वैयक्तिकता, राष्ट्रीयता, सरसता और इनके नाम के अनुरूप सिद्धहस्ता है।

डॉ. बलराम तिवारी सहित डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम', डॉ. राम निवास 'मानव' तथा अनेक सुपरिचित हिंदी साहित्य के मुर्धन्य विद्वानों द्वारा सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार के दौरान प्रस्तुत प्रश्नोत्तर के संकलन में संपादक का संयत और सुविचारित संपादन सराहनीय है। सिद्धेश्वर जी द्वारा विभिन्न विषयों पर दिए गए विचार सुस्पष्ट, बेबाक, संतुलित और गंभीर तथा सरस हैं जिसकी मैं मुक्त कंठ से प्रशंसा करता हूँ। समाज और राजनीति में व्याप्त विसंगतियों के साथ ही सभ्यता, संस्कृति तथा धर्म के संदर्भ में सिद्धेश्वर जी के उत्तर इनके रचना-कर्म के हिस्से हैं जो सत्यान्वेषण और आमजन की मुक्ति की आकांक्षा को स्वर प्रदान करते हैं।

मुझे खुशी इस बात की है कि सिद्धेश्वर जी जैसा साहित्यिक सज्जन यदि वर्तमान दौर की राजनीति में नैतिकता के साथ रुचि ले रहा है तो इसका सीधा अभिप्राय है कि वह देश की राजनीति के प्रति जागरूक तो है ही राष्ट्रीय जीवन के प्रति उत्तरदायी व जिम्मेदार भी। यदि साहित्यिक सज्जनता इसी प्रकार जारी रही तो हमारे राष्ट्र को जर्मनी और इटली की तरह पछताना नहीं पड़ेगा जैसे वे प्रथम महायुद्ध के पश्चात् पछताए थे। आज के वातावरण में जो साहित्यिक प्रकृति का व्यक्ति राजनीति से अलग रहकर स्वतंत्र और स्वयं को सज्जन कहने का दावा करता है वह मेरी समझ से दंभी और स्वार्थी है जिसे राष्ट्र की चिंता तनीक नहीं है, कारण कि हमारे राष्ट्र का यौवन राजनीति के दंगल में संघर्ष कर रहा है, कुश्ती लड़ रहा है, मगर साहित्यिक सज्जन भूल गया है कि वह राजनीतिक शैक्षणिक संस्थान की नैतिकता का प्राध्यापक है। सिद्धेश्वर जी ऐसे साहित्यिक सज्जनों के अपवाद स्वरूप हैं, क्योंकि इन्होंने लोकतंत्र की रक्षा के लिए तंत्र का सुदृढ़ होना परमावश्यक समझा है। इतनी अच्छी कृति में सिद्धेश्वर जी के विचार स्वागत योग्य हैं। मैं उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ और दीर्घायु होने की कामना करता हूँ।

डॉ. श्याम सिंह 'शशि'
पूर्व महानिदेशक, प्रकाशन विभाग,
भारत सरकार, नई दिल्ली

संपर्क:
'अनुसंधान', बी-4/245
सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली
मो. 9818202120

अभिमत

कृति में उभरा है
राजनीति सहित समाज का विश्लेषणात्मक पक्ष

□डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

कोई भी व्यक्ति अनेक स्तरों पर सक्रिय रहकर सारे काम एक साथ कर सकता है, सिद्धेश्वर जी इसके ज्वलंत उदाहरण हैं, क्योंकि आप एक सम्मानित सामाजिक कार्यकर्ता तो हैं ही, साहित्य एवं पत्रकारिता में भी इनकी अभिरुचि सराहणीय है। देश के प्रबुद्धजन, साहित्यकार, पत्रकार और राजनेता बहुत सम्मान और आदरभाव से सिद्धेश्वर प्रसाद को 'सिद्धेश्वर जी' कहते हैं। पश्चिमी ज्ञान और उपभोक्तावादी संस्कृति की चकाचौंध इन्हें अन्य प्रबुद्धजनों की तरह कभी गुमराह नहीं कर सकी। साहित्य सृजन और संगठन का काम करते हुए भी सिद्धेश्वर जी राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था–'राष्ट्रीय विचार मंच' और दिल्ली से प्रकाशित उसके मुख पत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से देशवासियों में राष्ट्र निर्माण की चेतना जागरित करने का इनका प्रयास स्वागत योग्य है। दिल्ली में रहकर मंच का संचालन और उसके मुख पत्र का प्रकाशन करने के सिलसिले में प्रभाष जोशी तथा आलोक मेहता जैसे एक से बढ़कर एक दिग्गज साहित्यकारों एवं पत्रकारों को सुनने–समझने के साथ–साथ उनमें से कई साहित्यकारों एवं पत्रकारों का सान्निध्य इन्हें मिला।

सिद्धेश्वर जी को हम प्रगतिशील लेखक के रूप में इसलिए मानते हैं, क्योंकि इन्होंने हमेशा वर्गहीन समाज का सपना देखते हुए अपने साहित्य में मजदूरों, किसानों, गरीबों, असहायों, निर्बलों तथा समाज के हाशिए पर पड़े लोगों की चिंता की है। दरअसल, साहित्यकार को अपने भीतर और बाहर कुछ कमी महसूस होती है जिसकी पूर्ति के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है। समाज को वह सुख, शांति और आजादी की जिस अवस्था में देखना चाहता है, वह उसे नजर नहीं आता है। इसलिए मानसिक और सामाजिक रूप से समाज की वर्तमान अवस्थाओं से उसका मन कुढ़ता रहता है। अपनी कृति 'आम आदमी की आवाज' में समाज की अवस्था के लिए वह राजनीति और राजनेताओं को भी बहुत कुछ जिम्मेदार मानते हैं। तभी तो वह

कहते हैं-'सत्ता का समाजशास्त्र रचने वाली जनता जनार्दन राजनेताओं के पाखंड और व्याभिचार से बच नहीं पाती। सामाजिक कार्यकर्ता और लेखक होने के नाते इस यथार्थ को मैं महसूस करता हूँ कि नैतिकता और आदर्श जहाँ हमारे संस्कारों में रचे-बसे हैं, वहीं व्यवहार में यह आदर्श और नैतिकता हमारे कर्म को मर्यादित करती है, मगर हमारी दमित इच्छाएँ तृप्ति के लिए मनोलोक का सहारा लेती हैं। जिंदगी और मौत के सायों से घिरा इंसान कभी इससे निरपेक्ष, कभी तटस्थ और कभी उसकी भयावहता से त्रस्त चिंता और खामोशी में डूबता चला जाता है। राजनीति की ऐसी स्थिति है कि उनके दुख को सहलाने वाला, उसपर अपने संवेदना का मरहम रखने वाला नहीं है कोई।'

सिद्धेश्वर जी की अधिकांश कृतियाँ पाठकों के साथ-साथ रचनाकारों के समक्ष एक नवीन सोच, नवीन ऊर्जा प्रवाह और नवीन विश्लेषण से साक्षात्कार कराती हैं। सामयिकता की प्रखरता और भविष्य की तस्वीर इनकी रचनाओं की मुख्य धुरी है। मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति पर केंद्रित पुस्तक 'आम आदमी की आवाज' में राजनीति संहित समय और समाज का अहम विश्लेषणात्मक पक्ष उभर कर सामने आया है। इसी प्रकार 'हमें अलविदा ना कहें' नामक इनके संस्मरणात्मक निबंध संग्रह में हमारे बीच अब नहीं रहे कई अहम साहित्यकार, कलाकार, पत्रकार, राजनीतिज्ञ तथा समाजसेवियों की रचनात्मक व सकारात्मक उपादेयता की स्मृति के आलोक में श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। इधर हाल के वर्षो में प्रकाशित सिद्धेश्वर जी के साक्षात्कार के दौरान इनके प्रश्नोत्तर से राजनीति, साहित्य, समाज, संस्कृति, पत्रकारिता आदि विभिन्न विषयों पर जहाँ इनकी गहरी पकड़ का सहज अंदाजा लगाया जा सकता है, वहीं प्रश्नोत्तर इनके रचनाकर्म के मर्म को समझने के नए द्वार खोलते हैं। साक्षात्कार के दौरान साहित्य, शिक्षा, भाषा और नैतिकता से संबंधित प्रष्टाओं के द्वारा इनसे पुछे गए अनेक प्रश्नों के उत्तर सिद्धेश्वर जी ने दिए हैं जिन्हें संगृहीत कर पटना विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. बलराम तिवारी द्वारा संपादित 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' नाम्नी पुस्तक तैयार की गई है। यह पुस्तक अपने-आप में इनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालती है।

इसमें तनीक संदेह नहीं कि बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का पद स्वेच्छा से छोड़ने के बाद से सिद्धेश्वर जी द्वारा विरचित तकरीबन आधा दर्जन पुस्तकों के प्रकाशन से न केवल हिंदी साहित्य के लेखकों को,

बल्कि पाठकों एवं शोधकर्ताओं को भी सुविचारित, सुगंभीर, सुसिंचित रचनाशीलता से परिचय कराने में इन्होंने अपनी अलग किस्म की भूमिका निभाई है जिसकी प्रतीक्षा अब तमाम लेखकों-पाठकों को रहती है। मैं विंश्वास के साथ कह सकता हूँ कि रचनात्मक गंभीरता को बिना प्रभावित किए रचनाशीलता में पठनीयता को प्रमुखता देने का सिद्धेश्वर जी का यह प्रयास स्तुत्य कहा जाएगा। कुल मिलाकर देखा जाए, तो इधर हाल की इनकी कृतियाँ लेखकों-पाठकों के बीच एक सेतु बनाने की दिशा में प्रेरणा देने का काम कर रही हैं। जाहिर है इस रचनाकार की चिंतनशीलता का दायरा पहले से अब कहीं और विस्तृत हो गया है जिसकी शुभाशंसा किए बिना मैं नहीं रह सकता, क्योंकि इनकी कृतियाँ हमारे अंदर की अवरूद्ध भावनाओं को उजागर और उद्वेलित करने के अमोघ अस्त्र तो हैं ही, लेखक ने अपनी रचनाओं में समकालीन भावनाओं का प्रभावी रूप से चित्रण किया है।

सामाजिक उपादेयता की सदैव चिंता कर रहे सिद्धेश्वर जी ने साहित्य और संगठन के जरिए समाजोत्कर्ष में अपना सारा जीवन लगा दिया है। आपके जीवन को सदैव वैशिष्ट्य की तलाश रही। आपको अपने जीवन में हमेशा श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतर से श्रेष्ठतम बनने एवं करने का जुनून रहा और आप छद्म से सदैव दूर रहे। परिस्थितियों को देखते हुए तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता इनमें है। बँधे-बँधाए साँचों में वे अपनी अलग नीतियाँ निर्धारित करने की क्षमता रखते हैं। आपने देखा नहीं बिहार विधान सभा के विगत 2015 के चुनाव के वक्त जैसे ही बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने भ्रष्टाचारियों एवं घपले-घोटाले में आकंठ डूबे राजनीतिक दलों एवं उसके नेताओं के साथ गलबहियाँ की, तो सिद्धेश्वर जी ने उसका न केवल मुखालफत किया, बल्कि सभा-संगोष्ठियों में उनके इस कदम की आलोचना करते हुए उन्हें चेतावनी भी दी कि इस बेमेल गठबंधन के लिए उन्हें पछताना पड़ेगा और भ्रष्टाचारी उनकी एक न चलने देंगे, क्योंकि इनका उस समय भी मानना था कि जिस नेता को सदैव अपने वंश और परिवार की चिंता रहती है वे भला नीतीश जी को क्यों तरजीह देंगे। राजनीति पर बेबाक टिप्पणी देने वाले सिद्धेश्वर जी को प्रायः सभी दलों के नेता इन्हें अच्छी तरह पहचानते हैं। आखिर तभी तो बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहते हुए इन्होंने बड़े से बड़े ओहदेवाले नेताओं की एक न सुनी और उनकी पैरवी को नजरअंदाज किया जिसका मैं प्रत्यक्ष साक्षी रहा हूँ। यही वजह है कि बोर्ड के तीन साल तक अध्यक्ष के दायित्व का निर्वहण कर उन्होंने

स्वेच्छा से पद छोड़ दिया, क्योंकि वर्तमान दौर की राजनीति के दलदल में वे फँसना नहीं चाहते थे। इस प्रकार जीवन की तपती आँच को उन्होंने प्रत्येक क्षण महसूस किया है। यही वजह है कि न तो उन्होंने कभी किसी के अधिकारों पर हस्तक्षेप किया है और ना ही किसी को अपने अधिकार में हस्तक्षेप करने दिया है। हाँ, इतना जरूर है कि दूसरों की निजता का उन्होंने हमेशा आदर सत्कार किया है और अपनी सारस्वत साधना में परम जीवन्तता का परिचय देकर उन्होंने एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। रचना संसार में सामाजिक एवं साहित्यिक चेतना के ऐसे संवाहक को इनकी विभिन्न विषयों से संबंधित कृतियों के साथ-साथ राजनीति पर इनकी इतनी अच्छी पकड़ के लिए मैं हार्दिक बधाई देता हूँ और दीर्घायु होने की कामना करता हूँ।

स्थानीय पता :
75 सी., पाटलिपुत्रा कॉलोनी
पटना

डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार
पूर्व कुलपति
कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय
दरभंगा, बिहार

अभिमत

निर्मित होती झूठ की बुनियाद पर गलत विचारों की राजनीति

□ प्रो.(डॉ.) एल. एन. शर्मा

इस देश के इतिहास के साथ इतनी छेड़छाड़ हुई कि उसके दुष्परिणाम भारत-विभाजन जैसी विभीषिकाओं के रूप में हमने देखे हैं। फिर आजादी के डेढ़-दो दशक के बाद से ही घृणा और झूठ पर टिकी राजनीति ने हमारे राष्ट्र की आत्मा में घृणा के खंजर घोपना जो शुरू किया है उससे झूठ की बुनियाद पर गलत विचारों की राजनीति निर्मित हो रही है जिसे सिद्धेश्वर जी ने साक्षात्कार के दौरान पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है।

भारतीय लोकतंत्र में मध्य एवं निम्न वर्ग के लोगों की विवशता और अपनी अस्मिता की चिंता जिस तरह राजनैतिक हथियार बनती है यह विडंबना प्रस्तुत पुस्तक-'राष्ट्रीय राजनीति' में देखने को मिलती है। शिक्षा, रोजगार, संपत्ति, ऋण, वृद्धों और वृद्धावों की पेंशन, बेरोजगार युवाओं का भत्ता आदि के लिए वर्तमान दौर की राजनीतिक व्यवस्था में आमजन को जो जद्दोजहद करना पड़ता है उसे बड़ी संवेदना के साथ उत्तरदाता ने अपने प्रश्नोत्तर में रेखांकित किया है। राजनैतिक विडंबनाएँ, नेताओं की स्वार्थवृत्ति और उनके चरित्र के दोहरेपन की विसंगतियाँ आमजन के जीवन को और भी त्रासद बनाती हैं, लेकिन लोकतंत्र में जनता के गुस्से का भी अच्छा परिणाम नहीं निकलता है। सिद्धेश्वर जी ने इसका भी खुलासा करते हुए अपने उत्तर में कहते हैं-'जनता पार्टी को भी 1977 में जनता ने आपातकाल से क्रोधित होकर ही चुना था। फिर 2013 के दिल्ली विधानसभा चुनाव में अरविंद केजरीवाल और उनकी आम आदमी पार्टी की जीत के उदाहरण भी आपके सामने हैं। इसी प्रकार लालू-राबड़ी सरकार के 15 साल को पटना उच्च न्यायालय के द्वारा जंगलराज कहे जाने से जब बिहार की जनता परेशान हो गई और हर तबके में गुस्सा आना शुरू हो गया, तब यहाँ के मतदाताओं ने हर हाल में चुनाव में उन्हें पराजित करने का मन बना लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि चुनाव आने पर नीतीश कुमार के नेतृत्व में बिहार की

सरकार बनी। जनता के गुस्से से उपजा कई दलों के नेताओं का मिश्रित समूह फिर नतीजे देने में नाकाम रहा। इन सभी घटनाओं से तो इसी धारणा को मजबूती मिलती है कि लोकतंत्र में हमेशा जनता के गुस्से का सही-सही परिणाम नहीं निकलता है।'

जहाँ तक वैश्विक कूटनीति का सवाल है अंतरराष्ट्रीय समुदाय अपने-अपने देश के साथ आर्थिक, व्यापारिक और कूटनीतिक संबंधों को लेकर असमंजस में बने रहते हैं। सभी देशों की सरकार के नीति-नियंताओं को कूटनीतिक कार्रवाई की ओर ज्यादा ध्यान केंद्रित करना पड़ता है। प्रश्नकर्ताओं की ओर से संयुक्त राष्ट्र के कुल 193 देशों में से अधिकांश देशों में इधर हाल के वर्षो में घटित घटनाओं खासतौर पर भारत-पाक के बीच के संबंधों में आई खटास से संबंधित सवालों के दो टूक जवाब सिद्धेश्वर जी ने बड़े सलीके से दिये हैं। आतंकवाद की जननी पाकिस्तान द्वारा अधिकृत कश्मीर को लेकर निरंतर आतंकियों की हैवानियत के बाद भारतीय सैनिकों के लक्षित हमले (सर्जिकल स्ट्राइक) के पूर्व और बाद की घटनाओं पर पूछे गए प्रश्नोत्तर देने में सिद्धेश्वर जी ने अपनी बौद्धिक क्षमता और ज्ञान-साधना का पूरा परिचय दिया है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा विगत दो वर्षो में साठ-सत्तर देशों की यात्रा के दौरान अपनी कूटनीतिक चाल से प्राय: सभी देशों का ध्यान खींचने में सफलता हासिल की है उसी का नतीजा है कि पाकिस्तान आज सभी देशों से अलग-थलग पड़ गया। सिद्धेश्वर जी ने नरेन्द्र मोदी की कूटनीति की सफलता पर अपने बेवाक टिप्पणी देते हुए जो उत्तर दिए हैं वे अत्यंत मार्मिक और प्रासंगिक हैं।

संयुक्त राष्ट्र पर हावी औपनिवेशिक मानसिकता से संदर्भित प्रश्न का उत्तर देते हुए सिद्धेश्वर जी कहते हैं-'संयुक्त राष्ट्र पर औपनिवेशिक मानसिकता आज भी हावी है, क्योंकि पी-5 यानी परमानेंट-5 के पाँच देशों अमेरिका, इंग्लैंड, रूस, फ्रांस और चीन जिनके पास 'वीटो पावर' है संयुक्त राष्ट्र की 1945 में हुई स्थापना के ही समय से उसकी सुरक्षा परिषद के स्थाई सदस्य बने हुए हैं और उनका 'वीटो पावर' इनकी दबंगई का ब्रह्मास्त्र है। इसके आगे बाकी 188 संयुक्त राष्ट्र सदस्यों के सारे हथियार बेकार हो जाते हैं।'

राजनीतिक और वैश्विक प्रसंगों की वर्तमान संदर्भो के अनुरूप व्याख्या करने के लिए मशहूर सिद्धेश्वर जी की यह नवीनतम पुस्तक है 'राष्ट्रीय राजनीति' और 'वैश्विक कूटनीति' जिसमें उन्होंने भारतीय राजनीति और वैश्विक कूटनीति से जुड़ी जिज्ञासाओं के सवाल-जवाब सहज अंदाज

में प्रस्तुत किये हैं।

सिद्धेश्वर जी की पूरी कृति में इनकी कलम के निशाने पर हैं हुक्मरान, सियासतदान और सिसकती लोकतांत्रिक व्यवस्था। इन्होंने किसी को नहीं बख्शा है। हिंदी जगत में अपनी बेबाक टिप्पणी के लिए मशहूर तथा हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर सिद्धेश्वर ने बड़ी संजीदगी से भारतीय राजनीति की मौजूदा स्थिति से पाठकों को रूबरू कराया है और सामयिक परिस्थितियों को रेखांकित किया है। इस दुर्लभ साक्षात्कार को प्रकाशित करने के लिए मंगल कामनाएँ। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पदलोलुपता पर आधारित और आदर्श एवं नैतिकता से मीलों दूर आधारित राजनीति के विभिन्न पहलुओं को समेटे हुए वस्तुस्थिति तथा जमीनी सच्चाई से सिद्धेश्वर जी के उत्तर साक्षात्कार कराते हैं। साक्षात्कार के दौरान इनके समक्ष जो प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं उनके उत्तर में राजनीति का पूरा संसार प्रतिबिंत होता है। एक प्रश्न का उत्तर पढ़ने पर आगे दूसरे प्रश्न का उत्तर पढ़ने की लालसा जागृत हो जाती है। पाठकों की जिज्ञासा उमड़ती-घुमड़ती रहती है कि राजनीति से संबंधित आगे के प्रश्नों पर उनके उत्तर क्या होंगे? अगली कड़ी का बेसब्री से इंतजार रहता है, क्योंकि आजादी के सत्तर साल के बाद भी राजनीतिक परिदृश्य में हाशिए के लोग अबतक हाशिए पर हैं। राजनेताओं द्वारा कही गई उद्धार की बातें एक छलावा से अधिक कुछ नहीं हैं।

अपने समय और समाज की ज्वलंत समस्याओं और जनमानस को उद्वेलित कर रहे सिद्धेश्वर भारतीय राजनीति की मौजूदा स्थिति पर जब अपने विवेकपूर्ण चिंतन का स्वर मुखर करते नजर आते हैं तो आश्वस्ति होती है कि अभी गणतंत्र में विचारों की कमी नहीं है। वैचारिक लेखन के माध्यम से वह पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं। दरअसल, समाज को चेतनशील बनाने का कार्य निष्ठा से इनके उत्तर में करता दिखाई देता है और व्यवस्था परिवर्तन का सूत्र पाठकों के भीतर रखने में सहायता करता है।

साक्षात्कार के आधार पर तैयार प्रश्नोत्तरी के सभी पुस्तकों को जब मैंने पढ़ा तो मन प्रफुल्लित इसलिए हुआ कि यदि समाज में कहीं समरसता, अनेकता में एकता, विविधता, वैश्विक कूटनीति और राष्ट्रीय राजनीति की विसंगतियाँ देखने को मिलती हैं तो उसका श्रेय सिद्धेश्वर जी जैसे साहित्यकारों के सत्प्रयास को जाता है, क्योंकि इनकी कृतियों के उत्तर ऐसी भाषा में दिए गए हैं कि संपूर्ण जन समुदाय को उनकी अपनी अंतरात्मा की भाषा जान पड़ती है। इनके उत्तरों से ऐसा जान पड़ता है कि खराब-से-खराब

परिस्थितियों में भी आशा बची रहती है और जीवित रहना प्रयास करने योग्य है। इनके उत्तर में परिपक्व अभिव्यक्ति देखने को मिलती है और अनुभव की ताजगी पठनीयता को बनाए और बचाए रखती है, क्योंकि वे जो कुछ कहते या लिखते हैं वह अनुभवों व स्मृतियों के आख्यान हैं। किसी न किसी रूप में लेखक अपने लेखन के रूप में मौजूद रहता है। सिद्धेश्वर जी अपनी जिजीविषा के साथ जीवित रहते हैं। वे लंबे समय से लिखते रहे हैं। आखिर तभी तो कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद ने कहा है कि 'मनुष्य स्वभाव से देवतुल्य है। जमाने के छल-प्रपंच और परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है। साहित्य इसी देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है उपदेशों से नहीं, नसीहतों से नहीं, भावों को स्पंदित करके, मन के कोमल तारों पर चोट लगाकर, प्रकृति से सामंजस्य उत्पन्न करके।' सिद्धेश्वर जी अपने साहित्य के माध्यम से यही तो कर रहे हैं। उन्होंने साक्षात्कार की इस कृति के माध्यम से लोगों के भावों को स्पंदित किया है।

मौजूदा दौर की राष्ट्रीय राजनीति और वैश्विक कूटनीति के बीच इस दुनिया में जहाँ बंदूकों की होड़ लगी हुई है, बम-बारूदों की बहसें जारी हैं, जरूरत है एक ऐसी आवाज की, जो हमारे अंदर की सर्वोच्च को संबोधित हो, जो हमें खुशियों से बात कर सके और जो हमारे संदेहों और हमारे भय से बात कर सके। हमारे सहपाठी सिद्धेश्वर जी एक ऐसी ही आवाज हैं जिन्होंने अपने उत्तर में अपने विचार के साथ-साथ जनता की भावनाओं और राष्ट्र के विरूद्ध किए जा रहे गंभीरतम अपराध और षड्यंत्र को बेहतरीन तरीके से रेखांकित किया है जिसके लिए वह हमारी हार्दिक बधाई के पात्र हैं। हमारी मंगलकामना है कि वह दीर्घायु हों, ताकि उनकी कलम से ऐसी ही कालजीत कृतियाँ पाठकों के सामने आ सकें। मुझे विश्वास है कि हर दृष्टि से मुकम्मल उनकी कृतियों का साहित्य जगत में स्वागत होगा।

संपर्क:
मकान सं.-ए/32,
पिपुल्स कोऑपरेटिव
लोहिया नगर, पटना-20
दूरभाष-0612-2350140

प्रो.(डॉ.) एल. एन. शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, स्नातकोत्तर
राजनीति विज्ञान विभाग
पटना विश्वविद्यालय
पटना

अभिमत

प्रश्नोत्तर एक साहसिक सर्जनात्मक स्फूरण

□डॉ. शाहिद जमील

सिद्धेश्वर जी एक ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपनी सामाजिक मानसिकता की वजह से समाज में अपनी पहचान बनाते हुए आम आदमी से नजदीकी बनाई है। ऐसा भी नहीं कि उनके द्वारा निभायी जा रही भूमिका में केवल गंभीर विषयों पर इनका सृजन है, बल्कि कमजोर एवं आम आदमी की कमजोरियों एवं समस्याओं को देखते हुए वे उनमें क्षमता भरने की ताकत रखते हैं।

सिद्धेश्वर जी समाज के उन गिने-चुने प्रबुद्धजनों में से एक हैं, जिन्हें समाज के साथ-साथ साहित्यकारों एवं पत्रकारों के बीच सम्मान प्राप्त है, क्योंकि समाज की स्याह सच्चाई को सामने रखने वाले इस शख्स ने सदैव अपना एक स्तर बनाए रखा है। दरअसल, इन्हें अपनी कलम और आवाज पर नियंत्रण है। नेताओं सरीखे अनर्गल और दिग्भ्रमित करने वाले बयानों से इन्हें परहेज है, पर सच्चाई को प्रस्तुत करने से ये बाज नहीं आते। धर्म और सम्प्रदाय से ऊपर उठकर कोई देखे, तो सिद्धेश्वर जी की समाजसेवा उसे समझ में आएगा इन्सानियत के मायने। धर्म और पूजा क्या है कोई इनके कर्म से सीखे। सिद्धेश्वर जी बराबर कहा करते हैं कि धर्म और जाति के नाम पर तो जानवर लड़ते हैं इंसान नहीं। आखिर तभी तो आज से तकरीबन तीन दशक पहले पटेल सेवा संघ, बिहार के महासचिव पद पर रहकर अपने कार्य काल में इन्होंने सभी जाति एवं धर्म के लोगों को संरक्षक, आजीवन तथा साधारण सदस्य बनाकर उन्हें पटेल सेवा संघ के कार्यों को सौंपा था।

सिद्धेश्वर जी के लिए इंसानियत से बड़ा कुछ नहीं है। इन्होंने अपने साथ चल रहे कार्यकर्ताओं को इंसानियत का मूलमंत्र सिखाया और आज भी जब मौका मिलता है तो उसे नहीं भूलते हैं और लोगों को इन्सानियत का ही सीख देते हैं। सिद्धेश्वर जी एक सच्चे लेखक हैं और एक सच्चे लेखक की पहचान यही है कि वह न तो पूँजी के आगे झुकता है और न राजनीति

के आगे। लेखक होने की हैसियत से उन्होंने मानव-मूल्यों को उसकी पूरी विशिष्टता के साथ आत्मसात् किया। जो लेखक ऐसा नहीं करेगा, तो वह बढ़िया सृजन भी नहीं कर पाएगा। फिर सिद्धेश्वर जी तो आज एक ऐसे समय में जी रहे हैं, जिसमें आपसी टकराहट अधिक है। पूँजीपति हों या राजनीति करने वाले, सभी एक-दूसरे से टकरा रहे हैं, जिससे सबसे अधिक नुकसान आमजन का ही हो रहा है। सच तो यह है कि इस नटलीला से अब तो खुद नाटक करने वाले भी दाँतों तले अपनी उँगलियाँ दबा रहे हैं। सिद्धेश्वर जी ने इसी दुर्व्यवस्था, इस भेदभाव, इस उथल पुथल को हाल की अपनी इन कृतियों में अभिव्यक्त किया है। इन कृतियों का उद्येश्य यही है कि हमारे मनुष्य जीवन की जो जटिलताएँ हैं, उन्हें साहित्य का पाठकवर्ग सावधानी से समझ सके। इसीलिए लेखक ने साक्षात्कार के माध्यम से जीवन की बाहरी-भीतरी जटिलताओं को स्पष्ट रूप से उजागर किया है। इनके उत्तर को एक साहसिक सर्जनात्मक स्फूरण कहा जा सकता है।

जहाँ तक मैने सिद्धेश्वर जी के साहित्य-सृजन के साथ-साथ इनसे साक्षात्कार के दौरान दिए गए प्रश्नोत्तर पर तैयार इनकी कृतियों का सवाल है, भले ही ये साहित्य कोई क्रांति नहीं कर सकते, पर पाठकों में विचारों का आवेग उत्पन्न तो कर ही सकते हैं, उन्हें वैकल्पिक विचार और राह सुझा सकते हैं और सोचने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। जिस प्रकार आज का भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है, परंपरा और रूढ़ियों को तोड़कर समाज आगे बढ़ना तो चाहता है, पर बदलाव को स्वीकार नहीं कर पा रहा है। ऐसी स्थिति में सिद्धेश्वर जी ने एक रचनाकार होने के नाते हस्तक्षेप करने की कोशिश की है और अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वह्‌ण किया है, इससे असहमत नहीं हुआ जा सकता। भागमभाग-भरी जिंदगी में सुकून भरा पल हमें सिद्धेश्वर जी जैसे साहित्यकार का अच्छा साहित्य ही प्रदान कर सकता है। साक्षात्कार के आधार पर तैयार इनकी पाँचों पुस्तकें ज्ञान के भंडार हैं। चीजों को तो चोर चुराकर ले जा सकता है, पर पुस्तक ज्ञान को तो कोई चुरा नहीं सकता।

सिद्धेश्वर जी की ये कृतियाँ ऐसी हैं जो अपनी प्रबल भावनाओं के साथ व्यक्त होती हैं और बिखरते हुए संबंधों की गूँज, अवचेतन को हिलाकर रख देती हैं। समाज आज जिस कदर डरा हुआ, आत्मकेंद्रित और स्वार्थी होता जा रहा है उसका अहसास इन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से कराने की कोशिश की है।

सिद्धेश्वर जी ने इस कृति में जिन विभिन्न विषयों से संबंधित प्रश्नों के उत्तर दिए हैं वे आवाम का प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं। सचमुच सिद्धेश्वर जी सूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करने में सिद्धहस्त हैं। मानवतावाद के पैरोकार इनके उत्तर में समाज की जहाँ धड़कन है, वहीं सामाजिक असमानताओं, शोषण, गरीबी के साथ-साथ सियासत की भी बात करते हैं। अपने उत्तरों का ऐसा सुंदर और आकर्षक संकलन प्रकाशित कर सिद्धेश्वर जी ने बहुत अच्छा काम किया है जिसे देख-पढ़कर आँखों को तृप्ति तो मिलती ही है मन को भी शांति और संतोष मिलता है।

मौजूदा दौर के अवमूल्यन के वक्त भी सिद्धेश्वर जी के जैसे कुछ रचनाकार सत्य को उद्घाटित करते हैं। समाज और राजनीतिक यथार्थ को अपने उत्तर के माध्यम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं जिसके बल पर किसी निर्णय पर पहुँचना संभव हो पाता है। सत्ता के करीब रहते हुए भी सत्ता की सेवा का आनंद न उठाकर अपने सृजन तथा इनसे साक्षात्कार के दौरान दिए गए उत्तर के जरिए व्यक्ति, समाज, राजनीति तथा संस्कृति एवं राष्ट्रीय व वैश्विक चिंतन को इन्होंने महत्व दिया है, ताकि इंसान समाज के उन तमाम रहस्यों को समझ सके जिसको या तो वह खोता जा रहा है या फिर उसके बारे में बहुत कम जानता है।

इन कृतियों के उत्तर पाठकों की चेतना को तो स्पर्श करते ही हैं, मनुष्य के पक्ष में भी खड़े दिखाई देते हैं और जिंदगी संबंधित सभी मसले, द्वंद्व, गतिरोध, झगड़े, बिछुड़ने की खराशें, संघर्ष, भूख, गरीबी इत्यादि विषय केंद्र में रहे हैं। प्रश्नोत्तर की एक विशेषता यह भी है कि वे बेहद भावनात्मक हैं, लेकिन भावुक नहीं। अपनी हर बात खूबसूरत अंदाज में बयान करते हैं। इनके उत्तर से यह भी स्पष्ट होता है कि सिद्धेश्वर जी में ग़ज़ब का आत्मसम्मान है और उस आत्मसम्मान में विद्रोह की प्रबल भावनाएँ हैं। साधारण के भीतर जो असाधारण ताकत है, सिद्धेश्वर जी के उत्तर में वही जगमगाती प्रतीत होती है। इनके उत्तर में कठिनाइयों से टकराने का हौसला है। ऐसे वक्त मेरे स्मृति-पटल पर साहिर लुधियानवी के शे़र की निम्न पंक्तियाँ उभर कर आ रही हैं -

'मेरी सदा को दबाना तो खैर मुमकिन है
मगर हयात की ललकार कौन रोकेगा ?
हजार बर्क गिरें, लाख आँधियाँ उठें
वो फूल खिल के रहेंगे जो खिलने वाले हैं।'

भाषा और राजनीति के संबंध को झाँकने के सवाल पर सिद्धेश्वर जी ने जो उत्तर प्रस्तुत किए हैं वह काबिलेतारीफ हैं, आप भी 'भाषा के जरिए जहाँ सत्य की रचना करते हैं, वहीं बहुत हद तक भाषा हमारे यथार्थ की सीमाँ भी तय करती है। भाषा व्यवहार को संयोजित करती है और राजनीति के लिए भी सही है। लेकिन, मौजूदा दौर की राजनीति में राजनेताओं के आरोप-प्रत्यारोप में जिस भाषा का प्रयोग किया जा रहा है वह अक्सर शिष्ट और सभ्य आचरण के समाज-स्वीकृत मानकों से विचलन ही प्रस्तुत कर रहे होते हैं। सामाजिक संदर्भ में वह जोड़ती भी है और तोड़ती भी। इसलिए प्रजातंत्र अक्षुण्णता के लिए अपने से भिन्न दूसरी आवाजों को भी सुनना होगा।'

इतनी अच्छी कृति के लिए सिद्धेश्वर जी को हमारी हार्दिक बधाई और दीर्घायु की कामना।

डॉ. शाहिद जमील
कथाकार एवं पत्रकार

संपर्क :
आवास सं.- C/84, बैंक रोड,
मस्जिद के निकट, पटना-800001
मो.नं.- 9430559161, 8825296137
email. drshahidjamilpatna@gmail.com

शुभाशंसा

सोचने और कहने की निर्भीकता अद्वितीय

□ डॉ. साधु शरण

भारतीय समाज के मौजूदा माहौल में व्यावसायिक मानसिकता न रखने वाले सिद्धेश्वर जी का अनिवार्य योगदान साहित्य और उसके जरिए समाज में सकारात्मक बदलाव के लिए योगदान करना रहा है। वैसे हिंदी साहित्य की कविता, संस्मरण, निबंध आदि विधाओं में तो इनकी अबतक डेढ़ दर्जन पुस्तकें आ चुकी हैं, मगर साक्षात्कार जैसी महत्वपूर्ण विधा में हधर हाल के वर्षो में आई पाँच पुस्तकों में से प्रस्तुत पुस्तक-'इंसानियत की धुँआती आँखें' दूसरी है जिसमें जिज्ञासू विद्वत्जनों ने इनसे साक्षात्कार के दौरान सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आध्यात्मिक, नैतिक, वैचारिक तथा प्राकृतिक विषयों से संबंधित प्रश्न इनके समक्ष उत्तर हेतु प्रस्तुत किए हैं। सिद्धेश्वर जी के द्वारा इन प्रश्नों के जो उत्तर दिए गए हैं वे अत्यंत प्रशंसनीय हैं, क्योंकि वे विद्वतापूर्ण हैं और इनका कथन पूर्णतया सत्य है जिनमें इनकी विचारधारा परिलक्षित होती है।

इसी प्रकार सिद्धेश्वर जी के जो अनुभव रहे हैं और अपने समय में भारतीय समाज और संस्कृति को जिस रूप में इन्होंने देखा और समझा है वे इनके उत्तर में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं, क्योंकि वे किसी खेमे या गुट अथवा किसी खास आंदोलन में बँधकर नहीं रहे। इनका सृजन एक स्वाभिमानी लेखक की तरह है। साक्षात्कार में दिए गए सहज उत्तर की तरह इनका सरल, सौम्य, स्वभाव व व्यक्तित्व भी बड़ा प्रभावकारी है।

कभी महालेखाकार कार्यालय में हमारे सहकर्मी रहे सिद्धेश्वर जी को हमने बहुत करीब से देखा है और इधर विगत कई दशक से इनके कार्यक्रमों में भागीदारी के चलते इनके व्यक्तित्व में हमने जो एक और विशेषता देखी है वह यह कि वे कभी लघुत्व (Inferiority Complex) से पीड़ित नहीं हुए। यही कारण है कि इन्होंने सार्वजनिक जीवन जीने के क्रम में भी किसी भी राजनीतिज्ञों की जी-हुजूरी नहीं की और न उनके आगे-पीछे कभी लगे रहे। राजनेताओं के यहाँ इनका आना-जाना नहीं के बराबर रहा,

बल्कि सच तो यह है कि नीतीश कुमार जैसे कद्दावर नेता पटना के पुरन्दरपुर स्थित इनके 'बसेरा' निवास में इनसे मिलने जाया करते थे और सिद्धेश्वर जी एक प्याली चाय से उनका स्वागत करते रहे।

हमेशा से भीड़ के आदमी रहे सिद्धेश्वर जी को कभी भीड़ से या रसूखदार राजनेताओं से इन्हें कभी डर नहीं रहा। इनके इसी स्वभाव की वजह से आज भी इनके निवास पर लोग इनसे मिलने जाया करते हैं और इनसे बातचीत कर उन्हें काफी संतुष्टि मिलती है, क्योंकि इनकी मनोवैज्ञानिक पकड़ गहरी सौंदर्यानुभूति, जीवन के व्यापक रूप में देखने की प्रवृत्ति भावाव्यक्ति की मुखर शक्ति और भाषा पर इनका असाधारण अधिकार देखने को मिलता है और जिसकी अनुगूँज प्रश्नोत्तर में भी सुनाई पड़ती है। इसी वजह से इनके सभी मित्र और शुभेच्छु इनकी प्रतिभा का लोहा मानते हैं। इसलिए मैं इन्हें आधुनिक जीवनधारा का विरल साहित्यकार मानता हूँ। साक्षात्कार के जरिए तो इनकी प्रतिभा जहाँ मुखरित हुई है, वहीं इनकी अगाध विद्वता, सूक्ष्म चिंतन, अनोखी सूझ और परंपरा के समानांतर सोचने और कहने की निर्भीकता अद्वितीय है। साथ ही इनकी और संभावनाओं को जानने-समझने, इनके सृजन-कर्म और इनके संस्कार-स्वभाव की जानकारी मिलती है। देश और काल का सही ढंग से आकलन करने के लिए शायद ही कोई सर्वग्राह्य उपलब्धि अन्यत्र प्राप्त होगी जैसी इनके साक्षात्कार में देखने को मिलती है। सिद्धेश्वर जी अपने स्वभाव में सदैव बने रहने वाले व्यक्ति हैं। प्रस्तुत साक्षात्कार में उन्होंने जीवन की नई चुनौतियों को संवेदना के यथार्थ से रूपांतरित किया है और उत्तर को अपने ढंग का बौद्धिक धरातल प्रदान किया है जिनमें नए जीवन-मूल्यों का सार भी है, प्राचीनता है, तो नवीनता भी और श्रेष्ठता है, तो सक्रियता भी। सच मानिए सिद्धेश्वर जी का सृजन-व्यक्तित्व अपेक्षाकृत मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित करता है। मेरे चिंतन, अध्ययन और वैचारिक संप्रेषण के केंद्र में वे सदैव विराजमान हैं, क्योंकि भोग, लिप्सा और महत्वाकांक्षा ने ईमानदारी, सच्चाई, वफादारी और भाई-चारे का आज जिस तेजी से शील-हरण कर लिया है, सिद्धेश्वर जी न तो अपने समय से आँख मोड़ते हैं और न परंपरा एवं जातीय स्मृति की गरिमा से विरक्त होना पसंद करते हैं। उन्होंने शाश्वत जीवन की बहकी उत्तेजना को भी यथार्थ की संवेदना में ढाल कर उसे तीखे व्यंग्य से करुणा में परिणत कर दिया है। सिद्धेश्वर जी सामाजिक प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-अहंकार चाहे धन-संपत्ति का हो या रसूख का, संवेदनाओं का हनन कर

देता है। आज देखने में तो आ रहा है कि दबंगई, आर्थिक एवं चारित्रिक भ्रष्टाचार के मामलों में अधिकारी, नेता, मंत्री, विधायक, सांसद एवं उद्योगपतियों के लाड़ले ही अधिकतर लिप्त रहते हैं जिसका प्रमुख कारण है कि पद-प्रतिष्ठा और सत्ता की हंनकवाले परिजनों पर उनका दृढ़ विश्वास रहता है कि वह उन्हें बचा ही लेंगे। इसी प्रक़ार रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति ने तो व्यवस्था के हर क्षेत्र में झंडे गाड़ दिए हैं। घूस के लालच में तो पुलिसवाले भी संवेदनहीन हो जाते हैं और वह कोर्ट-कचहरी में देर-सबेर मुक्त हो जाते हैं। ऐसे में संवेदनाएँ कहाँ तक जीवित रह सकते हैं।

सिद्धेश्वर जी की सजगता में सामाजिक जीवन मूल्यों की चिंता है और उनकी सक्रियता में युग-वेदना की चिंता। इनकी राष्ट्रीयता राजनैतिक नहीं है और इनका राष्ट्रबोध विश्वबोध की मानव-चेतना से ओत-प्रोत है। साक्षात्कार के दौरान इनके द्वारा प्रस्तुत उत्तर पढ़ने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि इनके उत्तरों में उद्‌दाम जीवनीशक्ति है, जीवनरूपों का विस्तृत और बारीक चित्रण है, उनमें मूल्यों का तारतम्य तथा सम्यक जीवन दृष्टि एवं परिपूर्ण जीवन विवेक है। इनके उत्तर का उद्येश्य वस्तुत: रचना का चिरस्थायी महत्व बनाए रखने का है। सिद्धेश्वर जी से मैं लंबे अरसे से वैचारिक और रचनात्मक रूप से जुड़ा हूँ। सिद्धेश्वर जी सतत प्रक्रिया में विश्वास रखते हैं समाज को बदलने की आहट को अपनी पारखी निगाहों से परीक्षण करते हुए 18 मई, 2017 को सिद्धेश्वर जी छिहत्तर की आयु पार कर सतहतरवें में प्रवेश कर गये हैं। हम उनके शतायु होने की कामना करते हुए प्रस्तुत कृति की शुभाशंसा आमजन के लिए करता हूँ।

डॉ. साधु शरण
पूर्व विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान
जैतपुर महाविद्यालय, बी.आर.अंबेडकर
बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार
दूरभाष- 0612-2287204

संपर्क :
गीता भवन, रोड नं.-1
उत्तरी पटेल नगर
पटना-25

प्रथम अध्याय

राष्ट्रीय प्रश्नोत्तर

(१)प्रश्नः क्या कारण है कि मानव विकास के अन्य प्रमुख सूचकांकों की तरह स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी भारत दुनिया के सबसे निचले पायदान पर खड़े देशों में शामिल है?

उत्तरः हाँ, अभी हाल ही में लांसेट जर्नल में प्रकाशित एक व्यापक शोध में बताया गया है कि स्वास्थ्य मानकों के आधार पर 188 दशों की सूची में भारत 143 वें स्थान पर है। यह स्वास्थ्य सूचकांक वाशिंगटन विश्वविद्यालय के ग्लोबल बर्डेन ऑफ डिजीज द्वारा भारत समेत दुनिया भर के 1750 शोधार्थियों के साथ 33 मानकों के तहत किए गए अध्ययन पर आधारित है। संयुक्त राष्ट्र अपने लक्ष्यों को पूरा करने की दिशा में हो रहे प्रयासों की समीक्षा कर रहा है।

दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक भारत के लिए इस सूचकांक के निष्कर्ष बेहद निराशाजनक है। सौ के मानक पर हमारे देश को सिर्फ 42 अंक मिले हैं, जो शीर्ष देश आइसलैंड की तुलना में आधे से भी कम है। कई मानकों पर तो भारत ब्रिक्स समूह के देशों में सबसे नीचे है। यह अध्ययन हमारी सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली तथा केंद्र और राज्य सरकारों की स्वास्थ्य नीति पर एक चिंताजनक टिप्पणी है। दरअसल इसका मुख्य कारण सरकारी अस्पतालों में सुविधाओं का अभाव सामान्य बात हो चली है। देश की ग्रामीण आबादी के बड़े हिस्से को तो साधारण इलाज भी मयस्सर नहीं है। यहाँ कुपोषण, गरीबी, प्राथमिक उपचार का अभाव और सरकारी उपेक्षा की वजह से बीमारियों की रोकथाम मुश्किल होता जा रहा है। फिर स्वास्थ्य केंद्रों और स्वास्थ्य कर्मियों की संख्या बहुत कम होने के चलते मौजूदा तंत्र पर दबाव बहुत है जिसका परिणाम अक्षमता, लापरवाही व भ्रष्टाचार के रूप में सामने आता है।

(२)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संघठन (इसरो) ने विगत २६ सितंबर, २०१६ को श्रीहरिकोटा से ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपन यान रॉकेट से आठ उपग्रहों को सफलतापूर्वक स्थापित कर न केवल इस देश की प्रतिष्ठा बढ़ाई है, बल्कि इसरो के कौशल और प्रबंधन के उच्च स्तर को भी रेखांकित किया है?

उत्तर: हाँ, हमें भी ऐसा लगता है कि पिछले दिनों 26 सितंबर, 2016 को भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संघठन(इसरो) ने श्रीहरिकोटा से ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपन यान रॉकेट से आठ उपग्रहों को दो विभिन्न कक्षाओं में स्थापित कर न केवल राष्ट्रीय प्रतिष्ठा में इजाफा किया है, बल्कि इसरो के कौशल और प्रबंधन के उच्च स्तर को भी रेखांकित किया है। इन आठ उपग्रहों में सागरीय और मौसम के अध्ययन के लिए स्कैट सैट-1, दो भारतीय विश्वविद्यालयों के अकादमिक उपग्रह तथा अमेरिका, कनाडा और अल्जीरिया के उपग्रह शामिल हैं। यह भी एक शानदार उपलब्धि है कि राष्ट्रीय तकनीकी संस्थान (आईआईटी) बॉम्बे के छात्रों द्वारा निर्मित उपग्रह भी इस उड़ान में रवाना हुआ है। पीएसएलबी यानी पोलर सैटेलाइट लॉन्च व्हिकल की यह 37वीं उड़ान और लगातार 33वाँ सफल प्रक्षेपन है। इस मिशन के साथ भारत 79 विदेशी उपग्रहों को अंतरिक्ष में पहुँचा चुका है और इसकी कमाई 12 करोड़ डॉलर के करीब है। बीते कुछ सालों में इसरो ने कामयाबी की कई बुलन्दियों को छुआ है जिससे अन्य संस्थान प्रेरणा ले सकते हैं। इसके लिए इसरो के वैज्ञानिक बधाई के पात्र हैं।

(३)प्रश्न: आप भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी रहे हैं। इस नाते क्या आप मुझे बताएँगे कि रेल बजट अलग से प्रस्तुत करना क्यों जरूरी है? क्या रेल बजट को मुख्य बजट में शामिल करने से मौद्रिक और वित्तीय नीति में फर्क पड़ेगा?

उत्तर: हाँ, आपका यह कहना सही है कि भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी होने के नाते मुझसे यह अपेक्षा करना स्वाभाविक है कि मुख्य बजट हो या रेल बजट, रेल बजट अलग से प्रस्तुत किया जाए या मुख्य बजट के साथ इस पर मैं अपने विचार व्यक्त करूँ।

सर्वप्रथम तो मैं यह बता दूँ कि अब तक रेल बजट अलग से प्रस्तुत किए जाते रहे हैं, मगर लोक-लुभावन घोषणाओं से बचने और रेलवे की दशा सुधारने के लिए रेल बजट को मुख्य बजट के साथ विलय कर एक साथ प्रस्तुत करने के प्रस्ताव पर विचार किया जा रहा है। मीडिया की खबर तो यह भी है कि वर्तमान रेल मंत्री सुरेश प्रभु ने भी विलय के प्रस्ताव को ही समर्थन दिया है। दरअसल, मुख्य बिंदु यह है कि मौजूदा दौर में रेलवे घाटे में चल रहा है और दूसरा यह कि लोक-लुभावन घोषणाओं को टालना है। रेलवे की वित्तीय दशा को सुधारना और लोक लुभावन घोषणाओं से बचना ही विलय का उद्येश्य है। इसलिए इन्हीं दो बिंदुओं के आलोक में

विचार करने की जरूरत है।

यह बात सही है कि दुनिया के किसी भी देश में रेल बजट अलग से पेश नहीं किया जाता है और यह दलील भी सच है कि रेलवे की आमदनी घट गई हैं, मगर मेरा मानना है कि रेल बजट प्रमुख बजट के साथ विलय कर प्रस्तुत करने से इनमें से कोई लक्ष्य हासिल नहीं हो सकेगा, बल्कि इसके ठीक विपरीत असर होने का ही ज्यादा आसार नजर आता है।

भारतीय रेल दुनिया की सबसे बड़ी यात्री रेल सेवा होने के साथ सबसे बड़ी मालवाही सेवाओं में शुमार है। दुनिया में सबसे कम किराया होने के बावजूद यात्री व्यवस्था संचालन और रख-रखाव का मात्र 57 फीसदी खर्च इससे निकलता है और फिर भी भारतीय रेल हमशा बचत बजट दिया है। पड़ोसी देश चीन में कम्यूनिस्ट शासन होते हुए भी भारत की अपेक्षा तीन गुना किराया अधिक है। भारतीय रेल को कोई सब्सिडी नहीं मिलती है जबकि खाद्य, बिजली, उर्वरक, पेट्रोलियम व गैस जैसे कई मंत्रालयों को भारी सब्सिडी मिलती है। सरकार को 4 से 6 प्रतिशत लाभांश आमदनी के रूप में योजनागत खर्च वापस मिल जाता है।

रेलवे की क्षमता बढ़ाने पर प्रति वर्ष मात्र 30 हजार करोड़ रुपए खर्च आता है, जो उतना ही है जितना सरकार सड़कों पर खर्च करती है। चूँकि ज्यादातर सरकारी समितियाँ यह मानती हैं कि रेलवे सड़क परिवहन की तुलना में ज्यादा पर्यावरण अनुकूल होने के साथ उर्जा की किफायत में दस गुना बेहतर है, इसलिए रेलवे के ढाँचे पर 3 लाख करोड़ रुपए सालाना से कम खर्च नहीं होना चाहिए। जमीन पर ज्यादा दबाव व सीमित तेल भंडार की वजह से हमारी रेलवे जरूरत शायद चीन से भी ज्यादा है। हालांकि अब भारत प्रतिवर्ष 800 किलोमीटर ट्रैक बना रहा है जबकि पहले सिर्फ 200 किमी. ट्रैक ही बन पा रहा था। इस लिहाज से देखा जाए, तो यह रिकार्ड सुधार है। तेल के बढ़ते बोझ के चलते स्वतंत्रता से पहले के रेलवे के 80 फीसदी योगदान को फिर हासिल करने की सिफारिश नीति आयोग ने की है। फरवरी, 2015 में सरकार द्वारा जारी श्वेतपत्र के अनुसार 1950-51 के बाद सिर्फ 23 फीसदी रेल नेटवर्क जोड़ा गया है, जबकि मालवाहन 1344 फीसदी और यात्री परिवहन 1642 फीसदी बढ़ा है। यह अपने आपमें प्रशंसनीय वृद्धि है जो विलय बजट करने पर इसे कैसे हासिल कर सकेगी? यह बड़ा प्रश्न है।

यों तो भारतीय रेलवे की आमदनी प्रतिवर्ष करीब 2 लाख करोड़

सालाना है, लेकिन यदि 10 फीसद उर्जा की किफायत और कार्बन उत्सर्जन की बचत को जोड़ें, तो यह आमद 20 लाख करोड़ रुपए से ज्यादा हो जाएगा, जिसकी तुलना सरकार के सालाना पूँजीगत खर्च से संभव है। रेलबजट के मार्फत रेलवे द्वारा निधि के स्वतंत्र प्रबंधन से देश 67,000 करोड़ रुपए की सब्सिडी से बच सका है। इस प्रक्रिया से सरकार रोजगार गारंटी योजना, खाद्य उर्वरक व गैस सब्सिडी के लिए पैसा निकाल सकी है।

जहाँ तक रेल बजट को मुख्य बजट में शामिल करने से मौद्रिक और वित्तीय नीति में फर्क पड़ने का सवाल है, मुख्य बजट में रेल बजट के विलय से मौद्रिक और वित्तीय नीति में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। रेल बजट केंद्रीय बजट जैसी प्रक्रिया ही अपनाता है। यह भी सारी घोषणाओं के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षतावाली मंत्रिपरिषद से ही मंजूरी लेता है। सारी आमदनी एकीकृत निधि में जाती है और माँग संसद की अनुमति के बाद ही लिया जा सकता है। फर्क सिर्फ इस बात में है कि रेल बजट का हिस्सा होने पर बारिक ब्यौरे भी सार्वजनिक रहते हैं और लोग विकास होता हुआ देख सकते हैं। देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह पारदर्शिता बहुत जरूरी है। इसके अलावे हम कह सकते हैं कि रेल बजट के मुख्य बजट के साथ विलय करने से रेलवे की सेहत की कीमत पर की जाने वाली लोक-लुभावन घोषणाओं पर रोक नहीं लग सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इसलिए रेल बजट अलग रखना बुद्धिमानी और देशहित में होगा।

(४)प्रश्नः क्या आप भी इस बात से सहमत हैं कि ईमानदार अधिकारियों एवं कर्मचारियों को कठघरे में खड़ा करने से भ्रष्टाचार नहीं रुकेगा, बल्कि भ्रष्ट अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पकड़ने एवं उनपर कड़ी कार्रवाई करने से यह जरूर रुकेगा?

उत्तरः हाँ, मैं भी आपकी इस बात से पूर्णतः सहमत हूँ कि ईमानदार अधिकारियों एवं कर्मचारियों को कठघरे में खड़ा करने से नहीं, बल्कि भ्रष्ट अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पकड़ने और उनपर कड़ी कार्रवाई करने से वह रुकेगा।

सर्वप्रथम तो मैं यह कहना चाहूँगा कि भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1988 दरअसल 1987 में स्वीडिश रेडियो पर बोफोर्स तोप घोटाले की खबर प्रसारित होने की पृष्ठभूमि में बना था। यह समझा जा सकता है कि इस कानून का निर्माण आवेश भरे माहौल में किया गया था। जब भावनाएँ ऊना रही हों, तब तार्किक ढंग से प्रतिक्रिया व्यक्त करना मुश्किल होता है।

परिणाम यह हुआ कि एक गैर-जरूरी उपबंध इस कानून का एक हिस्सा बन गया। यह एक अवरोध के रूप में सामने आया और अपने प्रभाव में बेहद कठोर साबित हुआ। इसपर किसी ने ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी कि यह उपबंध असंवैधानिक है। अगर ऐसा किया गया होता तो इस उपबंध को पहले ही अदालतों द्वारा 'अधिकार से बाहर' ठहरा दिया जाता। यह आपराधिक उपबंध न्यायशास्त्र के इस बुनियादी सिद्धांत के खिलाफ है कि अपराध का इरादा और अपराधी के दोषी मन (गिल्टी माइन्ड) का सिद्ध होना एक अपराध को स्थापित करने की बुनियादी जरूरत है।

सच तो यह है कि वे ही लोग फैसले करने में गलतियाँ करते हैं जो देश की चुनौतियों और समस्याओं का सामना करने के लिए समाधान खोजने की कोशिश करते हैं। हमें उन ईमानदार अधिकारियों की सुरक्षा अवश्य करनी चाहिए जो हमेशा सजग रहते हैं और देश के विकास के लिए निर्णय लेते समय अनजाने में गलती कर बैठते हैं। फैसले में त्रुटि को जाँचने-परखने के लिए देश में प्रशासनिक और न्यायिक, दोनों तरह की स्थापित प्रक्रियाएँ हैं। यदि हम अधिकारियों द्वारा कोई आर्थिक या अन्य कोई लाभ प्राप्त किए जाने के बिना ही उनके फैसलों में आपराधिक कोण खोजेंगे, तो हम सिर्फ ईमानदार लोकसेवकों को हतोत्साहित ही करेंगे। पूर्व कोयला सचिव एच सी गुप्ता के साथ तो ऐसा ही हुआ। यह तो कहिए कि गुप्ता के मामले ने ईमानदार अधिकारियों के संरक्षण प्रदान करने के मसले पर एक बड़े बहस को जन्म दिया है जिसके परिणामस्वरूप कई लोगों ने भ्रष्टाचार रोकथाम अधिनियम, 1988 में संशोधन की माँग करते हुए चीजें दुरूस्त करने की वकालत की है, ताकि निर्णय लेने की प्रक्रिया के संदर्भ में एक अच्छा माहौल उपलब्ध कराया जा सके। आखिर तभी तो एच सी गुप्ता के मामले पर बहस करने वाले प्राय: सभी लोगों ने गुप्ता जी की व्यक्तिगत ईमानदारी की बात कही हैं और प्राय: सभी के स्वर ईमानदार अधिकारियों के संरक्षण के लिए है, न कि भ्रष्ट अधिकारियों को बचाने के लिए। आज तो ऐसा ही हो रहा है।

इस संदर्भ मुझे एक और बात कहनी है और वह यह कि वर्तमान समय में ईमानदार और मेहनती अधिकारियों-कर्मचारियों को पुरस्कृत करने के लिए देश में कोई स्पष्ट प्रणाली नहीं है। कम से कम हम उनके लिए एक हितकारी वातावरण मुहैया तो करा ही सकते हैं जहाँ वे समाज के उत्थान के लिए बिना किसी भय के काम कर सकें।

इसलिए समय का तकाजा है कि भ्रष्टाचार के गंभीर हालात को देखते हुए हमेशा कड़े कानून की जरूरत है और भ्रष्टाचार के मामलों की तत्परता से पकड़ने और भ्रष्ट अधिकारियों को तेजी से सजा दिलाना सबसे महत्वपूर्ण है।

(५)प्रश्न: क्या आप भी ऐसा महसूस करते हैं कि आजादी के सात दशक बाद भी देश के सरकारी दफ्तरों की कार्यसंस्कृति में पारदर्शिता, चुस्ती-दुरूस्ती और जवाबदेही का नितांत अभाव दिखता है?

उत्तर: हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि आजादी के सात दशक बाद भी देश के सरकारी दफ्तरों की कार्यसंस्कृति में पारदर्शिता, चुस्ती-दुरूस्ती और जवाबदेही का नितांत अभाव दिखता है जिसकी छवि जनमानस में साफ देखी जा सकती है। देश का हर आदमी इस बात को लेकर परेशान है कि सरकारी दफ्तरों में उसका जायज काम न केवल बहुत विलम्ब से होता है, बल्कि बिना रिश्वत दिए नहीं हो पाता है। राज्य तथा केंद्र सरकार के प्राय: सभी कार्यालयों में अधिकारियों एवं कर्मचारियों का देर से पहुँचना और सबेरे निकल जाना तो आम बात है। इसका और कारण चाहे जो हो उच्चाधिकारियों की या तो इसमें कर्मचारियों से मिलीभगत है या फिर उनकी पकड़ समाप्त हो चुकी है।

आपको याद होगा कुछ वर्षो पहले केंद्रीय कार्यालयों में कार्य संस्कृति चुस्त-दुरूस्त, पारदर्शी, जवाबदेह और भ्रष्टाचार मुक्त थी, लेकिन इधर हाल के वर्षो में वहाँ के कार्यालयों की कार्यसंस्कृति में भयंकर गिरावट आई है। आखिर तभी तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को विगत 15 अगस्त, 2016 को लाल किले के प्राचीर से सरकार की उपलब्धियों का बखान करते हुए दफ्तरों की कार्यसंस्कृति के बदलाव की दिशा में कदम बढ़ाने की बात कहनी पड़ी।

हालांकि यह सच है कि प्रधानमंत्री ने स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर कार्य संस्कृति में जैसा बदलाव की दिशा में कदम बढ़ाने की बात की थी, उसका असर इस मायने में देखने को मिल रहा है, क्योंकि उनके निर्देशानुसार अब विभागीय सचिव हर सुबह अपने विभाग से जुड़ी नकारात्मक खबरों को चिन्हित कर संबंधित पदाधिकारियों से स्पष्टीकरण की माँग की जाती है और उसकी रपट कैबिनट सचिव को प्रति माह भेजी जा रही है। सचिवों के माध्यम से रोजाना मॉनीटरिंग की मोदी सरकार की इस उल्लेखनीय पहल पर गंभीरता से अमल जारी रहा, तो यह अधिकारियों को अपने कर्तव्य

के प्रति जवाबदेह बनाने में अवश्य मददगार होगा और कर्मचारियों पर भी इसका प्रभाव पड़ेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि विगत दो वर्षों के दौरान केंद्रीय मंत्रालयों एवं विभागों की कार्य संस्कृति का जहाँ तक सवाल है, अबतक कोई बड़े घपले-घोटाले और भ्रष्टाचार की खबर सुनने को नहीं मिली है और सरकारी कार्यालयों की सुस्ती, लापरवाही और भ्रष्टाचार, जो देश के विकास की राह रोकती रही है उसमें सुधार दिख रहा है। वायोमीट्रिक हाजिरी जैसी तकनीकी कवायद से दफ्तरों में बाबूओं के आने-जाने का समय में सुधार है और उनके काम करने की शैली भी बदली है, लेकिन जो कार्यालय केंद्रीय मंत्रालयों के अधीनस्थ नहीं हैं और शीर्ष पर चाहे भारत के मुख्य न्यायाधीश हों या भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक उनके केंद्र तथा राज्य स्थित कार्यालयों में सुधार बिल्कुल नहीं दिखते हैं, बल्कि सच्चाई यह है कि उन कार्यालयों में चुस्ती-दुरूस्ती, पारदर्शिता और जवाबदेही का अभाव तो है ही, वहाँ भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी पहले से अधिक दिखाई दे रही है।

(६)प्रश्नः क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि जबतक संघीय ढाँचे के अनुरूप नदी जल के उपयोग, बँटवारे और इससे जुड़े विवादों के हल के लिए अलग से कोई सर्वमान्य संस्था नहीं बनती है, तबतक मामले पहले की तरह उलझने को अभिशप्त रहेंगे?

उत्तरः हाँ, मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि जबतक संघीय ढाँचे के अनुरूप नदी जल के उपयोग, बँटवारे और इससे जुड़े विवादों के हल के लिए अलग से कोई सर्वमान्य संस्था नहीं बन जाती, तबतक मामले पहले की तरह उलझने को अभिशप्त रहेंगे। आपने देखा नहीं अगस्त, 2016 के अंतिम सप्ताह में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक फैसले में आदेश दिया था कि कर्नाटक अगले दस रोज तक अपने पड़ोसी राज्य तमिलनाडु के लिए कावेरी नदी का 15 हजार क्यूसेक पानी प्रतिदिन छोड़े। बाद में अदालत ने उसका संशोधन कर 12 हजार किया। न्यायालय का यह आदेश कर्नाटक के किसानों को इसलिए मंजूर नहीं, क्योंकि मॉनसून के इस बार दगा देने की वजह से कावेरी नदी के चार बाँधों में केवल 47 टीएमसी फीट पानी हुआ, जबकि सामान्य तौर पर इससे तीन गुना ज्यादा पानी होना चाहिए था। कर्नाटक के किसान या फिर कर्नाटक सरकार सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को मानें, तो उनके सामने फसलों की सिंचाई से लेकर नगरों की जलापूर्ति तक की समस्या आन खड़ी होगी।

नतीजा यह हुआ कि जहाँ एक ओर सर्वोच्च न्यायालय के आदेश से तमिलनाडु के किसानों को जान में जान आई, वहीं दूसरी ओर कर्नाटक के किसानों का गुस्सा भड़क उठा और उनके उग्र प्रदर्शन के बीच बेंगलुरू-मैसूर उच्च पथ जाम हो गया, बसें नहीं चली और दुकानें बंद हो गईं। स्थिति इतनी भयावह हो गई कि हालात को बेकाबू होने से बचाने के लिए सिद्धरमैया सरकार सर्वदलीय बैठक से लेकर सड़कों और बाँधों पर रैपिड एक्शन फोर्स की तैनाती तक हर किस्म के कवायद करने को मजबूर हो गई। बैंगलुरू में पुलिस फाइरिंग से दो व्यक्ति की मौत भी हो गई तथा तमिलनाडु में तीन बसें फूँक दी गईं।

दरअसल, कावेरी नदी कर्नाटक में 2.5 लाख एकड़ कृषि-भूमि की जीवन धारा है और तमिलनाडु में 15 लाख एकड़ कृषि-भूमि की जीवन धारा है। इसके अतिरिक्त तमिलनाडु में 15 लाख एकड़ खेतिहर इलाका इसी कावेरी नदी के पानी के भरोसे जीवन-जीविका चलाता है। जरूरत दोनों राज्यों की है, तो फिर जरूरत भर का पानी दोनों को मिलना चाहिए, लेकिन नदी में पानी का अभाव हो, तो क्या किया जाए, यहीं समस्या खड़ी हो जाती है जिसका समाधान इसलिए नहीं निकल पा रहा है, क्योंकि राजनीतिक स्वार्थसाधन के चलते जान-बुझकर कुछ इस तरह उलझाकर रखा गया है, ताकि समस्या का हल न निकल सके। इसी का परिणाम है कि अक्सर कावेरी नदी के जल-बँटवारें को लेकर कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच तकरार होता रहता है और कभी-कभी तो कानून-व्यवस्था का सवाल उठ खड़ा होता है। इसी समस्या के समाधान के लिए संघीय ढाँचे के अनुकूल कोई सर्वमान्य संस्था बनाने की बात मेरे ख्याल से उचित जान पड़ता है।

हालांकि कावेरी नदी के पानी को लेकर जो तनातनी कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच दिखती है, वैसी ही तनातनी बहुत से अन्य राज्यों में भी है। पंजाब, राजस्थान और हरियाणा के बीच सतलज और यमुना नदी जल बँटवारे को लेकर हाल में मची हायतौबा की यादें अभी पुरानी नहीं पड़ी हैं। नदियाँ एक से ज्यादा राज्यों से होकर जहाँ-जहाँ से गुजरती हैं वहाँ पानी के बँटवारे को लेकर समस्या खड़ी हो जाती है और यही तथ्य भारत जैसे विशाल देश के भीतर नदी जल बँटवारे को लेकर एक कारगर नीति की अपेक्षा रखता है। सच तो यह है कि हमारे नीति-नियंताओं ने इस नीति को उलझा कर रखा है, क्योंकि संवैधानिक व्यवस्था कुछ ऐसी है कि राज्य सूची की प्रविष्टि 17 के हिसाब से नदी जल राज्य का विषय तो है, लेकिन

संघीय सूची की प्रविष्टि 56 नदी घाटी नियमन और विकास को केंद्र का विषय बना देती है। फिर संविधान के अनुच्छेद 262 के प्रावधान नदी जल के उपयोग, बँटवारे और नियंत्रण संबंधी किसी भी शिकायत के निपटारे के लिए अंतिम शरणस्थल संसद को बताते हैं, यानी सर्वोच्च न्यायालय सहित अन्य अदालतों या प्राधिकरणों को ऐसे विवाद की स्थिति में तब तक फैसले लेने का अधिकार नहीं जबतक संसद ना चाहे। इसी प्रकार नदी बोर्ड एक्ट और अंतरराज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम इसी संवैधानिक व्यवस्था की देन है, जो अमल के बावजूद नदी जल विवाद के प्रकरणों का समाधान करने में असफल रहे हैं। दरअसल, राजनीतिक दल संकीर्ण स्वार्थों के चलते आम जनता को समझाने-बुझाने और बीच का रास्ता निकालने की बजाय लोगों की भावनाओं को कुरेदने का काम करते हैं।

अभी तक नदी-जल विवाद के निपटारे के लिए कोई स्वायत्त सांस्थानिक ढाँचा नहीं खड़ा हो पाया है और पूरा मामला संसद के विवेक का बना चला आ रहा है। व्यवहार के धरातल पर वह अक्सर केंद्र और राज्य में जमी राजनीतिक पार्टियों के आपसी समीकरण और राजनीतिक लाभ-हानि सोचकर तय होता है। इसलिए जबतक संघीय ढाँचे के अनुरूप नदी जल के उपयोग, बँटवारे और इससे जुड़े विवादों के हल के लिए अलग से कोई सर्वमान्य संस्था नहीं बनाई जाएगी, तबतक मामले पहले की तरह ही उलझने को अभिशप्त होंगे।

यदि नदी-जल बँटवारे को लेकर हो रहे विवाद का हल निकालना है, तो स्वतंत्र-स्वायत्त निकाय तो बने ही, साथ ही जल को भी केंद्रीय सूची में शामिल किया जाए। बेहतर हो इस पर आम सहमति बने, जिससे जल बँटवारे को लेकर राज्यों के बीच की तनातनी को रोका जा सके। इसके साथ ही इसके लिए भी ठोस उपाय करने होंगे कि देश के हर हिस्से को जरूरत भर पानी कैसे उपलब्ध कराया जाए। यह इसलिए आवश्यक है, क्योंकि मानसून की अनियमितता बढ़ती जा रही है। इस संदर्भ में इस पर भी शीघ्र ही विचार किया जाए कि जल संरक्षण-संचयन के उपायों पर सही ढंग से काम करने की जरूरत है और साथ ही नदियों को जोड़ने की योजना कब तक सरकारी संचिकाओं में ही दर्ज बनी रहेंगी? मौजूदा तनाव से यही संकेत मिलता है कि तमिलनाडु और कर्नाटक के कुछ राजनीतिक और सामाजिक संगठनों की दिलचस्पी विवाद के समाधान में है ही नहीं, उन्हें तो बस क्षेत्रीयता की भावना भड़काकर अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकनी है।

(७)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि भारत को एक राष्ट्रीय मिशन बनाकर हर प्रमुख क्षेत्र में अपने देश के लोग, अपने ब्रांड्स और अपनी तकनीक बनाने का समय आ गया है? आखिर क्यों? क्या आप ऐसा अनुभव करते हैं कि जो देश और कंपनियाँ इन सब पर नियंत्रण करेंगी, वही दुनिया पर राज करेगी?

उत्तर: हाँ, भाई विजय जी, मुझे भी ऐसा लगता है कि हमारे देश भारत को एक राष्ट्रीय मिशन बनाकर हर प्रमुख क्षेत्र में अपने देश के लोग, अपने ब्राड्ंस और अपनी तकनीक बनाने का समय आ गया है, क्योंकि आपको याद होगा कि आज से सत्रह वर्ष पहले पाकिस्तानी घुसपैठियों ने कारगिल क्षेत्र में जब आक्रमण किया था, तो हमारी सेना ने उसे मुँहतोड़ जवाब देकर उसे खत्म तो कर दिया था, मगर जब युद्ध चरम पर था, तब उपग्रह प्रणाली के जरिए हमने दुश्मन को आर्डिनेट्स स्थल पहचान चिह्न पता करने के लिए अमेरिका से जीपीएस डाटा, जो अमेरिकी प्रणाली है माँगा था, मगर पाकिस्तान से उसके संबंध खराब न हो इस भय से अमेरिका ने हमें जीपीएस डाटा देने से इनकार कर दिया था। यह भारत सरकार के लिए एक झटका था, जिसने हमें यह सिखाया कि रणनीतिक हथियार (उपग्रह प्रणाली) हमें खुद ही विकसित करनी पड़ेगी।

उसी के बाद हम सतर्क हुए और इसरो द्वारा 'नाविक' नामक पूर्णत: देशी उपग्रह-प्रणाली जीपीएस का विकल्प विकसित कर कक्षा में स्थित कर दी गई। हमारे सात उपग्रह संपूर्ण दक्षिण एशिया और मध्यपूर्व में रियल टाइम में गड़ाए हुए हैं। अब हमें किसी की मदद की जरूरत नहीं है।

जीपीएस का विकल्प देशी उपग्रह प्रणाली 'नाविक' विकसित कर हम गर्व का अनुभव तो जरूर करते हैं, लेकिन जैसे ही हम नजर घुमाकर डिजिटल दुनिया का विश्लेषण करते हैं, तो पाते हैं कि डिजिटल दुनिया में भारतीय सेवा प्रदाताओं और ब्रांड्स की उपस्थिति लगभग शून्य के बराबर है, जबकि उपयोगकर्ताओं की संख्या दिन-दूनी, रात-चौगनी बढ़ती जा रही है। आगे आने वाले कल में तकरीबन हर सेवा, चाहे सरकारी हो या निजी, हमे डिजिटल रूप में मिलने लगेंगी। व्यापक डाटा स्टोरेज, सोष्ठाल मीडिया, इमेल, मेसेजिंग, विडियो स्ट्रीमिंग, शिक्षण वेबसाइट्स, ऑनलाइन बुकिंग्स, 5. कामर्स, चालक-विहीन वाहनों और कृत्रिम बुद्धिमता, सबकुछ डिजिटल अधोसंरचना पर ही आधारित होंगे। अब जाहिर सी बात है कि जो देष्ठा और कंपनियाँ इन सब पर नियंत्रण करेंगी, वहीं दुनिया पर राज करेंगी।

इस दृष्टि से यदि हम अपने देष्ठा भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें, तो हमें केवल निराशा हाथ लगती है, क्योंकि लगभग सभी सेवा-प्रदाता या प्रोडक्ट्स बेचने वाले या तो अमेरिका के हैं या चीन के।

उदाहरण को लें तो फेसबुक, गूगल, यूट्यूब और जी-मेल अमेरिका के हैं। इसी तरह एप्पल, ट्विटर और अमेजन भी अमेरिका के हैं। सैमसंग कोरिया का है और अलीबाबा एवं अली-पे चीन के हैं। व्हॉट्सएप्प और वर्डप्रेस भी अमेरिका के हैं। इस उदाहरण से तो ऐसा लगता है कि हम कहीं नहीं हैं। और आश्चर्य की बात यह है कि हम अपना सारा डाटा विदेशी कंपनियों को देते चले आ रहे हैं। देखते ही देखते, ऑटोमेशन के जरिए इन विदेशी कंपनियों को भारतीयों के बारे में जितना पता होगा, उतना खुद भारत की सरकारों को भी पता नहीं होगा। आने वाले कल में जिस देश के हाथ में डाटा होगा, वह कॉमर्सियल लड़ाई आसानी से जीत लेगा। हम केवल उपयोगकर्ता बनकर रह जाएँगे और इन्हें कमाने का मौका देते रहेंगे, क्योंकि हमारे पास मुख्य-ब्रांड्स नहीं हैं।

सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि अमेरिकन गुगल को एक भारतीय सुंदर पिचई चला रहे हैं। सत्या नडेला जो भारत के हैं, माइक्रोसॉफ्ट चला रहे है, पर मालिक नहीं है। कमोवेश यही स्थिति सब बड़ी इंटरनेट कंपनियों मे है। भारतीय प्रतिभा इन कंपनियों को चला पा रही है और विश्व विजेता बना रही हैं पर भारत में रहकर नहीं, भारतीय कंपनियाँ बनाकर नहीं। दरअसल भारतीय माता-पिता का अंतिम सपना होता है कि उनका बेटा-बेटी गूगल या फेसबुक में नौकरी कर ले, खुद का गूगल बनाए ऐसा नहीं। ऐसे में मुमकिन है कि भारत की ये प्रतिभाएँ आने वाले कल में भारत पर इन अमेरिकी ब्राडंस को राज करवाएँगी। क्या यह गलत नहीं हो रहा है?

दरअसल, गलत यह हो रहा है कि भारत में हम वह विजन, वह माहौल और वह सरकारी मदद अपने उद्यमियों और विजनरीज को दे ही नहीं पा रहे हैं। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इसी के मद्देनजर महत्वाकांक्षी डिजिटल इंडिया प्रोजेक्ट के जरिए अद्भुत विजन दिखाया है, लेकिन हम उस विजन को तभी जमीन पर उतार सकते हैं जब अपने देश की ब्रांड्स और कंपनियाँ उसे मूर्त रूप दें। एक राष्ट्रीय मिशन बनाकर हर प्रमुख क्षेत्र में अपने देश के लोग, अपनी ब्रांड्स और टेक्नोलॉजी बनाने की ओर हम अग्रसर हों, अन्यथा हम पिछड़ ही नहीं जाएँगे और दूसरों के भरोसे रहेंगे बल्कि आगे आनेवाले समय में युद्ध युद्धभूमि में नहीं, हमारे मोबाइलों

पर लड़ा जाएगा और हमें मुँह की खानी पड़ेगी। इसलिए यह समय का तकाजा है कि हमारे देश की कंपनियाँ सभी ब्रांड्स पर नियंत्रण करे, क्योंकि जो देश और कंपनियाँ इन सभी ब्रांड्स पर नियंत्रण करेंगी, वही दुनिया पर राज करेगी।

(८)प्रश्न: क्या आप भी ऐसा महसूस करते हैं कि हम देशवासियों में देशभक्ति की भावना धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है और हम भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दत्त जैसे देशभक्तों को भी भूलते जा रहे हैं?

उत्तर: हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि हम देशवासियों में देशभक्ति की भावना धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है और बटुकेश्वर दत्त जैसे देशभक्तों को भी भूलते जा रहे हैं, जिन्होंने भगत सिंह के साथ मिलकर 8 अप्रैल, 1929 को बहरे ब्रिटिश साम्राज्य को खबरदार करने के लिए दिल्ली के सेन्ट्रल असेंबली में बम-विस्फोट किया और अपनी गिरफ्तारी दी। बटुकेश्वर दत्त क्रांतिकारी जीवन में शहीद भगत सिंह के हमजोली थे। उनका संघर्ष और त्याग हर भारतवासी पर एक कर्ज है। आज जरूरत है कि हम उन देशभक्तों के जीवन-संघर्षों को जानें, जिनके लिए देश से अधिक कुछ भी अहम नहीं था, मगर मौजूदा दौर में चाहे सार्वजनिक जीवन जीने वाला राजनेता हों या नौकरशाह, व्यापारी हों या आम आदमी सभी अपने-अपने स्वार्थ में वशीभूत हो आधिकाधिक धर्नाजन करने की फिराक में लगे हुए हैं और देशभक्तों की कुर्बानियों को भूलते जा रहे हैं।

हम भूल गए देशभक्त बटुकेश्वर दत्त की तस्वीर को, जिन्होंने जेलों की अँधेरी कोठारियों के अंदर भयंकर यातनाएँ झेलीं और वही मुक्ति-योद्धा पटना शहर की सड़कों पर एक पुरानी जर्जर साइकिल से अपनी शेष जिंदगी का बोझ ढोते रहे। स्वतंत्र भारत में भी इस क्रांतिकारी देशभक्त की आठ महीने तक लंबी दर्दनाक मौत से जूझना पड़ा, क्योंकि वे टूटी उपेक्षित जिंदगी जी रहे थे।

कानपुर में जन्में बटुकेश्वर दत्त ने अपने जीवन की सांझ पटना में बिताई और दिल्ली की केंद्रीय असेंबली यानी वर्तमान में संसद में तो उन्होंने भगत सिंह के साथ 8 अप्रैल, 1929 को ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जन विरोधी नीतियों के खिलाफ बम का विस्फोट करते हुए 'इंकलाब जिंदाबाद', 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' के नारे लगाते गिरफ्तार हुए और उन्हें जेल की काली कोठरी मे बंद कर दिया गया। इनकी क्रांतिकारी चेतना सन् सत्तावन के प्रथम युद्ध से निरंतर विकसित होकर अपने पूरे फैलाव और रोष्ठानी के साथ भगत

सिंह के युग में वैचारिक रूप से अत्यंत समृद्ध होकर प्रस्फुटित हुई थी। यह सही है कि भगत सिंह अपने समय में क्रांतिकारी संग्राम के सबसे बड़े प्रवक्ता बने, जिसके लक्ष्यों में आजादी के साथ साम्राज्यवाद का अनोखा सपना था, लेकिन क्रांतिकारी आंदोलन के एक संयुक्त अभियान में बटुकेश्वर दत्त का बहुत बड़ा योगदान था। आखिर तभी तो दत्त ने मरने के पहले यह इच्छा जताई थी कि उनका अंतिम संस्कार वहीं किया जाए, जहाँ चौंतीस साल पहले ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने उनके साथी भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव की लाशें जलाई गई थीं। वे मरकर भी जुदा नहीं होना चाहते थे अपने हमजोलियों से, जिनके साथ क्रांति पथ पर चलते हुए कभी अपनी जिंदगी को दाव पर लगा दिया था।

(९)प्रश्नः क्या आप इस बात से सहमत हैं कि जम्मू-कश्मीर समस्या की जड़ में भारतीय संविधान का अनुच्छेद ३७० है?

उत्तर: हाँ, आपकी इस बात से मैं सहमत हूँ कि जम्मू-कश्मीर की समस्या के जड़ में भारतीय संविधान का अनुच्छेद 370 है। दरअसल, विवादास्पद संविधान की धारा 370 के संबंध में अबतक संबंधित पक्षो में से किसी ने शायद ही कुछ कहने की जरूरत समझी हो। यहाँ तक कि कष्ठमीर पर संसद में हुई बहस के दौरान भी अनुच्छेद 370 का बेहद हल्का-फुल्का जिक्र हुआ। इस खामोशी की तमाम वजहें हो सकती हैं, लेकिन इस परिवर्तन पर ध्यान देने की जरूरत है।

सच कहा जाए तो कश्मीर को संविधान की धारा-370 के तहत शेष देश से अलग देखने पर इसलिए जोर दिया गया था, क्योंकि यह महसूस किया गया था कि कश्मीर राज्य का बाकी देश से धीरे-धीरे ही एकीकरण हो सकेगा और इसमें धारा 370 की प्रमुख भूमिका होगी। लेकिन तकरीबन सात दशक बाद भी इसके विपरीत प्रभाव नजर आते हैं। कश्मीर को जो विशेष दर्जा दिया गया उसने एकीकरण की जगह बस वहाँ के लोगों के भावनात्मक अलगाव को बढ़ाने का ही काम किया है। इस बिंदु पर हमारे राजनीतिक वर्ग को व्यापक विचार-विमर्श की आवश्यकता इसलिए है, क्योंकि कश्मीर की समस्या की जड़ में संविधान की धारा 370 ही है।

(१०)प्रश्नः पिछले दिनों २१ अक्टूबर, २०१० को नई दिल्ली में 'कमेटी फॉर द रिलीज ऑफ पॉलिटकल प्रिजनर' द्वारा 'आजादी एकमात्र रास्ता' विषय पर आयोजित सम्मेलन में शिरकत करने आए हुर्रियत के कट्टरपंथी नेता सैयद अली शाह गिलानी ने कहा कि

'कश्मीर घाटी ही नहीं, बल्कि जम्मू व लद्दाख भी हिंदुस्तान के कब्जे से आजाद होने चाहिए। क्या आप इसे देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता पर ही प्रहार नहीं कहेंगे?

उत्तर: भारत के खिलाफ जहर उगलने, आजादी को अपना पैदाइशी हक बताने और कश्मीर घाटी में पत्थरबाजी के हिमायती हुर्रियत के कट्टरपंथी नेता सैयद अलीशाह गिलानी ने सत्ता की नाक के नीचे विगत 21 अक्टूबर, 2010 को कश्मीर घाटी ही नहीं, जम्मू व लद्दाख को भी हिंदुस्तान के कब्जे से आजाद करने की राष्ट्रद्रोह की बात कहकर न केवल देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता पर ही प्रहार किया है, बल्कि कश्मीर समस्या सुलझाने में भारत, पाकिस्तान और जम्मू-कश्मीर की त्रिपक्षीय वार्ता की बात कह गिलानी कश्मीर मुद्दे का अंतरराष्ट्रीयकरण करने का प्रयास कर रहे हैं जो अत्यंत चिंता और चौकाने वाली बात तो है ही, सत्ता पर विराजमान हुकमरान के लिए भी शर्म की बात है। यह तो संयोग कहिए कि 'जब गिलानी कश्मीर मुद्दे को लेकर जिस त्रिपक्षीय वार्ता की बात कह रहे थे, तकरीबन उसी वक्त अमेरिका ने कड़ा संदेश देते हुए कहा कि कश्मीर भारत का आंतरिक मामला है और भारत ही फैसला करेगा कि इस्लामाबाद के साथ द्विपक्षीय तरीके से बात करनी है या नहीं।

कुछ दिनों पूर्व जब कश्मीर घाटी में पृथकतावादी तत्वों ने पुन: तांडव शुरू किया था, तो जम्मू कश्मीर के मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला ने भी विलय को लेकर आपतिजनक बयान दिया था। गिलानी के अतिरिक्त लेखिका अरुधंती राय ने भी उपर्युक्त सम्मेलन में अलगाववाद के पक्ष में अपने कुतर्क पेश किए थे। अलगाववादी आंदोलन को जनांदोलन बताते हुए अरुंधती राय ने कहा कि कश्मीर को बार-बार भारत का अभिन्न अंग बताया जाता है, जबकि यह कभी अभिन्न अंग रहा ही नहीं। सच तो यह है कि भारत में कश्मीर का विलय अब कोई मुद्दा है ही नहीं, क्योंकि समय ने उस पर अपनी मुहर लगा दी है। अरुंधती राय को यह बात समझनी होगी अथवा समझानी होगी कि कश्मीर का मन भारत के साथ जीता है। इसलिए इन तीनों का बयान उनकी भारतीयता पर प्रश्नचिह्न लगाता है। देश की एकता और अखण्डता को ध्यान में रखते हुए उन्हें सोचना चाहिए कि इससे उत्तर-पूर्व राज्यों के अलगाववादियों में गलत संदेश जाएगा।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था के संचालन का एक अनिवार्य अंग है, लेकिन इस आधार पर

देश तोड़ने की बात कतई स्वीकार नहीं की जा सकती। उसमें भी तब जब पूरा देश 31अक्टूबर, 2010 को राष्ट्रनिर्माता तथा देश की एकता के प्रतीक लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की 135वीं जयंती मनाकर एकता व अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखने का पुनः देशवासी संकल्प लेने जा रहे हों।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19(1)(क) प्रत्येक नागरिक को भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी देता है, लेकिन अनुच्छेद 19(2) में शामिल आठ प्रमुख उपबंधों-राज्य की सुरक्षा, विदेशी के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोकव्यवस्था, शिष्टाचार और सदाचार, न्यायालय की अवमानना, मानहानि, अपराध के लिए प्रोत्साहन के अतिरिक्त देश की संप्रभुता तथा अखंडता के हितों में या आधारों पर इस अधिकार के प्रयोग पर युक्तिमुक्त सीमाएँ अथवा प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। इस आधार पर केंद्र सरकार की यह जिम्मेदारी बनती है कि अलगाववाद के पक्ष में कुतर्क पेश करने वाले वक्ताओं पर राष्ट्रदोह के मामले में कठोर कार्रवाई करे और ऐसे राष्ट्र विरोधी और अलगाववाद को बढ़ावा देने वाले सम्मेलनों पर सरकार के द्वारा तत्काल प्रतिबंध लगाए जाएँ, ताकि पुनः ऐसा दुस्साहस कोई अन्य न कर सके।

(११)प्रश्नः राष्ट्र निर्माण के परिप्रेक्ष्य में १९वें राष्ट्रमण्डल खेल, २०१० को आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तरः राष्ट्रमण्डल खेल शुरू होने के कुछ ही दिनों पूर्व अनेक खामियों व कमियों के बावजूद खेल से जुड़े लोगों के साथ-साथ दिल्लीवासियों ने खेल की सफलता के लिए अपनी जिस एकजुटता का परिचय दिया और अंत-अंत तक इसकी गरिमा और प्रतिष्ठा को सभी कमियों से ऊपर रखा इससे यह आशा बँधती है कि इस देश के लोगों को राष्ट्रीय गरिमा का ख्याल है, मगर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अगर 19वें राष्ट्रमण्डल खेलों में भारत के पास मेलबॉर्न का रिकार्ड तोड़ने और स्त्री-शक्ति के उदय की चमक है, तो उसके नीचे भूख, भ्रष्टाचार और पुरुष सत्ता का अँधेरा भी है। राष्ट्रमण्डल खेलों के दौरान ही इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीच्यूट द्वारा जारी एक रपट में यह भी बताया गया कि विश्व भूखमरी सूचकांक के मामले में भारत 67वाँ स्थान पाकर चीन ही नहीं पाकिस्तान, दक्षिण अफ्रीका तथा नेपाल से भी काफी नीचे है। इस सच्चाई को तो स्वीकार करना पड़ेगा कि कोई भी भूखा रहने वाला देश खेल में बड़ी ताक़त नहीं बन सकता और न ही अपने लोगों को भूखा रखकर 19वें राष्ट्रमंडल खेलों पर सत्तर हजार

करोड़ रुपए का भारी खर्च का औचित्य सिद्ध कर सकता है।

इसलिए राष्ट्रनिर्माण के परिप्रेक्ष्य में एक तरफ खेलों पर सत्तर हज़ार करोड़ रुपए की राशि का व्यय और दूसरी तरफ करोड़ों देशवासियों का भूखमरी की जिंदगी बसर करना कुछ अटपटा-सा लगता है। समय की मांग है कि राष्टमण्डल खेल, 2010 की उपलब्धियों की मशाल की रोशनी में भारत सरकार को स्वस्थ समाज और सबल राष्ट्र के निर्माण के लिए भूख का अँधेरा मिटाने का प्रयास करना होगा।

(१२)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि ब्रिटिश शासन काल के दौरान बने देशद्रोह संबंधी कानून स्वस्थ लोकतंत्र के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं?

उत्तर: हाँ, उपेन्द्र जी, मुझे भी ऐसा लगता है कि ब्रिटिश शासन काल के दौरान बने देशद्रोह संबंधी कानून स्वस्थ लोकतंत्र के लिए आज घातक सिद्ध हो रहे हैं, क्योंकि ब्रिटिश शासन काल में अँग्रेजों ने सन् 1898 में भारतीय संविधान में भारतीय दंड संहिता की धारा 124 ए का प्रावधान इसलिए किया था, ताकि उसके उपनिवेश में भारत के निवासियों की हर तरह की आलोचना को कुचलकर अपना संस्थागत सरकारी शोषण जारी रख सके। मगर विडंबना यह है कि 1898 में बने इस कानून की धारा 124 ए के तहत आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बावजूद आज भी हर दल की सरकार अपनी आलोचना से उखड़कर नागरिकों के अभिव्यक्ति के मूल अधिकार को कुचल कर उन्हें सलाखों के भीतर करने के लिए इस्तेमाल कर रही है, जबकि 1898 में बने भारतीय दंड संहिता में डाले गए देशद्रोह के कानून बन चुके हैं और सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों ने भी जनाधारित लोकतांत्रिक भारत को इस कानून में अविलंब सुधार करने की आवश्यकता बताई है।

यही नहीं, देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भी 1951 में ही कह दिया था कि देशद्रोह के इस बेहद आपत्तिजनक और असहनीय कानून से जितनी जल्द हो सके हमको छुटकारा पा लेना होगा। इसी प्रकार लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल ने भी अँग्रेजी सरकार द्वारा लोकमान्य तिलक के खिलाफ इस्तेमाल की गई धारा 124ए का विरोध इसलिए किया था, क्योंकि इस धारा में सर्वशक्तिमान सरकार की ताकत एक नागरिक के दमन के लिए लगाना संभव है। फिर भी आज तक सरकार को घेरने वाले घोटालों से लेकर मानवाधिकार हनन तक के मामले सामने लाने

वाले पत्रकारों, आम नागरिकों या नागरिक संगठनों के खिलाफ कई राज्य सरकारें इस कानून का इस्तेमाल कर रही हैं और कई बार जायज विरोध को भी देशद्रोह की संज्ञा देकर धारा 124ए के तहत लोगों को प्रताड़ित कर रही हैं। और तो और आपको याद होगा आज जिस कुडन-कुलम परमाणु संयंत्र बनने से पहले जब मुखर स्थानीय विरोध उठा था, क्योंकि तभी जापान में सुनामी के कारण एक परमाणु संयंत्र के क्षतिग्रस्त होने से तबाही मची थी, तब देशद्रोह कानून के तहत 7000 नागरिकों के खिलाफ मामला दर्ज किए जाने का भाजपा ने भी विरोध किया था, मगर आज भाजपा एमनेस्टी इंडिया के खिलाफ इसी कानून के तहत कार्रवाई चाह रही है। जाहिर है सत्ता में बैठी पार्टियों का दायित्वबोध ही देश को इस कानून के दुरुपयोग से बचा सकता है। कहने की जरूरत नहीं कि अभिव्यक्ति की आजादी के बिना लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती।

इसी प्रकार 1962 में देशद्रोह कानून के तहत दायर केदारनाथ सिंह बनाम बिहार सरकार मुकदमें की सुनवाई में मुख्य न्यायाधीश भुवनेश्वर प्रसाद ने साफ कर दिया था कि देशद्रोह का अपराध बहुत संगीन होता है। राज्य सरकार द्वारा बिना किसी ठोस प्रमाण सिर्फ किसी अभियुक्त की नीयत पर शक करते हुए उसपर राज्य सत्ता के खिलाफ हिंसक तख्ता पलट का आरोप लगा देना जायज नहीं बनता। खुद भारत के वर्तमान राष्ट्रपति भी फरवरी, 2016 में कोच्चि की एक सभा में कह चुके हैं कि अँग्रेजों के जमाने के कई दमनकारी प्रावधानों का लोकतांत्रिक भारत में संविधान प्रदत्त अन्य अधिकारों से विरोध है। इसलिए उनमें समुचित बदलाव जरूरी है। इसी प्रकार केंद्रीय गृह राज्यमंत्री किरण रिजिजू ने भी वर्ष 2016 के बजट सत्र के दौरान राज्यसभा में स्वीकार किया था कि अँग्रेजी जमाने के दंडविधान के कुछ प्रावधानों का संविधान द्वारा नागरिकों को दिए बुनियादी अधिकारों से टकराव संभव है। देशद्रोह कानून की धारा 124ए के तहत पुलिस देशद्रोह की अपनी व्याख्या के तहत बाजी करनेवाले को इसकी परिधि में ला सकती है।

यह बात सही है कि देश को साजिशन विखंडित करने वाली ताकतों से निबटने के लिए एक असरदार कानून की जरूरत है, लेकिन सरकार को देश का पर्याय बताना भी अनुचित है। संघीय गणराज्य भारत का एक विशाल इकाई है जिसकी परिधि में अनेक भिन्न खातोंवाली विपक्षी दलों की राज्य सरकारें भी अस्तित्व रखती हैं।

मेरा मानना है कि कोई काम देशद्रोह की संज्ञा तभी पा सकता

है जबकि उसका दुष्प्रभाव समूचे देश की प्रभुसत्ता के लिए खतरनाक साबित होता हो। जब सीमापार से एक गहरी साजिश के तहत घर-भीतर गुप्त इकाइयों और घुसपैठियों की मदद से छायायुद्ध चलाया जा रहा हो तब धारा 124ए के प्रावधान को लागू करना लाजिमी दिखता है। सच तो यह है कि नागरिकों और संगठनों सहित मीडिया के हित में देशद्रोह शब्द को नागरिकों द्वारा सरकार की आलोचना से न जोड़ा जाए, क्योंकि स्वस्थ लोकतंत्र में सरकार की स्वस्थ आलोचना की बहुत कीमत है। लाजिमी तो यह होगा कि देशद्रोह की स्पष्ट व्याख्या कर यह बताया जाए कि किस तरह की कौन सी गतिविधियाँ भारतीय गणराज्य के खिलाफ गंभीर षड्यंत्र माने जाएँगे, ताकि संविधान की भारतीय दंड संहिता की धारा 124 ए का राष्ट्रीय आपात स्थिति के दौरान भी दुरुपयोग न हो सके।

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने एनजीओ कॉमन कॉज की एक याचिका के संदर्भ में कहा कि सरकार की आलोचना के लिए किसी पर देशद्रोह या मानहानि के आरोप नहीं लगाए जा सकते। देश भर में कई लोगों के खिलाफ ऐसे मुकदमें दर्ज हैं, जो उच्चतम न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन है। अदालत के न्यायाधीश दीपक मिश्रा और मूमू ललित की एक खंडपीठ ने कहा 'हमने आईपीसी के सेक्शन 124ए में साफ बताया है कि किन आधारों पर देशद्रोह का मुकदमा किया जा सकता है। 1962 में केदारनाथ बनाम बिहार राज्य का फैसला अमल में लाया जा सकता है। इस फैसले में उच्चतम न्यायालय ने साफ कहा है कि किसी भी नागरिक को सरकार के तौर-तरीकों के बारे में कुछ भी बोलने-लिखने का पूरा अधिकार है और राजद्रोह की धाराएँ तभी लागू हो सकती हैं, जब किसी अभियुक्त ने हिंसा के लिए लोगों को उकसाया हो।

(१३)प्रश्न: क्या हमारे देश भारत में बेरोजगारी के हालात यही संकेत दे रहे हैं कि 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की'?

उत्तर: सागर जी, हाल में लेबर ब्यूरो के सर्वे से रिपोर्ट आई है उससे तो यही पता चलता है कि देश में बेरोजगारी दर बीते पाँच सालों के अधिकतम स्तर पर है। इसके बाद एक स्वयं सेवी संस्था के शोध के जो नतीजे आए हैं उससे यही संकेत मिलता है कि समय रहते यदि नहीं चेता गया, तो स्थिति बेहद गंभीर हो सकती है, क्योंकि बेरोजगारी के मोर्चे पर देष्ठा दोहरी मार झेल रहा है। एक तो रोजगार के नए अवसर वांछित तादाद और रफ्तार से पैदा नहीं हो रहे, दूसरे रोजगार के मौजूदा अवसरों में कभी आ रही है। शोध का

निष्कर्ष है कि बीते चार सालों में देश से हर दिन औसतन 550 नौकरियाँ खत्म हुई हैं और यही स्थिति रही तो 2050 तक 70 लाख नौकरियाँ खत्म हो जाएँगी।

उधर विश्व बैंक के ताजा आकलन के मुताबिक उत्पादन और वितरण के अधिकाधिक मशीनीकरण होते जाने की वजह से भारत में करीब 69 फीसदी नौकरियों के खत्म होने का खतरा है। गाँवों की दशा तो और बुरी है, जहाँ लेबर ब्यूरो के नए आँकड़ों के मुताबिक 42 फीसदी श्रमबल को साल के कुछ ही महीनों का रोजगार मिल रहा है और 77 फीसदी ग्रामीण परिवार महीने में 10 हजार भी नहीं कमा पा रहें है। बेशक देश की आर्थिक वृद्धि दर ऊँची है और जीडीपी का आकार बढ़ रहा है, लेकिन अर्थव्यवस्था रोजगारहीन विकास भविष्य के बड़े संकंट का कारण बन सकता है और ये हालात यही संकेत दे रहे हैं कि 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की।'

(१४)प्रश्न: क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि भारत के लोग एक ऐसे वर्तमान में खड़े हैं, जहाँ उनका सदियों का संचित अंतर्मन कई खंडों में विभाजित हो चुका है? ऐसा क्यों?

उत्तर: हाँ, आज मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि हम भारत के लोग एक ऐसे वर्तमान में खड़े हैं, जहाँ हम सबों का सदियों का अंतर्मन कई खंडों में विभाजित हो चुका है। आपको याद होगा कि हमारे पुराने देश भारत की विशिष्ट प्रकृति और सदियों से दुनिया भर से आई तमाम नस्लों ने एक खास तरह के भारतीय परिवेश को रचा है। यहाँ के लोगों की भावुकता, निश्क्षलता, कर्तव्य, सरलता और सहजता आदि-आदि लोगों के मन के मुख्य लक्षण बताए जाते हैं, मगर पिछले दो सदियों से पश्चिम की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के संपर्क में आने तथा उसकी सभ्यता व संस्कृति के अँधानुकरण ने हमारी पुरानी तरह के हिंदुस्तानी मन को वही नहीं रहने दिया है, जो वह अतीत में था। उसपर अच्छे-बुरे अनेक प्रभाव पड़े हैं। भारतीय नागरिकों का वह सनातन मन नहीं रहा है जो कभी रहा है। आज भारत के लोग आत्मसंघर्ष कर रहे हैं। वे एक ऐसे वर्तमान में खड़े हैं, जहाँ उनका सदियों का संचित अंतर्मन कई खंडों में विभाजित हो चुका है।

वस्तुत: हम भारत के लोग एक ऐसे जीवन के सामने खड़े हैं जो हम सबों के लिए पराया है, अजनबी है। हम सब एक ऐसे भविष्य के सामने खड़े हैं जिसे रचने लायक ऊर्जा अपने में जुटाना हमें मुश्किल लग

रहा है। भारतीय मन समय के जिस मोड़ पर खड़ा है, वहाँ उसके पास एक आउटडेटेड श्रेष्ठता की स्मृतियाँ हैं और उदासी व अवसाद की सघनत्तम होती परतें। पश्चिमी सभ्यता के विकास ने सारी दुनिया को अपना अनुगत बना लिया है। ऐसे वक्त हमारे सामने यही सवाल है कि टूटा-फूटा और दिशांहारा भारतीय मन का नवनिर्माण और परिशोधन कैसे किया जा सकता है या यही उपभोक्ता मन की नियति भूलेंगे?

(१५)प्रश्नः भारत में पैदा हुई अमेरिकी कारोबारी इंद्रा कृष्णमूर्ति नूई को आखिर किन विशेषताओं के चलते फॉर्च्यून की २०१६ की सूची में दुनिया की १०० सबसे शक्तिशाली महिलाओं में स्थान मिला? शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह देश-विदेश की कौन-कौन सी कंपनियों में अपनी सेवाएँ प्रदान कर यहाँ तक पहुँचीं?

उत्तरः इंद्रा कृष्णमूर्ति नुई भारत में पैदा हुई अमेरिकी कारोबारी है और पेप्सिको की अध्यक्ष एवं मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी (सीइओ) है। पेप्सिकोला राजस्व के मामले में दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी खाद्य और पेय पदार्थ कंपनी है। 2014 में फोर्ब्स ने नूई को दुनिया की 100 सबसे शक्तिशाली महिलाओं की सूची में 13वाँ स्थान दिया था। फॉर्च्यून की 2016 की सूची में दुनिया की शक्तिशाली महिलाओं में उनका स्थान 82वाँ था।

मद्रास में जन्मी नूई की प्रारंभिक शिक्षा होली एन्जिल्स एंग्लो इंडियन हायर सेकेंडरी स्कूल मद्रास में हुई। 1974 में मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज से भौतिकी रसायन विज्ञान और गणित में उन्होंने स्नातक की डिग्री प्राप्त की और भारतीय प्रबंधन संस्थान, कोलकाता से 1976 में प्रबंधन स्नाताकोत्तर किया। फिर अमेरिका चली गई और येल युनिवर्सिटी में उन्होनें पब्लिक और प्राइवेट मैनेजमेंट का अध्ययन किया। उन्होंने शुरू में बोस्टन कंसल्टेशन फॉर्म में नौकरी की और टेक्सटाइल व कन्जूमर कंसल्टेशन फॉर्म में नौकरी की और टेक्सटाइल व कन्जूमर गुड्स इंडस्ट्री में मुवक्किलों को सेवा देने लगी। 1986-90 में मोटोरोला कंपनी में कॉरपोरेट स्ट्रेटजी की उपाध्यक्ष बनी और ऑटोमोटिव व इंडस्ट्रियल इलेक्ट्रॉनिक्स के विकास पर काम किया।

(१६)प्रश्नः आज केरल के मुस्लिम नई दिल्ली की बजाय अरब की ओर क्यों देखते हैं?

उत्तरः विगत दो अक्टूबर, 2016 को केरल में आईएस से जुड़े छह मुस्लिम युवकों को गिरफ्तार किया गया। कहा जाता है कि वे भारत में हमला करने

की योजना बना रहे थे। वे युवा आईएस के वृहत नेटवर्क का हिस्सा थे। ऐसा लगता है कि गिरफ्तार किए गए युवा इस्लामिक स्टेट से जुड़ने के लिए जून, 2016 में ही भारत छोड़ अफगानिस्तान और सीरिया जा चुके केरल के करीब दो दर्जन मुस्लिमों के संपर्क में थे। सुरक्षा एजेंसियों ने राज्य सरकार को अगाह किया है कि आईएस से जुड़े आतंकी उच्च न्यायालय, केरल के दो न्यायाधीशों और कुछ राजनेताओं को निशाना बना सकते हैं।

केरल के मुस्लिम समुदाय के बारे में कहा जाता है कि वे अमन पसंद हैं, क्योंकि यह खुद पैगम्बर मुहम्मद के समय में मुस्लिम कारोबारियों द्वारा समुद्र के रास्ते आए थे जबकि उत्तर भारत में इस्लाम मुस्लिम हमलावरों द्वारा लाया गया था। नई दिल्ली स्थित द ओपेन सोर्स इंस्टीच्यूट के एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर तुहैल अहमद के मतानुसार आज केरल का समाज बँट गया है, क्योंकि पूर्व में ईद के अवसर पर केरल सरकार की बसें नियमित रूप से चलती थीं, लेकिन मुस्लिम ड्राइवर ईद मनाने के लिए हिंदू ड्राइवर से अपनी डियूटी बदल लेते थे, लेकिन अब ईद के दिन मुस्लिम क्षेत्रों में सरकारी बसें नहीं चलती हैं। इसी प्रकार मुस्लिम बहुल क्षेत्रों जैसे मल्लपुरम में मुस्लिम रमजान के दौरान हिंदुओं और ईसाइयों को अपने रेस्टोरेंट खोलने की इजाजत नहीं देते हैं। आज केरल के मुस्लिम नई दिल्ली की बजाय अरब की ओर देखते हैं। आजकल केरल में सउदी बुर्का और अरबी खाना सामान्य बातें हो गई हैं। कुछ मुस्लिम तो ऊँट भी रखने लगे हैं। इस प्रकार केरल तेजी से पाकिस्तान बनता जा रहा है। आलम यह है कि अब्दुल नासिर मदनी जिसे कोयम्बटूर और बेंगलूर बम बिस्फोट मामले में जेल की सजा भुगतनी पड़ी थी, द्वारा कट्टरता का पाठ पढ़ा रहे हैं और केरल से कुछ मुस्लिम युवकों को आईएस से जोड़ने की हर संभव कोशिश कर रहे हैं।

हाल के दशकों में केरल के कई मुस्लिम धर्म की खातिर यमन चले गए, क्योंकि उनके लिए भारत एक दार-उल-इस्लाम नहीं था। उनमें से कई यमन से श्रीलंका चले गए और उन्होंने वहाँ शिविर स्थापित किए। फलस्वरूप केरल के मुस्लिम श्रीलंका भी गए। यमन और श्रीलंका जाने वाले केरल के मुस्लिम कट्टर धार्मिक लोग हैं, लेकिन वे आतंकवादी नहीं हैं। हैदर अली और टीपु सुल्तान ने केरल में शांतिमय मक्काकाल का अंत कर दिया था। इस प्रकार केरल में इस्लाम का मदीना काल आरंभ हुआ। इसके बाद तो केरल में हिंदू-मुस्लिम संघर्ष रोजाना की बात हो गई है।

(१७)प्रश्नः ९ फरवरी, २०१६ को देश की राजधानी स्थित एक अग्रणी विश्वविद्यालय परिसर में राष्ट्र विरोधियों के समर्थन में छात्रों द्वारा लगाए गए नारों को आप किस रूप में आँकते हैं? क्या राष्ट्र विरोधी नारे लगाने को केवल राजनीतिक असहमति भर कहा जाएगा?

उत्तरः भाई मदन जी, विगत 9 फरवरी, 2016 को देश की राजधानी नई दिल्ली स्थित अग्रणी विश्वविद्यालय जवाहर लाल नेहरू विष्ठवविद्यालय परिसर में जेएनयू छात्र संघ द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में वहाँ के छात्रों और कुछ बाहर से आए लोगों ने नारे लगाए वे इस प्रकार हैं –

'भारत की बर्बादी तक, कश्मीर की आजादी तक
जंग रहेगी, जंग रहेगी।
तुम जितने अफजल मारोगे, हर घर से अफजल निकलेगा।
भारत तेरे टूकड़े होंगे, इंसाअल्लाह, इंसाअल्लाह।
अफजल हम शर्मिन्दा हैं, तेरे कातिल जिंदा हैं।'

जिस किसी भी भारतवासी की रगों में देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता के खून बहते हों, वे ऐसे नारों को सुनकर क्या चुप बैठे रहेंगे? जेएनयू में एक लंबे अरसे से 'हेट इंडिया ब्रिगेड' द्वारा देश विरोधी गतिविधियाँ चलाई जा रही हैं और भारतीय संविधान, इसकी एकता-अखंडता, संप्रभुता का विरोध की जाती रही है। साथ ही कश्मीर को भारत से अलग करने की माँग भी की जाती रही है।

अब आप ही बताइए, भाई मदन जी, क्या ऐसे राष्ट्रविरोधी नारे लगाने वाले और देश विरोधी गतिविधियाँ चलाने वाले लोग देशद्रोही शक्तियों को क्या बढ़ावा नहीं दे रहे हैं? निःसंदेह जेएनयू परिसर में वही नारे लगे जो देशद्रोही हाफिज सईद की रैलियों में लगते रहते हैं। अगर भारत की बर्बादी के नारे लगाना केवल राजनीतिक असहमति भर है, तो फिर हाफिज सईद की भारत विरोधी रैलियों पर आपत्ति का भी कोई मतलब नहीं रह जाता है।

इस मामले के मुख्य खलनायक बनकर उभरे हैं माओवादी संगठन से जुड़े डेमोक्रेटिक स्टूडेंट यूनियन और उमर खालिद सहित अन्य नारे लगाने वाले छात्र भी। दरअसल, विगत कुछ वर्षो में भारत के माओवादी इस कदर हताश हो चुके हैं कि उन्हें लगने लगा है कि वे अपने बूते कोई क्रांति नहीं कर सकते। इसलिए वे देश के तमाम अलगाववादी संगठनों को एक साथ लाने और उनमें समन्वय करने में लगे हैं।

मेरा ख्याल है कि पूरे देश में माओवादियों के उखड़ गए पैर जमने

की दूर-दूर तक अब कोई संभावना नहीं दिखती है। माओवादियों के महागुरु माओ के चीन की हकीकत भी तो रक्तरंजित है जिसने तिब्बत और जीनिजयांग को न केवल हड़प लिया, बल्कि उसका दमन किया। आखिर तभी तो कहां गया है कि हाथी के खाने के दांत और, दिखाने के दांत अलग होते हैं। देश में माओवादियों की हरकतों को देखकर हमें यह कहने को मजबूर होना पड़ रहा है कि माओवादी भी उपर्युक्त कहावत की सच्चाई के कतई अपवाद नहीं है। इस लिहाज से देखा जाए तो जेएनयू अतिवामपंथियों, माओवादियों और नक्सलियों का गढ़ बन गया है। छात्रों के एक समूह को लगा इस संक्रांमक कैंसर रोग का इलाज अगर समय रहते नहीं किया गया, तो यह बीमारी देश को बर्बाद कर देगी।

(१८)प्रश्नः जे.एन.यू. परिसर में देश विरोधी नारे लगाने वालों के बचाव में राजनेताओं तथा बुद्धिजीवियों द्वारा दिए गए बयानों पर आपकी क्या प्रतिक्रियाएँ हैं? असीमित अभिव्यक्ति की आजादी भारत के राष्ट्रीय हितों के लिए क्या गंभीर स्थिति नही पैदा कर देगी?

उत्तरः मुझे आश्चर्य तो तब हुआ जब जेएनयू परिसर में देश विरोधी लगाने वालों का बचाव यह कहकर राजनेताओं तथा बुद्धिजीवियों द्वारा बयान दिया गया कि सरकार को फ्रिंज एलिमेंट यानी मुख्यधारा से अलग तत्वों की परवाह नहीं करनी चाहिए। अगर जेएनयू में फ्रिंज एलिमेंट के रूप में कुछ छात्र समूहों को देशविरोधी गतिविधियों को इजाजत मिलनी चाहिए, तो फिर ऐसी ही इजाजत अन्य विश्वविद्यालयों-महाविद्यालयों के छात्रों को क्यों नहीं मिलनी चाहिए? हद तो तब हो गई जब राष्ट्र विरोधी नारे लगाने वाले छात्रें पर कानूनी कार्रवाई की गई और उसके नेताओं को गिरफ्तार कर पूछताछ की गई, तो विभिन्न वामपंथी एवं समाजवादी दलों के नामी-गिरामी राजनेताओं ने सरकार द्वारा की गई कानूनी कार्रवाई को लोकतंत्र का गला घोटने की कोशिश बताते हुए देश में आपातकाल जैसी स्थिति उत्पन्न होने की बात तक कह डाली। यही नहीं जेएनयू छात्रसंघ के अध्यक्ष को अपने विचारों के प्रति दृढ़ एवं लोकतंत्र में आस्था रखने वाला युवा करार दे दिया गया। इसी प्रकार देश की प्रमुख विपक्षी पार्टी के संचार विभाग के प्रमुख ने तो देशद्रोही अफजल गुरु को उनकी फांसी की बरसी पर सम्मान देते हुए उन्हें 'अफजल गुरु जी' से संबोधित किया। संसद हमले के आरोपी अफजल गुरु की सराहना शर्मनाक और चिंताजनक है। साथ ही देश की संप्रभुता, सर्वोच्च न्यायालय, राष्ट्रपति और संसद का अपमान भी है। आश्चर्य तो तब

हुआ जब बिहार सरकार ने 2014 में राजद्रोह के 18 मामलों में 28 लोगों को गिरफ्तार किया था तो उसके नेताओं ने भी केंद्र सरकार से पूछा कि राजद्रोह का पैमाना क्या है? दरअसल, ज्यादातर राजनेताओं में यह साबित करने की होड़ मची कि जेएनयू के छात्रों ने देश विरोधी नारे नहीं लगाए और जिन्होंने लगाए या पोस्टर चिपकाए वे सभी बाहर से आए थे। सच तो यह है कि इस मामले में लोगों ने अपनी-अपनी सुविधा के हिसाब से सच्चाई की तस्वीर प्रस्तुत करने की होड़ लगाई।

भारत की बर्बादी की कसमें खाने और नारे लगाने वाले छात्रों को भले ही भारत की एकता और अखंडता में दिलचस्पी न हो, पर आतंकवाद की विभीषिका झेल रहे भारत के आम नागरिकों को यह चिंता अवश्य है। इसलिए असीमित अभिव्यक्ति की आजादी भारत को राष्ट्रीय हितों के लिए बेहद गंभीर स्थिति पैदा कर सकते हैं। इसलिए जो लोग हिंसक समाज और हिंसा के जरिए राजनीतिक बदलाव में विश्वास करते हैं उन्हें कानूनी कार्रवाई का सामना करना ही पड़ेगा। आज हमारा देश जिस बाहरी और भीतरी चुनौतियों से गुजर रहा है ऐसे समय में राष्ट्रीयता की भावना को आगे बढ़कर प्रदर्शित करना हम सभी सजग नागरिकों का पावन कर्तव्य हो जाता है। संकट के वक्त हर देशवासी को अपनी क्षमतानुसार देश की सुरक्षा करनी चाहिए। सच तो यह है कि राष्ट्रवाद का सार यही है।

दरअसल, राजनीति का स्तर इतना गिर जाएगा इसकी लोग कल्पना भी नहीं करते थे। मौजूदा दौर की राजनीति में नेताओं की अपनी कुर्सी और पैसा के अलावे उनकी सोच में राष्ट्रहित जैसी भावना का कोई स्थान नहीं दिखता। वे अपनी-अपनी तरह की राजनीति करने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन उन्हें राजनीतिक रोटियाँ सेंकने और इस स्तर के कुतर्क देने से बचना होगा कि जेएनयू में लगे नारे तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भर है। ऐसे कुतर्क अराजकता को जन्म देने वाला है। जब समूची दुनिया जेहादी आग से संत्रस्त है और भारत विशेष निशाने पर है तब जेएनयू जैसे प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय की एक प्राध्यापिका निवेदिता मेनन ने अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर फिर कश्मीर में जनमत संग्रह का जुमला छोड़कर मीडिया में बने रहने का निंदनीय प्रयास किया है। ऐसे ही बयानों के कारण कश्मीर में अलगाववाद पनपा है।

(१९)प्रश्नः 'राष्ट्र' या 'राष्ट्रवाद' की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता क्या है? राष्ट्रवाद के सवाल पर लौह पुरुष सरदार पटेल की

अवधारणा क्या थी? पिछले दिनों जेएनयू परिसर में जो घटनाक्रम चला उसके परिप्रेक्ष्य में 'राष्ट्रवाद' को आप किस रूप में परिभाषित करते हैं?

उत्तर: भाई मदन जी, मेरे ख्याल से 'राष्ट्र' या 'राष्ट्रवाद' कोई वैधानिक नहीं, बल्कि राजनीतिक-वैचारिक अवधारणा है जिसका ज्यादा मतलब भावनाओं से है, क्योंकि यह एक विचार है जिसने भारत में ब्रिटिश राज की खात्मा करने के साझा उद्येश्य के लिए समाज के विभिन्न हिस्सों को एक साथ लामबंद किया था, मगर आज तो देश, राष्ट्र, राष्ट्रवाद अथवा देशभक्ति जैसे विचार की चर्चा करना अब तो दकियानूसी सोच और नजरिए में एक तरह के पिछड़ेपन का परिचायक माना जाने लगा है। कुछ विचारशील प्रबुद्ध कहे जाने वाले लोग राष्ट्र अथवा राष्ट्रवाद की अवधारणाओं को संशय की दृष्टि से देखते हैं। आज देश में एक ऐसा वर्ग पनपने लगा है जो राष्ट्र और राष्ट्रीयता को दोयम दर्जे का विचार मानता है। दरअसल, इसकी मुख्य वजह है कि वह वर्ग अपनी जमीन और भारत की पुरातन संस्कृति से कटता जा रहा है। इनके लिए हर वो चीज खराब तथा निंदनीय है जो राष्ट्रवाद और देश प्रेम से जुड़ी है। राष्ट्र केवल मानचित्र भर नहीं होता, वह एक जीवंत धड़कन भी होता है। राष्ट्र अपने भूगोल में बाद में होता है, पहले राष्ट्र का सपना होता है। जैसे दुनिया के सारे मुल्क पहले राष्ट्र नहीं थे वैसे भारत भी कोई राष्ट्र नहीं था राजे-महाराजे हुआ करते थे, लेकिन दुनिया में समता, बंधुता भाई-चारे के नारे के साथ सोच के नए युग ने करवट ली और लोगों ने अपनी-अपनी पहचान के अलग-अलग सूत्र तलाशे और राष्ट्र बने।

भारतवर्ष का एक हजार वर्षो का सांस्कृतिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि असीम विविधताओं में एकता का मूल सूत्र वैदिक काल में ही 'एक सद्विप्रा बहुध: वदन्ति' के रूप में प्रकट हो चुका था। युग-चिंतकों ने विभिन्न युगों में इस यंत्र की देश कालानुसार व्याख्या करके भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा पल्लवित-पुष्पित की। भारत राष्ट्र रूपी इस विशाल कल्पतरू को पार्थक्यवाद के कुठाराघातों से नष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्राचीन काल से ही आर्य, शक, हूण, द्रविड़, मंगोल, यवन आदि विभिन्न जनजातियों के इंद्रधनुषी सामाजिक संघटित स्वरूप ने इसके आंतरिक स्वरूप का निर्माण किया है तथा पश्चिमी राष्ट्रवाद इसके विशाल और व्यापक स्वरूप के समक्ष बौना नजर आता है। सच तो यह है कि विश्व साहित्य की जननी कही जाने वाली संस्कृत भाषा और उसके साहित्य द्वारा

संपोषित भारत राष्ट्र से संबंधित संस्कृत के साहित्यकारों एवं कवियों का चिंतन पश्चिमी राष्ट्र की विकृत अवधारणाओं को बौना बना देता है क्योंकि यह परंपरागत वैदिक चिंतन सामाजिक धरातल पर मानवमूलक भी है। चाहे राष्ट्रगीत 'वन्देमातरम्' का स्वर हो या राष्ट्रगान 'जनगणमन' की, राष्ट्रीय संचेतना-संस्कृत भाषा की बदौलत स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान 'भारत राष्ट्र' का अभिव्यक्ति के प्रबल स्वर मिले हैं जिसे व्यापक धरातल पर प्रचारित-प्रसारित करने की जरूरत है। अतएव इस संदर्भ में मैं राष्ट्रनौका के खेवनहारों एवं कर्णधारों से यह भी कहना चाहूँगा कि वे संस्कृत भाषा एवं उसके साहित्य के प्रचार-प्रसार की अविलंब व्यवस्था करें, ताकि भारत विश्व में अजर, अमर और महत्वपूर्ण राष्ट्र बना रह सके।

वैसे भी प्राचीन भारतीय साहित्य विशेषतया वेद भागपूर्ण तथा लोकतंत्री है। भारतीय राष्ट्रवाद का विकास प्रश्नों, प्रतिप्रश्नों और वैज्ञानिक दृष्टिकोणवाले दर्शन के साथ हुआ है। लोकतंत्र भारतीय राष्ट्रभाव की मौलिक प्राणचेतना है। यहाँ लोकतंत्र के आनंदमग्न वातायन में ही राष्ट्रभाव का विकास हुआ। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि भारतीय राष्ट्रभाव के भीतर लोकतंत्र की आत्मा है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हर राष्ट्रवासी के हृदय में कुछ शिकायतों के बावजूद राष्ट्रजीवन के आसरे की एक मात्र मूर्ति के रूप में बसा होता है। इसलिए यह बात उसी पर निर्भर है कि वह अपनी राष्ट्रभक्ति कैसे व्यक्त करता है।

'राष्ट्रवाद' के सवाल पर लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की अवधारणा या सोच उनकी नैतिक मूल्यों से उपजी थी, जिनपर गाँधी जी की सोच आधारित थी। राष्ट्रवाद के मामले में सरदार पटेल ने गाँधी जी के विचार को स्वीकार करते हुए नागरिकता को धर्म, नस्ली और जातीय पहचानों से ऊपर रखा और राष्ट्र या राष्ट्रवाद की अवधारणा को तमाम संकीर्ण व्याख्याओं की आलोचना की। वह मानते थे कि भारतीय राष्ट्रवाद मिली-जुली घटनाओं की उपज है, जो अनेक परंपराओं के परस्पर मेल के चलते घटी। उदार एवं समानतावादी लोकतांत्रिक सरकार के तहत राष्ट्रवाद की अवधारणा की वकालत करते हुए सरदार पटेल ने 1947 में संविधान सभा में कहा था - 'किसी भी समुदाय को यह नहीं सोचना चाहिए कि देश में रह रहे अन्य लोगों से उसके हित भिन्न हैं ....। हमारा देश धर्म निरपेक्ष राज्य है। हम अपनी नीतियाँ या अपने व्यवहार को उस तरह का नहीं कर सकते जैसा कि पाकिस्तान करता है। राष्ट्र का एक बड़ा घर है जहाँ सभी बराबर के भागीदार

हैं। सभी मिलजुलकर राष्ट्र का निर्माण करते हैं दुनिया के साथ एकाकार होने के लिए। इस देश में हमारे विभिन्न समुदाय हैं, विभिन्न धर्म हैं और विभिन्न संप्रदाय हैं। सदियों से संग-संग रहते आए हैं और हम चाहते हैं कि भविष्य में भी इसी प्रकार मिल-जुलकर एक साथ रहें। हमारा यह दायित्व है कि समुदायों के बीच खाई चौड़ी न होने पाए और इस दिशा में न्याय के तकाजों की अनदेखी किए बिना जो कुछ भी हम कर सकते हैं, हमें करना चाहिए।'

सरदार के उक्त विचारों से यह परिलक्षित होता है कि वह इस प्रकार की राजनीति के खिलाफ थे, जो सीमित किस्म के राष्ट्रवाद, चाहे वह 'वाम' हो या 'दक्षिण पंथी' को प्रोत्साहन देती हो। उन्हें इस तथ्य का बखूबी भान था कि देश से औपनिवशिक शासन को उखाड़ फेंकने में हिंदुओं और मुस्लिमों ने कंधे से कंधा मिलकार संघर्ष किया था। पटेल ने 'सिविल लिबर्टी' की सीमाओं के भीतर, 'राष्ट्रवाद' के मुद्दे की भी पहचान की। उनके मत में प्रेस की आजादी लोकतांत्रिक देश में एक आदर्श स्थिति है। अगर हम लोकतांत्रिक सरकार चाहते हैं तो हमें प्रेस, अभिव्यक्ति और संगठन बनाने की आजादी सुनिश्चित करनी होगी, लेकिन वह यह भी मानते थे कि कोई भी जिम्मेदार सरकार अपने लोगों को असीमित स्वतंत्रता या इस प्रकार का कोई लाइसेंस नहीं दे सकती। सिविल लिबर्टी के साथ सत्य और अहिंसा की शर्त नत्थी होनी चाहिए।'

पिछले 9 फरवरी, 2016 को जेएनयू परिसर में जो भारतविरोधी उग्र घटनाक्रम चला, जो नि:संदेह देश भर में गहन चर्चा का विषय बन गया। यह सर्वविदित है कि भारत अपने सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करता है, भले ही उनकी जाति, संप्रदाय, रंग, नस्ल, धर्म या क्षेत्र कुछ भी हो। इसके साथ ही यहाँ सभी भारतीय नागरिकों को अभिव्यक्ति की आजादी का अधिकार है। शर्त यह है कि इस अधिकार का देशद्रोह की गरज से दुरुपयोग न किया जाए और न ही देश की भावना को ठेस पहुँचाने और सांप्रदायिक व सामाजिक तनाव भड़काने में इस अधिकार का उपयोग किया जाए।

लेकिन पिछले दिनों जेएनयू परिसर में उसके तथा बाहर से आए छात्रें एवं कश्मीरी मुस्लिम उपराष्ट्रवाद की अवधारणा में दृढ़ विश्वास रखने वाले तत्वों तथा भारत के वामपंथियों एवं कथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों ने जो राष्ट्रविरोधी नारे लगाए उससे तो भारत टूकड़ों में बँट जाएगा यदि ऐसे उपराष्ट्रवाद के हिमायती अपने घिनौने इरादे में कामयाब हो गए। अभिव्यक्ति

की स्वतंत्रता राष्ट्र की संप्रभुता, एकता और अखंडता से बढ़ कर नहीं है।

मेरी समझ से देशद्रोह को छात्रक्रांति और देशद्रोह के खिलाफ कार्रवाई को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुठाराघात का नाम देकर राजनेताओं ने राष्ट्र की अखंडता के प्रति संवेदनहीनता का परिचय दिया। प्रगतिशीलता के नाम पर वामपंथी विचार धारा का राष्ट्रविरोधी नारा को समर्थन किसी भी रूप में स्वीकार नही किया जा सकता, क्योंकि विद्या के मंदिर में भारत की भूमि पर खड़े होकर, उसी का अन्न खाकर, उसी के संसाधनों का इस्तेमाल करके, पाकिस्तान जिंदाबाद का नारा लगाना, अगर देश की एकता और अखंडता के साथ धोखा नहीं तो और क्या है? अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर इस प्रकार की गतिविधियों को हतोत्साहित करने की जरूरत है, क्योंकि अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर हर तरह की मनमानी की रियायत माँगना वैचारिक अँधता की पराकाष्ठा है। ऐसे लोगों पर बेहिचक कड़ी से कड़ी कार्रवाई करने की भी जरूरत है। शिक्षण संस्थानों में अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर कुछ सिरफिरे छात्रों को आपत्तिजनक हरकत की छूट कतई नही दी जा सकती, क्योंकि कुछ सिरफिरे छात्रों की नादानी की आड़ में उग्र मानसिकतावाले लोग समाज में दरार पैदा करने में सफल हो रहे हैं। सच तो यह है कि अवसर को पूरी तरह इस्तेमाल कर देश व समाज के लिए अच्छा काम करना ही सही मायने में देशभक्ति और राष्ट्रवादिता है। यदि हम अपने कर्म के प्रति ईमानदार और निष्ठावान रहें तो शायद यही होगी सच्चे मायने में देशभक्ति।

(२०)प्रश्न: क्या विचारधारा के आवरण में छात्रों को विश्वविद्यालय परिसर में राष्ट्रविरोधी गतिविधियों के लिए प्रयुक्त करने का अवसर देना उचित होगा?

उत्तर: विचारधारा के आवरण में छात्रों को विश्वविद्यालय परिसर में राष्ट्रविरोधी गतिविधियों के लिए प्रयुक्त करने का अवसर देना कतई उचित नहीं होगा। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में भी छात्र राजनीतिक गतिविधियाँ करते हैं। वे सरकार का विरोध भी करते हैं। दुनिया में नंबर एक माने जाने वाले हार्वर्ड विश्वविद्यालय में हार्वर्ड स्क्वायर पर प्राय: विभिन्न देशों के छात्र अपने देश से संबद्ध आयोजन करते रहते हैं, पर वे वहाँ 'अमेरिका मुर्दावाद' और 'चीन जिंदाबाद' के नारें नहीं लगाते। क्या विचारधारा के प्रति इतना मोह होना चाहिए कि अपनी पार्टी या संगठन के सदस्य आतंकी गुटों या राष्ट्रविरोधी तत्वों के समर्थन में जाएँ, फिर भी हम उनका समर्थन करें?

जेएनयू परिसर में तो ऐसा ही हुआ। अगर देश और लोकतंत्र ही नहीं बचेगा, तो विरोध और आलोचना जैसे अप्रतिम अधिकारों का क्या होगा?

अमेरिका भी तो लोकतांत्रिक देश है जिसने कट्टर आतंकवादी ओसामा बिन लादेन को पाकिस्तान में घुसकर मार गिराया जबकि हमने अफजल गुरु को चार साल तक न्यायिक प्रक्रिया से गुजरने के बाद फाँसी पर लटकाया। सबसे दुखद बात तो यह हैं कि इतना कुछ हमारे देश में हो रहा है, परंतु आतंकवाद के मुद्दे पर राजनीतिक दल वोट बैंक की रोटी सेंकने से बाज नहीं आ पा रहे हैं, जबकि आतंकवाद का न तो कोई धर्म होता है और न कोई जाति। याकूब मेमन जैसे आतंकवादी के लिए फाँसी की सजा रुकवाने की कोशिश की जाती है। आखिर कब मानसिकता बदलेगी हमारे राजनेताओं की? कब हमारे देश के राजनीतिक दल एक मंच पर आकर आतंकवाद का विरोध करेंगे? सरकार को चाहिए देश के अंदर के भी राष्ट्रविरोधी ताकतों को बेनकाब करे। वरना कहीं ऐसा न हो कि हमारे देश की हालत भी सीरिया और इराक की तरह हो जाए और हमारा देश विखंडित हो जाए। जहाँ तक मैं समझता हूँ देश विरोधी ताकतों ने लोगों को भड़काने के लिए यह साजिश की, ताकि लोग भड़के और इसे देशव्यापी राजनीतिक ध्रुवीकरण का स्वरूप दिया जाए। साजिश रचने वालों को यह मालूम है कि सरकार ऐसे में कार्रवाई जरूर करेगी और बाद में इसे सरकार दमन एवं आपातकाल से बुरा घोषित कर सरकार के खिलाफ माहौल बनाया जाएगा। लेकिन विगत 21 फरवरी, 2016 को पूर्व सैनिकों के नेतृत्व में राष्ट्रीय राजधानी के जंतर-मंतर पर आयोजित कार्यक्रम में तिरंगे झंडों के साथ लाखों लोगों की भीड़ बेहद सुकून देने वाला इसलिए था कि देश के लोगों ने एक बार फिर साबित कर दिया कि राष्ट्र-विरोधियों के इरादे भारत में कामयाब नहीं हो पाएँगे। इस 'एकता मार्च' में बड़ी संख्या में युवा और महिलाओं की भागीदारी तथा उनके हाथों में ली गई तख्तियों में लिखा था-

'जो अफजल का यार है, वो देश का गद्दार है।'

(२१)प्रश्न: प्रतिष्ठित जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में वैचारिक स्वतंत्रता के नाम पर राष्ट्र विरोधी गतिविधियों से क्या साम्यवादी प्रगतिष्ठीलता की ओट में परोसी जाने वाली भारत विरोधी बौद्धिकता का सच उजागर हुआ है?

उत्तर: हाँ, प्रतिष्ठित जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली में वैचारिक स्वतंत्रता के नाम पर संसद हमले के गुनहगार आतंकी अफजल गुरु के

समर्थन और उसकी फाँसी की बरसी के अवसर पर छात्रों के एक समूह द्वारा उसे शहीद बताते हुए कश्मीर की आजादी और भारत की बर्बादी के जो नारे लगाए गए उसमें संकीर्ण स्वार्थवाले छात्रों में नक्सलियों तथा कश्मीरी आतंकियों के समर्थक डेमोक्रेटिक स्टूडेंट यूनियन के सदस्य उमर खालिद और भट्टाचार्य का भी हाथ था। यह भी काबिलगौर है कि जैसे नारे जेएनयू में लगे वैसे ही यादवपुर विश्वविद्यालय, प. बंगाल में भी लगे। फिर जेएनयू छात्र संघ का अध्यक्ष भी वामपंथ संगठन से जुड़ा बताया जाता है। दूसरी बात यह है कि जेएनयू विवाद को लेकर दिल्ली पुलिस ने उच्च न्यायालय में दायर अपनी स्टेटस रिपोर्ट में भी स्पष्ट कहा है कि जेएनयू छात्र संघ को अध्यक्ष ने ही 9 फरवरी 2016 को देश विरोधी कार्यक्रम आयोजित किया था जिसमें बाहरी लोग भी थे।

जेएनयू में वामपंथी संगठन खुले तौर पर भारत विखंडन व भारतीय संस्कृति पर अभद्र आक्षेप करते हैं तथा तिरंगे को जलाने, पैरों तले कुचलने और अक्षम्य कार्य करते हैं जो बहुत ही चिंताजनक है।

दरअसल, 2014 के लोकसभा चुनाव में नरेन्द्र मोदी को मिली भारी सफलता के बाद अखिल भारतीय स्तर पर भाजपा के नेतृत्व में बनी केंद्र की गठबंधन सरकार को घेरने की समर नीति बनाने का साहस विपक्षी दलों में पैदा हुआ। निःसंदेह यह नरेन्द्र मोदी का घेराव ही है। वास्तव में सरकार विरोधी राजनीतिक दलों का जेएनयू मामले पर रवैया दुर्भाग्यपूर्ण इसलिए भी कहा जाएगा, क्योंकि कॉम्युनिस्ट क्रांतिकारिता की दृष्टि में भारत के अपमान में ही सहिष्णुता का सम्मान है। जेएनयू के कॉम्युनिस्ट हों या भारत के किसी अन्य क्षेत्र के, उनके खेमे के लिए स्वायत्तता की तरह सहिष्णुता भी सिर्फ एक स्वांग है और विचारधारा तो आज की राजनीति में शायद ही किसी भी राजनीतिक पार्टी में देखने को मिल जाए। इस समय जेएनयू के कॉम्युनिस्ट हों या अन्य क्षेत्र के सभी आपातकाल की याद दिला रहे हैं, जबकि सच्चाई यह है कि पूरे आपातकाल में जेएनयू अकेला ऐसा कैंपस था जहाँ आपातकाल का कोई असर नहीं था। यह मैं नहीं कह रहा हूँ ऐसा कहना है जेएनयू के पूर्व छात्र और वर्तमान में लखनऊ विश्वविद्यालय में राजनीतिशास्त्र विभाग के अध्यक्ष प्रो. आशुतोष का जिन्होंने अपने लेख में यह विचार व्यक्त किया है।

वामपंथी विचारधारा की बात तो छोड़िए काँग्रेस जैसी सबसे पुरानी राजनीतिक पार्टी के बौद्धिक रूप से अत्यंत सबल नेता शशि थरूर कन्हैया

कुमार जैसे छात्र नेता को आज का भगत सिंह कहते हैं तो औरों की क्या बात है? मुझे लगता है कि आजाद भारत में भगत सिंह का उनके विचारों का,सपनों का, बलिदान का सबसे बड़ा कोई अपमान हुआ है तो वह जेएनयू में शशि थरूर जैसों के द्वारा।

एक तरफ तो कम्युनिस्ट दल ने जेएनयू के एक युवा छात्र की गिरफ्तारी पर हंगामा किया और अभिव्यक्ति की आजादी पर खतरा बताया और दूसरी तरफ केरल में एक युवा कार्यकर्ता की बर्बर हत्या जिसके आरोप में माकपा के छह कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए, पर मौन साधा। इसे वामदलों और उसके बौद्धिक लोगों का पाखंड नहीं तो और क्या कहा जाएगा। दरअसल, तमाम नीतियाँ और मुद्दों को भूलकर वामपंथी दलों के साथ प्रायः सभी विरोधी दल केंद्र सरकार के विरोध में एकजुट हो गए हैं और इसके लिए राष्ट्र स्वाभिमान तक को भूल गए हैं और संकीर्ण हितों एवं राजनीतिक स्वार्थ के चलते 'अफजल गुरु तक को महिमामंडित करने और भारत को टुकड़े-टुकड़े होने तक जंग रहेगी' जैसे अपमानजनक नारे के समर्थक हो गए। यह राजनीति में आई बेतहासा गिरावट का संकेत तो है ही, साथ ही साम्यवादी प्रगतिशीलता की ओट में परोसी जाने वाली भारत विरोधी बौद्धिकता का सच भी उजागर हुआ है।

किसी राष्ट्र को स्वतंत्र घोषित कर देने मात्र से उसकी वास्तविक स्वतंत्रता का अवबोध नहीं होता। आज हमारे देश का आम आदमी यही महसूस कर रहा है, क्योंकि संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था होते हुए भी लोकतंत्र के नाम पर वंशवाद और परिवारवाद के नग्न रूप का पोषण हो रहा है, ताकतवर को और भी ताकत मिलती जा रही है जिसके परिणामस्वरूप अमीर और अमीर तथा निर्धन और गरीब होता जा रहा है। स्वतंत्रता का अर्थ है ऐसी संस्कृति की प्रतिष्ठा जिसमें सबके लिए जगह हो, जिसमें दूसरों के लिए इज्जत हो। मनुष्य की गरिमा ही स्वतंत्रता है। केवल राजनीतिक स्वाधीनता पर जो समाज बल देते हैं, वहाँ व्यक्ति की आत्मा बलवती नहीं हो सकती। यदि समाज का कोई भी व्यक्ति चाहे वह जिस रंग, रूप, भाषा, सम्प्रदाय, जाति या क्षेत्र का हो, अपने अनुसार जीवन नहीं जी सकता, तो वृहत अर्थों में इसे स्वतंत्रता नहीं कह सकते। आजादी की संस्कृति में प्रत्येक नागरिक स्वयं का जीवन, अपनी इच्छा व विवेक के अनुसार चला सकता है। स्वतंत्रता का परिसर ऐसा हो, जिसमे अन्याय का प्रतिरोध हो, परिधि की संस्कृतियों का सम्मान हो। सभ्यताओं के टकराव के बदले उनका समंजन

होना स्वाधीनता के लिए मूल्यवान है। अतः सांस्कृतिक समस्याएँ वर्चस्ववादी भूमिका में न हों। स्वतंत्रता स्वच्छंदता का पर्याय न मानें। वर्तमान व्यवस्था को इन्हीं बातों को समझना होगा, तभी उनकी प्रासंगिकता बनी रहेगी।

निश्चित रूप से आज इस देश के लोग आजादी का गलत फायदा उठा रहे हैं। दरअसल, वे यह समझ नहीं पा रहे हैं कि इस आजादी को पाने के लिए इस देश के लोगों की कितनी कुर्बानियाँ देनी पड़ी है। भारत को अँग्रेजों से आजाद करवाने के लिए देशभक्तों ने क्या-क्या जुल्म नहीं सहे। जिन्हें पकी-पकाई खीर मिली हो उन्हें क्या पता होगा कि खीर तैयार करने वाले ने कितने हाथ जलाए होंगे। राष्ट्रीय पर्व 15 अगस्त को मात्र बड़ी-बड़ी बात करने से कुछ नहीं होगा, बल्कि उन पर नेताओं, सत्ताधारियों को अमल भी करना होगा, तभी स्वतंत्रता का नया रास्ता खुलेगा।

(२२)प्रश्नः दुनिया के नक्शे पर आर्थिक विकास, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य और तकनीक के क्षेत्र में हमारे देश की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं, लेकिन खेल के मैदान में हम अपनी मेधा और दम-खम को आशा और आकांक्षा के अनुरूप क्यों नहीं दर्ज करा सकें हैं? इस पिछड़ेपन के क्या कारण हैं?

उत्तरः यह बात बिल्कुल सही है कि हमारे देश की उपलब्धियाँ दुनिया के नक्शे पर आर्थिक विकास, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य और तकनीक के क्षेत्र में तो उल्लेखनीय हैं, लेकिन खेल के मैदान में हम अपनी मेधा और दम-खम को आशा और आकांक्षा के अनुरूप नहीं दर्ज करा सके हैं।

क्रिकेट और एक स्तर पर हॉकी के अलावा अन्य सभी खेल के प्रबंधन और वित्त पोषण का जिम्मा सरकार का है। एक तो इस स्तर पर भयानक खामियाँ हैं, दूसरी तरफ स्वायत्तता के नाम पर खेल संघों पर राजनेता और नौकरशाह काबिज हैं जिनसे हिसाब लेने की कोई भी गंभीर पहल कभी नहीं हुई। आखिर तभी तो उच्चतम न्यायालय द्वारा गठित न्यायाधीश लोढ़ा समिति ने खेल संघों से मंत्री तथा सत्ता पर काबिज राजनेताओं को अलग रखने की सिफारिश अपनी रिपोर्ट में की है।

भारत अब भी वर्षो पुरानी पद्धति को खेलों में अपनाए हुए हैं, जबकि इनमें बड़े पैमाने पर बदलाव की जरूरत है। खेल संघ सब-जुनियर, जुनियर और सिनियर नेशनल-चैंपियनशिप का खुद आयोजन कर रहें हैं, लेकिन इन प्रतियोगिताओं में से चुने गए खिलाड़ियों के प्रशिक्षण के लिए वह बहुत हद तक भारतीय खेल-प्राधिकरण पर निर्भर है। यहाँ इस बात की

जरूरत है कि खेल संघ अपने जाने-पहचाने दायरे से बाहर जाकर नए प्रतिभाओं की तलाश करें और एक स्थायी तथा उत्पादक संयोजन तैयार करें, जबकि भारतीय खेल प्राधिकरण पुराने एथलीटों जो कि करीब सौ होंगे पर ध्यान दें। लेकिन ऐसा लगता है कि अबतक न ही अपने आधार को बढ़ाने का प्रयास किया गया है, न ही नयी प्रतिभाओं को खोजने की कोशिश की गयी है।

इस साल 2016 में रियों में आयोजित ओलिंपिक में सिंधु और साक्षी के पदक जीतने से यह उम्मीद बंधी है कि अब ज्यादा अभिभावक अपनी सोच में बदलाव लाएँगे और अपने बच्चों को शुरुआत से ही खेलने के लिए प्रेरित करेंगे। अगर भारत को विश्व के सबसे बड़े व सहायक खेल प्रसारक बाजार से खिलाड़ियों से संपन्न देश बनना हैं, तो इस खेल को लेकर अपनी मनोवृत्ति को बहुत हद तक बदलने की जरूरत है। दुखद स्थिति यह है कि देश में खेल की दशा और दिशा बिगाड़ने में नेताओं की बड़ी भूमिका रही है। खेल संघों और सरकार की उदासीनता तथा लापरवाही के बावजूद जब खिलाड़ी ऊँचा मुकाम हासिल करता है, तो नेतागण उसका श्रेय अपने लेकर अपना नाम चमकाने लगते है।

(२३)प्रश्न: केंद्र सरकार की सख्ती के बावजूद आवश्यक वस्तुओं के दाम रह-रहकर क्यों बढ़ जा रहे हैं?

उत्तर: आम तौर पर राज्य सरकारें यह मानकर चलती हैं कि महंगाई से निपटना केंद्र सरकार का काम है। इस मानसिकता की वजह से राज्य सरकारें महंगाई पर अंकुश लगाने के उपायों पर मुश्किल से या फिर आधे-अधूरे मन से अमल करती हैं। अक्सरहाँ यह देखने को मिलता है कि राज्य सरकारें आवश्यक वस्तुओं की जमाखोरी और कालाबाजारी पर रोक लगाने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखातीं, जिसके चलते भी महंगाई बढ़ती है। केंद्र सरकार की समस्या यह है कि वह राज्यों से इसके लिए अनुनय-विनय ही कर सकती है।

राज्य सरकारें महंगाई के मामले में केंद्रीय सत्ता की चिंता से किस तरह बेपरवाह हैं, इसका ताजा प्रमाण अभी हाल-फिलहाल यह देखने को मिला है कि रियायती दरों पर दालें मुहैया कराने की केंद्र सरकार की पेशकश पर ज्यादातर राज्य रुचि नहीं दिखा रहें हैं। अभी तक चंद राज्यों ने केवल पाँच हजार टन ही दाल उठाई हैं। केंद्र सरकार के सामने अब संकट यह है कि उसने विदेश से जो दाल मंगवाई है उसे क्या करे, क्योंकि निजी व्यापारी भी

उसकी खरीद में दिलचस्पी नहीं दिखा रहे हैं। यह भी एक पहेली है कि खुदरा बाजार में जो दाल डेढ़-दो सौ रुपए किलो बिक रही है उसका थोकभाव 70.75 रुपए से उपर क्यों नहीं जा रहा हैं? यह भी अजीब है कि सरकार के नीति-नियंता अभी तक दालों के थोक एवं खुदरा भाव में बड़े अंतर की वजह क्यों नही तलाश पा रहे हैं।

निःसंदेह महंगाई के मामले में समस्या केवल दालों के बेलगाम दाम ही नहीं हैं। समय-समय पर अन्य अनेक खाद्य वस्तुओं के महंगे दाम भी चुनौती खड़ी कर रहें हैं। दरअसल, जरूरत इस बात की हैं कि केंद्र सरकार उस पूरे तंत्र को दुरुस्त करे जिसे खाद्य वस्तुओं की माँग और आपूर्ति में सदैव संतुलन बनाए रखा जा सके। इस तंत्र को तभी दुरुस्त किया जा सकेगा जब केंद्र और राज्य सरकारें एक-दूसरे को सहयोग करें। केंद्र सरकार को यह स्वीकार करना होगा कि आवश्यक खाद्य वस्तुओं की माँग और आपूर्ति में संतुलन बनाए रखने वाले मौजूदा तंत्र में कई स्तर पर खामियाँ हैं और इन खामियों के चलते जब किसी खाद्य सामग्री की किल्लत पैदा हो जाती हैं तब सरकार वस्तु स्थिति से अवगत हो पाती है। इसके लिए खुदरा क्षेत्र में काम कर रही संगठित क्षेत्र की कंपनियों की कार्य प्रणाली पर भी सही तरह से नजर रखनी होगी।

(२४)प्रश्नःक्या आप मानते हैं कि लाल किले से भारत के स्वतंत्रता दिवस की ७०वीं वर्षगांठ के अवसर पर अपने संबोधन में बलुचिस्तान का जिक्र कर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने पाकिस्तान पर दबाव बढ़ा दिया है?

उत्तरः सागर जी, सबसे पहले तो आपको मैं यह बता दूँ कि पाकिस्तान का सबसे उपेक्षित प्रांत बलूचिस्तान बगावत के लंबे इतिहास के लिए जाना जाता है। खनिज संपदा से परिपूर्ण इस प्रांत के बलोच राष्ट्रवादी अपने आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों के लिए 1948 से ही संघर्ष कर रहे हैं, जब पाकिस्तान से इस प्रांत पर छल से कब्जा कर लिया था और तब से ही पाकिस्तानी सेना और सुरक्षा एजेंसियों की दमनात्मक कार्रवाइयाँ भी जारी हैं। इस दौरान हजारों लोगों की हत्या और अपहरण की खबरें आ चुकी हैं, बावजूद इसके अंतरराष्ट्रीय मीडिया ने बलोच राष्ट्रवादियों के संघर्ष को पर्याप्त जगह नहीं दी है। ऐसे में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा भारत के स्वतंत्रता दिवस की 70वीं वर्षगांठ पर लाल किले के प्राचीर से राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में बलूचिस्तान के लोगों का जिक्र करने से एक ओर जहाँ बलोच राष्ट्रवादियों में खुशी की लहर दौड़ गई है, वहीं दूसरी ओर प्रधानमंत्री के इस उल्लेख

से देश-दुनिया में तो हलचल हुआ ही है, इससे घबराए पाकिस्तान ने निर्वासित बलोच नेताओं से बातचीत की पेशकश भी कर दी है। इससे पहले गृहमंत्री राजनाथ सिंह और विदेश मंत्री सुषमा स्वराज सहित कई मंत्रियों ने भी कश्मीर को लेकर पाक के अनर्गल प्रलाप के प्रतिकार में भारत की नीतियों में बदलाव के संकेत दे दिए थे। इसलिए उम्मीद करनी चाहिए कि पाकिस्तान को अब उसी की भाषा में जवाब देने के कुछ अच्छे नतीजे सामने आएँगे।

उल्लेखनीय हैं कि भारत अभी तक इस मुद्दे को उठाने से बचता रहा है, क्योंकि वह किसी भी देश के आंतरिक टकराव में दखल देना नहीं चाहता था। मगर कश्मीर में हाल की घटनाओं पर पाकिस्तान की संसद और प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने खुल्लम-खुल्ला हस्तक्षेप के संकेत दिए। संभव है इसके नतीजे टकराव को बढ़ाएँ, परंतु इसे बेजा नहीं कहा जा सकता।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का संबोधन दोनों ही लिहाज से अहम रहा है। एक ओर जहाँ उन्होंने सरकार की उपलब्धियों का बयान करते हुए देश को बताया कि उनकी सरकार ने कार्य संस्कृति में बदलाव की दिशा में कदम बढ़ाया है, वहीं दूसरी ओर दुनिया को यह संदेश भी दिया कि पाकिस्तान की नापाक हरकतों को लेकर भारत अब गुहार और मनुहार की अपनी नीति में भी बदलाव करने जा रहा है। आतंकवाद को शह देने की पड़ोसी देश की नीतियों की आलोचना के साथ ही प्रधानमंत्री ने बलूचिस्तान, गिलगिट और पाकिस्तान के कब्जेवाले कश्मीर के लोगों का जिक्र भी किया। उल्लेखनीय है कि पाकिस्तान अंतरराष्ट्रीय मंचों पर कश्मीर में भारतीय सेना द्वारा मानवाधिकारों के कथित उल्लंघन का आरोप लगाता रहा है जबकि खुद पाक सेना द्वारा बलोची राष्ट्रवादियों के आंदोलन को दबाने के क्रम में दमनात्मक की खबरें लगातार आती रही हैं।

इस दृष्टि से देखा जाए, तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के संबोधन में बलूचिस्तान के जिक्र को पाकिस्तान को लेकर भारत की नितियों में आती आक्रामकता की कड़ी में देखा जा रहा है। अब कश्मीर में पाकिस्तान के हस्तक्षेप को लेकर मोदी आक्रामक मुद्रा में तो हैं ही, उन्होंने पाकिस्तान को अपने ही लोगों पर अत्याचार करने के लिए जिम्मेदार ठहराया है, क्योंकि पाकिस्तान का बलूचिस्तान प्रांत खुद को एक स्वतंत्र व संप्रभु राष्ट्र के तौर पर देखने के लिए छटपटा रहा है। इस माने में मोदी की दोनों टिप्पणियाँ दर्शाती हैं कि वह कश्मीर घाटी में पैदा हुई स्थितियों पर पाकिस्तान की प्रतिक्रिया से बहुत व्यथित हुए हैं। पाकिस्तान ने वहाँ आंदोलन को भड़काया

है और उसकी मंशा अंतरराष्ट्रीय समुदाय का ध्यान घाटी की ओर आकर्षित करना है और भारत को दबाव में लाना है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कड़ा रूख अपनाते हुए यह भी कहा है कि जंम्मू-कश्मीर के संदर्भ में पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की नीति-इंसानियत, जम्हुरियत और कश्मीरियत पर आगे बढ़ने का भरोसा दिलाया है। इसमें कोई दो राय नहीं कि यह एक अच्छी नीति है, लेकिन आज कश्मीर में हालात वाजपेयी के समय से कुछ अलग है। इसलिए कश्मीर में पाकिस्तान के हस्तक्षेप और छद्म चेहरों को खत्म किया जाना समय का तकाजा है। प्रधानमंत्री मोदी ने कुछ इसी लिहाज से पाकिस्तान को संकेत दिया है कि भारत का धैर्य अब जवाब दे रहा है और उसे समझ लेना चाहिए कि देश अब बर्दाश्त करने की पुरानी नीति पर नहीं चलेगा। नया तरीका यही है कि यदि कश्मीर हमारे कमजोर क्षेत्र में गड़बड़ करेगा, तो हम उसके सबसे नाजुक क्षेत्र के साथ भी यही करेंगे। फिर भौगोलिक मर्यादाएँ चाहे जो हों। उस हद तक भारत ने खेल के नियम बदल दिए हैं। गेंद अब पाकिस्तान के पाले में है।

केंद्र सरकार अब पाकिस्तान के साथ कश्मीर मुद्दे को लेकर आर-पार की कूटनीतिक लड़ाई के मूड में हैं। इसके लिए पाकिस्तान के कब्जेवाले कश्मीर (पीओके) में कश्मीरियों के साथ हो रहे अत्याचार को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित करने की हर संभव कोशिश की जाएगी। इसके लिए जम्मू-कश्मीर की विधानसभा में गुलाम कश्मीर के लिए छोड़ी गई 24 खाली सीटों के भरने पर विचार करने के साथ-साथ लोकसभा में भी गुलाम कश्मीर के लिए कुछ सीटों का प्रावधान किया जाना संभव है। विदेशों में रहने वाले गुलाम कश्मीर के अहम व्यक्ति इसके लिए उपयुक्त होंगे। पाकिस्तान के साथ संबंधों को सुधारने की उम्मीद में इस पर कभी अमल नहीं किया गया।

दरअसल, केंद्र सरकार पाकिस्तान को अब आईना दिखाना चाहती है। इसलिए प्रधानमंत्री ने कश्मीर राग अलाप रहे पाक के हुक्मरानों की नींद उड़ाने के प्रयास में पिछले दिनों स्वतंत्रता की 70वीं वर्षगाँठ के अवसर पर उन्होंने पुनः कहा कि पशावर में आतंकियों ने स्कूली बच्चों को मौत के घाट उतार दिया, तो भारत की संसद की आँखों में आँसू थे। एक दूसरी संस्कृति पाक की है जहाँ आतंकियों को गौरवान्वित किया जाता है। दुनिया को इस फर्क को भलि-भाँति समझ लेना चाहिए।

(२५)प्रश्न: क्या आप मानते हैं कि एक आजाद देश के रूप में भारत ने सत्तर वर्षो में आपकी अपेक्षा के अनुरूप प्रगति की है ?

उत्तर: नहीं, विजय जी, मैं नहीं मानता हूँ कि एक आजाद देश के रूप में भारत ने सत्तर वर्षो में हमारी अपेक्षा के अनुरूप प्रगति की है, क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य ने जितना हमारा आर्थिक शोषण, नागरिक अधिकारों का हनन, शिक्षा का विरूपीकरण, भेदभाव और फूट डालकर देश को दुर्बल करने की हर कोशिश की अँग्रेजों ने हममें से बहुतों को जो अँग्रेजी तौर-तरीका, सोच-विचार और ज्ञान-विज्ञान से लैस करने का प्रयास किया, उसपर श्रेष्ठता की मुहर लग चुकी है। कारण कि वे सभी अवगुण आज भी सत्तर वर्षो के बाद हम देशवासियों में किसी न किसी रूप में मौजूद हैं। हमने सोच-विचार के चौखटे और पैमाने औपनिवेशिक से जो उधार लिए थे उसकी छाप अभी भी देखने को मिल रहे हैं। जो कुछ भी मिला और जिस रूप में मिला उसे स्वीकार कर लिया और उससे बाहर निकलने की कोशिश नहीं की। खास तौर पर सामाजिक, शैक्षिक और कानून व्यवस्था के क्षेत्र में हमने अँग्रेजों का मॉडल अंगीकार कर लिया और उसी औपनिवेशिक तंत्र की परिधि में लोकतंत्र को चलाना प्रारंभ किया।

देश का झंडा बदल गया, अधिकारी भी बदल गए, पर उन अधिकारियों के तौर-तरीके एवं मानसिकता में कोई फर्क नहीं दिखता, क्योंकि उनकी नजरों में पुराना ढर्रा ही ठीक था, मुफीद था। हमारे जनप्रतिनिधि के रूप में जो लोग संसद तथा विधान सभाओं में पहुँचते हैं, उनके भी तेवर अँग्रेजियत जैसे ही हैं यानी अँग्रेजी आत्मा का वास भारतीय शरीर में हो गया और उससे निजात नहीं मिल पर रही है। दफ्तर की वही पुरानी तहजीब और काम करने या लटकाने के लटके-झटके भी बहुत नहीं बदले हैं। बिना सिफारिश, डाँट-डपट या अनैतिक साधनों के स्वत: काम होने से रहा। इसी प्रकार लालफीताशाही अभी भी हमारी व्यवस्था पर पूरी तरह हावी है। उसकी जकड़न कई तरह की अव्यवस्था और भ्रष्टाचार को जन्म देती है। नैतिकता का प्रश्न गौण और एक हद तक अप्रासंगिक हो गया है। साधन की शुचिता के प्रति किसी तरह का लगाव नहीं है। अब न तो व्यक्ति को अंतरात्मा की कचोट हैं, न कानून का ही भय है। स्वाभाविक है इस तरह के हालात का असर देश के आर्थिक और सामाजिक विकास पर पड़ेगा ही, क्योंकि वे हमारी प्रगति में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। आज शिक्षित-प्रशिक्षित बेरोजगारों की जैसी बेतहाशा भीड़ बढ़ती जा रही है और

उसकी गुणवत्ता पर जैसे प्रश्न चिह्न लग रहे हैं उससे किस प्रगति की अपेक्षा की जा सकती है?

आजादी मिलने पर हमने यह अपेक्षा की थी कि आर्थिक विषमता और गरीबी दूर होगी, मगर विश्व पटल पर आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभरनें के बाद भी देश में आर्थिक विषमता और गरीबी का कहर बरकरार है और कहीं-कहीं तो उसका दायरा भी बढ़ा है। इसी प्रकार जहाँ शिक्षा और स्वास्थ्य के मामले में अपेक्षित प्रगति नहीं हो सकी है, वहीं कृषि संकट और बेरोजगारी का आलम उपलब्धियों को दागदार बना रहा है। पर्यावरण पर ग्रहण है, तो मजबूरन पलायन भी एक बड़ी आबादी का सच बना हुआ है।

(२६)प्रश्नः भारत की एक ऐतिहासिक परंपरा है विविधता में एकता, मगर आज ऐसा क्यों लग रहा है कि इस अनेकता ने देश को जकड़ लिया है?

उत्तर: हाँ, आपका कहना सही है कि भारत की एक ऐतिहासिक परंपरा रही है विविधता में एकता, मगर आज ऐसा लग रहा है कि अनेकता ने इस देश को जकड़ लिया है। आपने सुना नहीं इलाहाबाद के एक स्कूल के प्राचार्य ने राष्ट्रगान पर पाबंदी लगा दी थी। इसके पीछे उन्होंने एक बेतूका तर्क यह दिया कि राष्ट्रगान की पंक्ति -'भारत भाग्य विधाता' उनके धर्म से मेल नहीं खाती है। हालांकि उस प्राचार्य को गिरफ्तार कर लिया गया, मगर ऐसी समस्याएँ आए दिन बढ़ती जा रही हैं। किसी को राष्ट्रगान से परेशानी है, तो किसी को संविधान परेशान करता है। अगर किसी व्यक्ति को भारत के किसी एक चीज से कोई शिकायत है तो इसमें कुछ बुराई नहीं है, बल्कि वह तो प्रशंसा की बात है कि हमारे देश के नागरिक जागरूक हैं, मगर विरोध के पीछे कुछ ठोस तर्क होना चाहिए।

अनेकता में एकता भारत की ताकत है और यह ताकत हमारे राष्ट्र के तिरंगे झंडे के तीनों रंगों में निहित है। इसी प्रकार राष्ट्रगान 'जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता ' से हमारी ताकत का अहसास होता है। इसलिए भारत की इस एकता, अखंडता और राष्ट्रीय सुरक्षा से कोई समझौता नहीं किया जा सकता।

खुद की कश्मीरी जनता की प्रतिनिधि बताते नहीं थकने वाले नेता भी रह-रह कर हुर्रियत जैसी भाषा बोलते हैं तथा वहाँ की मुख्यमंत्री महबूबा मुफ्ती पाकिस्तान के पिट्ठू तत्वों को जिस तरह जरूरत से ज्यादा महत्व देती दिखती हैं वह भी कोई शुभ संकेत इस देश की एकता और अखंडता के

लिए नहीं है। और तो और हर शुक्रवार को कश्मीर की तमाम मस्जिदों के लाउडस्पीकरों से इस्लाम की आड़ में नौजवानों को भारत के विरूद्ध भड़काया जाता है, जबकि कुरान कहती है कि जुमा की नमाज के बाद खुदा की इनायत ढूँढ़ने निकल जाओ। यहं तो हुई कश्मीर की बात। इस देश के अन्य हिस्सों में भी भारत की एकता को कलंकित करने के वारदात होते दिखाई दे रहे हैं। पटना के अशोक राजपथ पर हुई रैलियों में पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे और देश-विरोधी तत्वों को महिमामंडित करने तथा नालंदा के बिहारशरीफ के एक शख्स के घर पर पाक के झंडे फहराने की घटना ने आखिर अनेकता को ही तो जकड़ रखा है।

आजादी के बाद स्वाधीनता सेनानियों के सपनों के अनुरूप भारत को सुखी, संपन्न, भेदभाव रहित व स्वाभिमानी देश बनाकर विश्व में अग्रणी राष्ट्र के रूप में खड़ा करने का संकल्प केवल सरकारों के भरोसे पूरा नही हो सकता। इसके लिए नागरिक चेतना जगाने की जरूरत है कि यह देश मेरा, है। इसकी आजादी से मिले अधिकारों के भरोसे यह पूरा नहीं हो सकता। इसके नवनिर्माण में मेरा भी योगदान अपेक्षित है, मगर जब हम देश के नागरिक ही अनेकता की जकड़ में फँसते चले जाएँगे तो इस देश का नव निर्माण कौन करेगा और इस देश की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण कौन बनाए रखेगा। आजादी का अर्थ स्वच्छंदता नहीं है कि अपनी सुविधा के अनुरूप जो चाहें सो करें और अपना रास्ता बनाते रहें। इसलिए वक्त का तकाजा है कि समाज व देश विरोधी शक्तियों का मुखालफत किया जाए और उन्हें मुँहतोड़ जवाब दिया जाय, तभी भारत की स्वाधीनता की सार्थकता है।

आज तो ऐसा लग रहा है कि अपने राष्ट्र में स्वतंत्रता का दुरुपयोग कदम-कदम पर हो रहा है। संस्थाओं में हुल्लड़बाजी, सार्वजनिक स्थलों पर गंदगी फैलाने की निर्बाध स्वतंत्रता, कुछ भी अनाप-शनाप बोलने की स्वतंत्रता, फेसबुक, वाट्सएप और ट्विटर के शब्द संजाल का वर्णन कठिन, यहाँ तक कि राष्ट्रपति की बेटी तक को फेसबुक के शब्द-संजाल से गुजरना पड़ा। राष्ट्रजीवन में अव्यवस्था है। न नियम, न अनुशासन, न संयम और न ही व्यवस्था। स्वतंत्रता के ऐसे दुरुपयोग के चलते राष्ट्रजीवन की संस्थाएँ अपनी शक्ति खो रही हैं और उसी वजह से हमारा भारत अनेकता की जकड़ में फँसता जा रहा है। समाज में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अवहेलना की प्रवृत्ति का निरंतर बढ़ते जाना देश की एकता व अखंडता तथा भविष्य की आकांक्षाओं के लिए बेहद नुकसानदेह है। लोकतांत्रिक देश के रूप में सफल

होने के लिए नागरिकों में एकता और अधिकारों के प्रति परस्पर सम्मान की भावना मूलभूत श्वार्त है, मगर आजादी के 70 साल बीत जाने के बाद भी स्वतंत्रता, समानता और भाइचारे की भावना व्यवहार में नहीं है। राजनीतिक दलों ने इस देश के संसदीय लोकतंत्र को अधिक जागरूक किया है। आपको याद होगा डॉ. राममनोहर लोहिया ने कहा था कि उस राजनीतिक दर्शन का कोई अर्थ नहीं है जिसकी सोच के केंद्र में लोगों का हित और उनकी समस्याएँ नहीं हैं। इसी प्रकार बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भी आर्थिक और सामाजिक विषमता को दूर करने का संदेश्वा दिया था और चेतावनी दी थी कि ऐसा नहीं हुआ, तो राजनीतिक लोकतंत्र खतरे में पड़ जाएगा। राष्ट्रीय एकता पर आज इसलिए भी खतरे मंडरा रहे हैं, क्योकि देश की बड़ी आबादी तक समृद्धि और विकास के लाभ नहीं पहुँच सके हैं जिसके परिणामस्वरूप गरीबी, बीमारी और अशिक्षा के साए में करोड़ों जीवन जीने के लिए लोग अभिशप्त हैं।

(२७)प्रश्नः आज जब हम भारत की आज़ादी के ६९ वर्ष बीत जाने के बाद १५ अगस्त, २०१६ को आजादी की ७०वीं वर्षगांठ मना रहे हैं, क्या आप भारतीय गणराज्य की बड़ी सफलताओं और बड़ी विफलताओं पर प्रकाश डालना चाहेंगे?

उत्तरः आज 15 अगस्त, 2016 को अपने देश की आजादी के 69 साल बीत जाने के बाद इसकी 70वीं वर्षगांठ मना रहे हैं और अगले साल यानी 26 जनवरी, 2017 को भारतीय गणराज्य के 67 वर्ष पूरे होंगे और उसकी 68वीं वर्षगांठ मनायी जाएगी। विगत सात दशकों की आजादी में भारतीय गणराज्य की उपलब्धियाँ विशाल हैं। जिस वक्त हमारा देश ब्रिटिश शासन से मुक्त होकर आजाद हुआ था, इसकी अर्थव्यवस्था और संसाधन पूरी तरह नष्ट कर दिए गए थे। औपनिवेशिक लूट ने हमारे देश को खोखला बनाकर छोड़ा था, मगर आज हम एक मजबूत जमीन पर खड़ा हैं।

भारतीय गणराज्य की एक बहुत बड़ी सफलता इसकी एकीकृत रह जाना है, जिसकी कोई जमीन 1947 में छोड़ी नहीं गई थी। इस बात के पूरे आसार थे कि ब्रिटिश शासन ने यहाँ के राजे-महाराजाओं और देशी रियासतों को ऐसी कड़वी घूँट पिला दी थी कि जिसकी वजह से देश न जाने कितने टुकड़ों में विभाजित हो जाता। यह तो कहिए कि लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की सूझबूझ और उनके अदम्य साहस का ही परिणाम था कि यह देश कई टूकड़ों में विभाजित न हो सका और आज हमारी राष्ट्रीय

एकता और अखंडता अक्षुण्ण बनी हुई है।

कहना नहीं होगा कि देश की जीवन यात्रा में यह कालखंड काफी चुनौती भरा रहा है। समाजवाद, विकास और प्रगति के विचारों के सांथ हमारी देश यात्रा शुरू तो हुई, मगर बीच-बीच में आतंकवादी, अलगाववादी तथा कुछ देश-विरोधी तत्वों ने हमारी चट्टानी एकता को खंडित करने का हर संभव प्रयास किया है और आज भी कर रहे हैं, भले ही देशवासियों की एकता की वजह से वे सफल नहीं हो पाए हैं। फिर भी हमें उन तत्वों के खिलाफ सतर्क रहने की जरूरत है।

जहाँ तक भारतीय गणराज्य की विफलता का प्रश्न है आजादी के 69 साल बीत जाने के बाद भी मध्यवर्ग और उसके ऊपर के तबकों के लिए हमारी व्यवस्था केंद्रित हो गई है। देश की वास्तविक मेधा, प्रतिभा, परिश्रम, दमन की अवस्था में है। स्वतंत्रता के बाद हमारी किलता यह भी है कि हम उन विचारों और सपनों से कटते जा रहे हैं, जो 19वीं सदी में इतिहास की नींद से उठते हुए भारत ने अपने लिए देखे-संजोए थे। उन मूल्यों, विचारों और सपनों के बिना भारत कुछ भी नहीं है। देश के सत्ताकेंद्रों ने लगातार उस विरासत को खत्म करने का काम किया है। समान नागरिक अधिकार, धर्म के स्वांतत्र्य, समाज के निचले पायदान पर खड़े लोगों के अधिकार और संपत्ति तथा समृद्धि को वंचितों-अभावग्रस्तों तक ले जाने का संकल्प धरा का धरा रह गया। स्वतंत्र्ता इन संकल्पों के लिए छलावा बन गई। वह उन लोगों तक कभी नहीं पहुँची जिन लोगों के लिए लक्षित थी।

आधुनिक सुविधाओं से लैस इस देश के समाज का एक बड़ा तबका इस बात से चिंत्रित दिखता है कि 'जमाना बहुत खराब है आज कोई किसी से मतलब नहीं रखना चाहता।' पड़ोसियों के बच्चों को अपना बच्चा मानने वाला भारतीय समाज एक-दूसरे से इतना बेगाना क्यों हो गया? ऐसे क्या कारण थे जो विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता-संस्कृतिवाला भारतीय समाज आज मानवता के बुनियादी मूल्यों से जूझ रहा है। उपभोक्ता युग की सारी सामग्रियों का उपयोग करने के बाद लोग जब समाज की ओर देखते हैं तो चिंतित हो उठते हैं, बेहद चिंतित। दरअसल, वे स्वार्थ में डुबे हुए सांसारिक वस्तुएँ बटोरने में जुटे हुए हैं। उन्होंने किसी की मदद नहीं की और न किसी के गुणों का सम्मान किया, बल्कि लोगों के विकास को देखकर जलते रहे और निंदा करते रहे। हमारा समाज आज असंवेदनशील होता जा रहा है और सभी को अपनी पड़ी है। क्या होगा इस महान देश का?

इसी प्रकार आधुनिक संसाधनों के छिन जाने, परिवार, संबंधियों में बंट जाने के भय से व्यक्ति और समाज कटता चला जा रहा है। ऐसे में कैसे हम एक बेहतर मनुष्य का निर्माण कर पाएँगे? सच तो यह है कि हम सड़कें, इमारतों, जैसी भौतिक चीजों के निर्माण में इतने व्यस्त हैं कि मूल्यों को व्यवहार में लाने से एक सिरे से इनकार कर रहे हैं। ये सड़कें, इमारतें किसी भी मानव समाज के लिए अत्यंत उपयोगी हैं, पर बिना मानवीय मूल्यों के इनका कोई समूचित उपयोग नहीं किया जा सकता। हमने सुख को पूरी तरह सुविधाओं पर आरोपित कर दिया, जिससे हमारा समाज विखरता-सा दिख रहा है। सादगी का यह देश विज्ञापनों के माध्यम से दिखावेपन की चपेट में ऐसा आया कि हम खुशी के मायने भूल गए। हमें अपनी भावी पीढ़ी को सुविधाओं के साथ-साथ मूल्य भी देने होंगे, पूरी तरह से व्यावहारिक मूल्य।

हमने जो आजादी पाई उनमें नेता, पूँजीपति और नौकरशाह खुली साठ-गांठ करने के लिए आज स्वतंत्र हैं, एक-दूसरे को नंगे स्वार्थों को पूरा करने के लिए स्वतंत्र हैं। वे अपराधियों को पैदा करने और अपराध को संरक्षण देने के लिए स्वतंत्र हैं। यही नहीं, सत्ता संघर्ष में एक दूसरे पर कीचड़ उछालने, गरियाने और लतियाने को स्वतंत्र हैं, विभाजित जनसमुदाय को आस्था और कर्मकांड के नाम पर भड़काने और भिड़ाने को स्वतंत्र हैं। पूरा देश नफरत और विभाजन की राजनीति की गिरफ्त में है, बाजारू अपसंस्कृति के गिरफ्त में हैं और सभी जिम्मेदार लोग इससे आँखें मूँद लेने के लिए स्वतंत्र हैं। जहाँ तक मेरा ख्याल है अँग्रेजों ने एक तरह की परंपरा से विछिन्नता और कटुता का जो भाव पैदा किया था वह कई रूपों में आज भी कायम है। हमारी शिक्षा व्यवस्था, ढाँचे, माध्यम और परिणामों की दृष्टि से गंभीर विचार और परिवर्तन की मांग कर रही है।

विविधताओं से भरे और आंतरिक्त खींचतान से ग्रस्त, अपरोक्ष षड्यंत्रों का भुक्तभोगी, बाह्य आक्रमणों से जूझते हुए भी इस देश की यह सफलता कही जाएगी कि लोकतांत्रिक विधान से सत्ता पर कोई ऐसी शक्ति हावी न हो सकी, जो जनता द्वारा निर्वाचित हो। अलग-अलग विचारधाराओं और नीतिगत असहमतियों के होते हुए भी शासनाधिकार के लिए हिंसक संघर्ष नहीं हुए तथा संविधान के मार्गदर्शन में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका अपने-अपने उत्तरदायित्वों का निर्वह्ण करते रहे हैं। सेनाएँ सरहदों की सुरक्षा में तत्पर रही हैं। विगत सात दशकों में प्रगति की आकांक्षाओं को पूरा करने के सिलसिले में सरकारों ने समय-समय पर ऐसी

नीतियों और कार्यक्रमों को लागू किया जिनसे हमारी राष्ट्रीय यात्रा को नई राह और शक्ति मिली । संप्रभु राष्ट्र की कतार में राजनीतिक रूप से भारत प्रारंभ से ही एक महत्वपूर्ण राष्ट्र रहा है, पर इन सात दशकों के बाद आज हम एक आर्थिक महांशक्ति के रूप में भी अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य पर उपस्थिंत हैं। वर्तमान दौर में सकल घरेलू उत्पादन 5.86 लाख करोड़ से बढ़कर 136 लाख करोड़ रुपए के आसपास पहुँच चुका है। देश के आर्थिक जीवन में अधिक लोगों की भागीदारी है और जीवन स्तर बेहतर हुआ है। उदारीकरण ने आर्थिक वातावरण के साथ सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में भी सकारात्मक बदलाव आया है, मगर ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि संकट भीषण रूप ले रहा है और शहर प्रबंधन एवं अवसरों के अभाव में लोग अनेक समस्याओं से त्रस्त हैं जिसके परिणामस्वरूप किसान आत्महत्या के लिए मजबूर हो रहे हैं।

(२८)प्रश्न: भारत देश और इसके राज्यो में भ्रष्टाचार कम क्यों नहीं हो पा रहा है? क्या आपको ऐसा लगता है कि भ्रष्ट आचरण समाज के लिए आज बहुत निंदनीय है?

उत्तर: आपको याद होगा 2011 में जब अन्ना हजारे ने दिल्ली सरकार के वर्तमान मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल तथा योगेन्द्र यादव जैसें कर्मठ कार्यकर्ताओं के सहयोग से एक व्यापक जन आंदोलन के जरिए भ्रष्टाचार और कालेधन को लेकर देश भर में एक बड़ी बहस को जन्म दिया था, तो अधिकतर लोगों के अपार जन समर्थन से इस आशा को बल मिला था कि भ्रष्टाचार की गहरी जड़ों को भी एक हद तक हिलाया जा सकता है। उस आंदोलन की सफलता को इस रूप में देखा गया कि भ्रष्टाचार और घपले-घोटाले में आकंठ डुबी, सप्रंग की काँग्रेस सरकार अंततः सत्ता से बाहर हो गई, मगर सरकार बदलने के बाद केंद्र में नरेन्द्र मोदी सरकार और दिल्ली में अरविंद केजरीवाल सरकार बनने पर यह आशा और बलवती हुई कि भ्रष्टाचार पर काबू पाया जा सकता है और इसे कुछ हद तक स्वीकार किया जाना सर्वथा यथोचित होगा कि केंद्र सरकार तथा दिल्ली सरकार के किसी भी मंत्रालय या विभाग से किसी बड़े घोटाले की गूँज सुनाई नहीं पड़ी, पर मध्य प्रदेश की भाजपा सरकार के रहते हुए व्यापंम घोटाले तथा दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री के प्रधान सचिव राजेन्द्र कुमार भ्रष्टाचार में संलिप्तता की वजह से उन्हें गिरफ्तार किया गया। इसके अतिरिक्त बिहार तथा उत्तरप्रदेश सहित प्राय: सभी राज्यों में भ्रष्टाचार में कमी नहीं देखी गई। इस बात की पुष्टि तो

अंतराष्ट्रीय गैर-सरकारी संस्था 'ट्रासपैरेंसी इंटरनेशनल' की करप्शन परसेप्शन इंडेक्स रिपोर्ट-2015 का निष्कर्ष भी तो यही कहता है कि भारत का अंक वही 38 है जो पहले था। हाँ, यह अलग बात है कि जहाँ वर्ष 2014 में भारत 85 वें नंबर पर था, वहीं ताजा रिपोर्ट में 76 वें स्थान पर आ गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि गहरे तक अपनी पैठ बनाए भ्रष्टाचार व भ्रष्टाचारियों से हमारा सामना आज भी हो रहा है।

जिस सिविल सोसाइटी ने भ्रष्टाचार के खिलाफ़ इतना बड़ा आंदोलन कर लोगों में एक आशा का संचार किया वह भी आज चुप है और इस गंभीर मसले पर न तो केंद्र सरकार का ध्यान जा रहा है और ना ही राज्य सरकारों का। इन सब बातों की जड़ में क्या ऐसा तो नहीं कि हमने कहीं-न-कहीं भ्रष्टाचार को स्वीकार कर लिया है? अन्यथा आम जन की ओर से भी तो भ्रष्टाचार के खिलाफ कभी-न-कभी आवाज तो उठती। राज्य सरकारों में आए दिन बड़े-बड़े घोटालों की खबरें आ रही हैं, मगर राज्य सरकार के शीर्ष पर आसीन नेताओं के कान पर जूँ तक नहीं रेंगता। कानूनों की कमजोर धार की वजह से समाज में फैली इस बीमारी को पनपने का मौका मिल रहा है। आए दिन सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों की रिश्वत लेकर पकड़े जाने की खबरें तो मिल रही हैं, लेकिन लचर कानूनों की आड़ और राजनेताओं के संरक्षण के कवच के कारण यह सिलसिला बंद होने को नाम नहीं ले पा रहा है। भ्रष्टाचार और व्यवस्था की जुगलबंदी इतने व्यापक स्तर पर चल रही है कि व्यापंम और मेरिट जैसे बड़े घोटालों पर भी कोई बड़ी प्रतिक्रिया कहाँ आ पा रही है। ऐसा लगता है 'सब चलता है' तथा 'अजी कुछ नही होगा' जैसी बातों के चलते यह विषबेल देश की रगों में फैल चुकी है और इसी एक वाक्य ने भ्रष्टाचार के दीमक को फैलाने में बड़ी भूमिका निभाई हैं।

ऐसे वक्त हास्य कवि काका हाथरसी की व्यंग्य कविता की ये पंक्तियाँ मुझे याद आ रही हैं-

रिश्वत लेते हुए यदि पकड़े जाते हो,
तो चिंता की क्या बात है?
रिश्वत देकर छूट जाओ।

संभवत: यही वाक्य भ्रष्टाचारियों का सूत्र वाक्य बन गया है। मुझे लगता है कि जब से भ्रष्ट आचरण को सामाजिक स्वीकृति मिली है, तभी से लगातार भ्रष्टाचार का ग्राफ बढ़ता जा रहा है। आपको यह भी याद होगा

एक दौर था जब भ्रष्ट व्यक्ति समाज में नजर उठाकर चलने की आब खो देता था, जबकि आज स्थिति एकदम विपरीत है। आपने देखा या सुना नहीं बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के मेरिट घोटाले में गिरफ्तार एक विदूषी महिला ने पुलिस अधिकारी से कहा- 'आज आप सत्ता में हैं, कल मैं भी उस जगह पर आऊँगी।' दरअसल, किसी भी तरह कमाया गया धन समाज में इज्जत का प्रतीक बन गया है और दूसरी बात यह कि भ्रष्ट आचरण समाज के लिए बहुत निंदनीय नहीं रहा।

(२९)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि जो व्यवस्था अपने भीतर के उठते आक्रोश को समझ नहीं पाती वह अपनी प्रासंगिकता खोने लगती है? क्या आजादी का गलत फायदा लोग नहीं उठा रहे हैं?

उत्तरः हाँ, मैं भी यह मानता हूँ कि जो व्यवस्था अपने भीतर के उठते आक्रोश को समझ नहीं पाती वह अपनी प्रासंगिकता खोने लगती है। आज जब भारत छोड़ो आंदोलन की 75वीं वर्षगांठ 9 अगस्त, 2016 को और इस देश की आजादी की 70वीं वर्षगांठ 15 अगस्त 2016 को जब मनाई जा रही है, तो विगत 69 साल तक सत्ता से जुड़े विभिन्न राजनीतिक दलों और उसके राजनेताओं को यह सोचने की जरूरत है कि वे जनता के भीतर उठते आक्रोश को समझें, ताकि उनकी प्रासंगिकता बनी रहे। आखिर तकरीबन चार दशक से अधिक समय तक सत्ता पर काबिज रही काँग्रेस पार्टी की हालत क्यों बिगड़ती जा रही है? निश्चित रूप से व्यवस्था ने अपने भीतर से उठते आक्रोश को समझने का प्रयास नहीं किया। आजादी के बाद समाज का अंतिम आदमी आजादी के मूलभूत आधार-अभिव्यक्ति, सम्मान, रोटी, कपड़ा और मकान के अतिरिक्त व्यवस्था में हिस्सेदारी की उम्मीद कर रहा था, मगर आजादी के 69 साल बीत जाने के बाद भी वह इसके लिए इंतजार कर रहा है।

(३०)प्रश्नः राजग की सरकार में मंत्री रह चुके फारूक अब्दुल्ला ने हाल फिलहाल जो बेतुके बयान दिए हैं वह क्या उनकी विकृत मानसिकता का परिचायक नहीं है?

उत्तरः हाँ, जम्मू-कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री और राजग की सरकार में मंत्री रह चुके फारूक अब्दुल्ला ने हाल-फिलहाल जो बेतुके बयान दिए हैं, वह उनकी विकृत मानसिकता का परिचायक है, क्योंकि उनका ताजा बयान देश्ा की प्रतिष्ठा, मर्यादा और भारतीय संविधान के विपरीत है। कट्टरपंथी नेता सैयद अली शाह गिलानी के सुर में सुर मिलाते हुए फारूख अब्दुल्ला ने

कहा है कि कश्मीर न कभी भारत का अविभाज्य अंग था और न कभी रहेगा। ऐसे बेतुके बयान के लिए आखिर उन्हें क्या कहा जाएगा? उन्होंने यह भी कहा कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी से उनकी कोई व्यक्तिगत दुश्मनी नहीं है, लेकिन वह मोदी जी से इसलिए खिलाफ हैं, क्योंकि उनकी पार्टी संविधान के अनुच्छेद 370 को समाप्त करना चाहती है जिससे कि कश्मीर का भारत के साथ पूर्ण विलय हो सके, लेकिन नेशनल कांफ्रेंस के रहते यह संभव नहीं है।

इतना ही नहीं, फारूख अब्दुल्ला ने प्रकारान्तर से युवकों द्वारा की जाने वाली पत्थरबाजी का समर्थन करते हुए कहा कि पत्थर उठाने के लिए इन्हें दिल की आवाज ने मजबूर किया है। इस बयान से तो यह लगता है कि विकृत मानसिकता की वजह से वह देशद्रोह की भावना रखते हैं और उन्हें इतिहास का ज्ञान भी नहीं है। राजा हरिसिंह ने कश्मीर का भारत में विधिवत विलय किया था और तब से कश्मीर भारत का अविभज्य अंग है। वहाँ भारतीय संविधान लागू है भारतीय मुद्रा प्रचलन में है, भारतीय ध्वज फहरता है और भारतीय राष्ट्रगान गाए जाते हैं। इसलिए अब्दुल्ला का बयान दम्भ और राष्ट्र विरोधी भावना का निंदनीय उदाहरण और विकृत मानसिकता का परिचायक है।

(३१)प्रश्नः क्या सरकार के नोटबंदी के इस फैसले से राष्ट्र में बड़े बदलाव की उम्मीद की जा सकती है? आखिर कैसे?

उत्तर : हाँ, केंद्र सरकार द्वारा पाँच सौ और एक हजार रुपए के बड़े नोटों पर प्रतिबंध लगाए गए फैसले से बड़े बदलाव की उम्मीद की जा सकती है, क्योंकि देश की जानी-मानी हस्तियों सहित अवाम का बड़ा हिस्सा सरकार के साथ इसलिए खड़ा है कि उन्हें इस फैसले से राष्ट्र में बड़े बदलाव की उम्मीद जगी है। आम आदमी का भरोसा सरकार पर और मजबूत होता दिख रहा है जिसकी वजह से विरोधियों में बौखलाहट है। उन्हें लगता है कि आम आदमी इस फैसले से प्रभावित हो कहीं पाँच राज्यों के विधान सभा चुनाव में नरेन्द्र मोदी और उनकी पार्टी के साथ न चला जाए।

केंद्र सरकार कालेधन पर और रियायत के मूड में नही हैं। 30 सितंबर 2016 तक स्वैच्छिक आय घोषणा योजना के बाद भी जब कालाधन बाहर नहीं आता दिखा, तो नोटबंदी का फैसला करना पड़ा। काले धन के खात्मे पर नरेन्द्र मोदी की संजीदगी इस बयान में साफ झलकती है जब उन्होंने कहा कि फैसले के खिलाफ लोग जिंदा नहीं रहने देंगे, तो भी नहीं

डरूँगा। निश्चित तौर पर सरकार और उसकी नियति में कोई खोट नहीं है। कालाधन हमारी अर्थव्यवस्था पर अभिशाप बन गया है जिससे आम आदमी विकास में सहभागी नहीं बन पा रहा है। समूचा अर्थतंत्र कुछ मुट्‌ठी भर लोगों के हाथ में सिमटकर रह गया है। हालांकि यह भी सच है कि इसके पीछे राजनीतिक कारण से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। चुनावों में कालेधन का उपयोग आम बात है। टिकट बंटवारे में भी पैसे लिए जाते हैं। आखिर तभी तो राजनीति में बसपा सुप्रीमों मायावती को दलित नहीं दौलत की बेटी से नवाजा जाता है। इसलिए विपक्षी पार्टियाँ इस फैसले से बैकफुट पर चली जाएँगी इसलिए बड़े बदलाव की उम्मीद की जा सकती है।

(३२)प्रश्नः राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के पौत्र कनुरामदास गाँधी की वृद्धावस्था में घोर गरीबी से जूझना और बीमारी की हालत में भी दर-दर भटकने से क्या बापू के अहिंसक आंदोलन और हमारे राष्ट्र की छवि धूमिल नहीं होती है?

उत्तर: निश्चित रूप से राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के पौत्र कनुरामदास गाँधी की वृद्धावस्था में घोर गरीबी और बीमारी से जूझना और दर-दर भटकने से न केवल बापू की तस्वीर धूमिल होती है, बल्कि हमारे राष्ट्र की भी छवि धूमिल होती है। आपको याद दिलाऊँ कि नमक सत्याग्रह के दौरान डांडी मार्च में महात्मा गाँधी की लाठी थाम कर उन्हें आगे ले जाने वाली तस्वीर आज भी सभी के जेहन में मौजूद है। गाँधी जी की लाठी थाम कर उन्हें आगे ले जाने वाला कोई और नहीं, बल्कि गाँधी जी का वही पौत्र मनुरामदास गाँधी है जिसकी तस्वीर गाँधी जी के आंदोलन का गौरवशाली प्रतिबिंब मानी जाती है, मगर मनुरामदास गाँधी आज वृद्धावस्था में घोर गरीबी और बीमारी की वजह से दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। नासा के पूर्व वैज्ञानिक और गाँधी जी के 87 वर्षीय वंशज की दुर्दशा का आलम यह है कि वह गंभीरावस्था में गुजरात के चैरिटेबल अस्पताल मे दाखिल हैं और देखभाल करने वाला कोई नहीं। 22 अक्टूबर 2016 को मनुरामदास गाँधी को दिल का दौरा पड़ा, मस्तिष्काघात भी हुआ। लकवे के कारण आधा शरीर निष्क्रिय और निर्जीव हो गया इसलिए अब तो दर-दर भटक भी नहीं सकते। उनकी 90 वर्षीय पत्नी शिवलक्ष्मी कनु गाँधी सुनने में सक्षम नहीं और वृद्धावस्था की अनेक बीमारियों से ग्रस्त हैं।

गाँधी जी के पुराने मित्र के प्रपौत्र धीमंत बाघिया ने कनु की मदद के लिए हाल ही में 21 हजार रुपए दिए, मगर स्वयं वृद्ध होने के कारण वह बार-बार सुरत से गुजरात आने में सक्षम नहीं हैं। बाघिया के

अनुसार 2014 में भारत लौटे तो इस दंमती परिवार के पास अपना कोई घर नहीं था। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर आश्रय ढूँढ़ते रहे। वह आश्रमों, धर्मशालाओं में भी रहे। छह माह तक नई दिल्ली के गुरुविश्राम वृद्धाश्रम में भी उन्हें रहना पड़ा जो कि मानसिक रोगी सीनियर सीटीजन्स के लिंए बना है। आश्रम असुरक्षित जगह पर स्थित है। सीमित संसाधनों के बावजूद कनु दंपती को निजी सुरक्षा कर्मचारी नियुक्त करने पड़े थे। देखरेख करने वाला कोई नहीं मंदिर प्रबंधकों का ही एक मात्र सहारा। अमेरिका के नासा में करीब 25 साल तक वैज्ञानिक रहे मैसाचुसेट्स इंस्टीच्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के स्नातक कनुभाई गाँधी की यह हालत है तो औरों का क्या होगा।

मैं आपसे पूछता हूँ कि यह हाल जब अहिंसा के पुजारी जिसे देश ने बापू कहकर पुकारा और राष्ट्रपिता का दर्जा दिया और जिसके आंदोलन के बल पर हमें आजादी मिली, यह कहते हुए हम देशवासियों के साथ राजनीतिक दल और उसके नेता नहीं अघाते हैं कि गाँधी जी के पौत्र मनुराम दास गाँधी की आज यह हालत है तो औरों की क्या बात की जाए? कितना असंवेदनशील हो गए हम और हमारे देशवासी? सामाजिक और मानवीय मूल्यों में तेजी से गिरावट का इससे बड़ा उदाहरण क्या और कोई हो सकता है? क्या हम इस नतीजे पर पहुँचने के लिए विवश नहीं हो रहे हैं कि बापू के क्रियाकलापों का समूचित मूल्यांकन अब तक नहीं हो पाया है। इसलिए शुद्धतावादियों को हमारी यह बात भले ही सनकभरी लगे मगर मुझे लगता है कि दिन-ब-दिन, असहिष्णु, असंवेदनशील, अराजक और अँधकारमय होती दुनिया में खासतौर पर भारत को रहने लायक बनाना होगा और इसके लिए अपने कंधों पर जवाबदेही लेखक, साहित्यकार, कलाकार और प्रबुद्धजनों से यही अपेक्षा भी की जाती है। इन पंक्तियों को लिखते वक्त खबर मिली कि मनुराम गाँधी को 7 नवंबर, 2016 को सूरत के चैरिटेबुल अस्पताल में मौत हो गई।

(३३)प्रश्नः जम्मू-कश्मीर में स्कूल बंद कराने से कौन सी आजादी मिल जाएगी?

उत्तरः यह सवाल है अलगाववादियों के खिलाफ सड़क पर उतरे उन अभिभावकों के जिनके बच्चों के स्कूल जम्मू-कश्मीर में पिछले तीन महीने से बंद हैं। जम्मू-कश्मीर में आतंकी बुरहान वानी के मारे जाने के बाद से हालात असमान्य हैं। हिंसा व प्रदर्शन की वजह से कारोबार तो ठप हैं ही स्कूल-कॉलेज भी बंद हैं । इससे एक पूरी पीढ़ी का भविष्य चौपट हो रहा

है। लोग अब इससे उकता गए हैं और अलगाववादियों के खिलाफ सड़क पर उतरने का साहस कर रहे हैं ।

विगत 29 अक्टूबर, 2016 को जम्मू कश्मीर के अभिभावकों के सब्र का बाँध टूट गया और श्रीनगर में अभिभावक सड़कों पर उतरे और अलगाववादियों से सवाल पूछा–'स्कूल बंद कराने से आपको कौन सी आजादी मिल जाएगी?' श्रीनगर में अलगाववादियों के खिलाफ प्रदर्शन में शामिल अभिभावकों ने अपने–अपने हाथों में तख्तियाँ ले रखी थीं। हालांकि सबके चेहरे ढके हुए थे, क्योकि उनके अंदर आतंकियों व अलगाववादियों का खौफ था। उनका कहना था कि गतिरोध खत्म किया जाना चाहिए। उन्होंने यह सवाल भी उठाया कि सैयद अली शाह गिलानी की पोती परीक्षा दे रही है, तो हमारे बच्चों का भविष्य क्यों बरबाद किया जा रहा है? उल्लेखनीय है कि श्रीनगर स्थित दिल्ली पब्लिक स्कूल में कड़ी सुरक्षा के बीच 1 से 5 अक्टूबर, 2016 के बीच इंटरनल परीक्षाएँ ली गयीं और इसमें गिलानी की पोती ने भी परीक्षा दी, जो दशवीं कक्षा की छात्र है जबकि हुर्रियत के आह्वान पर ही स्कलू बंद कराए गए हैं और गिलानी उसी के नेता हैं। यह कैसा न्याय है?

(३४)प्रश्नः आतंकियों के मामलों का निस्तारण तय समय में करने की आवश्यकता क्यों नहीं महसूस की जा रही है?

उत्तरः भोपाल की सघन सुरक्षावाली जेल से प्रतिबंधित संगठन स्टूडेंट इस्लामिक मूवमेंट ऑफ इंडिया (सिमी) के विगत 31 अक्टूबर, 2016 को आठ खूँखार आतंकवादियों के जेल से फरार होने और पुलिस द्वारा मुठभेड़ में आठों को मार गिराने की घटना की खबर से जितना आपको आश्चर्य हुआ उतना ही मुझे भी, क्योंकि एक तो ये सारे आतंकी पहले भी जेल से फरार हो चुके थे, दूसरी कि ढाई बजे रात में जेल से भागने के पूर्व हेड कांस्टेबल रमाशंकर यादव की स्टील प्लेट और ग्लास से गला रेत कर और दूसरे कांस्टेबुल को वहीं बाँध कर भाग निकले।

जेल मैनुअल के अनुसार किसी भी जेल में 8 से अधिक दुर्दांत अपराधियों को एक साथ नहीं रखा जाना चाहिए, जबकि इस भोपाल जेल में एक साथ 35 आतंकी आखिर क्यों रखे गए थे। इतना ही नहीं जेल के सीसीटीवी कैमरे भी खराब बताए जा रहे हैं। सुरक्षा के स्तर पर ऐसी चूक पर कई सवाल उठना स्वाभाविक है, फिर जेल से भागने के बाद एक ही जगह क्यों एकत्र थे। इसी के साथ यह सवाल भी उभर रहा है कि क्या

वाकई सभी आंतकी मुठभेड़ में मारे गए? क्या वे हथियारों से लैस थे और वे समर्पण करने से इंकार कर रहे थे? इसी के साथ आपका यह सवाल भी स्वाभाविक है कि देश की सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा बन गए ऐसे तत्वों के खिलाफ चल रहे मुकदमों का निस्तारण प्राथमिकता के आधार पर किए जाने की कोई पहल क्यों नहीं हो रही थी?

यह सुस्ती की पराकाष्ठा ही है कि 2013 में खंडवा जेल से भागे संदिग्ध आतंकियों के मामले का निपटारा होता नहीं दिख रहा था। मुझे तो ऐसा लगता है कि जब आतंकवाद का खतरा पहले की तरह मंडरा रहा है तब संदिग्ध आंतकियों के मामलों के निपटारे में हिलाहवाली विधि के ष्टाासन और सुरक्षा से खिलवाड़ के अलावा कुछ नहीं।

कहा जाता है कि अब्दुल माजिद, मोहम्मद खालिद, मुजीब शेख, जाकिर हुसैन, अमजद, मोहम्मद सलीक, मोहम्मद अकील और महबूब गुड्डू नामक ये आठों आतंकवादी भोपाल सेंट्रल जेल से फरार शहर से थोड़ी दूर ईटखेड़ी गाँव में बनी खाली झोपड़ियों में इन आतंकियों ने शरण ले रखी थी। मारे गए आठ आतंकियों में से पाँच मध्यप्रदेश के खंडवा के रहने वाले थे, जबकि दो महाराष्ट्र के शोलापुर के और एक आतंकवादी अहमदाबाद का रहने वाला था। महमुद अख्तर ने 16 अन्य कर्मचारियों के भी नाम लिए हैं, जो कथित तौर पर जासूसी गिरोह में शामिल थे और सेना संबंधी दस्तावेज निकलवाने के लिए जासूसों के संपर्क में है।

सर्वाधिक खतरा उत्तर प्रदेश से गायब सिमी के 80 आतंकियों से है जो संगठन सिमी पर प्रतिबंध लगने से न तो पकड़े ही गए और ना ही किसी वारदात में उनका नाम सामने आया। इनके साथ ही 400 से अधिक लापता पाकिस्तानी नागरिकों ने इस वक्त मुश्किलें और बढ़ा दी हैं।

कुल मिलाकर देखा जाए तो आठ आतंकियों के भोपाल सेन्ट्रल जेल से फरार होने की घटना जेल की पुरी सुरक्षा व्यवस्था पर गंभीर सवाल खड़ा करती है। अन्दर के किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के मिलीभगत के बगैर यह संभव ही नहीं हो सकता। स्पष्ट है कि इस काम में मुस्तैदी नहीं रही। फिर यह भी सवाल है कि अगर आतंकवादी जेल नियंत्रण में नहीं रह सकते तो फिर उनको कहाँ रखा जाएगा? आतंकवादी को न्यायालय सजा दे सकता है, लेकिन सजा कटेगी तो जेल में ही। ऐसे में भोपाल केंद्रीय कारागार की यह घटना भयभीत करने वाली है। आतंकियों के जेल से भागने के षड्यंत्र में जेल कर्मचारियों की मिलीभगत से इंकार नहीं किया जा सकता।

(३५)प्रश्नः क्या आप भी ऐसा मानते हैं कि मानवतावादी अमीर खुसरो हिंदू-मुस्लिम एकता के एक ऐसे अग्रदूत थे, जिन्होंने राष्ट्रप्रेम की नींव, राष्ट्रीय एकता की बुनियाद डाली और एक ऐसा मंत्र फूँका, जिससे हिंदुस्तानी तहजीब भावनात्मक एकता के सुत्र में बँध गई?

उत्तर: हाँ, मैं भी ऐसा मानता हूँ कि मानवतावादी अमीर खुसरो हिंदू-मुस्लिम एकता के एक ऐसे अग्रदूत थे, जिन्होंने राष्ट्रप्रेम की नींव, राष्ट्रीय एकता की बुनियाद डाली और एक ऐसा मंत्र फूँका, जिससे हिंदुस्तानी तहजीब भावनात्मक एकता के सूत्र में बँध गई। अमीरों का अमीर, फकीरों का फकीर, शायरों का ताजदार, शेर व अदब का दीवान अमीर खुसरो एक वक्त ऐसा आया जब वह अपने आध्यात्मिक गुरु शेख निजामुद्दीन औलिया रहमतुल्लाह अहमद की कब्र के पायताने बैठ आँसू बहा रहा था, जोर-जोर से रो रहा था और गिन रहा था अपनी उम्र की बची चंद साँसें। अपने ख्वाजा के खत्म होने के बाद उसे यह जीवन निस्सार लगने लगा था। आखिर गुरु के बिना इस जीवन का मोल क्या! वह जानता था कि जीवन की मुट्ठी से उसकी साँसें अब रेत की तरह फिसली जा रही हैं। शेख ने भी तो यही कहा था, 'मेरी जिंदगी के लिए दुआ माँगों, क्योंकि तुम मेरे बाद ज्यादा वक्त नहीं जीओगे।'

गुरु-शिष्य परंपरा का इतना नायाब नमूना न तो पहले कभी हुआ है और न भविष्य में कभी होगा। अपने गुरु के अवसान पर गम व दीवानगी में अपना सब कुछ लुटाकर गुरु की मजार पर झाडू लगाते हुए फकीरी में जीने वाले शिष्य की अमर कहानी का यही साक्ष्य है कि आज भी ख्वाजा निजामुद्दीन की मजार पर होने वाले सालाना उर्स का आगाज अमीर खुसरो द्वारा तकरीबन सात सौ साल पहले रचित इस दोहे से होता है-

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुं देस ।।

आत्मा की न जाने किस गहराई से, न जाने कितने गम और कैसा विराग समेटे ये शब्द निकले हैं। खुसरो के अमर होने के लिए यह एक ही दोहा काफी है।

उल्लेखनीय है कि ग्यारवीं शताब्दी में सल्तनत की स्थापना के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक और उसके बाद आने वालों ने हिंदुस्तान में अपना केंद्र व राजधानी बनाकर हिन्दुस्तान और उसके आसपास के रियासतों को अपनी सल्तनत में मिलाने का कार्य शुरू कर दिया था। इस समय यह रिश्ता शासक व शोषित का था, क्योंकि दोनों बादशाह और अवाम की तहजाबें

जुदा-जुदा थीं। यहाँ आने वाले तुर्क, अफगानी और ईरानी मुसलमान अपनी तहजीबें और जुबान साथ लाए थे, इसलिए इनके बीच जंग और फतह के अलावा कोई और संवाद न था। अलगाव और अजनबियत के इस विचार को गिराना जरूरी था। ये काम सूफी संतों, भक्तों एवं उदारवादियों ने किया। उन्होंने आमने-सामने खड़ी दो तहजीबों के बीच की दीवार को गिराकर एकता के सेतु बनाने की कोशिश की। वक्त के इसी अहम मुकाम पर अमीर खुसरो जैसा सांस्कृतिक हुनरमंद सामने आता है और उसने हिंदुस्तानी तहजीब को प्रेम के चाक पर यह कहते हुए चढ़ा दिया-

खुसरो पाती प्रेम की विरला बाँचे कोय।
वेद, कुरान, पोथी पढ़े, प्रेम बिना का होय।।

अमीर खुसरो हिंदुस्तान के एक ऐसे शायर थे जिन्हें हिंदुस्तान की राष्ट्रवादी विचारधारा का अग्रणी महापुरुष कहा जाता है।

(३६)प्रश्नः भारत के निर्माण में पारसियों का क्या योगदान रहा है? सौराष्ट्र के राजा ने जो दूध पारसियों को भेजा था और फिर पारसियों ने चीनी मिलाकर जो दूध भरे लोटे को पुनः राजा को लौटाया क्या वही दूध अब फट गया है?

उत्तरः पारसियों द्वारा भारत के निर्माण में किए गए योगदान को बताने के पहले आपको मैं एक कहानी बताना चाहूँगा और वह यह कि दशकों पूर्व जब पारसी लोग सौराष्ट्र आए, तब उन्होंने तत्कालीन सौराष्ट्र के राजा से, वहाँ बसने की अनुमति माँगी। कहा जाता है कि उन दिनों राजा किसी की भावना को आहत किए बिना अपना न्यायसंगत निर्णय लेते थे। राजा ने दूध से भरा लोटा पारसी लोगों को पहुँचाया, जिसका आशय यह था कि हमारा समाज भरे हुए लोटे की तरह है और इसमें अब जगह नहीं है। पारसी लोगों ने दूध से भरे लोटे मे चीनी मिलाकर राजा को वापस भेज दिया, जिसका आशय था कि हम चीनी की तरह भारत में मृदुलता से समाहित हो जाएँगे। पारसी समुदाय का अपना धर्म है और उनके इष्टदेव अग्नि है, इसीलिए सिगरेट-बीड़ी पीना उनके लिए वर्जित है।

बहरहाल, हमारे बही-खातों में लाभ-शुभ और शुभ-लाभ लिखा जाता है जिसका तात्पर्य है कि व्यवसाय में वही लाभ शुभ है, जिसका कुछ अंश समाज के हित में खर्च किया जाता है। सच तो यह है कि वैदिक मान्यता को यथार्थ का जामा पारसी लोगों ने पहनाया। उन्होंने व्यवसाय से प्राप्त लाभ का एक अंश हमेशा समाज के हित में लगाया है। आपको कभी

भिखारियों की भीड़ में कोई पारसी व्यक्ति नहीं दिखेगा, क्योंकि वे ईमानदार, समर्पित और परिश्रमी होते हैं।

जहाँ तक भारत के निर्माण में पारसियों के योगदान का सवाल है, भारत का प्रथम औद्योगिक घराना टाटा है और 1936 में ही शापुर जी और पालन जी समूह ने उसके 18.5 फीसदी शेयर खरीदे। शापुर जी और पालन जी सगे भाई हैं और परिवार की परंपरा है कि शापुर जी के पुत्र का नाम पालन जी और पालन जी के पुत्र का नाम शापुर जी रखा जाता है। पालन जी परिवार और टाटा परिवार आज अखाड़े में खड़े नजर आते हैं और मिस्त्री और टाटा के बीच आज जो प्रमुख के लिए जो संघर्ष चल रहा है वह विचार को लेकर है जिसका विस्तृत करना लाजिमी नहीं है। इस संदर्भ में मैं केवल यह कहना समुचित समझता हूँ कि इस समूह का लाभ कभी प्रमुख ध्येय नहीं रहा है। यह सुखद बात है कि निजी लाभ-लोभ द्वंद्व का विषय नहीं है। द्वंद्व एक आदर्श को लेकर छिड़ा है।

टाटा समूह के टिस्को और टेल्को दो उद्योग हैं जिसमें टिस्को स्टील के क्षेत्र में और टेल्को लोकोमोटिव यानी वाहन के क्षेत्र में काम कर रहा है। टाटा का जमशेदपुर स्थित टाटा स्टील प्लांट आधुनिक भारत के विकास की दिशा में नींव का पत्थर है और वहाँ कर्मचारियों की सुख-सुविधा के लिए बसाया नगर आदर्श है। आजाद भारत के भ्रष्ट तंत्र का अन्य औद्योगिक घरानों ने खूब लाभ उठाया, परंतु पारसी समूह कभी रिश्वत नहीं देता और नियमों का पालन करता है।

भारत के भ्रष्टतंत्र के सागर में पारसी समूह एक द्वीप की तरह है, जिसके पथरीले किनारों पर रिश्वत की लहरें अपना माथा फोड़ती रहती है। शापुरजी पालन जी परिवार को रंगमंच से प्रेम रहने के कारण पृथ्वीराज कपूर की सिफारिश पर के आसिफ की 'मुगल-ए-आजम' में और दिलीप कुमार की निष्ठा से प्रभावित होकर उन्होंने 'गंगा-जमूना' फिल्म में पूँजी निवेश किया। इसी प्रकार मुंबई में ताजमहल होटल के पड़ोस की विराट इमारत में उनका ऑफिस है। भारत का श्रेष्ठतम ताजमहल होटल भी टाटा की रचना है। आडिटोरियम है जहाँ जुबिन मेहता जैसे संगीतकार ने अपनी प्रस्तुति दी थी। इस ऑडिटोरियम की यह खूबी है कि बिना माइक के ऑडिटोरियम में हर संवाद सभी दर्शकों और श्रोताओं को सुनाई पड़ता है। मगर भारत भूमि का असर ही कुछ ऐसा है कि भाई-भाई भिड़ जाते हैं और कुरूक्षेत्र हमारी कुंडली में स्थायी की तरह है। सौराष्ट्र के राजा ने जो दूध

पारसियों को भेजा था और पारसी ने उसमें जो चीनी मिलाई थी, वही दूध अब फट गया है।

(३७)प्रश्नः क्या मूक मराठा आंदोलन से मनसे और शिवसेना जैसे राजनीतिक दल कुछ अच्छी बातें ग्रहण करने के साथ सीख लेंगे?

उत्तरः महाराष्ट्र में चल रहे मूक और बेहद अनुशासित मराठा आंदोलन ने पूरे देश का ध्यान अपनी ओर खींचा है। आज जबकि आंदोलन का पर्याय हिंसा-तोड़फोड़ और आगजनी तथा सरकारी एवं गैर-सरकारी संपत्ति की क्षति पहुँचाना रह गया है, ऐसे में बिना किसी नेतृत्व के मराठा का शांतिपूर्ण आंदोलन अलहदा छवि प्रस्तुत करता है। दूसरी तरफ इसी महाराष्ट्र की राजधानी मुंबई में आए दिन महाराष्ट्र नव निर्माण सेना (मनसे) की उदंडता, लंपटता और घोर अनुशासनहीनता के लिए राष्ट्रीय मीडिया की सुर्खिया बनी रहती है।

दरअसल, जिस तरह का मराठा आंदोलन पिछले कुछ महीनों से महाराष्ट्र के विभिन्न जिलों में जारी है वह दो वजहों से चर्चित है। पहला, मराठाओं के आरक्षण की माँग और दूसरा बेहद अनुशासित और नारों से उपजे ध्वनि प्रदूषण से दूर। आमतौर पर देश में आंदोलनों का जो अतीत रहा है, वह हिंसक ज्यादा रहा है। हुड़दंगियों और असामाजिक तत्वों की ज्यादा तायदाद की वजह से वह मूल माँग से बेपटरी भी हुए हैं। चाहे मनसे या शिवसेना का हिंसक विरोध प्रदर्शन यहाँ हो या बाकी अन्य दलों या संगठनों का। एक बार फिर मनसे उसी पुराने रंग में है। विरोध करो तो हिंसक करो। फिल्म 'ऐ दिल है मुश्किल' के पाक कलाकार के काम करने का विरोध तो एक बात है। इसके लिए तोड़फोड़ और किसी भी हद तक जाने का साहस क्या दर्शाता है? हमेशा से राष्ट्रवाद की आड़ में शिवसेना और मनसे ने अपनी क्षेत्रीय संकीर्णताओं की खेती की है। अब तो मराठा के मूक आंदोलन से उन्हें सीख लेनी चाहिए।

(३८)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि माओवादियों का संघटन हाल के वर्षो में कमजोर हुआ है?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि माओवादियों का संघटन हाल के वर्षो में कमजोर हुआ है, क्योंकि इधर अनेक शीर्ष माओवादी नेता मारे गए हैं। बिहार में पुलिसबल को जहाँ माओवादियों के प्रभाववाले इलाके में सफलता मिली है, वहीं झारखंड में भी चौकसी बढ़ा दी गई है। हाल में उत्तरप्रदेश में बड़ी संख्या में माओवादियों को गिरफ्तार किया गया है। इसके अलावा माओवादी पीड़ित राज्यों में माओवादियों ने बड़ी संख्या में आत्मसमर्पण भी किया है।

छत्तीसगढ़ में माओवादियों के खिलाफ अभियान चल रहा है जिसके परिणामस्वरूप दर्जनों माओवादी मारे गए हैं। अभी–अभी 25 अक्टूबर, 2016 को ओडिशा के मलकान गिरी जिले में चित्रकोंडा जंगल में हुई मुठभेड़ में कई शीर्ष नेताओं सहित चौबीस माओवादी मार गिराए गए। यह इलाका आंध्रप्रदेश की सीमा से जुड़ा हुआ है जहाँ से एक राज्य में माओवादी हमला करने के बाद दूसरे राज्य में पलायित हो जाते हैं। यह इलाका माओवादियों का गढ़ रहा है जो अब उनकी कब्रगाह बन गया है। अपने पूर्ण अधिवेशन के लिए जुटे शीर्ष माओंवादियों पर आंध्रप्रदेश तथा ओडिशा पुलिस के अभियान दल ने सूचना मिलने पर सुनियोजित ढंग से माओवादियों को घेर लिया और दो दर्जन से अधिक माओवादियों को मौत के घाट उतार दिया जिसमें कई महिलाएँ भी शामिल हैं। मुठभेड़ स्थल से दस राइफलें, चार ए. के. 47 राइफलें, तीन एसएलआर, किट बैग और भारी मात्रा में गोला बारूद मिला है। मुठभेड़ में ग्रे हाउंड का एक जवान शहीद हो गया जबकि दूसरा घायल हो गया। इसके बावजूद कि माओवादियों का संघटन कमजोर हुआ है उनके खिलाफ कार्रवाई में तनीक भी ढिलाई नहीं बरतनी चाहिए।

(३९)प्रश्न: फिल्म निर्माताओं से सेना कल्याण कोष में पाँच करोड़ रुपए जमा कराने की शर्त को आप किस रूप में आँकते हैं?

उत्तर: निश्चित रूप से फिल्म निर्माताओं से सेना कल्याण कोष में पाँच करोड़ रुपए दबाव डालकर जमा कराने की शर्त बुनियादी तौर पर गलत मानी जाएगी, क्योंकि दान स्वेच्छा से दिया जाता है, किसी पर दबाव डालकर दान लेना सही नहीं है।

दरअसल, पिछले दिनों महाराष्ट्र के मनसे नेता राजठाकरे ने फिल्म निर्माता करण जौहर की एक फिल्म 'ऐ दिल है मुश्किल' को रिलीज किए जाने का कड़ा विरोध किया था । यह विरोध उस नेता ने इसलिए किया था, क्योंकि उस फिल्म में पाकिस्तानी कलाकार की भूमिका थी, मगर यह विरोध एक समझौते के बाद समाप्त हुआ, जिसमें तीन शर्तें रखी गई थीं। इनमें से एक शर्त यह थी कि फिल्म निर्माताओं से सेना कल्याण कोष में पाँच करोड़ रुपए जमा कराए जाएँ। यह समझौता महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री देवेन्द्र फड़नवीस के निवास पर उनकी उपस्थिति में हुआ था। सेना के पूर्व अधिकारियों सहित रक्षा मंत्री मनोहर पार्रिकर, सूचना प्रसारण और संसदीय कार्य मंत्री वैंकैया नायडू ने भी इसलिए विरोध किया था कि सेना को राजनीति से दूर रखना ही सेना का सम्मान है। मैं भी इस बात से पूर्णत: सहमत हूँ, क्योंकि जोर

दबाव से दान लेना दान की मर्यादा के विरूद्ध है। मनसे नेता राज ठाकरे अपनी सस्ती लोकप्रियता और राजनीति चमकाने के लिए जिस फिल्म निर्माताओं से पाँच-पाँच करोड़ रुपए देने के लिए शर्त मनवायी, यह जबरन वसूली के दायरें में आता है। इस पूरे प्रकरण से गलत संदेश जाता है जिसके लिए पूरी तरह मनसे नेता राज ठाकरे जिम्मेदार हैं, क्योंकि उन्होंने सेना की मर्यादा को धूमिल करने का दुष्प्रयास किया है। जहाँ तक पाकिस्तानी कलाकारों के भारतीय फिल्मों में काम करने का सवाल है, इसके प्रति भी हमें संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठने की जरूरत है। कला, साहित्य, संगीत को सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है। किसी देश की सरकार के गलत रवैए का विरोध किया जा सकता है। इसके लिए अनेक विकल्प हैं।

(४०)प्रश्नः विश्व में कानून के शासन के मामले में भारत की स्थिति चीन, पाकिस्तान और अन्य पड़ोसी देशों से बेहतर बतायी गयी है। क्या यह हमारे लिए हर्ष या गौरव का विषय हो सकता है?

उत्तरः विश्व न्याय योजना (वर्ल्ड जस्टिस प्रोजेक्ट) की ताजा रिपोर्ट के अनुसार विश्व में कानून के शासन के मामले में भारत की स्थिति चीन, पाकिस्तान और अन्य पड़ोसी देशों से बेहतर बतायी गयी है। विश्व के 113 देशों में भारत 66 वें स्थान पर है जबकि चीन 80 वें और पाकिस्तान 106 वें स्थान पर है। वाशिंगटन स्थित इस गैरसरकारी संस्था की रिपोर्ट में भारत की स्थिति के बारे में कुछ बातें निश्चित रूप से उत्साहवर्धक हैं, लेकिन कानून व्यवस्था के मामले में राजनीतिक हिंसा और अपराधों के चलते भारत पहले की तुलना में पीछे गया है, जो चिंता का विषय है। इसलिए विश्व में कानून के शासन के मामले में भारत की स्थिति चीन, पाकिस्तान और अन्य पड़ोसी देशों से जो बेहतर बतायी गयी है वह संतोष का विषय हो सकता है, हर्ष या गौरव का नहीं, कानून के शासन के मामले में हमें अभी काफी कुछ करने की आवश्यकता है, क्योंकि इस प्रकार की रिपोर्ट का प्रभाव दुनिया के उन देशों पर पड़ता है जो भारत में निवेश की इच्छा रखते हैं। बेहतर कानून व्यवस्था निवेश बढ़ाने में पर्याप्त रूप से सहायक होती है। इसलिए इस मार्ग में जो बाधाएँ या दिक्कत हैं, उन्हें दूर किया जाना चाहिए, जिससे कि अगले वर्ष भारत की स्थिति में काफी सुधार हो सके।

(४१)प्रश्नः सदियों से दुनिया भर के आकर्षण का केंद्र रहे भारत की नयनाभिराम प्राकृतिक नजारों के बावजूद विदेशी पर्यटकों का इसके प्रति क्यों मोहभंग होता जा रहा है?

उत्तर: भारतीय अर्थव्यवस्था में पर्यटन उद्योग ने अपना एक विशिष्ट और अत्यंत लाभकारी मुकाम बना लिया है, क्योंकि पर्यटन उद्योग से होने वाले इस लाभ का एक बड़ा हिस्सा हमें विदेशी पर्यटकों से प्राप्त होता है। दर्शनीय पर्यटन स्थलों की वजह से भारत की तरफ विदेशी सैलानियों का खासा रुझान रहा है। उनकी आमद भारत के विदेशी मुद्रा भंडार को मजबूत करने में अहम भूमिका निभाता है। ऐसे में यदि विदेशी पर्यटकों की आमद में कमी होने लगे, तो यह निश्चित ही चिंता का विषय हो जाता है।

इसी संदर्भ मे विदेशी पर्यटकों की आमद के पिछले पाँच वर्षो के आँकड़े बताते हैं कि सन् 2011 में जहाँ भारत में विदेशी पर्यटकों के आने की दर में नौ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी, वहीं 2012 में छ: प्रतिशत और 2013 में तीन प्रतिशत पर पहुँच गई है। हालांकि 2014 में इसमें कुछ वृद्धि हुई, लेकिन सन् 2015 में पुन: उनके आवागमन में कमी पायी गयी। विदेशी सैलानियों को लुभाने वाले हिमाचल के शिमला-मनाली से लेकर आगरा के ताजमहल और ऐतिहासिक किलों और हवेलियों के प्रदेश राजस्थान के सभी पर्यटन स्थलों सहित बिहार के नालंदा स्थित प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालंय के खंडहर एवं राजगीर की पहाड़ियों तथा गर्म कुंड की जलधाराएँ अबतक विदेशी सैलानियों को आकर्षित करती रही हैं, मगर इस वर्ष अबतक विदेशी पर्यटकों की आवक में कमी की बात सामने आई है। पर्यटकों का लगातार मोहभंग होना भारतीय पर्यटन उद्योग के लिए बड़ा संकट खड़ा कर संकता है। आखिर यह मोहभंग क्यों हो रहा है विदेशी सैलानियों का?

भारत के प्रति विदेशी पर्यटकों की इस उदासीनता या मोहभंग की अहम वजह है उनके साथ होने वाली आपराधिक वारदातें। पिछले कुछ सालों से हमारे देश में विदेशी पर्यटकों, खासकर महिला पर्यटकों के साथ लूटपाट एवं दुराचार की घटनाएँ बढ़ी हैं। यदि यहाँ आने वाले सैलानी अपने को सुरक्षित समझें और उनके साथ गंभीर आपराधिक वारदातें एक कभी न थमने वाला सिलसिला बन जाए तो फिर हमारे यहाँ के सारे सांस्कृतिक और ऐतिहासिक आकर्षणों का क्या मतलब रह जाता है।

(४२)प्रश्न: क्या आप इसे इतिहास की विडंबना नहीं कहेंगे कि जिस बिहार की धरती पर महावीर ने अहिंसा और गौतम बुद्ध ने शांति का संदेश दिया, आज उस धरती पर हिंसा और आतंक की इबारत लिखी जा रही है और पाकिस्तानी झंडा फहराकर 'पाकिस्तान जिंदाबाद' के नारे लग रहे हैं?

उत्तर: निश्चित रूप से इसे इतिहास की विडंबना कही जाएगी कि जिस बिहार की धरती पर भगवान महावीर ने अहिंसा और गौतम बुद्ध ने शांति का संदेश दिया, आज उसी धरती पर हिंसा और आतंक की इबारत लिखी जा रही है और पाकिस्तानी झंडा फहराकर 'पाकिस्तान, जिंदाबाद' के नारे लगाए जा रहे हैं।

विगत 19 जुलाई, 2016 को औरंगाबाद जिले के चकरबंदा-डुमरी जंगल में माओवादियों द्वारा घात लगाकर किए गए आईईडी विस्फोट में जहाँ 205वाँ कोबरा बटालियन के 10 कमांडो शहीद हो गए, वहीं जवाबी कार्रवाई में पाँच माओवादी भी मारे गए। यही नहीं इसके कुछ दिनों पूर्व पटना के प्रमुख अशोक राजपथ पर पोपुलर के भारत विरोधी कार्यकर्ताओं द्वारा तथाकथित इस्लामी धर्मप्रचारक जाकिर नाइक और ओबैसी के चित्र भरे बैनर को लेकर साइंस कॉलेज से लेकर गाँधी मैदान तक रैली निकालकर 'पाकिस्तान, जिंदाबाद' के भारत विरोधी नारे लगाए गए और पुलिस एवं प्रशासन मूकदर्शक रहे। इसी प्रकार बुद्ध एवं महावीर की धरती नालंदा के बिहारशरीफ के लेहरी थाना अंतर्गत खरीदी मोहल्ले स्थित स्व. अनवारूल हक के मकान की छत पर 21 जुलाई, 2016 की सुबह पाकिस्तानी झंडा फहराता हुआ दिखा। पुलिस सूत्रों के अनुसार अनवारूल हक की पुत्री शबाना अनवर जो शादी के दस वर्ष बाद भी नि:संतान है, मोहर्रम के वक्त माँगी गई मन्नत पूरी करने को लेकर छत पर झंडा फहराने गई थी। इन दोनों घटनाओं को आप क्या कहेंगे? इस तरह का कुकृत्य करने वालों को अशांति फैलाने वाला ही तो कहा जाएगा।

दरअसल, माओवादी हों या आतंकी संगठन, वे एक अपराधी गिरोह में तब्दील हो चुके हैं, जहाँ न तो सिद्धांत के लिए कोई जगह रह गई है और न जरूरत। क्रांति और धर्म के नाम पर ये आतंक फैला रहे हैं और देश को खतरे में डाल रहे हैं। आखिर, यह कैसी क्रांतिकारिता है जो निर्दोष लोगों की जान से खेलना जरूरी समझते हैं? ऐसे तत्वों से सरकार और समाज को सख्ती से निपटने में ही समाज व देश की भलाई है। यह जितनी जल्द हो उतना ही अच्छा।

सामाजिक सद्भाव एवं शांति व्यवस्था कायम रखने की अंतिम जिम्मेदारी प्रशासन की है, जिसके हाथ में 'कानून' का अस्त्र रहता है। किसी भी धर्म को मानने वाले आम नागरिक दंगा-फसाद में विश्वास नही रखते, लेकिन शातिर लोग इनके कंधों पर बंदूक रखकर अपना लक्ष्य साधते हैं।

जिस तरह से विगत कुछ वर्षो से आतंकी के समर्थन में नागरिकों का हुजूम एकत्र होने लगा है, वह भारत जैसे देश और बिहार जैसे लोकतांत्रिक राज्य के लिए कतई ठीक नहीं है। आतंकवादियों के समर्थन में नारे लगाया जाना, उनके समर्थन में भारत विरोधी रैलियाँ निकाला जाना और उन्हें शहीद घोषित किया जाना किसी अपराध से कम नहीं है। इधर देश का राजनीतिक परिदृश्य भी कुछ कड़वा हो गया है जिसके परिणामस्वरूप देशविरोधी ताकतें अपना सिर उठा रही हैं। पता नहीं कुछ लोग आतंकियों के मानवाधिकारों अथवा अभिव्यक्ति की आजादी की बात करके लीक से हटकर सोचने का परिचय क्यों देना चाहते हैं जबकि ऐसा करके वे अपने ही देश की जड़ें कमजोर कर रहे होते हैं।

(४३)प्रश्नः राष्ट्र की एकता की चुनौती देने का दुस्साहस करने वाले तत्वों का अतिसुरक्षित केंद्रीय कारागारों से भागने में कामयाब होना क्या कारागार-प्रबंधन और सुरक्षा तंत्र के लचर होने का संकेत नहीं है?

उत्तरः भोपाल के केंद्रीय जेल से आठ आतंकियों के फरार होने की घटना को अभी एक माह भी पूरा नहीं हुआ हैं कि पंजाब के पटियाला जिले के नाभा जेल पर हमला और छह कैदियों की फरारी की खबर सचमुच चौकाने वाली है, क्योंकि दोनों जगहों से भागने वाले कैदियों पर आतंकी हिंसा के गंभीर आरोप हैं। सनसनीखेज यह भी है कि फरारी की ये दोनों घटनाएँ केंद्रीय कारागारों से हुई हैं, जिनके बारे मे कहा जाता है कि वहाँ सुरक्षा के इंतजाम जिला जेलों से कहीं ज्यादा चाक-चौबंद होते हैं। फिर भी नाभा जेल में दस बंदूकधारियों का बेखौफ जेल के दरवाजों तक चले आना और गोलियों की बौछार करके कैदियों को भगा ले जाना या भोपाल जेल से आठ कैदियों को जेल की ऊँची दीवार फाँदना और सीसीटीवी कैमरे का बंद रहना निश्चित रूप से राष्ट्र की एकता को चुनौती देने का दुस्साहस करने वाले तत्वों का अतिसुरक्षित केंद्रीय कारागारों से भागने में कामयाब होना कारागार-प्रबंधन और सुरक्षा तंत्र के लचर होने का संकेत है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के नए आँकड़े भी इसी कुप्रबंधन की पुष्टि करते हैं। रिकार्ड ब्यूरों के अनुसार, वर्ष 2015 में देश के विभिन्न जेलों से कुल 371 बंदी फरार हुए, जेलब्रेक की कुल 15 घटनाएँ हुई और जेल बंदियों के बीच मारपीट की 18 घटनाएँ सामने आई। इन घटनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि जेल के भीतर की दुनिया बुनियादी ढाँचे की भारी खस्ताहाल के बीच जी रही है और सुरक्षा संबंधी तैयारियों की कमी इसका हिस्सा भर है। उम्मीद है कि इन

दोनों घटनाओं के बाद केंद्र और राज्य सरकारें निगरानी की व्यवस्था ठीक करने के साथ ही कैदियों की भारी संख्या तथा उनके कानूनी अधिकारों के उल्लंघन की समस्याओं के समाधान के लिए तत्पर होंगे।

(४४)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि मणिपुर में ५६ दिनों से जारी आर्थिक नाकेबंदी के कारण अस्त-व्यस्त आम जनजीवन को देखते हुए केंद्र सरकार की प्रभावी पहल जरूरी हो गई है?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि मणिपुर में जारी आर्थिक नाकेबंदी से 56 दिनों से आम जनजीवन जहाँ पुरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया है, वही चिकित्सा सुविधाएँ अवरूद्ध हैं, अस्पतालों में चिकित्सा सेवाएँ ठप हो गई हैं, वहीं इंटरनेट सेवा भी बंद हो गई है जिसे देखते हुए केंद्र सरकार की प्रभावी पहल जरूरी हो गई है।

दरअसल, यह आर्थिक नाकेबंदी नगा संगठनों के समूह यूनाइटेड नगा कांउसिल (यूएनसी) ने लागू की है, जिसने आवश्यक सामग्रियाँ मणिपुर ले जाने वाले वाहनों को रोक रखा है। नए जिलों के गठन को लेकर हुए ताजा विवाद की वजह से पिछले दो अक्टूबर 2016 में दो जिले बनाने की घोषणा के यूएनसी ने एक नवंबर, 2016 से ही आर्थिक नाकेबंदी लागू कर दी, मगर मणिपुर सरकार न सिर्फ अपने इरादे पर कायम रही, बल्कि 8 दिसंबर को उसने कुल सात नए जिले बनाने की घोषणा कर दी जिसके परिणामस्वरूप तनाव और भड़क गया। सच तो यह है कि मणिपुर के एक बड़े इलाके को नगा संगठन वृहत्तर नगालैंड का हिस्सा मानते हैं। जरूरत इस बात की है कि मणिपुर और नागालैंड की सरकारों को साथ लेकर आंदोलनकारी संगठनों से संवाद कायम किया जाए, क्योंकि यह अंतरराज्यीय विवाद है जिसके समाधान के लिए केंद्र की ओर से प्रभावी दखल की जरूरत है। विवाद को तूल देने की और कोशिशें संभव है इसलिए केंद्र की जिम्मेदारी और बढ़ जाती है।

(४५)प्रश्न: क्या परंपरा के नाम पर किसी आरोपी या दागी की इज्जत बख्शने या सहूलियतें देने को जायज ठहराया जा सकता है? आखिर क्यों?

उत्तर: नहीं, परंपरा के नाम पर किसी आरोपी या दागी की इज्जत बख्शने या सहूलियतें देने को कतई जायज नहीं ठहराया जा सकता है। भारतीय ओलंपिक संघ (आईओए) ने तो इसी आशय का पिछले दिनों एक हैरतअंगेज फैसला किया। उसने अपने अध्यक्ष एन. रामचंद्रन की उपस्थिति

में बाकायदा डेढ़ सौ सदस्यों की सहमति से राष्ट्रमंडल खेलों में भ्रष्टाचार के आरोपी अपने दो पूर्व अध्यक्षों सुरेश कलमाड़ी और अभय सिंह चौटाला को संघ का आजीवन सदस्य चुन लिया। संघ की ओर से सफ़ाई दी गई कि पूर्व अध्यक्षों को आजीवन सदस्य बनाने की परंपरा है, हांलांकि ऐसी बात नहीं है। केवल विजय कुमार मल्होत्रा को आजीवन सदस्य चुना गया था। भारतीय ओलंपिक संघ की दलील न केवल बेदम है, बल्कि अपने बेजा काम पर परदा डालने की नाकाम कोशिश है।

यह सब तब हो रहा है जब अभी बोर्ड ऑफ क्रिकेट कंट्रोल ऑफ इंडिया (बीसीसीआइ) के मामले में सुप्रीम कोर्ट राजनीतिकों और कारोबारियों को खेल से दूर रखने की हिदायत दे चुका है। सुरेश कलमाड़ी और अभय सिंह चौटाला ये दोनों व्यक्ति तो सीधे-सीधे भ्रष्टाचार के आरोप से घिरे हैं। राष्ट्रमंडल खेलों में सत्तर हजार करोड़ रुपए का घोटाला चर्चा का विषय रहा था। उस मामले में मुकदमा दर्ज होने के बाद कलमाड़ी तो दस महीने जेल में भी रहे और फिलहाल जमानत पर हैं। यही नहीं, बल्कि कलमाड़ी के बारे में एक विकीलीक्स खुलासे में कहा गया था कि स्विस बैंक में उनके 5900 करोड़ रुपए जमा थे। 2012 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने तो उन्हें लंदन में आयोजित ओलंपिक समारोह में जाने से रोक दिया था। अदालत का कहना था कि उनके वहाँ जाने से देश को लज्जित होना पड़ेगा। इसी प्रकार अभय सिंह चौटाला पर भी आय से पाँच गुना अधिक संपत्ति होने का आरोप है। हद तो यह है कि इसी आरोप की वजह से चौटाला को अंतरराष्ट्रीय ओलंपिक समिति ने आईओए की सदस्यता से ही निलंबित कर दी थी, क्योंकि उसने आरोपी व्यक्ति को मैदान में उतारा था। बाद में आईओसी ने आईओए की सदस्यता बहाल की, जब उसने अपने संविधान में संशोधन कर यह पक्का किया कि आगे से कोई आरोपी या दागी उम्मीदवार को चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं दी जाएगी। यानी जिस व्यक्ति को स्वयं आईओए और आईओसी चुनाव पड़ने के काबिल नहीं समझती, उसे आजीवन अध्यक्ष बना दिया। दरअसल, खेल संघों में राजनीतिकों और पूंजीपतियों की पैठ काफ़ी गहरी है। यही वजह है उनकी अपार दौलत और संबंधों की ताकत। यही वजह है कि लोकनिंदा की भी परवाह न करते हुए तमाम न्यस्त स्वार्थोंवाले लोग उनके समर्थन को तैयार हो जाते हैं जिससे यह भी पता चलता है कि आरोपियों के हाथ कहाँ-कहाँ तक पहुँचे हुए हैं। केंद्र सरकार का अपने सफाई अभियान को थोड़ा खेल संघों की ओर भी मोड़ना चाहिए।

(४६)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि सेना को विवाद से परे रखना चाहिए, क्योंकि इससे वह राजनीति की शिकार होती है ?

उत्तरः भारत सरकार द्वारा थलसेनाध्यक्ष के पद पर उपसेनाध्यक्ष बिपिन रावत की नियुक्ति के बाद काँग्रेस, भाकपा और जद(यू) ने वरिष्ठता की अनदेखी कर रावत को तरजीह देने का आरोप लगाया है। विपक्ष को सरकार के कामकाज की आलोचना करने का लोकतांत्रिक अधिकार है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सरकार के हर कदम और खासकर सेना से संबंधित मसलों पर भी आलोचनात्मक रूख अपनाए। नए सेनाध्यक्ष की नियुक्ति पर सवाल खड़ी करने वाली काँग्रेस को यह मालूम होना चाहिए कि प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने भी ले. जनरल एस. के. सिन्हा की वरिष्ठता की अनदेखी करके ले. जनरल एस. के. वैद्य को सेनाध्यक्ष के पद पर आखिर क्यों नियुक्त की थी?

सच तो यह है कि सभी सेनाधिकारी योग्य होते हैं, लेकिन कई अवसरों पर विशेष योग्यता को ध्यान में रखकर ही सरकार सेनाध्यक्षों की नियुक्ति करती है। खासतौर पर जब पाकिस्तान और चीन के साथ भारत के रिश्ते दोस्ताना नहीं है तो ऐसे वक्त नए सेनाध्यक्ष बिपिन रावत पाकिस्तान से लगी नियंत्रण रेखा के साथ पूर्व के सीमावर्ती इलाकों में अनेक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों का निर्वहण बखूबी कर चुके हैं। मुमकिन है सरकार ने पाकिस्तान और चीन की सामरिक चुनौतियों को ध्यान में रखकर ही रावत का चयन किया हो। दरअसल, देश की सुरक्षा से जुड़े ब्योरे को सार्वजनिक किया जाना निषेध है, इसलिए विपक्ष को ऐसे मामलों में संयम बरतना चाहिए। सेना को विवाद से परे रखना चाहिए, क्योंकि इससे वह राजनीति का शिकार होती है।

(४७)प्रश्नः भारत ने नाभिकीय मिसाइल अग्नि-५ का सफल परीक्षण करके क्या मिसाइलों के क्लब में लंबी छलांग लगाई है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, भारत ने अंतरमहाद्वीपीय मिसाइले अग्नि-5 का सफल परीक्षण करके मिसाइलों के क्लब में लंबी छलांग लगाई है, क्योंकि ऐसा करके हमारा देश दुनिया के उन पाँच देशों के साथ खड़ा हो गया है, जिनके पास पाँच हजार किलोमीटर या इससे भारत की नाभिकीय प्रतिरोधक क्षमता बढ़ेगी और भारत अपने सबसे बड़े प्रतिद्वंद्वी चीन के मुकाबले और मजबूत होगा। चीन इसीलिए जो ज्यादा सशंकित है और वह इसकी मारक क्षमता छह से आठ हजार किलोमीटर तक बता रहा है।

महज चार वर्षो में भारत की मिसाइल प्रोद्यौगिकी में इतनी तीव्र प्रगति न सिर्फ काबिल-ए-तारीफ है, बल्कि आश्चर्यजनक भी है, क्योंकि 2012 में जब अग्नि रेंज की पहली मिसाइल का परीक्षण किया गया था, तो उसकी क्षमता मात्र 700 किलोमीटर थी। अगर इतने कम समय में भारत उसकी क्षमता को दस गुना बढ़ा सकता है और वह भी घरेलू प्राद्यौगिकी के सहारे, तो हमें अपने वैज्ञानिकों पर गर्व होना स्वाभाविक है। चीन भले ही हमसे इस मामले में आगे रहा हो, लेकिन पाकिस्तान अपनी शाहीन के साथ अभी बहुत पीछे है, क्योंकि उसकी रेंज महज 2750 किमी. है। हालांकि पाकिस्तान उसी पर इठलाता है और भारत के किसी भी कोने को निशाने पर लेने का दावा करता है, जबकि अग्नि-5 के साथ भारत चीन ही नहीं, इटली और फिलीपींस तक मार करने की क्षमता से लैस हो गया है। इस प्रकार अग्नि-5 का सफल परीक्षण कर भारत मिसाइलों के क्लब में एक लंबी छलांग लगाई है।

(४८)प्रश्नः क्या यह देश का दुर्भाग्य नहीं है कि जिनके कंधों पर देश को बदलने की जिम्मेदारी दी गई है, वे ही नहीं बदल रहे, तो देश कैसे बदलेगा?

उत्तरः हाँ, यह देश का दुर्भाग्य है कि जिनके कंधों पर देश को बदलने की जिम्मेदारी दी गई है, वे ही नहीं बदल रहे हैं, तो देश कैसे बदलेगा? आपने देखा नहीं लोकतंत्र का मंदिर और एक सबल स्तंभ कहा जाने वाला संसद का 2016 का शीतकालीन सत्र सत्तापक्ष के आरोप-प्रत्यारोप में ही गुजर गया, मगर जनता का कोई काम नहीं हो सका, जबकि देश को बदलने की सबसे बड़ी जिम्मेदारी इस संसद को ही है। उनके सदस्य सांसदों की वजह से ही तो आजादी के सत्तर सालों के बाद भी आम आदमी बिजली, पानी, शिक्षा, सड़क, स्वास्थ्य, शौचालय, नाली जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित है। हजारों गरीब आज भी खुले आसमान के नीचे भूखे सोने को विवष्ठा हैं।

इसी प्रकार आठ नवंबर, 2016 की आधी रात से भ्रष्टाचार और कालेधन को मिटाने के लिए जब 500 और 1000 रुपए के नोटों का प्रचलन बंद किया गया, तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने जिनके कंधों पर इस देष्ठा को बदलने की नींव रखी थी तो वे ही नींव खोदने में लग गए। आम आदमी बैंकों और एटीएम के सामने कतार में खड़ा 500 और 1000 रुपए के नोट को 2000 और 500 रुपए के नए नोटों में बदलने का इंतजार करता रहा और बैंक के अधिकारियों एवं कर्मियों की मिलीभगत से करोड़ों रुपए बदले

गए और इतने बदले कि बैंक नए नोटों से खाली हो गए, लेकिन वे रूके नहीं। आज हर रोज इस देश के विभिन्न शहरों के कालेधन रखने वालों के घर छापामारी में जो नोट जब्त हो रहे हैं वो किसी के हक के थे। किसी की भोग विलासिता के लिए किंसी की जरूरत का गला घोंट दिया गया।

दरअसल, हमारे प्रधानमंत्री जी को यह अंदाजा नहीं लग पाया कि जिन लोगों के सहारे वे भ्रष्टाचार के खिलाफ युद्ध का आगाज कर रहे हैं वे स्वयं भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। जिनके हाथों में तिजोरी की चाबी है वे ही तिजोरी खाली करने के शुरू से आदी हैं। इसलिए यदि भ्रष्टाचार मिटाना है, तो देश के साथ गद्दारी करने वाले किसी भी कीमत पर बख्शे नहीं जाएँ और यह काम केवल कागजों तक सीमित नहीं रहना चाहिए। बैंको के उन अधिकारियों को सजा मिलनी चाहिए जिनकी वजह से बैंको में पर्याप्त मात्र में नई मुद्रा होने के बावजूद देश में आम आदमी के लिए नई मुद्राओं की कमी आज भी बनी हुई है।

आम आदमी तो देश बदलने का इंतजार कर रहा है, लेकिन खास लोगों को समझा दिया जाना चाहिए कि देश बदलने के कगार पर है। सरकारी पद पर बैठे अधिकारी को यह बात समझ में आ जानी चाहिए कि देश के कानून केवल हमारे संविधान में लिखे शब्द नहीं हैं जिनका उपयोग वे अपनी मनमर्जी से करते थे, बल्कि अब वे उस कानून के शिकंजे में फँस भी सकते हैं। इसलिए सूद के चक्कर में उनका मूल भी चला जाएगा।

इन सबों के बावजूद नोटबंदी के बाद कई पहलू सकारात्मक भी सामने आए हैं तो कई नकारात्मक पहलू भी। सबसे बड़ी बात यह हुई है कि पाकिस्तान में दाउद इब्राहिम एवं अन्य आतंकियों का जाली नोटों का कारोबार पूरी तरह से ध्वस्त हो चुका है। अभी हाल में खबर आई है कि पाकिस्तान में दाउद, लश्कर एवं जैश के लोगों को भारत विरोधी अभियान चलाने में मदद करने वाला जाली नोटों के सबसे बड़े सरगना जावेद हनानी ने खुदकशी कर ली है। उसका हजारों करोड़ का जाली नोट बर्बाद हो चुका है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था को विकृत करने वाली अवैध ताकतों पर लगाम लगी है।

(४९)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि यदि देश में बदलाव लाना है तो कानून नहीं, सोच बदलनी होगी?

उत्तर: हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि यदि देश में बदलाव लाना है, तो कानून नहीं, सोच बदलनी होगी, क्योंकि भारत में भ्रष्टाचार की जड़ें बहुत पुरानी हैं

और इसकी जड़ों ने न सिर्फ देश को खोखला किया है, बल्कि यहाँ के आदमी और उसकी सोच को भी खोखला कर दिया है। यही आप देखिए न, जब केंद्र सरकार ने कालेधन को रोकने और उसे बाहर लाने के लिए नोटबंदी का फैसला लिया, तो यह आदमी अपने कालेधन को बचाने के लिए ऐसे-ऐसे उपाय खोजने लगा कि आप सोच नहीं सकते। यदि यही दिमाग सही दिशा में लगता, तो शायद आज भारत किसी और ही मुकाम पर होता।

दरअसल, भ्रष्टाचार एक ऐसी नैतिकता से जुड़ी हुई चीज है, एक व्यवहार है जिसे एक बालक को बचपन से ही सिखाया जाता है, जैसे सच बोलना, चोरी नहीं करना, अन्याय नहीं करना, किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना आदि। यह विचार उसे बचपन में ही परिवार से संस्कारों के रूप में और विद्यालयों में नैतिक शिक्षा दी जा रही है जिसकी वजह से भी भ्रष्टाचार आज इस देश में पराकाष्ठा पर है और लोगों के रग-रग में समा गया है। आखिर तभी तो आम आदमी सरकार के नोटबंदी के साथ है, क्योंकि उसके पास खोने के लिए कुछ भी नही है और पाने के लिए सपनों का भारत है। लेकिन जिसके पास खोने को बहुत कुछ है वे कुतर्कों का सहारा लेकर आम आदमी के हौसले पस्त करने में लगा है।

आप सब इस बात से अवगत हैं कि इस देश के नेताओं, ठेकेदारी करने वालों तथा सरकारी अधिकारियों के पास काले धन की भरमार है और यह भी सच है कि वे काफी हद तक अपने धन को ठिकाने लगाने में कामयाब हो चुके हैं, क्योंकि जिस सरकारी तंत्र और व्यवस्था के बल पर भ्रष्टाचार को खत्म करने के वास्ते नोटबंदी जैसे कड़े फैसले लिए गए हैं वह तो भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। इसीलिए ऐसा देखा गया कि बैंक प्रबंधन ही कुछ खास लोगों का कालाधन स्फ़ेद करने में लगा तो जो व्यवस्था पहले से अविश्वसनीय थी उस पर आज कैसे भरोसा किया जा सकता है? जिन नेताओं और अधिकारियों को रिश्वत लेने की आदत पड़ चुकी है और जो अपनी काली कमाई के सहारे अय्याशी जीवन शैली जीने के आदी हो चुके हैं क्या अब वे ईमानदारी की राह पर चल पाएँगे?

दूसरी बात यह कि सरकार द्वारा कठोर कानून लागू करने की बात जो की जा रही है तो कानून तो पहले भी हमारे देश में कम नहीं थे और उन्हीं कानूनों की आड़ में तमाम गैर-कानूनी कामों को अंजाम दिया जाता था। इस दृष्टि से यदि सत्तर सालों की सुस्त और भ्रष्ट नौकरशाही के बल पर इस लड़ाई को उसके अंजाम तक पहुँचाने के लिए देश की 65 प्रतिशत

युवा पीढ़ी को अपने साथ जोड़ना होगा जो प्रतिभावान हैं और जिनकी आँखों में उम्मीद के सपने कुछ कर गुजरने की ख्वाहिश, असंभव को संभव कर देने की शक्ति है, मगर इस युवा शक्ति को आज तक नेताओं ने सत्ता की राजनीति के लिए केवल उपंयोग किया, पर उन्हें उसमें भागीदार नहीं बनाया। ऐसे युवा की शक्ति की आग को देशभक्ति की लौ में बदलकर ही भ्रष्टाचार की जड़ों में आग लगाई जा सकती है। यही युवाशक्ति से देश में बदलाव आएगा, मगर उसके लिए अपनी सोच में बदलाव लाना होगा, ताकि देश के भविष्य निर्माण में वह कामयाब हो सके।

(५०)प्रश्नः क्या हमेशा अपने अधिकारों को लेकर हल्ला बोलने वाले हम सभी को कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन नहीं करना चाहिए?

उत्तरः हाँ, अपने अधिकारों को लेकर हमेशा हल्ला बोलने वाले हम सभी को कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए। हमें यह ध्यान रखना होगा कि हम परिवार, समाज, देश और प्रकृति के प्रति कर्तव्यों का निर्वह्ण करें। हर मतदाता को वोट देने का अधिकार तो है, लेकिन कर्तव्य भी है कि हम मतदान केंद्र पर अवश्य जाएँ और अपना मत देकर अपने लिए एक बेहतर जनप्रतिनिधि का चयन करें। आमतौर पर यह देखा जाता है कि उच्च वर्गीय स्तर के लोग वोट देने नहीं जाते हैं। इसी प्रकार अपनी आमदनी पर कर चुकाने का जब सवाल आता है तो बहुत कम लोग कर चुकाते हैं। आँकड़ा बताता है कि मात्र एक प्रतिशत लोग कर (टैक्स) अदा करते हैं जबकि देश का आधार इसी पर टिका है। यात्र के दौरान लोग बिना टिकट के सफ़र करते हैं या सामान्य बोगी का टिकट लेकर एसी में बैठकर यात्रा करते हैं।

इस संदर्भ में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायामूर्ति शिवाजी पांडेय के साथ भागलपुर से पटना आने के दौरान जो दिलचस्प घटना घटी उसे आपके समक्ष प्रस्तुत करने के लोभ का संवरण मैं नहीं रोक पा रहा हूँ। इस घटना की कहानी उन्हीं की जुबानी आप सुनें 'मैं ट्रेन से भागलपुर से पटना आ रहा था। मुझे जेनरल टिकट मिला। लेकिन एसीथ्री टियर बोगी में बैठने के लिए गया यह सोचकर कि रेलवे की रसीद कटाकर पटना चला जाऊँगा। तुरंत ही टीटीई मिल गया और उसने कहा कि सौ रुपए दे दीजिए और आराम से बैठकर पटना तक चलिए। टीटीए ने सौ रुपए बतौर घूस माँगी। मैंने कहा, परची काटो, रेलवे के खाते में जाएगा। 150 रुपए की रसीद कटाकर मैंने सफर किया जो रेलवे के खाते में गया और वह अंततः देश के काम आएगा।'

न्यायमूर्ति शिवाजी पांडेय के साथ घटी इस घटना की कहानी सुनने के बाद जरा आप ही सोचिए कि हम सब अपने कर्तव्यों के प्रति कितने ईमानदार हैं? यह कहानी तो पटना उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति शिवाजी पांडेय ने पिछले 25 नवंबर, 2016 को अधिवक्ता परिषद की ओर से बिहार इंडस्ट्रीज एसोसियेशन के सभागार में संविधान दिवस पर आयोजित कार्यक्रम में कर्तव्यों पर फोकस करते हुए कही थी, मगर मेरे साथ भी इसी तरह की घटी एक घटना की याद मुझे आ गई जिसकी कहानी भी सुनाना मैं लाजिमी समझता हूँ।

हुआ यह कि एक बार जब मैं पटना आने के लिए दिल्ली जंक्शन के प्लेटफॉर्म नं. 16 पर संपूर्ण क्रांति एक्सप्रेस पकड़ने के लिए खड़ा था, तो थोड़ी देर में उसी प्लेटफॉर्म पर पटना राजधानी एक्सप्रेस आकर रूकी और ट्रेन के दरवाजे पर खड़े उस गाड़ी के ट्रेन सुपरिनटेंडेंट श्री ओझा जी की नजर हम पर पड़ी जो हमसे इसलिए परिचित हो चुके थे, क्योंकि रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य होने की हैसियत से पूरे भारत में राजधानी एक्सप्रेस से सफर करने का मुझे रेलवे से पास मिला हुआ था। स्वाभाविक रूप से ओझा जी ने पटना राजधानी एक्सप्रेस से ही चलने का मुझसे बार-बार अनुरोध किया, लेकिन मैंने उनके अनुरोध को यह कहकर टाल दिया कि कहीं पटना राजधानी एक्सप्रेस के अन्य टीटीई मुझसे टिकट माँग देंगे, तो मेरी स्थिति क्या होगी! क्या मेरी रही-सही प्रतिष्ठा एक मिनट में ही भाँड़ में नहीं मिल जाएगी? इस प्रश्न का जवाब ओझा जी नहीं देकर अवाक रह गए मेरे अधिकार और कर्तव्य को लेकर, क्योंकि मेरा रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य की अवधि समाप्त हो चुकी थी। इसलिए यह ईमानदारी और अधिकार का तकाजा था कि राजधानी एक्सप्रेस से सफर न कर संपूर्ण क्रांति एक्सप्रेस से ही मैंने पटना तक का सफर करना लाजिमी समझा। मगर मैं आपसे पूछता हूँ कि हम सभी लोगों में कितने लोग हैं जो इस तरह के कदम उठाते हैं?

(५१)प्रश्नः क्या आप इसे विडंबना नहीं कहेंगे कि देश तरक्की नहीं करने का विलाप करने, भ्रष्टाचार का मारा और रूढ़ियों की बेड़ियों से जकड़ा जैसे-तैसे सर्वनाशक कगार की तरफ फिसलन पर सवाल उठाने वाले खुद अपने दामन में झाँकने की जरूरत नहीं समझते? क्या हम देश से तटस्थ अलग दर्शक हैं? क्या हमारी कोई जिम्मेदारी या किसी तरह की सक्रिय भूमिका इस विषय में नहीं है?

उत्तर: हाँ, अक्सर हम विलाप करते रहते हैं कि देश तरक्की नहीं कर रहा है, भ्रष्टाचार का मारा, रूढ़ियों की बेड़ियों से जकड़ा जैसे-जैसे सर्वनाशक कगार की तरफ फिसलन से बचने की लड़ाई के लिए ही कमर कसते नजर आता है, कबतक यह ऐसी स्थिति रहेगी? वस्तुतः इसे विडंबना ही कही जाएगी, यह सवाल उठाने वाले खुद अपने दामन मे झांकने की जरूरत नहीं समझते। हम देश से तटस्थ दर्शक तो हैं नहीं। हमारी भी तो कोई जिम्मेदारी बनती है और इस विषय में हमारी भी तो किसी तरक्की सक्रिय भूमिका है।

सच तो यह है कि हमें नागरिक के रूप में अपने मौलिक या बुनियादी संवैधानिक तथा मानवीय अधिकारों का स्मरण तो हर घड़ी बना रहता है, पर आम आदमी इस तथ्य से बेखबर ही नजर आता है कि हमारे इसी संविधान में नागरिक के कुछ कर्तव्यों का भी उल्लेख है। जहाँ तक मेरी समझ है कर्तव्य में यह अर्थ निहित है कि हम अपने विवेक से यह तय करें कि हमें क्या करना चाहिए। इस चाहत का अहसास अंतर्मन से ही हो, तभी प्रभावशाली हो सकता है अन्यथा कड़े से कड़ा कानून कुछ हासिल नहीं कर सकता। किसी भी क्षेत्र में अकेली कानून की लाठी किसी से कर्तव्य पालन नहीं करा सकती।

(५२)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि हाल के वर्षो में कारोबार के प्रमोशन और प्रचार के नाम पर दुनिया भर में भावनाओं से खिलवाड़ की प्रवृत्ति बेहद खतरनाक तरीके से पनपी है? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि हाल के वर्षो में कारोबार के प्रमोशन और प्रचार के नाम पर दुनिया भर में भावनाओं से खिलवाड़ की प्रवृत्ति बेहद खतरनाक तरीके से पनपी है, क्योंकि कारोबार के ये शातिर खिलाड़ी कभी देवी-देवताओं के चित्रवाले आपत्तिजनक उत्पाद उतार देते हैं, तो कभी राष्ट्र और मजहब से जुड़े प्रतीकों का माखौल उड़ाने वाले उपक्रम रच डाले जाते हैं। आखिर तभी तो ई-कॉमर्स कंपनी अमेजन द्वारा भारतीय तिरंगे झंडेवाले पावदानों की बिक्री के लिए बाजार में उतार दिए। यह तो कहिए कि विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने उक्त कंपनी को जिस तरह सख्त कार्रवाई की चेतावनी दी, वह बिल्कुल वाजिब था। उनकी सख्ती का ही असर रहा कि अमेजन कंपनी ने माफी मांगी और अपने उत्पाद पावदान को तत्काल वापस ले लिए।

उल्लेखनीय है कि तिरंगा तीन रंग के कपड़े का टुकड़ा मात्र नहीं, बल्कि यह हमारे राष्ट्र की अस्मिता, गौरव और स्वाभिमान का पर्याय है जिसका अपमान किसी भी हाल में बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिए।

दरअसल, बाजार में कुछ भी बेच डालने की होड़ इस कदर मची है कि नैतिकता, आस्था, विश्वास और मर्यादाएँ कोई मायने नहीं रखतीं। आज की तिथि में बेचने और बिकने के उपक्रम को ही सबसे बड़ा 'सच' मान लिया गया है और बाकी हर बात को 'मिथ्या'। यह खतरनाक कदम गिरावट की किस खाई में जाकर थमेगा इसका अंदाजा मुश्किल है। इसलिए यह जरूरी है कि इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए वैश्विक स्तर पर सामूहिक चिंता और विमर्श की पहल की जाए। राष्ट्र ध्वज चाहे भारत का हो या फिर किसी और देश का, यह उसकी अस्मिता और अंततः उसके अस्तित्व से भी जुड़ा मुद्दा है। आक्रामक बाजारवाद के लिए भी कहीं न कहीं मर्यादा की लकीर जरूर खींचनी पड़ेगी। आज नहीं तो कल, ऐसी अराजकता के खात्मे के लिए किसी वैश्विक कानून के निर्माण और उसपर सहमति के लिए हमें तैयार होना पड़ेगा।

(५३)प्रश्नः खादी ग्रामोद्योग आयोग के कैलेंडर और डायरी से राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की तस्वीर हटाकर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की तस्वीर प्रकाशित करने पर बापू के पौत्र तुषार गाँधी सहित देश के कुछ लोग आखिर क्यों स्तब्ध और आहत हैं?

उत्तरः नव वर्ष 2017 में खादी ग्रामोद्योग आयोग के कैलेंडर और डायरी से राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की तस्वीर हटाकर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की तस्वीर प्रकाशित करने से बापू के पौत्र तुषार गाँधी और देश के कुछ लोग स्तब्ध और आहत हैं, यह खबर मैंने भी पढ़ी है। पहली बात तो यह कि आप भी मेरी बात से सहमत होंगे कि खादी ग्रामोद्योग आयोग के अध्यक्ष अथवा उसके अधिकारियों द्वारा ही गाँधी की तस्वीर हटाकर मोदी की तस्वीर प्रकाशित की गयी होगी, न कि नरेन्द्र मोदी ने ऐसा कोई सुझाव आयोग को दिया होगा जिसकी नरेन्द्र मोदी से ऐसी हरकत की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि वह महात्मा गाँधी का बहुत सम्मान करते हैं। बापू की विचारधारा और खादी को बढ़ाने में उन्होंने कभी कसर नहीं छोड़ी। मोदी के कहने पर पिछले दो साल में खादी की बिक्री में 34 फीसदी तक उछाल आया है।

दूसरी बात यह कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी वैश्विक प्रतीक हैं। आधुनिक युग में दुनिया में कई बड़े-बड़े नेता हुए हैं और सभी ने उनका सम्मान किया है। बापू ने इस देश की आजादी के लिए 1915 से लेकर आजादी तक हर दिन हर पल ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ जो संघर्ष किया

और स्वदेशी आंदोलन में खादी को जो सशक्त हथियार बनाया था, उसके लिए हम देशवासी उन्हें कभी भूल जाने की कल्पना भी नहीं करते, क्योंकि राष्ट्रीय जीवन में कुछ प्रतीक के रूप में ऐसे होते हैं, जो लोगों के मन-मस्तिष्क में स्थायित्व ग्रहण कर लेते हैं। हमारे बापू ऐसे ही महापुरुष हुए।

तीसरी बात मुझे यह कहनी है कि सरकार ने स्पष्ट किया है कि ऐसा न तो नियम है न ही परंपरा कि खादी ग्रामोद्योग आयोग के कैलेंडर और डायरी पर गाँधी जी की तस्वीर हो। 1996 से 2016 के बीच सात बार ऐसा हुआ कि कैलेंडर व डायरी पर गाँधी जी की तस्वीर नहीं थी। आयोग के अध्यक्ष विवेक सक्सेना ने विवाद पर अपनी सफाई देते हुए कहा है कि प्रधानमंत्री की ओर से पाँच सौ महिलाओं को चरखा बाँटने के कार्यक्रम से प्रेरित होकर मोदी की तस्वीर छापने का निर्णय लिया गया।

इन सभी सफाई के बाद भी मैं मानता हूँ कि आयोग के कैलेंडर व डायरी पर से गाँधी जी की तस्वीर हटाकर नरेन्द्र मोदी की तस्वीर नहीं प्रकाशित की जानी चाहिए थी, क्योंकि गाँधी और खादी के बीच एक सीधा रिश्ता रहा है, मगर मुझे यह बात समझ में नहीं आती है कि इस मसले पर काँग्रेस सहित 'आप', तृणमूल काँग्रेस तथा गाँधी जी के पौत्र तुषार गाँधी द्वारा ही क्यों इतना बबाल मचा व डायरी में गाँधी जी की तस्वीर प्रकाशित नहीं हुई थी, तो वे लोग कहाँ थे? इसे लेकर कुछ राजनीतिक दलों ने जो मुहिम छेड़ दी, आखिर उनकी क्या मंशा थी! राहुल गाँधी ने जहाँ तंजनुमा ट्वीट कर इसे 'मंगलयान-5 फेक्ट' कहा वही ममता बनर्जी ने पूछा- गाँधी जी तो राष्ट्रपिता है, मोदी कौन है? इसी प्रकार आम आदमी पार्टी के प्रवक्ता ने तो यहाँ तक आशंका जताई कि गाँधी जी का फोटो करेंसी नोट से भी गायब हो सकता है। काँग्रेस प्रवक्ता रणदीप सुरजेवाल ने इसे 'पाप' करार दिया। मुझे लगता है खादी ग्रामोद्योग आयोग के कैलेंडर व डायरी में महात्मा गाँधी की तस्वीर प्रकाशित नहीं होने से ज्यादा इन नेताओं को नरेंन्द्र मोदी की तस्वीर प्रकाशित होने से गम हुआ है, क्योंकि एक तो नोटबंदी के उनके कड़े फैसले से जो उन्हें धक्का लगा है उससे आहत हैं और उन्हें आगे की सत्ता धुँधली नजर आ रही है।

सबसे आश्चर्य मुझे इस बात को लेकर है कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के आदर्श और सिद्धांत को इन नेताओं ने जितना माखौल उड़ाया है और आज भी उसकी जितनी धज्जियाँ उड़ा रहे हैं उसका उन्हें कोई फिक्र नहीं है। क्या उन्हें ऐसा लगता है कि कैलेंडर व डायरी पर गाँधी की तस्वीर

..हीं प्रकाशित होने से देश व दुनिया के लोग उन्हें भूल जाएँगे? यदि वे ऐसा सोचते हैं तो उनकी सोच पर मुझे दया आती है। दरअसल, सरकार या उसके अधिकारियों द्वारा किए जा रहे किसी भी मसले पर विरोध करना ही इन विपक्षी नेताओं का एकमात्र कार्यक्रम रह गया है जिसे इस देश की जनता देख और समझ रही है जिसका खामियाजा उन्हें आज न कल भुगतना ही पड़ेगा। दीवार पर लिखे को उन्हें पढ़ और समझ लेना चाहिए। इसमें उन्हीं का भला होगा। एक ओर गाँधी जी के सिद्धांतों से नफरत और दूसरी ओर उनकी तस्वीर प्रकाशित नहीं होने पर घड़ियालू आँसू बहाना दोनों साथ-साथ नहीं चलेगा। कुछ इन्हीं वजहों से तो इस देश की राजनीति में उनकी यह दुर्दशा हो रही है। काँग्रेस का तो जनाधार ही शून्य होता जा रहा है।

ऐसे वक्त मुझे याद आती हैं कवि ओम प्रकाश तिवारी की कविता की निम्न पंक्तियाँ जो गाँधी की तस्वीर नहीं प्रकाशित होने पर घड़ियालू आँसू बहाने वाले नेताओं पर सटीक बैठती हैं -

'चरखा लेकर छापिए गाँधी जी का चित्र,
जीवन में हो आपका उलटा भले चरित्र।
उलटा भले चरित्र रोज जो जपते गाँधी,
सपने में वो लोग पहनते दिखें न खादी।
गाँधी का हर स्वप्न दिख रहा दरका-दरका,
जींस पहनकर लोग रो रहे लेकर चरखा।'

इसलिए सच तो यह है आज गाँधी को कैलेंडर या डायरी में जगह नहीं चाहिए, खासकर सरकारी कैलेंडर व डायरी में जिसका प्रारूप नौकरशाही द्वारा तैयार किया जाता है, जो अक्सर चापलूसी संस्कृति में डूबी हुई होती है, क्योंकि बुतपरस्ती मनुष्य के स्वभाव में है। यह आदत जाने से रही। सच तो यह है कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की जगह हम सभी देशवासियों के दिल में होनी चाहिए, अपने व्यवहार में होनी चाहिए और अपनी चाल, चरित्र और चेहरे में होनी चाहिए, जो लगातार गायब होती जा रही है। सबसे बड़ी चिंता खासतौर पर राजनीतिक दलों और उसके नेताओं को इस बात को लेकर ही होनी चाहिए, न कि गाँधी की तस्वीर सरकारी कैलेंडर व डायरी में प्रकाशित होती है या नहीं।

(५४)प्रश्न: कश्मीर में वो कौन लोग हैं जो हमारे मुल्क की आबादी के एक बड़े हिस्से को भरमाए हुए हैं?

उत्तर: डॉ. अनुपमा जी, आपका प्रश्न मुझे यह सोचने के लिए बाध्य करता है कि कश्मीर में वो कौन लोग हैं जो हमारे मुल्क की आबादी के एक बड़े हिस्से को भरमाए हुए है। उन्हें अल्लाह ने मजहब की वो कौन सी डिग्री से नवाजा है जिसका हवाला देकर वो किसी जायरा वसीम या सानिया मिर्जा को सलाह-मशवरा देने लगते हैं? इन्सानियत का कत्लेआम करने वाले इन आतंकी संगठनों को इस्लाम के माने कौन और कब बताएगा? इस कौम की औरत आखिर कबतक मर्द की जूती बनी रहेगी? बुरका, नकाब या हिजाब आखिर कबतक उसकी मजबूरी बनी रहेगी? पर्दा, शर्म और हया से किस धर्म ने इनकार किया है, लेकिन इसका मतलब यह कतई नहीं है कि ईश्वर के सबसे खूबसूरत सृजन को सिर्फ इसलिए ताले में बंद कर रखो, क्योंकि उसकी शारीरिक संरचना मर्द से अलहदा है।

कश्मीर में आतंकवादी, अलगाववादी से जुड़े कुछ ऐसे लोग जरूर हैं जिसने कश्मीर की एक खूबसूरत लड़की जायरा वसीम को भरमाया है। आखिर तभी तो 'दंगल' फिल्म में अपने अभिनय के जरिए बेटी को उसका हक दिलाने का संदेश देने वाली जायरा वसीम अपने घर पहुँचते ही अचानक से ऐसे कैसे बदल गयी? तो क्या वह और उसके परिवार के लोग मिलने वाली धमकियों से कैसे डर गये?

कश्मीर की मुख्यमंत्री महबूबा सईद और भारत के खेल मंत्रि विजय गोयल को बेतुके से जवाब देने वाली जायरा वसीम विचारों से सचमुच इतना कट्टर हैं? क्या फिल्म 'दंगल' में दिया गया उसका संदेश बिल्कुल फर्जी था? नहीं ऐसा कतई नहीं हो सकता। निश्चित रूप से उसे अपने घर कश्मीर पहुँचते ही किसी आतंकवादी से जुड़े लोगों ने भरमाया है या धमकी दी है। कोई है जो जायरा के जेहन को भटका रहा है। जायरा चाहती तो है कि एक कौम जाहिली से उबर जाए, कबिलाई सोच से मुक्ति पा जाए, वो पढ़े-लिखे और लगातार आगे बढ़े तथा उसकी मिट्टी फिर एक बार जन्नत के तौर पर पहचानी जाए, मगर अलगाववादी एवं आतंकवादी ताकतें उन्हें वैसा होने नहीं दे पा रही हैं। जायरा कि मजबूरी है, क्योंकि उसकी रगों में राष्ट्रीयता का हीं खून है, हिंदुस्तानी संस्कार है, जो उसे अपने माँ-बाप के खिलाफ जाने से रोक रहा है और उसका लबजुदा होना उसे गवारा नहीं है और उसे कश्मीर में रहना है।

सच तो यह है कि इस्लाम किसी मुसलमान की जागीर नहीं है। वह कोई मजहब नहीं, बल्कि एक दर्शन है, मोहब्बत उसकी बुनियाद है

और भाईचारा ही उसकी इबारत है। इस संदर्भ में संजय की निम्न पंक्तियाँ काबिले गौर हैं–

"किसकी दुआओं का असर है ये
कौन है जो परदे में है
कौन है वो जो खामोशी से
मेरे लिए सजदे में है।"

(५५)प्रश्न: कश्मीर घाटी से कश्मीरी पंडितों की वापसी को लेकर जम्मू-कश्मीर विधान सभा की ओर से पारित किए गए प्रस्ताव क्या महज एक कागजी कवायद नहीं कहा जाएगा? आखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, आपका यह कहना बिल्कुल सही है कि कश्मीर घाटी से कश्मीरी पंडितों की वापसी को लेकर उनके विस्थापक की 27वीं बरसी पर जम्मू-कश्मीर विधानसभा की ओर से पारित किए गए प्रस्ताव महज एक कागजी कवायद के अतिरिक्त कुछ नहीं, क्योंकि विधान सभा से पारित प्रस्ताव की महत्ता तभी है तब उसे अमल में लाने के लिए आवश्यक उपाय किए जाएँ। अबतक कश्मीरी पंडित की घाटी में वापसी की सदिच्छा तो न जाने कब से व्यक्त की जा रही है, लेकिन नतीजा वही ढाक के तीन पात वाला ही है। महबूबा मुफ्ती के पूर्व भी उमर अब्दुल्ला सरकार ने भी शरणार्थी जीवन जी रहे कश्मीरी पंडितों की वापसी की जरूरत जतायी थी, लेकिन उनकी सरकार जरूरी कदम नही उठा सकी। इस बार पीडीपी के साथ भाजपा की सरकार बनने पर यह उम्मीद जताई जा रही थी कि इस ओर जरूरी कदम उठाए जाएँगे, लेकिन जैसे ही कश्मीरी पंडितों की घर वापसी की दिशा में कदम बढ़ाए जाते हैं, विरोध शुरू हो जाता है।

दरअसल, अलगाववादी और पाकिस्तानी-परस्त तत्व तरह-तरह के बेजा दलिलों के साथ सामने आ जाते हैं । वे यह आभास कराने में संकोच नहीं करते कि कश्मीरी पंडित उनकी शर्तो पर ही अपने घरों को लौट सकते हैं। ऐसे तत्व यह भी कहते हैं कि कश्मीरी पंडित अपने उन्हीं घरों में आकर रहें जहाँ वे पहले रहते थे, पर सच तो यह है कि सब कुछ भूलकर उन्हीं लोगों के बीच भला वे कैसे रह सकते हैं जिनके अनुदार रवैए की वजह से 27 बरस पहले उन्हें अपना घर-बार छोड़ना पड़ा था, आखिर तभी तो वॉलीवुड एक्टर अनुपम खेर, जो खुद एक कश्मीरी पंडित हैं ने कश्मीरी पंडितों के लिए एक कविता को अपने ट्विटर हैंडल पर शेयर किया है और उन्होंने अपने ट्विट में लिखा–

'27 साल हो गए, हम कश्मीरी पंडित
अपने देश में अब भी शरणार्थी हैं।'

इसे कश्मीरी कवि डॉ. शशि शेखर तोशखानी ने यों लिखा है- वीडियों में अनुपम खेर कहते हैं –

'फैलेगा-फैलेगा हमारा मौन समुद्र में नमक की तरह,
नसों के दौड़ते रक्त में घुलता हुआ पहुँचेगा
दिलों की धड़कनों के बहुत समीप
और बोरी से रिसते आँटे-सा देगा हमारा पता
ये आवाजें अब और खामोश नहीं रहेंगी।'

दरअसल हुआ यह है कि कश्मीरी पंडितों की घर वापसी की समस्या सुलझाने में एक तो हमारी नीति में मारक प्रवृत्ति की कमी रही है, दूजे हम अपने विरोधियों को यह संदेश सही रूप में देने में नाकामयाब रहे कि भारत के दृढ़ निश्चय के चलते उन्हें अपने ध्येय में सफल होने का कोई सवाल ही नहीं उठता। पिछले 28 साल से चल रही विषम प्रकृति के संघर्ष के दौरान कुछ खास समयावधियों का पुनः अवलोकन करना होगा।

अलगाववाद, आतंकवाद और निरंतर अपमान के चलते 27 साल पहले घाटी से पलायन कर गए कश्मीरी पंडितों की संख्या साढ़े तीन लाख के आसपास है। कुछ सिख एवं मुस्लिम परिवार भी घाटी से जम्मू या देश के अन्य हिस्सों को पलायन कर गए थे। अपने जीवन के ये बेहद 27 साल की अवधि में अपनी जड़ों से कटकर उन्होंने कैसे गुजारे होंगे इसकी कल्पना भी सिहरा देने वाली है। देश की राजधानी दिल्ली समेत कई हिस्सों में कश्मीरी पंडित शरणार्थियों का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आखिर किसी भी सभ्य और कानून सम्मत समाज में ऐसी स्थिति को कैसे स्वीकार्य माना जा सकता है जिसमें नागरिकों को जान बचाने के लिए घर-बार छोड़कर पलायन करना पड़ जाए? ऐसी स्थिति में प्रस्ताव पारित होने भर से कश्मीरी पंडितों की वापसी नहीं हो जाएगी। उसके लिए सरकार और समाज को सुरक्षा, रोजी रोजगार समेत अनुकूल माहौल बनाना होगा तथा अभी से विरोध करने लगे अलगाववादियों को सख्ती से खामोश भी करना होगा।

जिन कश्मीरी पंडितों ने श्रीनगर और उसके आसपास की घाटी में अपना बचपन गुजारा और बाद में अपना घर, जमीन, फलों के लहलहाते बगीचे और पशुधन छोड़कर रातों-रात भागना पड़ा उनका दर्द इतना ज्यादा है कि आसानी से केवल जम्मू-कश्मीर विधानसभा में उनकी वापसी का

प्रस्ताव पारित करने भर से वे अपने घर नहीं जा पाएँगे, बल्कि आतंकवादियों, अलगाववादियों तथा दिग्भ्रमित कश्मीर युवाओं पर सख्ती बरतनी होगी, माहौल अनुकूल बनाना होगा, तभी कुछ बात बन सकती है।

(५६) प्रश्न: अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर क्या देश विरोधी नारेबाजी को स्वीकार किया जा सकता है?

उत्तर: नहीं, अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर देशविरोधी नारेबाजी को कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है। अभी कुछ दिनों पूर्व दिल्ली विश्वविद्यालय के रामजस कॉलेज में वामपंथी संगठन के विवादास्पद नेता उमर खालिद को आमंत्रित किए जाने के विरोध से शुरू हुए हंगामें ने जो राष्ट्रीय मसले का रूप ले लिया उसके मेरी समझ से रामजस कॉलेज के शिक्षक खासतौर पर जिम्मेदार कहे जाएँगे, क्योंकि अफजल और बुरहान वानी जैसे आतंकियों से खासी हमदर्दी अतिथि वक्ता के रूप में उमर खालिद को आमंत्रित करना सरासर गलत और अनुपयुक्त कहा जाएगा। क्या उसकी कुख्याति ही उसकी योग्यता मान ली गई? यह आश्चर्यजनक है कि रामजस कॉलेज परिसर में 'बस्तर माँगे आजादी', 'कश्मीर माँगे आजादी' और 'छीन के लेंगे आजादी' सरीखे देश विरोधी नारेबाजी अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर लगाने की स्वीकृति कतई जायज नहीं है। कुछ लोग सुनियोजित तरीके से देश विरोधी नारेबाजी पर अभिव्यक्ति की आजादी का आवरण डालने का प्रयास कर रहे हैं जो एक गंभीर खतरे का संकेत है। यह खतरा इसलिए भी और बड़ा है, क्योंकि वामपंथी विचारधारा से बंधे कुछ शिक्षक और नेता भी अतिवाद को प्रश्रय दे रहे हैं। इस खतरे का सामना पूरी दृढ़ता किंतु मर्यादित ढंग से किया जाना चाहिए अन्यथा वही होगा जो अब हो रहा है। जेएनयू के तौर चयन करने का क्या औचित्य था?

(५७) प्रश्न: हिमस्खलनवाले क्षेत्रों में सेना के जवान कितनी कठिन चुनौतियों से दो-चार होते हैं, क्या इसका अहसास हम कभी करते है?

उत्तर: हिमस्खलनवाले क्षेत्रों में सेना के जवान कितनी कठिन चुनौतियों से दो-चार होते हैं इसका अहसास हम देशवासी कभी नहीं करते। अभी-अभी 68वें गणतंत्र दिवस के जश्न से हम अभी बाहर भी नहीं निकले थे कि कश्मीर के गुरेज सेक्टर की बर्फिली वादियों में एवलाँच से जूझते हुए 14 जवानों और अफसरों की शहादत की गमगीन कर देनेवाली खबर आई। इस सेक्टर में विगत पन्द्रह दिनों से जारी खतरनाक हिमस्खलन के बावजूद हजारों जवान और अफसर मोर्चे पर डटे रहे।

पिछले 33 वर्षो में बर्फिले मोर्चो पर अपने कठिन कर्तव्य का निर्वहण करते हुए 900 से भी ज्यादा जवानों की शहादत अब तक हो चुकी है। बीते साल 10 फरवरी, 2016 को नार्थ ग्लेशियर में एवलांच की चपेट में आने से 19 मद्रास रेजिमेंट के 10 जवान शहीद हो गए थे। लांसनायक हनमुनथप्पा को कई दिन बर्फ में दबे होने के बाद उन्हें सुरक्षित निकाला गया था, लेकिन बाद में अस्पताल में उनकी मौत की घटना आपको याद होगी। बर्फिले मोर्चो पर प्रतिवर्ष जवानों की बड़ी संख्या में शहादत की वजह से इन इलाकों को 'पीस जोन' में बदलने की बात अक्सर उठती है, लेकिन पाकिस्तान की ओर से होने वाली घुसपैठ और चीन के खतरनाक मंसूबों के चलते भारत के लिए यह मोर्चा छोड़ना आसान नहीं।

बहरहाल, कर्तव्य की राह में जान लुटा देने वाले जांबाजों और उनके बीवी-बच्चों व घरवालों के लिए जरा आँखों मे पानीं भर लीजिए, कभी बर्फिली तूफानों से टकराकर तो कभी दुश्मनों के नापाक मंसूबों को मुँहतोड़ जवाब देते हुए जान लुटा देने का जज्बा रखने वाले वीरों की कुर्बानी का कोई मोल हो ही नहीं सकता। छोटी-छोटी बातों पर अपने ही तंत्र को कोसने वाले और हर जगह अपने अधिकारों के लिए दंभ भरने वाले हम देश के नागरिक काश इनकी शहादतों और कुर्बानियों से थोड़ी सी सीख ले पाएँ कि कर्तव्यों की चुनौती के निर्वहण के लिए किस जज्बे की दरकार होती है।

(५८)प्रश्न: रैश ड्राइविंग और रफ्तार के जुनून में भारत की सड़कों पर जिस तरह हर रोज खून बह रहा है क्या वह गंभीर चिंता का विषय नहीं है?

उत्तर: हाँ, रैश ड्राइविंग और रफ्तार के जुनून में भारत की सड़कों पर जिस तरह हर रोज खून बह रहा है निश्चित रूप से वह चिंता का विषय है। अभी हाल ही में दिल्ली से सटे गाजियाबाद में तेज रफ्तार ऑडी ने ऑटो को इतनी जबर्दस्त टक्कर मारी कि उसके परखच्चे उड़ गए और एक साथ चार लोग मौत की भेंट चढ़ गए। इस देश में हर रोज सड़कों पर 287 से भी ज्यादा जिंदगियों की मौत भेंट चढ़ जाती है, पर हम कभी चौंकते तक नहीं।

रफ्तार के नशे में जो लोग खुद की जिंदगी के साथ-साथ अपने आजू-बाजू और सामने चल रहे लोगों की जिंदगी छीन लेने पर आमादा हैं, उनपर नकेल जरूरी है। रफ्तार के जुनून में अगर कोई सड़क पर किसी का 'खून' कर देता हैं, तो मौजूदा कानून में ज्यादा से ज्यादा गैर इरादतन हत्या का मामला दर्ज किया जा सकता है। उस पर अदालती सुनवाई के दौरान

गवाहियों और साक्ष्य परीक्षण की प्रक्रियाएँ इतनी लंबी, जटिल और बोझिल हैं कि सजा बेहद कम मामलों में हो पाती है, जमानत की धाराएँ इतनी आसान और जुर्माने की राशि इतनी कम है कि रफ्तार के नशेड़ियों को कोई फर्क नहीं पड़ता। वक्त आ गया है कि अमेरिका, कनाडा, रूस सहित और कई देशों की तरह हमारे यहाँ भी रफ्तार कम उम्र के लोगों द्वारा ड्राइविंग और यातायात नियम को लेकर सख्त कानून बने, ताकि कोई नशेड़ी सड़क पर बेकसूर जिंदगियों को इस कदर न रौंद डाले।

(५९)प्रश्न: क्रिकेट को एक आकर्षण खेल बनाने में क्या आईपीएल की भूमिका अहम रही है? आखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, क्रिकेट को एक आकर्षक खेल बनाने में आईपीएल की भूमिका अहम रही है, क्योंकि खिलाड़ियों को आईपीएल से एक बेहतरीन प्लेटफॉर्म मिला है, भले ही क्रिकेट की इस लीग से कई विवाद भी जुड़े रहे हैं।

आईपीएल की गहमागहमी क्रिकेट के एक रंगारंग मेले में पिछले दिनों 20 फरवरी 2017 को हुई निलामी में कुछ ऐसे खिलाड़ियों को भी बढ़-चढ़कर खरीदा गया, जो आमतौर पर इतने बड़े स्टार नजर नहीं आते, फिर चाहे वह विदेशी खिलाड़ी हों या देसी। यहाँ तक कि इस बार अफ़गानिस्तान के भी दो खिलाड़ियों को खरीदा गया। इससे यह स्पष्ट है कि काबिलियत की पहचान का एक बड़ा प्लेटफॉर्म है आईपीएल। बड़े खिलाड़ियों की बात छोड़ दें, तो भारत के कई राज्यों के ऐसे खिलाड़ियों को भी लाखों में खरीदा गया, जो ज्यादा मशहूर नहीं हैं न उनके खेल में दम है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है तमिलनाडु के टी.नटराजन जो एक कुली पिता और सड़क किनारे स्टॉल लगाने वाली माँ के इस बेटे ने कभी सोचा ही नहीं था कि वह क्रिकेट के इस स्तर तक पहुँचेगा। 10 लाख नटराजन की कीमत रखी गई थी। उनकी काबिलियत थी कि किंग्स इलेवन ने उन्हें 30 गुना ज्यादा यानी 3 करोड़ रुपए में खरीदा। उत्तरप्रदेश के विकेटकीपर बल्लेबाज एकलब्य द्विवेदी का दाम 10 लाख रुपए था। वह भी 75 लाख रुपए में बिके हैं। एम अश्विन हैं जिन्हें एक करोड़ में खरीदा गया जबकि उनकी कीमत थी 10 लाख रुपए।

दरअसल, बात सिर्फ रुपए की नहीं है। यह क्रिकेट को धर्म की तरह पूजने वाले भारत में सपने के सच होने जैसा है जहाँ शहर-शहर, गली-मुहल्ले, चलने वाली क्रिकेट कोचिंग्स और अकादमी में खेलने वाले लाखों बच्चों और उनके माता-पिता की आँखों में सपने पलते हैं।

(६०)प्रश्न: क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बावजूद गाँवों का विकास अधूरा रहने की वजह से किसानों की हालत दिनोंदिन खराब होती जा रही है और वे आत्महंत्या के लिए मजबूर हो रहे हैं? किसानों की हालत में सुधार के लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे?

उत्तर: कहा जाता है कि देश का विकास गाँवों की गलियों से होकर गुजरता है जहाँ बसते हैं अधिकतर किसान और मजदूर। मगर आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बावजूद गाँवों का विकास अधूरा रहने की वजह से किसानों की हालत दिन-ब-दिन खराब होती जा रही है और वे आत्महत्या के लिए मजबूर हो रहे हैं।

मेरा ख्याल है कि अगर देश को विकास के रास्ते पर आगे बढ़ाना है, तो ग्रामीणों का मूलभूत सुविधाओं के साथ ज्यादा से ज्यादा किसानों को खाद, बीज तथा सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करानी होगी। आज अगर खेती घाटे का सौदा बन गई, तो मूलत: इसी वजह से कि किसानों को उनकी उपज का सही मूल्य नहीं मिल पाता। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि जब किसी इलाके में कोई फसल अच्छी हो जाती है, तो उसके दाम गिर जाते हैं। कई बार तो किसानों को लागत मूल्य भी नहीं मिल पाते। वे ऐसी स्थिति में नहीं होते कि उपज को रोककर रख सकें या फिर उसका भंडारण कर सकें। अनाज का भंडारण तो तब भी संभव है, मगर फल-सब्जियों के भंडारण की व्यवस्था तो सरकार को ही करनी होगी। जहाँ तक मैं समझता हूँ गाँवों के आसपास बाजार एवं भंडारण की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि किसानों को उनकी उपज का वास्तविक व वाजिब मूल्य प्राप्त हो सके। किसानों की फसल बर्बाद न हो इसके लिए सरकार की ओर से अतिवृष्टि और अनावृष्टि से बचने के लिए पर्याप्त व्यवस्था के साथ केंद्र तथा राज्य सरकार के बीच बेहतर तालमेल होना आवश्यक है। किसान कहते ही एक ऐसे लाचार एवं असहाय व्यक्ति का अक्स सामने उभर कर आ जाता है जो मौसम की मार झेलने के साथ ही सरकारों, साहूकारों और बैंको के तिहरे शोषण का शिकार हो रहा है। हमारे किसान एक लंबे समय से हाशिए पर हैं। और तो और देश की शीर्ष अदालत के कानों तक जब किसानों की कराहती पीड़ा पहुँची, तो उसने भी केंद्र एवं राज्यों की सरकारों को कड़ी फटकार लगाई कि किसानों पर आखिर सरकारें कबतक आँखें मूंद रख सकती हैं। इन्हीं सब उपेक्षाओं की वजह से हमारे अन्नदाता का किसानी

से मोहभंग होता जा रहा है। आखिर तभी तो अब असहाय किसानों को खेती करने की अपेक्षा मजदूरी करना पसंद आ रहा है और मजूदरी के लिए किसान अपनी खेती से पलायन कर रहे हैं, क्योकि पूरे देश को खिलाने वाला अन्नदाता परिवार आज स्वयं दो जून की रोटी के लिए संघर्ष का रहा है। मगर खुशी इस बात की है केंद्रीय सरकार द्वारा 2017 के बजट में ग्रामीण क्षेत्र एवं कृषि के लिए सबसे अधिक 1 लाख 87 हजार करोड़ रुपए आवंटित किये गये हैं।

भाई नरेन्द्रपति तिवारी जी, किसानों को ऐसी विषम स्थिति में आर्थिक विकास के लिए तेज उद्योगीकरण और शहरीकरण जरूरी है, किंतु यह सब संतुलन बनाकर ही किया जाय, तभी उचित होगा। इसके अतिरिक्त आज कृषि के आधार को मजबूत बनाने की बेहद जरूरत है। इसी के साथ-साथ यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि किसान खेती के साथ-साथ पशु-पालन को भी अपनाएँ, ताकि किसी कारणवश उपज कम होने या फसल बर्बाद होने की स्थिति में वे बदहाली का शिकार होने से बचे रहें। देश की 130 करोड़ जनता को अन्न मुहैया कराने के लिए अन्नदाता को दुनिया के विकसित राष्ट्रों की तरह किसानों को बेहतर ढंग से जीने का अवसर प्रदान करने की व्यवस्था करनी होगी।

(६१)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि धर्मनिरपेक्षता भारत की सुरक्षा के लिए एक बड़े खतरे के रूप में उभरी है?

उत्तर: हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि धर्मनिरपेक्षता भारत की सुरक्षा के लिए एक बड़े खतरे के रूप में उभरी है, क्योंकि इस देश का हर एक नेता, पुलिस अधिकारी, पत्रकार और यहाँ तक कि प्रत्येक धर्मगुरु जानता है कि धर्मनिरपेक्षता भारत की मूल आत्मा पर चोट कर रही है, मगर हर कोई यही दर्शा रहा है कि सबकुछ दुरुस्त है।

पुलिस अधिकारी कानून व्यवस्था को चलाने के लिए धर्मनिरपेक्षता को मूलतंत्र मानते हैं। जब कमलेश तिवारी ने इस्लाम के पैगम्बर पर कुछ कहा, तो पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया, मगर उन्हीं पुलिस अधिकारियों के सामने न जाने क्या मुश्किल आ गई कि वे बिजनौर के उस इस्लामिक फतवेबाज को छू भी नहीं पाए जिसने कमलेश तिवारी का सरकलम करने वाले के लिए 51 लाख रुपए के इनाम की घोषणा की थी।

दरअसल, धर्मनिरपेक्षता एक प्रकार से भारत का राष्ट्रीय खेल बन गई है जिसमें हर कोई भाग ले रहा है, हर कोई अंदाजा लगा रहा है,

सभी तालियाँ बजा रहे हैं और हकीकत से मुँह चुरा रहे हैं। यह हकीकत बड़ी तांकतवर है। यह दिमाग पर हावी हो जाती है।

मुझे लगता है कि भारतीय समाज की यह सच्चाई है कि यहाँ धमनिरपेक्ष विचारधारा के धागे को एक तरह के चोरों ने संभाल रखा है। इन दिनों धर्मनिरपेक्ष नजरिए में दलित-मुस्लिम एकता बेहद जरूरी मानी जा रही है। पिछले दिनों 21 जनवरी 2017 को मुंबई में आयोजित एक सम्मेलन के दौरान मुस्लिम धर्मगुरु मौलाना खलीबुरहमान नोमानी ने दलित नेता वामन मेश्राम से हाथ मिलाते हुए समान नागरिक संहिता पर कोई भी कानून बनाने को लेकर खुलेआम चेतावनी देते हैं। आपको याद होगा कि 1986 में भी शाहबानों मामले में ऐसी ही धर्मनिरपेक्षता उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भारी पड़ गई थी।

मेरी समझ से धर्मनिपेक्षता के दो मायने हैं। पहला तो यही कि विचारों के आंदोलन के रूप में यह समाज पर धर्म के अत्यधिक प्रभाव को घटाता है। इस स्वरूप में धर्मनिरपेक्षता रूढ़िवादी धर्मांधता को कूंद करती है और लोगों को धार्मिक जकड़नों से मुक्त कर तार्किक रूप से जीने के लिए सशक्त माध्यम बनती है। इसका दूसरा अर्थ संविधान से जुड़ा है। धर्मनिरपेक्षता के संवैधानिक अर्थ का यही मतलब है कि भारतीय राज्यनीति-निर्माण को धार्मिक आग्रहों से मुक्त रखेगा, मगर अपने व्यावहारिक अर्थो में धर्मनिरपेक्षता राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक बड़े खतरे के रूप में सामने आई है। आपने देखा नहीं हमारे दौर में कश्मीर से हिंदुओं को मजबूरन विस्थापित होना पड़ा, मगर अगले दौर में धर्मनिरपेक्षता के चलते हिंदुओं को वैसे ही देश के कुछ और हिस्सों से पलायन करने पर मजबूर होना पड़ेगा।

(६२)प्रश्न: भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) पर दुनिया का भरोसा क्यों बढ़ रहा है?

उत्तर: भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) पर दुनिया का भरोसा इसलिए बढ़ रहा है, क्योंकि यह लगातार सफलता की मंजिल की ओर बढ़ता जा रहा है। अभी-अभी विगत 15 फरवरी, 2017 को इसरो ने एक साथ सात देशों के 104 उपग्रह सफलतापूर्वक प्रक्षेपित कर अपनी वैज्ञानिक और तकनीकी क्षमता की पूरी दुनिया में धाक जमा दी है। भले ही इसरो अंतरिक्ष प्रक्षेपन के व्यवसाय में नया खिलाड़ी है, लेकिन उसने लगातार दक्षता बढ़ात हुए साबित किया है कि अंतरिक्ष प्रौद्योगिकीवाले देशों की कतार में उसकी खास जगह बनती जा रही है। पिछले साल 2016 के जून में भी

इसरो ने एक साथ 20 उपग्रह प्रक्षेपित किए थे, किंतु मात्र छह-सात महीने बाद एक साथ 104 उपग्रहों को अंतरिक्ष में स्थापित करना बेहद कठिन, श्रमसाध्य और सतर्कतापूर्वक वैज्ञानिक कार्य है। पीएसएलवी-37 उन्हें एक-कर कर 7.5 किलोमीटर प्रति सेकेंड की रफ्तार से प्रक्षेपित करता रहा और दुनिया उसे आशा भरी नजरों से निहारती रही। इन उपग्रहों में अमेरिकी के 96, भारत के तीन और इजराइल, नीदरलैंड, स्विट्जरलैंड, पाकिस्तान और संयुक्त अरब अमीरात के एक-एक उपग्रह शामिल हैं। दूरसंचार प्रौद्योगिकी के विकास के लिए सारी दुनिया को इस प्रौद्योगिकी की जरूरत है और भारत के इस महत्वपूर्ण संगठन ने अपने काम से दुनिया को बेहतर और सस्ती सेवा देने और उसे जोड़ने का भरोसा भी दिया है। इसरो ने यह उपलब्धि रूस, अमेरिका, फ्रांस, चीन और दुनिया के अन्य विकसित देशों के मुकाबले सस्ती और अच्छी सेवा देकर अगर हासिल की है, तो यह राष्ट्रीय स्वाभिमान के साथ ही वैश्वीकरण की भी सफलता है।

भारतीय वैज्ञानिक पहले रॉकेट को साईकिल पर लादकर प्रक्षेपण स्थल पर ले गए थे। इसरो का दूसरा रॉकेट काफी बड़ा था, जिसे बैलगाड़ी के सहारे प्रक्षेपण स्थल पर ले जाया गया था। कभी बैलगाड़ी और साईकिल से रॉकेट ढोने वाले इसरो ने इतिहास रच दिया, क्योंकि इसने एक साथ सबसे ज्यादा सेटेलाइट्स प्रक्षेपण करने का विश्व रेकॉर्ड बनाया। इससे पहले ये रेकॉर्ड रूस की स्पेस एजेंसी के पास था जिसने 2014 में एक साथ 37 सेटेलाइट लाँच किये थे। भारतीय वैज्ञानिकों ने इस कारनामें के साथ दुनिया को बता दिया है कि इसरो ही सबसे कम खर्च में उपग्रह प्रक्षेपित करने का केंद्र है। बहुत से विकासशील देश के लिए इसरो नई उम्मीद बनकर उभरा है। इसरो की उपलब्धियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि भारत जल्द ही स्पेस रिसर्च सेन्टर में महाशक्ति बनकर उभरेगा।

इसरो की ताजा कामयाबी इसलिए कहीं अधिक हर्षित-मुद्रित करने वाली है, क्योंकि हमारे वैज्ञानिकों ने एक ऐसा काम करके दिखाया जिसे अभी तक कोई नहीं कर सका है- अमेरिका और रूस भी नहीं, जो एक समय अंतरिक्ष तकनीक के मामले में होड़ के लिए जाने जाते थे। सच मानिए इसे ही कहते हैं कि कामयाबी ने देखा खुद को रचते हुए।

समय का तकाजा है कि इस पर गंभीरता से विचार हो कि सफलता की जैसी गाथा इसरो लिख रहा है वैसी ही इस देश के अन्य संस्थान क्यों नहीं लिख पा रहे हैं? कामयाबी के सफर में एक अकेला इसरो ही

क्यों? अन्य संस्थाएँ इससे सीख क्यों नहीं लेतीं? आखिर हम उन्नत किस्म के हथियारों, विमानों आदि का निर्माण अपने बलबूते कब कर पाएँगे?

(६३)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि सत्यनिष्ठा, ईमानदारी एवं जनसेवा का भाव आज भी शासन-प्रशासन में एक पहेली है? ऐसा क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि सत्यनिष्ठा, ईमानदारी एवं जनसेवा का भाव आज भी शासन-प्रशासन में एक पहेली है, क्योंकि जो जहाँ सरकारी सेवा में या राजनीति में बैठा है वही अवैध कमाई का रास्ता बना रहा है। सचमुच यह विडंबना है कि देश की 'इस्पाती चौखट' माने जाने वाली नौकरशाही हो या राजनीति, दिनोदिन भ्रष्टाचार के दलदल में फँसती जा रही है। बात चाहे सीबीआई के पूर्व निदेशक रंजीत सिन्हा का हो, ए.पी. सिंह की हो या फिर प्रवर्तन निदेशालय के पूर्व निदेशक जे पी सिंह अथवा बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के पूर्व अध्यक्ष लालकेश्वर सिंह या बिहार कर्मचारी चयन आयोग के अध्यक्ष सुधीर कुमार और सचिव परमेश्वर राम, हर जगह अवैध कमाई का गौरखधंधा स्पष्ट परिलक्षित होता है।

हालांकि भ्रष्टाचार से मुक्ति एक राष्ट्रीय अभिलाषा है। 'न खाऊँगा और न खाने दूँगा' जहाँ देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपनी अभिलाषा जारी की है, वहीं बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार सात निश्चय का पाठ करते हुए शराबबंदी और नशाबंदी का पाठ कर रहे हैं, लेकिन व्यवहारिक धरातल पर ये सारे मंत्र किल साबित हो रहे हैं। ऐसे में सवाल उठता है कि नौकरशाही अथवा राजनीति में सुधार हो तो कैसे? जबतक जनप्रतिनिधि ईमानदारी एवं निष्पक्षता का सबूत नहीं देंगे तब तक सुधार की गुंजाइश नहीं है। सुधार ऊपर से नीचे यानी फिल्ट्रेशन सिद्धांत पर कारगर होता है, लेकिन मौजूदा दौर की राजनीति में नेताओं के चाल, चरित्र और चेहरे को देखकर क्या यह लगता है कि वे साहस और ईमानदारी का परिचय देंगे?

(६४)प्रश्नः 'वंदे मातरम्' कहने से किसी कौम को हमेशा क्यों भरमाया जाता है?

उत्तरः हाँ, यह सच है कि वंदे मातरम् कहने से किसी कौम को हमेशा भरमाया जाता है। आखिर तभी तो एक सोलह साल की नाहिद आफरीन बच्ची से खुद को दुनिया का सबसे ताकतवर संगठन बताने वाला आईएसआईएस खौफ खाता है। नाहिद आफरीन भारत के उस असम की बेटी है जो एक मुद्दत तक अलगाववाद की आग में जलती रही। वह बच्ची गायिका है और एक मंच कलाकार है जिसका कहना है कि अल्लाह ने उसे संगीत सौगात

में तोहफा के रूप में दिया है। मगर आईएसआईएस का कहना है कि नाहिद आफरीन का स्टेज परफॉरमेंस शरीयत के खिलाफ है। इस्लाम में गाना-बजाना मना है। अब जब नाहिद को होजोई जिले कें कॉलेज में 25 मार्च, 2017 को एक कार्यक्रंम देना था तो आईएसआईएस उसके खिलाफ पर्चेबाजी करना प्रारंभ कर दिया और नाहिद के खिलाफ फतवे जारी किए गए, जिसमें उसे जान से मारने तक की धमकी भी दी गई। अब इसे आप क्या कहेंगे? यही न कि आईएसआईएस एक ओर जहाँ हथियार के बल पर सूरमा तो बनता है, वहीं दूसरी ओर सोलह साल की एक मासूम के अलाप से डर गया और उसे यह खौफ हो गया कि नाहिद आफरीन का बुलंद अलाप सदा बन कर दुनिया भर के मुसलमानों को उसके खिलाफ एकजुट कर देगा।

असम के 46 मौलवियों के फतवे ने भी इंडियन आइडल की सोलह वर्षीय नाहिद आफरीन गायिका को धमकाने की कोशिश की है, लेकिन उसने अपने संगीत को खुदा का तोहफा बताकर उसे जारी रखने की हिम्मत दिखाई है। नाहिद ने मौलवियों के जवाब में उचित ही कहा कि अगर वह अपना संगीत जारी नहीं रखेगी तो वह खुदा की अनदेखी करेगी। सच तो यह है कि खुदा की अनदेखी तो वे मौलवी या आतंकवादी कर रहे हैं जो न तो एक बच्ची की प्रतिभा का सम्मान कर रहे है और न ही भारतीय उपमहाद्वीप में इस्लाम और संगीत के दीर्घकालिक रिश्ते की कद्र कर रहे हैं। कई बार ऐसे फतवे उन युवा प्रतिभाओं और उनके परिवारवालों के भीतर भय पैदा करते हैं जो मीडिया और फिल्मी दुनिया में जगह बना रहे होते हैं। ऐसी ही घटना कश्मीर की लड़की जायरा वसीम के साथ भी हुई थी जिसने अमीर खान की 'दंगल' फिल्म में पहलवान बेटी की भूमिका निभाई थी।

मुझे यह बात समझ में नहीं आती है कि जब मुसलमान 'मादरेवतन-जिंदाबाद' तो कहते हैं, लेकिन 'भारतमाता की जय' या 'वंदे मातरम' कहने से आखिर इनकार करते हैं? कौन हैं वो लोग जो ऐसी साजिश रचते हैं? इन्हें हमारी सरजमीं पर घुसपैठ की इजाजत किसने दे रखी है? वक्त की माँग है कि भारत में रहने वाला हर वाशिंदा अपने आसपास दिखने वाली ऐसी अमरबेल को जड़ से उखाड़ फेंके, ताकि किसी नाहिद की इबाबत में कोई खलल ना पड़े।

वैसे भी भारतीय उपमहाद्वीप का कला और संगीत जगत हिंदुओं और मुस्लिमों की साझी विरासत की शानदार गवाही देता है। बल्कि सच तो यह है कि यह ऐसी निर्मल धारा है जहाँ पर वास्तव में गंगा-जमुनी तहजीब

का निर्माण होता है। उस्ताद विलायत खां, उस्ताद बिस्मिल्ला खां, उस्ताद बड़े गुलाम अली खां, उस्ताद अब्दुल करीम खां, उस्ताद अल्ला दिया खां और बेगम अख्तर, शमशाद बेगम, नूरजहाँ जैसी पुरानी पीढ़ी की हस्तियों से लेकर परवीन सुल्ताना, नीलिमा खातून जैसी आज की महिला और पुरुष कलाकारों की सूची बहुत लंबी है। दक्षिण एशिया की यह विरासत अनमोल है और इसे समाज और सरकार को बचाकर रखना चाहिए और फतवे जाहिर करने वाले मौलवियों, जो आशाराम बापू जैसे कायरों के सगे भाई दिखते हैं को ऐसा जवाब मिलना चाहिए जिससे उन्हें मुँह की खानी पड़े, ताकि वंदे मातरम् कहने से किसी कौम को पुनः भरमाया न जा सके।

(६५)प्रश्नः पिछले दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय के रामजस कॉलेज का घटनाक्रम क्या अभिव्यक्ति की आजादी का ही प्रश्नमात्र है या देश की अखंडता, एकता, संप्रभुता और अस्मिता पर प्रहार करने का कुत्सित षड्यंत्र?

उत्तरः विगत 22 फरवरी, 2017 को दिल्ली विश्वविद्यालय के रामजस कॉलेज परिसर में 'कश्मीर माँगे आजादी', 'भारत तेरे टुकड़े होंगे' ....जैसे नारे लगे। आपको याद होगा कि इसके एक वर्ष पूर्व 2016 में जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय परिसर भी इसी तरह के राष्ट्र विरोधी नारों से गूँज उठा था। दोनों घटनाओं का किरदार और उसकी विचारधारा मुख्यरूप से एक थी। निश्चित रूप से दोनों शैक्षणिक परिसर की घटना लोकतांत्रिक-संवैधानिक मूल्यों पर आघात था। ऐसा लगता है जो संगठन के लोग राष्ट्र विरोधी नारे लगा रहे थे उनके संगठनात्मक इतिहास और वैचारिक अधिष्ठान में इन लोकतांत्रिक-संवैधानिक मूल्यों का कोई स्थान नहीं है।

दरअसल, इस देश में वामपंथी दर्शन के सबसे बड़े शिकार भारत के बहुलतावादी संस्कृति, राष्ट्रवादी संगठन और उससे संबंधित कार्यकर्ता रहे हैं। सच तो यह है कि वामपंथी वर्गभेद मिटाने के लिए जिस सांस्कृतिक क्रांति का शंखनाद करते हैं, वह वस्तुतः वैचारिक विरोधियों के लहू से सिंचित हैं, क्योंकि उनके नेता और कार्यकर्ताओं ने हिंसा को ही अपनी विचारधारा को पोषित करने का माध्यम बनाया और उन्हें असहमति सहन नहीं किया जाता। इसमें एक ही नेता और एक ही विचार पर विश्वास रखने का सिद्धांत है। आपने देखा या सुना नहीं कि अपने राजनीतिक और वैचारिक विरोधियों को समाप्त करने के मामले में जहाँ क्रूर वाम तानाशाह लेनिन-स्टालिन ने हिटलर को पीछे छोड़ दिया, वहीं माओ से तुंग ने भी साम्यवाद के नाम

पर लाखों निरपराधों का खून बहाया। दरअसल, साम्यवाद में मानव जीवन और उसके अधिकारों का कोई स्थान नहीं है।

मार्क्सवादी छात्र इकाई आइसा और एसएफआई सदस्यों द्वारा आजादी के नारे उसी मानसिकता के परिचायक हैं जिसने भारत को कभी एक राष्ट्र के रूप में स्वीकार नहीं किया। उन्होंने 15 अगस्त, 1947 के बाद भी देश को स्वतंत्र नहीं माना। उन्होंने 1948 में भारतीय सेना के खिलाफ हैदराबाद के रजाकरों की पूरी मदद दी। 1962 के युद्ध में वामपंथी चीन के साथ खड़े रहे। भारतीय वामपंथी पाकिस्तान और चीन इन दोनों शत्रु देशों के अग्रिम दस्ते का काम करते हैं। यही कारण है कि भारतीय राजनीति से उनके पांव उखड़ते नजर आ रहे हैं, फिर भी इससे पाठ न लेकर भारत को पुनः विभाजित करने की ही आजादी माँग रहे हैं। उनकी विभाजनकारी नीति की पुनरावृत्ति आज भी वे देश के विभिन्न राज्यों में करना चाहते हैं और यह अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर इस देश की एकता, अखंडता, संप्रभुता और अस्मिता पर प्रहार करने का कुत्सित षड्यंत्र निश्चित रूप से है।

(६६)प्रश्नः मेधा के धनी और सबसे प्रभावशाली माने जाने वाले भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी आम आदमी की उम्मीदों पर खरे क्यों नहीं उतर पा रहे हैं?

उत्तरः मेधा के धनी और सबसे प्रभावशाली भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी आम आदमी की उम्मीदों पर खरे इसलिए नहीं उतर पा रहे हैं, क्योंकि काम करने का उनका तौर-तरीका ठीक नहीं है। भले ही भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी लोक सेवक कहलाते हों, लेकिन उनकी कार्यशैली यह नहीं प्रकट करती कि उन्हें वास्तव में लोक की चिंता सताती है।

हालांकि सिविल सेवा दिवस पर भारत के प्रधानमंत्री ने भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को एक बार फिर प्रेरित-प्रोत्साहित करने की कोशिश की और उन्हें नसीहत के साथ हिदायत भी दी जिसका केंद्र सरकार से संबद्ध नौकरशाही पर कुछ-न-कुछ सकारात्मक असर पड़ा है, लेकिन उसे अभी पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। नौकरशाहों को अपनी रीति-नीति बदलने के मामले में अभी बहुत कुछ करना बाकी है। भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी यदि ठान लें तो क्या कुछ नहीं हो सकता। निःसंदेह वे यदि चाह लें, तो कुछ मामलों में हालात रातों-रात बदल सकते हैं, लेकिन कई बार वर्षो बीत जाने के बाद भी सामान्य से मसले जस-का-तस बने रहते हैं। यदि अधिकारी काम करने का अपना तरीका

बदलें और साथ ही अपने हर फैसले का राष्ट्रहित की कसौटी पर कसें, तो बात बन सकती है, लेकिन इसके लिए उनकी मानसिकता में बदलाव आना जरूरी है और उनकी कार्यशैली भी बदले। जब तक भारतीय प्रशासनिक सेवा के रंग-ढंग नहीं बदलते तबतक सरकारी तंत्रं में सुधार की उम्मीद पूरी होने वाली नहीं है।

कई राज्यों में नौकरशाही के राजनीतिकरण की समस्या इतनी गंभीर हो गई है कि सत्ता परिवर्तन होते ही ढेर-के-ढेर अधिकारियों के तबादले करने पड़ते हैं, क्योंकि तमाम नौकरशाहों ने अपने-अपने राजनीतिक आका तलाश लिए हैं। कई बार वे भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों की तरह से काम करने की बजाय राजनीतिक दल विशेष के समर्थकों जैसा आचरण करते दिखते हैं। यह सही है कि राजनीतिक दल नौकरशाहों को अपने मिजाज और अंदाज में ढालने की कोशिश करते हैं, लेकिन आखिर इसका क्या औचित्य कि आईएएस अधिकारी उनकी इस अपेक्षा को पूरा करने के लिए तत्पर नजर आएँ?

(६७)प्रश्नः क्या राष्ट्रपति चुनाव का २०१९ के लोकसभा चुनाव पर कोई प्रभाव पड़ेगा? यदि हाँ, तो कैसे?

उत्तर: हाँ, राष्ट्रपति चुनाव का 2019 के लोकसभा चुनाव पर काफी प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि रामनाथ कोविंद, के.आर. नारायणन के बाद देश के दूसरे दलित राष्ट्रपति हुए, पर हिंदी इलाके से वे पहले दलित राष्ट्रपति हुए हैं। यह बात चुनाव समीकरणों को बदलेगी, क्योंकि उत्तर प्रदेश से रामनाथ कोविंद के रूप में गैर-जाटव दलित के चुने जाने से यह स्पष्ट है कि भाजपा की दृष्टि इस प्रदेश पर गहरी है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने कई तरह के संवैधानिक पदों पर न केवल कुशलतापूर्वक काम किया है, बल्कि अब तक उन पर कोई आरोप नहीं लगा है। बिहार के दो साल तक राज्यपाल के पद पर रहकर प्रशंसनीय कार्य किया है। इस ख्याल से राष्ट्रपति के पद पर रामनाथ कोविंद जी का चुनाव 2019 के लोकसभा चुनाव अभियान का प्रस्थान बिंदु होगा। 2014 के लोकसभा चुनाव में भी नरेन्द्र मोदी ने दलित मतदाता को अपने साथ लाने का प्रयास किया था और 2017 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में भी नरेन्द्र मोदी और अमित ष्ठाह की जोड़ी ने काफी सावधानी से छोटी दलित उप-जातियों पर ध्यान दिया था। सच तो यह है कि भाजपा बड़ी सावधानी से अपने ऊपर लगा 'सवर्ण' का बिल्ला हटा रही है। भाजपा पर अबतक लगा सांप्रदायिकता का 'दाग' तो

लगभग मिट ही चुका है। इन सब बातों को लेकर यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति के चुनाव का 2019 के लोकसभा चुनाव पर प्रभाव पड़ेगा।

यह बात ठीक है कि राष्ट्रपति जैसे देश के सर्वोच्च पद को किसी जाति या धर्म से जोड़ना कतई श्रेयष्कर नहीं है, पर यहं भी सच है कि अपने देश में दलित राजनीति तकरीबन हर राजनीतिक दल के कार्यक्रम में रही है, लेकिन यह भी सही है कि प्रधानमंत्री बनने के बाद नरेन्द्र मोदी बार-बार यह रेखांकित करते रहे हैं कि उनकी सरकार समाज के हर वर्ग को अपने साथ जोड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। चूंकि देश में दलितों की आबादी अच्छी खासी है और कई राज्यों में वे निर्णायक स्थिति में भी हैं इसलिए भाजपा को 2019 के लोकसभा चुनाव में लाभ मिलना तय है।

(६८)प्रश्नः इस देश की क्या यह एक बड़ी विडंबना नहीं है कि राजनीतिक स्वार्थवश विकास से जुड़ी हर पहल को अमीर-गरीब के चश्मे से देखा जाने लगा है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, इस देश की यह एक बड़ी विडंबना है कि राजनीतिक स्वार्थ के कारण विकास से जुड़ी हर पहल को अमीर-गरीब के चश्मे से देखा जाने लगा है। देश का पीछा न तो जाति आधारित राजनीति से छूट रहा है और न ही अमीर बनाम गरीब की राजनीति से। अभी-अभी अहमदाबाद-मुंबई बुलेट ट्रेन परियोजना को लेकर भारत और जापान के बीच हुए समझौते को साकार कर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने जब अपने वादे का पूरा करने के क्रम में जापानी प्रधानमंत्री शिंजो आबे द्वारा अहमदाबाद में बुलेट ट्रेन की नींव रखी गई तब विपक्षी दलों के कई नेता बुलेट ट्रेन परियोजना की आलोचना करना शुरू कर दिया यह दलील देकर कि करीब एक लाख करोड़ रुपए की इस परियोजना से गरीबों को कोई फायदा नहीं मिलने वाला। यह एक कुतर्क के अलावा और कुछ नहीं। एक तो इस परियोजना की 80 प्रतिशत लागत जापान वहन कर रहा है और वह भी जिन आसान शर्तों पर भारत को वह कर्ज दिया है उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। मुझे लगता है कि बुलेट ट्रेन को अभिजात्य वर्ग के लिए उठाया गया कदम बताकर विपक्षी नेता कुल मिलाकर अपनी संकीर्ण सोच का ही प्रदर्शन कर रहे हैं।

आज जिस तरह का विरोध बुलेट ट्रेन के नाम पर किया जा रहा है वैसा ही कुछ दिल्ली मेट्रो के लिए भी किया गया था। दिल्ली में जब सार्वजनिक परिवहन के नए साधन के रूप में बिना किसी विदेशी निवेश के दिल्ली सरकार और केंद्र सरकार के सहयोग से मेट्रो ट्रेन की शुरुआत की

जा रही थी तब उसका विरोध यह कहकर किया गया था कि इस पर तो अमीर लोग ही सफर करेंगे। आज 25 लाख से अधिक लोग मेट्रो में सवारी कर रहे हैं, जिनमें हर वर्ग के लोग शामिल हैं। इसी प्रकार कम्प्यूटर के चलन के वक्त भी उसे गरीब विरोधी साबित करने की कोशिश की गई थी। इसी तरह जब हवाई सेवाओं की शुरुआत की जा रही थी तो भी उसे भारत जैसे देश के लिए अनुपयुक्त बताया गया था। सवाल यह है कि क्या आज हवाई सफ़र केवल अमीरों के लिए है और उससे गरीबों को कोई लाभ नहीं? सच तो यह है कि हवाई रूट के विस्तार और सस्ती उड़ान सेवाओं की शुरुआत के साथ एक बड़ी संख्या में आम लोग भी हवाई सफ़र करने लगे हैं। क्या नेताओं को ऐसा लगता है कि जबतक गरीबी दूर न हो जाए तबतक किसी तरह के कोई नए काम न किए जाए?

सच तो यह है कि बुलेट ट्रेन के तमाम सामाजिक और मनोवैज्ञानिक फायदे भी मिलेंगे। सरकार आम और खास लोगों के बीच की खाई को पाटना चाहती है और इससे ऐसा करने में बड़ी मदद मिलेगी। बुलेट ट्रेन को अभी भले ही अभिजात्य मानकर उपहास उड़ाया जा रहा हो, लेकिन भविष्य में यह आम लोगों की आवाजाही में एक क्रांतिकारी भूमिका निभाएगी। बुलेट ट्रेन चलने के बाद उम्मीद जताई जा रही है कि करीब 40,000 मुसाफिर रोजाना इससे सफर करेंगे जो आंकड़ा आगे चलकर 1,56,000 का स्तर भी छू सकता है। इसके और भी दूरगामी परिणाम होंगे। मसलन बुलेट ट्रेन से महानगरों के बीच आवाजाही इतनी आसान हो जाएगी कि कामकाज के लिए लोगों को उसी श्हहर में नहीं रहना पड़ेगा। इसके व्यापक सामाजिक लाभ होंगे यानी कोई व्यक्ति श्हहर में रहने की उँची कीमत चुकाए बिना ही शहरी तंत्र से जुड़े पूरे लाभ उठा सकता है।

इसके अतिरिक्त भारत में तेज रफ्तार रेल के आने से युवाओं के लिए रोजगार और कौशल के अवसर बढ़ेंगे जिससे कुशल भारत अभियान को भी बल मिलेगा। परियोजना पूरी होने के बाद उसके परिचालन और रखरखाव के लिए प्रत्यक्ष रूप से जहाँ 4000 लोगों को रोजगार मिलेगा, तो वहीं लगभग 16000 लोगों को इससे अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिलने की संभावना है।

सच तो यह है कि तरक्की की राह पर आगे बढ़ने के लिए बड़े सपने देखना और उन्हें पूरा करना बहुत जरूरी है। महाशक्ति बनने की दिशा में अग्रसर भारत और उसके लोगों के लिए बुलेट ट्रेन एक अहम परियोजना

है। किसी भी परियोजना की सफलता में केवल सरकारों, सरकारी एजेंसियों, इंजीनियरों और अधिकारियों का हाथ नहीं होता है, बल्कि जनता की भी भूमिका हो सकती है। सकारात्मकता के साथ परियोजना को देखने से ही उसे पूरा करने वालों को मनोबल मिलता है। मुझे पूरी उम्मीद है कि बुलेट ट्रेन परियोजना समय रहते पूरी होगी और देश तरक्की की राह पर कुलांचे भरेगा।

(६९)प्रश्न: दिल्ली में ३ अक्टूबर २०१० से १४ अक्टूबर तक आयोजित १९वें राष्ट्रमण्डल खेलों में जिस तरह की सक्रियता दिखाई दी, वैसे ही राष्ट्र निर्माण के लिए बनी अन्य सरकारी परियोजनाओं के क्रियान्वयन में क्यों दिखाई नहीं दे सकती?

उत्तर: वर्ष 2010 में 19वें राष्ट्रमण्डल खेलों का आयोजन दिल्ली में करने का निर्णय उसके चार वर्ष पूर्व में ही लिया जा चुका था और उसकी तैयारी की जवाबदेही भारत सरकार के शहरी विकास मंत्रालय, खेल मंत्रालय, दिल्ली सरकार तथा दिल्ली नगर निगम के कंधों पर दी गई थी, किंतु शुरू में तो सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी रही और अंत के कुछ महीनों में जब कुछ गलत नजर आने लगा, देश की प्रतिष्ठा पर आँच आने का डर सताने लगा, तो प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह को हस्तक्षेप करना पड़ा। प्रधानमंत्री की नाराजगी का ही नतीजा था कि राष्ट्रमण्डल खेलों की तैयारी ठीक से और समय पर पूरी हो गई और हम न केवल अपनी ही आँखों में गिरने से बच गए, बल्कि हमारी नाक कटने से भी बच गई।

गौरतलब बात यह है कि कछुए की चाल चलते रहे उन विशेषज्ञों, अमलाशाही, ठेकेदारों और मजदूरों पर अदृश्य मुक्के की थाप पड़ने के पश्चात् सबकी कार्यकुशलता अचानक बढ़ गई और काम रास्ते पर आ गया। इससे यह प्रतीत होता है कि इस देश की नौकरशाही, कर्मचारी, ठेकेदार और मजदूर वास्तव में उतने काहिल या कामचोर नहीं जितने आमतौर पर समझे जाते हैं। सच तो यह है कि यदि वे चाहें, तो अपने कर्तव्य व दायित्व का निर्वहण ठीक से और समय पर कर सकते हैं, बशर्ते कि इसके लिए उनपर चाबूक की फटकार पड़े। चाबुक का डर न हो तो सब कुछ बिखरा-बिखरा सा पड़ा रहता है। ऐसा नहीं है कि लोगों में चुस्ती नहीं रहती है। वस्तुत: उच्चस्थ अधिकारियों की उदासीनता अथवा शिथिलता से भी वह चुस्ती उन अमलाशाही के भीतर सोई रहती है। वह जागती तब है जब उन्हें निलंबित या बरखास्त होने का डर पैदा हो जाता है। संभवत: हमारा राष्ट्रीय चरित्र ही ऐसा हो गया है। निश्चय ही यह कोई अच्छी हालत नहीं

कही जाएगी। इसी आधार पर निजी क्षेत्र को सार्वजनिक क्षेत्र से ज्यादा चुस्त और कार्यकुशल बताया जाता है।

इस दृष्टि से आपका यह प्रश्न सर्वथा जायज है कि राष्ट्रमण्डल खेल, 2010 के आयोजन में जिस तरह की सक्रियता दिखाई दी वैसी ही अन्य सरकारी परियोजनाओं के क्रियान्वयन में क्यों नहीं दिखाई दे सकती? गरीबों के लिए सरकारी अनाज देर से पहुँचता है, बी.पी.एल. कार्ड निर्गत करने में महीनों लग जाते हैं। सड़क मरम्मत के इंतजार में बरसों बिलखती रहती है, बिजली के खंभे लग जाते हैं, पर बिजली का तार जोड़ने में कई साल लग जाते हैं, नौकरीवाले आज अवकाश प्राप्त करते हैं और उनकी पेंशन एवं उपादान भुगतान आदेश कई साल के बाद निर्गत हो पाता है आदि आदि।

अब सवाल उठता है दिल्ली में आयोजित राष्ट्रमण्डल खेलों के आयोजन में देर से ही सही जैसी चुस्ती और मुस्तैदी सरकार के द्वारा दिखाई गई वैसी ही चुस्ती और मुस्तैदी राष्ट्र निर्माण की अन्य परियोजनाओं के क्रियान्वयन में क्यों नहीं दिखाई जा सकती है? चुस्ती और दुरुस्ती दिखाई जा सकती है, जरूरत केवल इस बात की है कि आज जो हमारा राष्ट्रीय चरित्र बन गया है उसमें अमलाशाही को चाबुक का डर पैदा किया जाए। जैसे ही उन्हें यह अहसास होने लगेगा कि अपने काम ठीक से और समय पर नहीं करने से उन्हें निलंबित या मुयत्तल भी किया जा सकता है, तो वे ठीक रास्ते पर आ जाएँगे और उनमें चुस्ती भी आ जाएगी।

(७०)प्रश्न: पिछले एक दशक में खेलों का परिदृश्य ही बदल गया है। खेलों ने नई उपलब्धियाँ तो हासिल की ही इसके जरिए कैरियर के नए आयाम भी खूले हैं और युवाओं में एक नए तरह का आत्मविश्वास भी आया है। इस पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर: आपकी बात से मैं सहमत हूँ। खेलकूद में दिन-रात व्यस्त रहने वाले युवा की जिंदगी को बर्बाद कहकर खिल्ली उड़ाना अब बीते दिनों की बात हो गई है। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आए दिन होने वाले तरह-तरह के मैचों एवं प्रतियोगिताओं के कारण खेल, खिलाड़ी और उससे जुड़े लोगों के सामने आज एक बहुत बड़ा बाजार मौजूद है, जिसमें पद, पैसा और प्रतिष्ठा सब कुछ हाजिर हैं।

दरअसल खेल ऐसा कर्म है जो व्यक्ति को अनुशासित बनाता है, उद्यम के लिए प्रेरित करता है और हीनताबोध को भी दूर करता है। उसमें व्यक्ति को हम उसके क्षेत्र, भाषा, जाति या धर्म की बजाय सिर्फ कौशल के

आधार पर पसंद करते हैं। इसलिए मेरे विचार से अविकसित और पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा और उद्योग के साथ-साथ खेलों के आधार पर ढाँचे का भी विकास होना चाहिए। मेरा तो यहाँ तक ख्याल है कि नक्सल प्रभावित क्षेत्रों की विकास योजनाओं में अगर खेलों को शामिल कर लिया जाए, तो उसके बेहतर परिणाम फौरन दिखाई पड़ेंगे।

(७१)प्रश्न: राष्ट्रमण्डल खेलों में लड़कियों की बढ़ती भागीदारी और उनकी सफलता का अनुपात लड़कों की तुलना में बेहतर होने पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

उत्तर: एक समय था जब खेलों में उच्च आर्थिक वर्ग के लोगों का बोलबाला था। शूटिंग में या तो राजघरानों के लोग आते थे या सेना के अधिकारी, टेनिस, टेबुल टेनिस और बैडमिंटन अब भी शहरी मध्यवर्ग के खेल हैं, पर जैसे-जैसे खेलों में असली भारत यानी गाँवों के लोगों का प्रवेश होता जा रहा है, हमारे पदकों की संख्या बढ़ती जा रही है। 19वें राष्ट्रमण्डल खेलों में तो भारत के एक तिहाई पदक लड़कियों ने जीते हैं। निश्चित रूप से न केवल लड़कियों की भागीदारी बढ़ी है, बल्कि उनकी सफलता का अनुपात लड़कों की तुलना में बेहतर है। हरियाणा के महावीर सिंह की पाँच बेटियों में उनकी एक बेटी गीता ने स्वर्ण और दूसरी बेटी बबिता ने रजत जीता है। ये बेटियाँ अपने समुदाय के भीतर बदलाव लाने में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगी वह बड़े सरकारी प्रचार कार्यक्रमों से संभव नहीं है। नासिक के एक छोटे से आदिवासी गाँव की कविता हो या हैदराबाद के बेरोजगार कूक की बेटी पुजूषा मलाईकल, राँची के ऑटोचालक की लाडली दीपिका हो या आठ साल के अस्वस्थ बेटे से दूर रहकर स्वर्ण पदक की विजेता कृष्णा पुनिया सभी ने दिखा दिया कि वे किसी से कम नहीं। किसी की राह में समाज आया तो किसी की गरीबी रोकने की कोशिश की, लेकिन कुछ कर दिखाने का जज्बा इन्हें रोक नहीं पाया और कर दिखाया। यह राष्ट्रमण्डल खेलों की देन भी है और सबक भी। अपनी मेहनत, जोश और जुनून में लड़कियों ने खेलों के इतिहास में नए हस्ताक्षर किए, यह निश्चित ही लोकप्रिय खेलों में भारत के बेहतर भविष्य के आधार बनेंगे।

(७२)प्रश्न: क्या कर्जमाफी के संदर्भ में किसानों के संकट का सही तरह समाधान किया जा सकता है?

उत्तर: उत्तर प्रदेश की योगी आदित्यनाथ सरकार ने अपने मंत्रिपरिषद की पहली बैठक में अपने किसानों के एक लाख तक के कर्ज माफ कर दी।

फिर महाराष्ट्र सरकार को किसानों की कर्जमाफी की माँग के समक्ष झुकना पड़ा और किसानों के कर्ज माफ कर दिए गये जिससे महाराष्ट्र पर तीस हजार करोड़ रुपए का जो अतिरिक्त बोझ पड़ेगा उसकी भरपाई सरकार कैसी करेगी, इस बारे में फिलहाल कुछ स्पष्ट नहीं हो सका है।

भले ही कर्जमाफी की ऐसी घटनाएँ राजनीतिक तौर पर लाभकारी हों और किसानों को फौरी राहत देने वाला हो, लेकिन यह वह रास्ता नहीं जिस पर चलकर किसानों के संकट का सही तरह समाधान किया जा सकता है। विडंबना यह है कि किसान संगठनों और किसान हितों की राजनीति करने वाले नेताओं के साथ-साथ ज्यादातर राजनीतिक दलों ने कुछ ऐसा माहौल बना दिया है कि कर्जमाफी ही किसानों की समस्या का समाधान है।

जब कर्जमाफी की योजना आती है तो वे किसान खुद को ठगा हुआ महसूस करते हैं, जो ईमानदारी से अपना कर्ज चुका देते हैं। बेहतर होगा कि सभी दल यह समझें कि वे संकीर्ण राजनीतिक लाभ के लिए किसानों को गलत दिशा में ले जा रहे हैं। किसानों की कर्जमाफी के मामले में यह कोई ठोस तर्क नहीं कि सरकार बड़े उद्यमियों के कर्ज भी माफ कर देती है, क्योंकि अब ऐसे उद्यमियों पर शिकंजा कसा जा रहा है।

नीति-नियंताओं को यह समझना होगा कि कर्जमाफी की माँग के अनवरत सिलसिले से तभी बचा जा सकता है जब किसान कृषि लागत वसूलने के साथ अतिरिक्त मुनाफा हासिल करने में भी सक्षम रहें।

(७३)प्रश्न: देश के सामने सबसे बड़ी समस्या क्या है?

उत्तर: भ्रष्टाचार की वजह से ही एक तरफ दुनिया में भारत के आर्थिक विकास का डंका बज रहा है तो दूसरी तरफ यहाँ गरीबों की संख्या बढ़ रही है। भ्रष्टाचार के पाँव देश के राजनीतिक क्षेत्र, प्रशासन, न्यायिक सेवा और सेना तक में पसरते जा रहे हैं जो चिंता का विषय है। इसलिए समाज में फैले भ्रष्टाचार के जहर पर तत्काल कठोर कार्रवाई की जरूरत है। इसमें कोई भी देरी देश के हित के सख्त खिलाफ है।

(७४)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि कश्मीरी अलगाववादियों और उसके नेताओं की व्यवहार कश्मीरियत, इंसानियत और जम्हूरियत के खिलाफ रहा है?

उत्तर: हाँ, सागर जी, मुझे भी ऐसा लगता है कि कश्मीरी अलगाववादियों और उसके नेताओं का व्यवहार कश्मीरियत, इंसानियत और जम्हूरियत के खिलाफ रहा है। आखिर तभी तो पिछले दिनों सांसदों का एक सर्वदलीय

प्रतिनिधिमंडल भारत के गृहमंत्री राजनाथ सिंह के नेतृत्व में कश्मीर के दो दिवसीय दौरे पर वहाँ के खासतौर पर जब अलगाववादी नेताओं से मिलने गया, तो खाली हाथ लौट आया, क्योंकि राज्य सरकार के नुमाइंदों, कुछ सरकारी एजेंसियों, कुछ विधायकों के अलावा किसी और ने उनसे बातचीत नहीं की। गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने भी कहा कि कश्मीरी अलगाववादी नेताओं का व्यवहार कश्मीरियत, इंसानियत और जम्हूरियत के खिलाफ था।

दरअसल कश्मीर के अलगाववादी नेता दूध के धुले नहीं हैं। उनमें कईयों के पाकिस्तान से लगाव जगजाहिर हैं, लेकिन संवाद न होने के लिए उन अलगाववादी नेताओं को जिम्मेवार ठहराना इसलिए तर्कसंगत नहीं लगता, क्योंकि सरकार की ओर से पहले उन्हें ऐसा कोई आमंत्रण नहीं गया, फिर जद(यू) या कुछ वामपंथी नेताओं से कश्मीरी अलगाववादी नेताओं की चाय पर चर्चा से क्या निकलने वाला था। वैसे भी आतंकवाद का खात्मा कठोर रूख अपनाए बिना बेहद दुष्कर है। शायद कश्मीर इसी रास्ते पर जा रहा है। कुछ मुट्ठी भर लोगों को उनकी औकात बताना समय का तकाजा है।

सच तो यह है कि सर्वदलीय संसदीय प्रतिनिधिमंडल से अधिकतर सदस्य श्रीनगर स्थित अतिसंरक्षित नेहरू अतिथिशाला से बाहर ही नही निकले और उसी परिसर में इधर-उधर मंडराते रहे। चाहिए तो था कि वे राज्य सरकार और सुरक्षा बलों के उच्चाधिकारियों से मिलकर श्रीनगर के अस्पतालों का दौरा कर वहाँ भर्ती उन सैकड़ों नौजवानों और उनके परिजनों से मिलकर अफसोस जताते हुए कहते- 'कश्मीर ही नहीं, कश्मीरी भी भारत के अविभाज्य अंग है और हमें आपके जख्मों का दर्द है।

दरअसल, कश्मीर की समस्या बुनियादी तौर पर राजनीतिक है, कानून व्यवस्था की नहीं। मगर अभी तक हमारी सरकारें उसके राजनीतिक समाधान की कोशिशों से खुद को अक्सर दूर रखती हैं, क्योंकि उन्हें 'अलोकप्रिय' होने का डर हरदम सताता रहता है। सुरक्षा बलों की बंदूकों और पत्थरबाजी करने वाली जमातों के बीच जिस तरह की संजीदा आवाज की आवश्यकता है, वह घाटी में फिलहाल कहीं दिख नहीं रही है। ऐसे में कश्मीर का फौरी संकट यही है।

जहाँ तक अलगाववादी नेताओं के व्यवहार को कश्मीरियत, इंसानियत और जम्हूरियत होने, न होने का सवाल है, यह तो स्पष्ट है कि जम्मू-कश्मीर में हुर्रियत के कट्टरपंथी धड़े के नेता सैयद अलीशाह गिलानी के व्यवहार में न तो कश्मीरियत और इंसानियत है और न जम्हूरियत, फिर

भी उन्हें जेड श्रेणी की सुरक्षा मिली हुई है और वर्तमान में 560 जवानों को अलगाववादी नेताओं की सुरक्षा में तैनात किया गया है। इन्हें मिल रही सुरक्षा, वाहन और स्वास्थ्य सेवाओं में कटौती की जरूरत है।

इन अलगाववादी नेताओं और संगठनों के प्रति सख्त रवैया अपनाते हुए उन्हें यह संदेश देना जरूरी है कि वे न तो कश्मीर के एकमात्र और वास्तविक प्रतिनिधि हैं और न ही उनकी मनमानी शर्तों के आगे किसी तरह समझौता किया जा सकता है। उन्हें यह अहसास होना चाहिए कि वह अनंतकाल तक अपना दोहरा खेल खेलते नहीं रह सकते। पिछले एक माह से कश्मीर में अशांति और उपद्रव की जल रही आग को वे शांत नहीं होने देना चाहते , क्योंकि न तो उन्हें कश्मीरियों के प्रति श्रद्धा और स्नेह है और न ही उनमें इंसानियत का भाव और ना ही वे जम्हुरियत को पसंद करते हैं। कश्मीर में आतंक फैलाना उनकी सोची-समझी रणनीति का हिस्सा जान पड़ता है। ऐसी विषम स्थिति में केंद्र सरकार के स्तर पर ऐसा कुछ करने की जरूरत है जिससे सैयद अली शाह गिलानी, मीरवाइज उमर फारूख और यासीन मलिक सरीखे अलगाववादी नेताओं को अपने रास्ते सीमित होते नजर आएँ। उन्हें यह अहसास भी कराया जाना चाहिए कि आजादी के नाम पर कश्मीर के भारत से अलग होने का तो सवाल ही नहीं उठता और वे हिंसा के जरिए जो कुछ हासिल करना चाहते हैं उसमें उन्हें ही अंततः नुकसान उठाना पड़ेगा।

दरअसल, कश्मीर में 'इंसानियत, कश्मीरियत और जम्हुरियत' का फॉर्मूला पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संवाद शुरू करने के लिए किया था, मगर यह उम्मीद खत्म तो नहीं हुई, लेकिन वह इस वक्त सिर चढ़ती नहीं नजर आती, क्योंकि प्रतिनिधिमंडल के कुछ सदस्य सैयद अली गिलानी से मिलने उनके घर गए तो उन्होंने दरवाजा तक न खोला और यही रवैया और दोनों आतंकवादी नेताओं का भी रहा जो इंसानियत और कश्मीरियत दोनों के खिलाफ हैं। फिर संवाद के लिए राजी न होना जम्हुरियत के प्रति उदासीनता है।

(७५)प्रश्नः आज जब दुनिया के तमाम देश शहरीकरण से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने और वैश्विक जरूरतों के अनुरूप अपने शहरों को सजाने-संवारने की योजनाएँ बना रहे हैं, तो क्या हमें भी अपने मौजूदा शहरों को उपयुक्त बनाने तथा अच्छे नए शहरों के निर्माण के लिए तेजी से कदम बढ़ाने की जरूरत नहीं है? इस संदर्भ में आप क्या महसूस करते हैं?

उत्तर: भारतीय शहरों के बारे में इधर कुछ अध्ययन रिपोर्टो से जो महत्वपूर्ण तथ्य उभरकर सामने आए हैं उसमें कहा गया है कि अब भारत में तीव्र शहरीकरण को रोका नहीं जा सकता है, क्योंकि गाँवों से शहरों की ओर लोगों का पलायन तेजी से हो रहा है। दूसरी बात यह कि शहरीकरण भारत के चमकीले आर्थिक विकास का आधार बनेगा। इसी प्रकार मशहूर शोध एजेंसी मैकिंजी ने हाल के अपने एक अध्ययन में कहा है कि भारत की मौजूदा शहरी आबादी 30 करोड़ के आस-पास है और वर्ष 2030 तक यह बढ़कर करीब 60 करोड़ हो जाएगी, ऐसे में भारत को चिंतित होने की बजाय बढ़ते शहरीकरण के लाभ होंगे। भारतीय शहरों की कमियों को दूर करने तथा उन्हें नई वैश्विक जरूरतों के अनुरूप प्रतिस्पर्धी शहरों को पहचान देनी होगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रकाशित विश्व जनसंख्या परिदृश्य (वर्ल्ड पोपुलेशन प्रोस्पेक्ट्स) में कहा गया है कि 2050 तक दुनिया की आबादी नौ अरब हो जाएगी और इसमें सबसे अधिक भारतीय होंगे। हमारे यहाँ जनगणना के आँकड़े बता रहे हैं कि इस देश में प्रति वर्ष एक करोड़ अस्सी लाख आबादी बढ़ रही है।

ऐसी स्थिति में गाँवों में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसी सुविधाओं की कमी की वजह से गाँवों से लोगों का तेजी से शहरों की ओर जब पलायन जारी है, तो मौजूदा शहरों को उपयुक्त बनाने के साथ-साथ नए और अच्छे शहरों के निर्माण के लिए निश्चित रूप से हमें तेजी से कदम बढ़ाने होंगे। इस समय भारत के शहर भी बिजली, पानी, खराब सड़कें और भारी प्रदूषण के शिकार हैं। दुनिया की सबसे अधिक मलिन बस्तियाँ भारत में हैं। कुल 52 हजार मलिनबस्तियों में शहरों के छह करोड़ से अधिक लोग रहते हैं। इनके सामान्य जीवन स्तर के लिए जरूरी मूलभूत सुविधाएँ मुहैया करानी होगी।

(७६)प्रश्न: गाँधी के देश में भी अहिंसक आंदोलन की स्थिति काफी निर्बल एवं कमजोर है। आखिर क्यों? इस दृष्टि से अन्ना हजारे और बाबा रामदेव के आंदोलन को आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तर: आपका कहना शत-प्रतिशत सही है कि गाँधी के देश में भी अहिंसक आंदोलन की स्थिति काफी निर्बल एवं कमजोर है। अहिंसक आंदोलनों जैसे धरना, प्रदर्शन, भूख हड़ताल तथा हाथ या मुँह पर काली पट्टी बाँधकर रैलियों के आयोजन को सम्मान की नजर से देखने की बजाय उन्हें हिंसक

तरीके से कुचलने एवं दबाने के प्रयत्न किए जाते हैं। आँसू गैस, लाठी चार्ज से भी परहेज नहीं। खाद, बिजली, पानी की माँग करने वाले निहत्थे किसान हों या स्कूल कॉलेजों में बढ़े शुल्क को कम करने के लिए छात्र-छात्राओं का प्रदर्शन सभी पर लाठी चार्ज आम बात है। कभी-कभी तो गोलियाँ दागने में भी झिझक एवं परहेज नहीं। ऐसे में अगर अहिंसक आंदोलनों के प्रति आवाम के दिल में अनास्था के अंकुर प्रस्फुटित होते हैं, तो कोई आश्चर्य नहीं। यह स्वाभाविक है कि जब शासन और प्रशासन की बेरूखी की वजह से अहिंसक आंदोलन आम आदमी की नजर में अब उतने प्रभावी एवं फलदायी नहीं हो पाते हैं। बापू की बात कुछ और थी। उनका व्यक्तित्व चामत्कारिक था। उनकी अपनी समझदारी थी कि अहिंसक आंदोलन अभिजनों के लिए होते हैं, आम आदमी के लिए नहीं।

दूसरी बात यह है कि पुलिस को असीमित एवं अपरिमित अधिकार हासिल हैं और प्राय: सभी राज्यों ने अपने स्तर पर काले कानून बना रखे हैं जिसके परिणामस्वरूप शक एवं संदेह का हवाला देकर पुलिस किसी को भी रोक सकती है, गिरफ्तार कर सकती है और हवालात एवं हिरासत में बंद कर सकती है। पैसा ऐंठना और हिरासत में रखना तो पुलिस के बाएँ हाथ का खेल है। दरअसल, सरकार की दुराग्रह नीति ने अहिंसक आंदोलनों को गहन अँधकार के हवाले कर रखा है। सरकार ही अगर अहिंसक आंदोलनों को हिंसक तरीके से कुचलने पर उतारू है, बजाय जनता की आवाज सुनने के, तो फिर अहिंसक आंदोलन का राष्ट्रीय पटल से विलुप्त होना स्वाभाविक है। सचमुच यह आज के संदर्भ में गंभीर चिंतन-मनन का विषय बन चुका है। सरकार को चाहिए कि वह अहिंसक आंदोलनों के प्रति उदार रूख अपनाए, ताकि जन-जन में राज्य की कल्याणकारी छवि स्थापित हो सके और अहिंसक आंदोलनों के प्रति हतोत्साहित होने की बजाय लोग प्रोत्साहित हों तथा उसके प्रति लोगों की आस्था और विश्वास जगे। इस दृष्टि से देखा जाए तो नई दिल्ली के जंतर-मंतर पर विगत 05 अप्रैल, 2011 से 9 अप्रैल, 2011 तक लोकपाल कानून बनाने के लिए समाजसेवी अन्ना हजारे द्वारा किए गए 97 घंटे के आमरण अनशन और 4 जून, 2011 को विदेशों में जमा चार सौ लाख करोड़ रुपए के कालेधन को राष्ट्रीय संपत्ति घोषित कर उस देश में वापस लाने के उद्येश्य से बाबा रामदेव के द्वारा दिल्ली के रामलीला मैदान में आयोजित अनशन पूरी तरह अपने ढंग का अनूठा अहिंसक आंदोलन था जो आजाद

भारत में किसी गैर-राजनीतिक व्यक्तियों के आह्वान पर शायद इतना बड़ा सत्याग्रह कभी नहीं हुआ था। स्वतः स्फूर्त और बिना कोई हिंसा के इस आंदोलन के दौरान लोगों में उत्साह और विश्वास भरा हुआ था जिससे यह आशा बंधाती हैं कि इस देश के लोग भ्रष्टाचार मिटाने के लिए दृढ़ संकल्पित हैं। दोनों आंदोलन जनाकांक्षाओं के साथ जुड़े थे और इसका दूरगामी प्रभाव होगा। जनांदोलन से अब व्यवस्था परिवर्तन अपरिहार्य होगा। केवल भाषणों और आँकड़ों के बल पर इस देश में लोकतंत्र बिना व्यवस्था बदलाव के अब चलने वाला नहीं हैं। हालांकि 4 जून, 2011 की रात दिल्ली के रामलीला मैदान में बाबा रामदेव और उनके समर्थकों यहाँ तक कि महिलाओं, बच्चों और बुजुर्गो के साथ जो हुआ उसे बर्बरता के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता। केंद्र सरकार ने निहत्थे और अहिंसक आंदोलनकारियों के साथ पशुवत व्यवहार कर भारतीय लोकतंत्र को शर्मसार किया और इसके आपातकाल की यादें ताजा कीं।

(७७)प्रश्नः क्या अब भ्रष्टाचार को जड़ से मिटा पाना वाकई मुमकिन है? या क्या भ्रष्टाचार कभी न सुलझने वाली एवं चिरस्थायी समस्या बन चुकी है?

उत्तरः हाँ, भ्रष्टाचार को जड़ से मिटा पाना मुमकिन है। जरूरत केवल इस बात की है कि राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्तर पर दृढ़ इच्छाशक्ति से इस पर अंकुश लगाने एवं ठोस कदम उठाए जाएँ। सरकारी महकमों में हावी भ्रष्टाचार हर नागरिक को इसका शिकार बनने की घटना अब किसी से छुपी नहीं रह गई है।

पहले हमें यह समझना होगा कि आखिर भ्रष्टाचार है क्या और इसकी जड़ें कितनी गहरी हैं। हर ऐसा आचरण जो अनुशासन से परे हो और सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन करता हो और जिस व्यवहार में पारदर्शिता न दिखाई दे, भ्रष्टाचार के दायरे में आता है। इस दृष्टि से यदि देखा जाए, तो मौजूदा दौर में भ्रष्टाचार देश की कार्यसंस्कृति बन गया है और भ्रष्टाचार को शिष्टाचार के रूप में स्वीकार करने की मौन स्वीकृति दी जा चुकी है, क्योंकि अवसरवादिता के इस युग में जरूरत पड़ने पर अधिकतर लोग अपना काम निकलवाने के लिए किसी न किसी रूप में चाहे उपहार हो या मिठाई का पैकेट अथवा नकद राशि रिश्वत देने में परहेज़ नहीं करते हैं। नतीजतन देश में हर बड़े और छोटे काम बिना किसी लेन-देन के नहीं हो पा रहे हैं। भ्रष्टाचार की यह धारा, चाहे ऊपर से हों या नीचे से दोधारी होकर विकराल

रूप धारण कर चुकी है। और तो और न्यायपालिका तथा भारतीय सेना भी इस जहर से अछूती नहीं रह गई है।

संभवत: आदान-प्रदान का यही रूप आज विकृत एवं विकराल रूप ले चुका है जो समांज व देश को खोखला कर रहा है। ऐसी स्थिति में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि अब भ्रष्टाचार को जड़ से मिटा पाना क्या वाकई मुमकिन है। मेरा मानना है कि इसे जड़ से मिटा पाना नामूमकिन नहीं है। हाँ, इसके लिए लोगों को अपने अधिकार के प्रति जागरूक होने और करने की जरूरत है जिसके लिए शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार के साथ-साथ सूचना के अधिकार का दायरा और व्यापक कर सभी को इस दायरे में लाना होगा। इसके साथ ही देशहित और जनहित से जुड़े अलग-अलग व महत्वपूर्ण जाँच प्रकरणों की प्रगति रिपोर्ट सार्वजनिक होनी चाहिए।

सरकारी कार्यालयों में भ्रष्टाचार रोकने के लिए केंद्रीय सतर्कता आयोग के द्वारा शुरू किए गए रिश्वतरोधी हेल्पलाइन से केवल छोटी मछलियों का ही शिकार किया जा सकेगा। आखिर उस भ्रष्टाचार पर कौन रोक लगाएगा जिसमें लाखों-करोड़ों अथवा अरबों रुपए इधर-उधर होते हैं और जिसे नौकरशाह तथा राजनेता अंजाम देते हैं। दरअसल, भ्रष्ट तत्व इसलिए उत्साहित हैं, क्योंकि वे यह देख रहे हैं कि लाखों-करोड़ों के बारे-न्यारे हो जाते हैं और एक पत्ता तक नहीं हिलता, ताजा उदाहरण 19वें राष्ट्रमण्डल खेलों का है जिसमें हजारों करोड़ रुपए की लूट हुई। अभी तक का अनुभव यही कहता है कि भ्रष्टाचार का जो मामला जितना बड़ा होता है उसमें उतनी ही अच्छे से लिपा-पोती होती है।

(७८)प्रश्न: क्या भारत अपनी आजादी के ७५वें वर्ष यानी २०२२ तक स्वतंत्रता सेनानियों के सपने को पूरा करने के लिए संकल्पित होकर काम कर सकेगा? यदि हाँ, तो कैसे?

उत्तर: हाँ, भारत अपनी आजादी के 75वें वर्ष यानी 2022 तक स्वतंत्रता सेनानियों के सपने को पूरा करने के लिए संकल्पित होकर काम कर सकेगा बशर्ते कि भारत के विकास में न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका के बीच संतुलन हो और सीमा लांघे बगैर अपनी निहित शक्तियों का उपयोग करे। साथ ही सभी संवैधानिक संस्थाओं में आत्मनियमन और निरोध तथा संतुलन की व्यवस्था मजबूत होनी चाहिए।

पिछले कई वर्षों से देश ने महसूस किया है कि विधायिका एवं कार्यपालिका के साथ न्यायपालिका का समय-समय पर टकराव हो रहा है।

यह स्थिति देश के विकास के लिए घातक है। हालांकि न्यायपालिका का मानना रहा है कि जब विधायिका और कार्यपालिका ये दोनों स्तंभ अपनी भूमिका ठीक से नहीं निभाते तभी उसे हस्तक्षेप करना पड़ता है। यह बात बहुत हद तक सही है, मगर कमजोरियाँ सबके अंदर हैं जिसे पहचान कर दूर करने का प्रयास करना होगा। भारतीय संविधान ने तीनों की सीमाएँ बहुत बारीकी से तय की हैं, जिसका मतलब है कि सीमा लांघे बगैर अपनी निहित शक्तियों का उपयोग करें। यह समय की माँग है। यदि नए भारत के संकल्प को पूरा करना है, तो तीनों अंगों को आत्मपरिष्कार करना होगा। सबको समझना होगा कि देश उनका है और इसके प्रति उनकी भी जिम्मेदारी है। महत्वपूर्ण मामलों पर न्यायपालिका भी इस तरह फैसले दे जिससे नए भारत का सपना साकार हो, विधायिका उस ढंग की नीतियाँ बनाए, उसे लागू करने पर निगरानी रखे तथा कार्यपालिका हर हाल में इन्हें लागू करने की अपनी निहित भूमिका पर काम करे।

(७९)प्रश्नः इसरो द्वारा सफलतापूर्वक अपना १००वाँ उपग्रह लांच करने के बाद क्या आपको ऐसा महसूस होता है कि अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में भारत ने बुलंदियों का एक और आसमान छू लिया है?

उत्तर: हाँ, मैं भी ऐसा महसूस करता हूँ कि इसरो द्वारा आँध्र प्रदेश के श्रीहरिकोटा स्थित धवन अंतरिक्ष केंद्र से प्रात: 9.29 मिनट पर अपनी 42वीं उड़ान भरकर 31 उपग्रहों को उनकी कक्षाओं में सफलतापूर्वक अपना 100वाँ उपग्रह लाँच करने के बाद भारत ने अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में तमाम कीर्तिमान अपने नाम कर बुलंदियों का एक और आसमान छू लिया है। ध्रुवीय रॉकेट(मिशन पीएसवएलवी-सी-40) ने पिछले दिनों आँध्र प्रदेश के श्रीहरिकोटा स्थित धवन अंतरिक्ष केंद्र से उसने 31 उपग्रहों को उनकी कक्षाओं में सफलतापूर्वक स्थापित किया। इन उपग्रहों में तीन भारतीय उपग्रह के साथ शेष 28 उपग्रह विदेशी राष्ट्रों यथा कनाडा, फिनलैंड, फ्रांस, कोरिया, ब्रिटेन और अमेरिका के थे।

उल्लेखनीय है कि हमारा ध्रुवीय रॉकेट और उसकी प्रौद्योगिकी इतनी परिपक्व हो चुकी है कि हमें विदेशी ग्राहक भी उपग्रहों के प्रक्षेपण के लिए मिलने लगे हैं। इस उड़ान के पूर्व हमारे ध्रुवीय रॉकेट ने लघु और मध्यम श्रेणी के 209 विदेशी उपग्रहों का सफल प्रक्षेपण कर दिया है। अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुसार विदेशी उपग्रह प्रक्षेपण का किराया पन्द्रह से बीस हजार डॉलर प्रतिग्राम पेलोड(उपग्रहों का भार) है। इस प्रकार इसरो की

विपणन एजेंसी एंट्रिक्स कॉरपोरेशन ने उपग्रह प्रक्षेपण से अच्छी खासी राशि अर्जित की है। अबतक अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के अंतरराष्ट्रीय व्यवसाय में भारत ने एक तिहाई बाजार पर अपना कब्जा कर लिया है।

ध्रुवीय रॉकेट की सफल उड़ान ने इसरो का गौरवर्धन हुआ है। साथ ही पिछली विफल उड़ान से इसरो के वैज्ञानिकों का खोया हुआ आत्मविश्वास भी लौट आया है। इस शानदार सफल उड़ान से उनमें नई उमंग जाग्रत हुई है। यह उड़ान इस मायने में भी विशिष्ट थी कि इसरो के वर्तमान अध्यक्ष ए. एस. किरण कुमार के कार्यकाल की अंतिम उड़ान थी। किरण कुमार के नाम देश के अंतरिक्ष कार्यक्रमों में उपलब्धियों के कई कीर्तिमान दर्ज हैं। वह 14 जनवरी 2018 को यानी कल मकर संक्रांति के दिन अवकाश मुक्त हो रहे हैं। इसरो के भावी अध्यक्ष और अंतरिक्ष विभाग के सचिव डॉ. के. शिवम इसरो के नौवें अध्यक्ष होंगे, के निर्देशन में जीएएलवी की सफल उड़ानें हो चुकी हैं और हमारा यह रॉकेट तकनीकी परिपक्वता अर्जित कर चुका है। उम्मीद है कि इसरो की भावी उड़ानें भी बुलंदियों के नए-नए आसमान छू लेंगी। हमारी शुभकामना इसरो के वैज्ञानिकों के साथ है।

◆◆◆

द्वितीय अध्याय

राजनीतिक प्रश्नोत्तर

(१)प्रश्न: क्या आप भी ऐसा मानते हैं कि जितनी तेजी से आम आदमी पार्टी (आप) का उदय राजनीतिक मंच पर हुआ, उतनी ही तेजी से यह पार्टी विवादों की धूरी बनती जा रही है? आखिर क्यों?

उत्तर: भाई विजय जी, मैं भी ऐसा मानता हूँ कि जितनी तेजी से आम आदमी पार्टी (आप) का उदय राजनीतिक मंच पर हुआ, उतनी ही तेजी यह पार्टी विवादों की धूरी बनती जा रही है। पिछले दो वर्षो में आम आदमी पार्टी ने कई उतार-चढ़ाव देखे, मगर दो साल बीतते-बीतते इस पार्टी को आज सबसे बुरा दिन देखने को मिल रहा है, क्योंकि एक के बाद एक इस 'आप' पार्टी के कुल नौ विधायकों पर जो आरोप लगे हैं, उनमें ज्यादा छेड़खानी, मारपीट और फर्जीवाड़े के हैं। जो दल कभी अपने आचार-विचार में ईमानदारी, नैतिकता, शुचिता, संस्कार की बात कर भ्रष्टाचार मिटाने का दावा करती थी, आज न केवल उसकी कार्यशैली में ये आदर्श एक सिरे से गायब दिख रहे हैं, बल्कि मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल खुद अपने प्रधान सचिव राजेन्द्र कुमार के भ्रष्टाचार में लिप्त होने की वजह से गिरफ्तार किए जाने पर उसके बचाव में खड़े होने की मुद्रा में दिखते हैं। और तो और अब तो इन्हीं की पार्टी के एक वरिष्ठ पूर्व मंत्री ने इनपर भी भ्रष्टाचार आरोप लगा रखे हैं। इसे इस पार्टी की विडंबना नहीं, तो क्या कहेंगे ?

कहा जाता है कि सत्ता आदमी को निरंकुश बना देती है। आम आदमी पार्टी की चाल-ढाल से तो ऐसा लगता है कि वह भी इसी राह पर चल पड़ी है। चिंता और आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस पार्टी ने बड़ी पार्टियों को सिर्फ इसलिए कोसा कि उनमें आंतरिक लोकतंत्र का अभाव है आज उसी पार्टी पर यह आरोप लग रहा है। पार्टी में सत्ता संघर्ष भी जगजाहिर है। सच कहा जाए तो आम आदमी पार्टी भी उन्हीं बीमारियों का शिकार हो गई है जिससे कमोवेश सभी पार्टियाँ ग्रस्त हैं। जितनी तीव्र गति से आम आदमी पार्टी लोगों का भरोसा खोती जा रही है, उससे हमारे जैसे लोगों को चिंतित होना इसलिए स्वाभाविक है कि आम आदमी पार्टी के मुखिया अरविंद केजरीवाल और उनके निकट के सहयोगी उपमुख्यमंत्री मनीष शिशोदिया से बहुत उम्मीद लिए बैठे थे। आम आदमी पार्टी से हमारे

जैसे ढेर सारे लोग मौजूदा राजनीति का विकल्प के रूप में मान बैठे थे। ऐसे सभी लोगों को आम आदमी पार्टी के अबतक के कारनामों से झटका लगा है। इसलिए यह पार्टी जितनी जल्द संभल जाए और अपने बुरे वक्त को दूरकर फिर से तनकर खड़ा हो जाए, समाज और देशहित में उतना ही अच्छा होगा।

इन बातों की चर्चा करते वक्त आम आदमी पार्टी के विधायक करतार सिंह तंवर के तीन परिसरों पर छापामारी की गई। आप के दूसरी बार दिल्ली की सत्ता में आने के बाद से पार्टी के 11 विधायक गिरफ्तार किए जा चुके हैं।

पिछले दिनों अरविंद केजरीवाल का यह बयान कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी उन्हें मरवा भी सकते हैं, निंदनीय और अस्वीकार्य तो था ही, पूरा देश इससे भौचक्का रह गया। लोकतांत्रिक राजनीति में मतभेद होना अलग बात है, मगर नरेन्द्र मोदी जैसे लोकप्रिय प्रधानमंत्री पर अपने ही देश के दिल्ली के मुख्यमंत्री को मरवाने की सोंचे इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। ऐसा आरोप तो आज तक किसी ने देश की सामान्य अवस्था में भी प्रधानमंत्री पर लगाया ही नहीं। देखा जाय तो वास्तव में अरविंद केजरीवाल ने विरोध की राजनीति की सीमा का संपूर्ण अतिक्रमण कर दिया। दरअसल, दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल को अपने बयान देकर विवादों में रहने की आदत हो गई है जिससे उन्हें लाभ की बजाय हानि हो रही है, क्योंकि देश की जनता अब समझने लगी है। इसी समझ की वजह से तो दिल्ली की जनता ने उन्हें दिल्ली के मुख्यमंत्री की कुर्सी पर बैठाया। केजरीवाल जी को यह समझना होगा कि जिस समझ से जनता नेताओं को सत्ता पर बैठाती है उसी समझ से सत्ता से उतारती भी है। यह भी नहीं कि अरविंद केजरीवाल ने जो अनर्गल बयान दिया यह सिर्फ किसी दल या व्यक्ति या एक सरकार की बात नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है मानों यह हमारा राष्ट्रीय स्वभाव बन गया है। बड़े राजनीतिक दलों के बड़े पदाधिकारी भी एक-दूसरे को गालियाँ देकर राष्ट्रीय विवाद छेड़ते रहते है। ऐसे मसलों को महत्व देना राष्ट्रीय न्यूज चैनलों की आदत में शुमार है।

अरविंद केजरीवाल ने राजनीतिक स्टंट से भ्रष्टाचार से स्थायी रूप से लड़ने वाले प्रशासक के तौर पर अपनी छवि को बिगाड़ा है, जो उनकी 'आप' पार्टी के लिए नुकसानदेह हो सकता है। दिल्ली की जनता ने जिन अपेक्षाओं और उम्मीदों से अपार बहुमत दिया है, उसे पूरा करने के लिए

उपराज्यपाल एवं केंद्र सरकार के साथ मिलकर काम करने में ही केजरीवाल टीम की समझदारी है।

(२)प्रश्न: क्या आप मानते हैं कि बसपा ने अपने समर्थकों की आक्रामकता से उत्तर प्रदेश में मिले एक बड़े राजनीतिक अवसर को गंवा दिया? आखिर कैसे?

उत्तर: गुजरात के गौर जिले के उना कस्बे में विगत 11 जुलाई, 2016 को मृत गाय की खाल उतार रहे चार दलित युवकों की बर्बर पिटाई सवर्ण युवकों द्वारा किए जाने के बाद देश के तमाम राजनीतिक दलों और उसके नेताओं ने अपनी-अपनी गोटियाँ फिट करने की जुगत में इसलिए लग गए कि वर्ष 2017 में उत्तरप्रदेश विधान सभा का चुनाव होने वाला है। यह बात सही है कि मरी हुई गाय की खाल उतारने को लेकर समाज की संकीर्ण सोच के लोगों ने दलित युवकों की निर्ममता से पिटाई की और अपने पेशे के अनुसार गाय की खाल उतारकर चमड़ा बनाने के उद्येश्य से काम कर रहे दलित युवकों की कोई दलिल उन गुंडों ने नहीं सुनीं और उन्हें वे तब तक पीटते रहे जबतक वे अधमरे न हो गए। इस घटना की निंदा जितनी की जाए, कम होगी।

बाद में विरोधस्वरूप कई दलित युवकों द्वारा आत्महत्या करने की कोशिश और दलित समूहों की आक्रोश भरी प्रतिक्रिया के बाद तो यह मामला सड़क से संसद तक इतना गूँजा और इस मसले पर इतनी अमर्यादित बयानबाजी हुई कि अब वही नेताओं के लिए जंजाल बन गई।

इसी बीच भाजपा के वरिष्ठ नेता और उत्तरप्रदेश इकाई के उपाध्यक्ष दयाशंकर सिंह ने बहुजन समाज पार्टी की राष्ट्रीय अध्यक्ष मायावती द्वारा विधान सभा में टिकट बंटवारे को लेकर अपने बयान मे ऐसा अमर्यादित और अशालीन शब्दों का प्रयोग किया जिसकी अपेक्षा नेताओं से कतई नहीं की जा सकती। इस अशालीन शब्दों के प्रयोग को लेकर प्राय: सभी तबकों के लोगों ने कड़े शब्दों मे भर्त्सना की और की भी जानी चाहिए। उत्तर प्रदेष्ठा विधान सभा के आसन्न चुनाव में दयाशंकर के बयान बसपा सुप्रीमों मायावती को 'संजीवनी' देने का काम जरूर कर दिया था और वह उसे विधान सभा के चुनाव प्रचार-प्रसार में भंजा सकती थी, लेकिन जिस अमर्यादित बयानबाजी को लेकर बहुजन समाज पार्टी बेहद आक्रामक मूड में दिख रही थी, अब वही बर्ताव उसके लिए जंजाल बन गया, क्योंकि बसपा के विरोध प्रदर्शन के दौरान उसके वरिष्ठ नेताओं की मौजूदगी में जिस पूर्व

भाजपा नेता दयाशंकर सिंह की पत्नी और बेटी के खिलाफ गंदी और आपत्तिजनक भाषा का इस्तेमाल किया गया, उससे यह स्पष्ट हो गया कि सियासत बिल्कुल बदरंग हो चुका है और उसका संस्कार रसातल में चला गया है। देश में अगर किसी भी हिस्से में दलितों के उत्पीड़न की खबरें आती हैं, तो नेता इसे दलितों की समस्या के नजरिए से देखने की बजाय सियासी नफा-नुकसान के नजरिए से देखने लगते हैं।

राजनीति में हर कोई सर्वोच्च पाना चाहता है, लेकिन मर्यादा को सूली पर टाँगकर कुछ भी हासिल करना गलत होगा। मायावती जी अपने को बसपा नेताओं व कार्यकर्ताओं के लिए 'देवी' मानती हैं, मगर खुद को 'देवी' मान लेने भर से किसी के अपराध कम नहीं हो जाते। उन्हें तो वैसा करके दिखाना भी होगा, अन्यथा प्रतिक्रियावाद एक सिलसिले का रूप ले लेगा और इस मसले में वैसा हुआ भी। दयाशंकर जी को तो भाजपा के सभी पदों से बेदखल होना पड़ा और उनपर मुकदमें भी दर्ज हो चुके हैं तथा वे भागते फिर रहे हैं, मगर बसपा के प्रदर्शनकारियों द्वारा दयाशंकर की पत्नी और बेटी तथा नातिन के खिलाफ अत्यंत अभद्र भाषा और नारों का जो प्रयोग किया गया उससे बसपा नेताओं सहित मायावती जी पर मुकदमा दर्ज किया गया जिसमें बसपा के प्रदेश अध्यक्ष रामअचल राजभर, राष्ट्रीय महासचिव नसीमुद्दीन सिद्दकी और सचिव मेवालाल को भी आरोपित किया गया है। मायावती ने दयाशंकर की पत्नी स्वाति सिंह के आरोपों के जवाब में कहा कि उनकी पार्टी के लोग दयाशंकर की बेटी के खिलाफ़ अपशब्द का इस्तेमाल नहीं करेंगे। जब दयाशंकर की पत्नी और बेटी को गाली दी गयी, तब जाकर उनके परिवार को समझ में आया कि महिला का अपमान क्या होता है।

स्वामी प्रसाद मौर्य और आर. के. चौधरी जैसे दिग्गज नेताओं के बसपा छोड़ने के बाद तो मायावती जी वैसे ही दवाब में थीं, मगर मायावती समेत बसपा के कई नेताओं के खिलाफ अभद्र नारों का जो आरोप लगा है उनके विरूद्ध लखनऊ के हजरतगंज कोतवाली में जो मुकदमे दर्ज किए गए हैं उससे तो बसपा की स्थिति दयनीय हो गई है जिसका असर आसन्न विधानसभा चुनाव पर पड़ना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से देखा जाए तो बसपा ने अपने समर्थकों की आक्रामकता से उत्तरप्रदेश में मिले एक बड़े राजनीतिक अवसर गंवा दिया।

जिस तरह से दलित मुद्दों पर नेताओं द्वारा घड़ियालू आँसू बहाकर

समाज में नफरत फैलाया जा रहा है वह आने वाले समय मे और लोकतंत्र के लिए कतई ठीक नहीं है। समाज के लोगों को भी दलितों के प्रति अपना नजरिया बदलना होगा और उन्हें समाज को उचित मान-सम्मान देना होगा। इसके लिए उन्हें अपनी सोच और मानसिकता में बदलाव लाना आवश्यक होगा। इसी प्रकार दलित समाज को भी राजनीतिक-सामाजिक मर्यादा को ताक पर रखकर ईंट का जवाब पत्थर से देने में यकीन नहीं रखना होगा। बसपा समर्थकों की उग्र प्रतिक्रिया ने तो यही साबित किया दयाशंकर की पत्नी, बेटी और नातिन को भद्दी-भद्दी गालियाँ देकर जबकि दयाशंकर ने तो माफ़ी माँग ली थी और उन्हें पार्टी से भी निष्काषित कर दिया गया था।

भाजपा के दयाशंकर सिंह के बयान ने जो अवसर बसपा को प्रदान किया था, उससे बड़ा मौका बसपा नेताओं ने दयाशंकर की माँ, पत्नी, बेटी और नातिन को गाली देकर भाजपा को दे दिया। 24 घंटे में राजनीतिक बाजी पलट गई। मायावती जान गई कि दलित वोट बैंक समेटने की आतुरता में सर्वजन का उनका नारा खोखला हो गया। बसपा नेता नसीमुद्दीन और स्वाति सिंह के मैदान में आने से एक बात तो तय हो गई कि उत्तर प्रदेश के आसन्न चुनाव में बसपा को सवर्णो के वोट नहीं मिलेंगे।

दरअसल, अभद्र, अश्लील और बेलगाम राजनीति खुलकर नग्न-नृत्य पर उतर आई है। एक पक्ष की मानसिक और भाषाई अभद्रता ने जो राजनीतिक असंतुलन पैदा किया था, उसे दूसरे पक्ष की अभद्रता ने संतुलित कर दिया। बेलगाम नेता दयाशंकर की पत्नी स्वाति ने बेलाग सवाल किया कि क्या सिर्फ दलित नेत्री का ही अपमान अपमान होता है, क्या वह नेत्री ही अपशब्दों से आहत हो सकती है, क्या उसका और उसकी बेटी का अपमान अपमान नहीं है, उन्हें जो गालियाँ दी गयीं हैं, क्या वे उनसे आहत नहीं हो सकतीं? ये सारे सवालों के क्या उत्तर हैं बसपा प्रमुख मायावती के पास? यह औरत के अपमान का प्रश्न है और इस अपमान के निराकरण के दो पैमाने नहीं हो सकते। अभद्रता के प्रतिकार और प्रायश्चित के भिन्न मापदंड नहीं हो सकते। इस स्थिति की गंभीरता को उस दलित देवी को सबसे ज्यादा समझना चाहिए जिसके उपर जातीय वर्चस्वविहीन समाजवादी समाज के निर्माण की बड़ी जिम्मेदारी है।

अगर वह क्षुद्र राजनीतिक लाभ के लालच में इस बड़ी जिम्मेदारी से बचने की कोशिश करेंगी तो इतिहास बहुतों की तरह उन्हें भी निरर्थकता के कूड़ेदान में डालकर आगे बढ़ जाएगा। दयाशंकर सिंह का एक शब्द

मायावती के भविष्य पर ग्रहण लगा गया है और सारा जीवन उनका पीछा नहीं छोड़ेगा। मायावती ने दयाशंकर सिंह की पत्नी और बेटी के साथ खड़े न होकर उन सबको अपने से अलग कर दिया जो बड़ी संख्या में उनके करीब आ गए थे। इन सारे प्रकरण से देश के हित को समझने, राजनीति को स्वच्छ करने तथा उसे नई दिशा देने के लिए बहुत कुछ सार्थक निकलेगा।

(३)प्रश्नः क्या एक सभ्य, शांतिपूर्ण और समृद्ध समाज की हमारी आकांक्षाएँ राजनीतिक मर्यादा की तमाम हदें लाँघने के उतावलेपन से पूरी हो सकेगी? क्या सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समानता के हमारे सारे सपने अशालीन भाषा और हिंसक भीड़ से संचालित घृणा और भय के माहौल में कभी हकीकत बन सकेंगे?

उत्तर: बहुजन समाज पार्टी की राष्ट्रीय अध्यक्ष मायावती के खिलाफ उत्तरप्रदेश के एक वरिष्ठ नेता व भाजपा के प्रदेश उपाध्यक्ष दयाशंकर सिंह द्वारा अपमानजनक भाषा के प्रयोग से हमारी राजनीतिक मर्यादा की तमाम हदें लाँघने का उतावलापन दिखा है जिसकी चौतरफा निंदा हुई और उन्हें भाजपा के तमाम पदों से निकाले जाने के बाद उनके खिलाफ मुकदमा भी दर्ज हो गया है। मगर, भाजपा के इस नेता के खिलाफ हुए प्रदर्शनों के दौरान उनके परिवार की महिलाओं के बारे में जो अभद्र टिप्पणियाँ की गईं वे भी उतनी ही निंदनीय हैं। कुछ बसपा नेताओं द्वारा तो दयाशंकर सिंह की जीभ काटने के एवज में लाखों रुपए के इनाम की घोषणा भी बहुत चिंताजनक है। इस संदर्भ में मेरा मानना है कि किसी राजनीतिक दल के जिम्मेदार कार्यकर्ता या नेता द्वारा सिर या जीभ काटने की बात करना हमारे सार्वजनिक जीवन के वर्तमान और भविष्य के लिए बेहद खतरनाक प्रवृत्ति का संकेत है।

भाजपा नेता के अभद्र बयान की भर्त्सना सड़क से संसद तक के लोगों द्वारा हुई है और उनके विरूद्ध अदालत में दायर हुए मुकदमें के बाद यह उम्मीद की जानी चाहिए कि उन्हें समुचित दंड मिलेगा, मगर नेताओं द्वारा गुस्से और उत्तेजना का हिंसक तेवरों में बदलना किसी भी रूप में सही नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि इसकी परिणति एक भयावह समाज के रूप में होगी, जहाँ न तो कानून का राज बचेगा और न ही तार्किक बहस-मुबाहिस की कोई गुंजाइश। निश्चित रूप से इस हिंसक रास्ते से गुजरने के बाद एक सभ्य, शांतिपूर्ण और समृद्ध समाज की हमारी अपेक्षाएँ पूरी कतई नहीं हो सकेंगी।

जहाँ तक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समानता के हमारे सपने पूरे होने का सवाल है, अशालीन भाषा और हिंसक भीड़ से संचालित

घृणा और भय के माहौल में कभी हकीकत नहीं बन सकेंगे, क्योंकि संतुलित समाज और सचेत नागरिकों के द्वारा ही देश का विकास होगा और असमानता मिट सकेगी। हमें आज यह समझना है कि राजनीति ही बहुधुरी है, जिसके इर्द-गिर्द हमारे आज और कल का ताना-बाना बुना जाता है। अगर वह धुरी ही विषाक्त हो जाएगी, तो राष्ट्रीय जीवन में भी जहर भर जाएगा। इसलिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति के चित्त में समता, समरसता और बंधुत्व का भाव जगाना होगा। महात्मा गाँधी, डॉ. भीमराव अम्बेडकर तथा डॉ. राम मनोहर लोहिया ने आजीवन समाज में यही रासायनिक परिवर्तन लाने का तो प्रयास किया था।

सच तो यह है कि देश की लोकतांत्रिक राजनीति के चाल, चरित्र और चेहरे को देखकर वास्तव में डर लगता है और यह सोचकर दिमाग पथराने लगता है कि आखिर वह तलहटी कहाँ है जहाँ पहुँचकर इसकी यह डरावनी गिरावट रुकेगी। क्या राजनीति सचमुच इतनी संवेदनविहीन, इतनी निर्लज्ज, इतनी क्रूर और इतनी दानवी हो सकती है कि इनसानियत की कोई भी गुहार उस तक न पहुँचे, सामान्य आदमी के दुःख-दर्द उसे छू तक न पाएँ और जघन्य अपराधों के शिकार हुए लोगों की मर्मान्तक चीखें इसके झंडावरदारों के कान के परदों तक को न हिला पाएँ, हिंसा पर राजनीति, हत्या पर राजनीति, बलात्कार पर राजनीति। इन सब को देख, सुन और सह कर इनसानियत की धुँआती आँखों की पीड़ा को क्या राजनेता नहीं देख पा रहे हैं? नहीं लगता कि इंसानी जिंदगी का कोई भी कोना ऐसा रह गया है जिस पर राजनीति अपनी गंध न छोड़ देती हो।

(४)प्रश्नः भारत के राजनीतिक दल अपनी आमदनी, खर्च, चंदे और दानदाताओं के ब्योरे सार्वजनिक क्यों नहीं करना चाहते?

उत्तरः भारत के राजनीतिक दल अपनी आमदनी, खर्च, चंदे और दानदाताओं के ब्योरे सार्वजनिक इसलिए नहीं करना चाहते, क्योंकि अगर वे अपने को सार्वजनिक प्राधिकरण मान लें और हर सूचना सार्वजनिक करने लगें, तो उनके कामकाज में रूकावट आएगी। उच्चतम न्यायालय द्वारा जुलाई, 2015 में छह राष्ट्रीय दलों भाजपा, काँग्रेस, एनसीपी, सीपीआई(एम) और बसपा से यह सवाल पूछे जाने पर इन राजनीतिक दलों का यही टालमटोल जवाब था। अभी हाल में भी केंद्रीय सूचना आयोग ने चंदे, फंडिंग और आंतरिक लोकतंत्र के बारे में सूचना उपलब्ध न कराने पर इन्हीं छह राष्ट्रीय दलों के शीर्ष नेताओं को तलब किया है।

विडंबना यह है कि भारत के राष्ट्रीय दल अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को तो सूचना का अधिकार कानून (आरटीआई) से बँधा देखना चाहते हैं, लेकिन वे खुद इससे बँधा देखना नहीं चाहते, जबकि सार्वजनिक संस्थाओं के कामकाज पर दलों का नियंत्रण और असर भरपूर हैं। सच तो यह है कि जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक राजनीतिक दल को देश के संविधान के प्रति मिष्ठावान होना जरूरी है, तभी उनका पंजीकरण मान्य होता है। मान्यता प्राप्त दल के लिए यह जरूरी है कि वह संवैधानिक प्रावधानों के तहत माँगी जानकारी लोगों को मुहैया कराए। केंद्रीय सूचना आयोग ने पहले 2013 में, फिर मार्च, 2015 में राजनीतिक दलों को 'सार्वजनिक प्राधिकरण' घोषित करते हुए उनपर आरटीआई कानून को बाध्यकारी करार दिया था, लेकिन दलों ने इसपर एतराज जताया, तभी सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय दलों से पूछा कि वे अपनी आमदनी, खर्च, चंदे और दानदाताओं के ब्योरे क्यों नहीं सार्वजनिक करना चाहते?

राजनीतिक दल भले ही हर सूचना को सार्वजनिक न करें, लेकिन देश-विदेश से हासिल चंदे के स्वरूप व श्रोत, चुनाव खर्च, टिकट बँटवारे और आंतरिक चुनाव से संबंधित सूचनाओं को परदे के पीछे रखना लोकतंत्र के लिए घातक है। और वैसे भी यह सर्वविदित है कि इन बातों का गहरा रिश्ता देश में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार और कालेधन की समस्या से है। ऐसे में आरटीआई से बचने की कोशिशों की बजाय, राजनीतिक दल यदि जरूरी सूचनाओं को सार्वजनिक करने का निर्णय लेते हैं, तो यह न केवल देशहित में होगा, बल्कि दलों की अपनी विश्वसनियता भी बढ़ेगी।

(५)प्रश्नः आपके विचार से कश्मीर घाटी के बवंडर की असली समस्या क्या है? क्या आप भी इस बात से सहमत हैं कि कश्मीरी अवाम में मिलिटेंसी को पहले के मुकाबले आज ज्यादा समर्थन मिल रहा है?

उत्तरः मेरे विचार से कश्मीर घाटी के बवंडर की असली समस्या है कष्ठमीर के सियासी वजूद का निर्धारण का न होना। कष्ठमीर का विवाद बुनियादी तौर पर एक राजनीतिक मसला है। बीते कुछ समय से केंद्रीय नेतृत्व ने घाटी में राजनीतिक संवाद की प्रक्रिया पूरी तरह बंद कर रखी है। अप्रैल-मई, 1964, 1975-80 और 2004-2008 के वर्षो में कश्मीर के मसले को हल करने की प्रबल संभावनाएँ पैदा हुई थीं, किंतु अलग-अलग कारणों से यह संभव नहीं हो सका।

दरअसल कहा जाए तो कश्मीर के राजनीतिक सवाल पर हमारे

सत्ताधारियों ने कभी अपेक्षित गंभीरता नहीं दिखायी। नेताओं की बयानबाजियाँ अवश्य होती रहीं, मगर कश्मीर के मसले पर धरातल पर आकर कुछ बात नहीं की गई। इसी का परिणाम है कि वहाँ सरकारें आईं और गईं तथा केंद्र में सरकार में परिवर्तन होता रहा, मगर आज तक बात नहीं बन पाई।

हाँ, मै भी इस बात से सहमत हूँ कि शासकों की गलती की वजह से कश्मीरी अवाम में मिलिटेंसी को पहले के मुकाबले आज ज्यादा समर्थन मिल रहा है। इधर हाल–फिलहाल हिजबुल कमांडर बुरहानी वानी के सुरक्षाबलों द्वारा मारे जाने से उठा बवंडर भले ही कुछ समय बाद थम सकता है, लेकिन घाटी के अहम सवाल को जबतक सुलझाया नहीं जाएगा, ऐसे बवंडर समय-समय पर उठते रहेंगे। मिलिटेंसी और उग्रवाद से निबटने में सुरक्षात्मक कदम के साथ राजनीतिक पहल की सबसे बड़ी भूमिका होती है। फिलहाल कश्मीर में वह राजनीतिक पहल गायब है। अगर बंदूकों का जवाब बंदूके होती तो अमेरिका की बंदूकों ने पश्चिम एशिया सहित पूरी दुनिया को अबतक शांत कर लिया होता। जहाँ–जहाँ सिर्फ बंदूकों से जटिल राजनीतिक मसले को हल करने का प्रयास किया गया, बंदूकें किल साबित हुईं। दुनिया के हर क्षेत्र में ऐसे उदाहरण मिलेंगे।

ऐसा नहीं है कि कश्मीर में जो कुछ हो रहा है उससे राजनीतिक दल या सुरक्षा बल अनभिज्ञ हैं। जम्मू–कश्मीर पुलिस ने अनुकरणीय साहस व कार्यकुशलता का परिचय दिया है, मगर केवल सेना के साहस और संयम से बात नहीं बनेगी। कश्मीर में विकास और रोजगार भी बढ़ाना होगा। घोर दरिद्रता व पीड़ा भुगत रहे कश्मीर पंडितों व अन्य धर्मो के विस्थापितों को भी वापस लाना होगा। याद रहे आतंकी केवल आतंकी होता है। उसका कोई मजहब नहीं होता। हिंसा का यह उफान कश्मीर की सूफी विचारधारा उतार देगी।

अभी-अभी कश्मीर घाटी में हिजबुल मुजाहिदीन बुरहान वानी को हमारे सुरक्षा दलों द्वारा मारे जाने के बाद पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने अपने मंत्रिमंडल की बैठक में 'वानी' को शहीद बताते हुए 19 जुलाई, 2016 को काला दिवस मनाने की जो घोषणा की और पाकिस्तान के फौजी हुक्मरान जनरल रहील शरीफ ने भी जो ऐसी ही प्रतिक्रिया व्यक्त की उससे यह साफ हो गया है कि पाक सरकार और वहाँ की फौज की भारत विरोधी भाषा एक हो गई है। यह खतरे की घंटी है और इससे कश्मीर के मसले का हल नहीं निकलने वाला है। दरअसल, पाकिस्तान चाहता है कि कश्मीर घाटी में वही मंजर फिर लाया जाए, जैसे बीती सदी के नौवें

दशक के शुरुआती वर्षों में दिखा था। इसलिए हमें हर मोर्चे पर बेहद मुस्तैद हो जाने की दरकार है, क्योंकि इससे देश के भीतर भी आतंकी वारदात की आशंका बढ़ गयी है। आपने देखा नहीं, अभी-अभी 15 जुलाई, 2016 को बिहार की राजधानी पटना के अशोक रांजपथ पर सरेआम एक रैली के दरम्यान 'पाकिस्तान जिंदाबाद' जैसे देश-विरोधी नारे लगाए गए। पोपुलर फ्रंट ऑफ इंडिया के बैनर तले मुस्लिम धर्म प्रचारक जाकिर नाइक और एआईएमएम के नेता असदुद्दीन ओवैसी के समर्थन में रैली के दौरान देश विरोधी नारे लगाना और आसपास की पुलिस द्वारा चुप्पी साध लेना दुर्भाग्यपूर्ण हैं, क्योंकि इससे हमारी राष्ट्रीय एकता पर खतरा नजर आता है। ताज्जुब तो इस बात पर भी होती है कि शासन के शीर्ष पर बैठे राजनेता भी तुष्टीकरण और राजनीतिक लाभ के लिए चुप्पी साध गए।

कश्मीर पर एक नजर फिर डालने पर आप पाएँगे कि कश्मीर में बेरोजगारी ज्यादा है, उद्योग नहीं हैं, वहाँ के युवाओं के लिए कोई अवसर नहीं है, कोई काम नहीं है और न कोई नीति है। कश्मीरी सरकार की कोई बातचीत नहीं है। और तो और वहाँ एक अदद सिनेमाघर नहीं है जहाँ जाकर लोग अपना मन बहला सकें। दिनभर बंदूकों के साए में रहने को मजबूर वहाँ चार लोग एक साथ खड़े होकर चाय की चुस्की भी नहीं ले सकते। यानी बच्चे-बूढ़े-नौजवान सभी खौफ के साए में जीने को विवश हैं। अब ऐसे में आजाद भारत के एक राज्य में इतनी पाबंदी के बाद जब दिल्ली में बैठे लोग उनके बुनियादी हकों की बात न कर बेवजह की बाते करते हैं, तो कश्मीरी युवाओं में आक्रोश को ही बढ़ाते हैं। जाहिर है, यह आक्रोश कहीं-न-कहीं से तो बाहर निकलेगा ही। सरकार को इस गंभीरता को समझना होगा। हम बड़े गर्व से कहते हैं कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, फिर इस अभिन्न हिस्से के साथ कम-से-कम अभिन्न हिस्से की तरह व्यवहार भी तो करें। केवल यह कहने से काम नहीं चलेगा कि हर कश्मीरी आतंकवादी है या हर कश्मीरी पाकिस्तानी है। कश्मीरी मसले के हल में कश्मीरी अवाम से बातचीत, विकसित राज्य को मिल रहीं सुविधाएँ कश्मीरियों को भी मुहैया, कश्मीरी के हाथ काम, अच्छे शैक्षणिक संस्थान, सर्वांगीण विकास की नीति आदि सभी चीजें बहुत अहम किरदार निभा सकती हैं। सिर्फ तीन लाख के आसपास कश्मीरी पंडितों की वापसी का राग अलापने से काम नहीं चलेगा। भले ही कश्मीरी पंडितों की वापसी का राग अलापना भारतीय राजनीति को बहुत अच्छा लग सकता है, लेकिन कश्मीर समस्या का हल केवल इससे नहीं

निकलने को है। धरातल पर कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा, तभी बात बनेगी।

कश्मीर में विगत 15 दिनों की झड़पों में 50 लोग मारे जा चुके हैं और 200 लोग घायल हो चुके हैं। दूसरी तरफ घायल होने वाले सुरक्षा बलों की तादाद 1600 बताई जा रही है। कश्मीर की मौजूदा अंशांति का सारा दोष पाकिस्तान पर मढ़ देने से राष्ट्रवाद तो उभरेगा और उसी ढर्रे पर सोचने वालों के साथ ही पाकिस्तान को भी अपनी रोटियाँ सेकने का मौका मिल जाएगा। आपने देखा नहीं पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने कश्मीर की समस्या के समाधान के लिए पुनः कश्मीर में जनमत संग्रह का पुराना राग अलापना शुरू कर दिया है, लेकिन यह समस्या का समाधान नहीं है और न ही इससे गुस्से के ज्वार में कोई कमी आने की उम्मीद है। पाकिस्तान एक ओर जहाँ इस मसले का घरेलू भावनाओं का दोहन कर रहा है, वहीं दूसरी ओर संयुक्त राष्ट्र में इस मसले को उठाकर इसे अंतरराष्ट्रीय कर रहा है। ऐसे वक्त जरूरी है कि भारत उसका अपने राजनयिक माध्यमों से जवाब दे, किंतु असली सवाल यह है कि घाटी के लोगों का गुस्सा कैसे शांत हो। आज कश्मीर से लेकर समूचे भारत की उन ताकतों को सक्रिय करने की जरूरत है जो नहीं चाहती कि कश्मीर घाटी में बेगुनाहों का खून बहे।

आज पूरी दुनिया आतंकवाद को सबसे बड़ा खतरा मानती है। ऐसे में दुनिया को यह बताना जरूरी है कि पाकिस्तान कश्मीर के एक हिस्से का आतंक पनपाने के लिए कैसे इस्तेमाल कर रहा है। इस लिहाज से पाकिस्तान को अधिकृत कश्मीर को आतंक की पौधशाला बनने से रोका जा सके, लेकिन यह तभी कारगर ढंग से हो सकेगा, जब हम अपने कश्मीर को सहज-शांत रख पाएँगे। ऐसा नहीं है कि हमारे कष्ठमीर के लोग अमन की व्यवस्था के हिमायती नहीं हैं। ऐसा होता तो पिछले कई वर्षो से कश्मीर के लोग आतंकवादियों और अलगाववादियों की धमकियों की परवाह किए वगैर पंचायत से लेकर विधानसभा और लोकसभा चुनावों में बढ़-चढ़कर हिस्सा कैसे लेते।

कश्मीर में पिछले पन्द्रह दिनों से जो हो रहा है उसके पीछे निश्चित रूप से दहशतगर्दों का हाथ है। दहशतगर्दी फैलाकर दुनियाभर के देशों में आतंकी हमले करने वाले आतंकी संगठन हैं। ऐसे में आज भारत विरोधी ताकतों द्वारा चलाए जा रहे अभियान पर मशहूर शायर निदा फाजली का यह शे़र सटीक बैठता है-

"उठ-उठ के मस्जिदों से नमाजी चले गए,
दहशतगर्दी के हाथ रमें इस्लाम रह गया।"

(६)प्रश्नः क्या भारत की राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव जीतने के लिए मुफ्तखोरी को हथियार नहीं बना रही है? क्या इस तरह की राजनीति देश की मूल समस्याओं का उन्मूलन कर सकती है?

उत्तरः भारत ही नहीं, ज्यादातर देशों में एक ओर जहाँ राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव जीतने के लिए मुफ्तखोरी को हथियार बनाती हैं, वहीं दूसरी ओर इसी दुनिया में स्विटजरलैंड जैसा भी एक देश है, जहाँ की जनता ने सरकार की इस पेशकश को ठुकरा दिया। दरअसल, स्विटजरलैंड सरकार ने 'बेसिक इनकम गारंटी' नाम से एक जनमत संग्रह कराया, जिसके तहत नागरिकों को प्रतिमाह डेढ़ लाख रुपए देने का प्रावधान किया गया था, लेकिन दो-तिहाई से अधिक जनता ने इस प्रस्ताव के खिलाफ अपना मत दिया।

जहाँ तक भारत का सवाल है, इस देश में मुफ्तखोरी न केवल एक विकृत संस्कृति या समस्या भर नहीं है, बल्कि यह अफीम या किसी खतरनाक ड्रग के नशे की तरह है। हर कोई इस नशे का शिकार हो रहा है, चाहे मुफ्त खाने वाला हो या फिर मुफ्त खिलाने वाला। लोगों में मुफ्त खाने-खिलाने की एक आदत-सी बन गई है। मजे की बात यह है कि इस देश की सरकारों ने अपनी लोकलुभावन राजनीति के तहत इसे और भी बढ़ा दिया है। जिसे देखो वही जनता को कुछ-न-कुछ मुफ्त बाँटे जा रहा है।

जिस प्रकार तमिलनाडु ने टीवी, मिक्सर बाँटा है, उत्तर प्रदेश ने लापटॉप बाँटा है और अन्य कई राज्यों ने भी बहुत कुछ बाँटा है, इसे देखकर तो यही लगता है कि जिसको जिस किसी चीज की वास्तव में ज्यादा जरूरत है, उसे वह चीज नहीं मिल पा रही है। मसलन, अगर किसी को स्वास्थ्य सेवाओं की जरूरत है या किसी को शिक्षा की बहुत जरूरत है, तो उसे टीवी या लॉपटॉप देन से क्या फायदा मिलेगा ? यानी एक ऐसी सब्सिडी जो जरूरतमंद के किसी काम न आए। मगर विडम्बना यह है कि मुफ्तखारी की ऐसी आदत हो गयी है कि राजनीति इसे खत्म नहीं होने देगी। आम आदमी सरकार से टीवी, लॉपटॉप, साड़ी-धोती या मिक्सर की उम्मीद नहीं रखता, लेकिन सरकारें खुद उनके पास जाकर लालच दिखाती हैं। उनके मन में यह घर कर जाती है कि ये नेता उन्हें जरूरत की चीज तो देने से रहे तो जो मिल रहा है उसे क्यों न ले लें। इस तरह लालच बढ़कर आदत बन जाती है और उसकी संस्कृति मुफ्तखोरी की हो जाती है। अगर, जनता मुफ्तखोरी की आदी हो गयी है, तो उसमें उसका उतना दोष नहीं जितना किसी सरकार का है।

इस तरह की राजनीति देश की मूल समस्याओं का उन्मूलन नहीं

कर सकती। सब्सिडी से लेकर सोच सही न होने के कारण ही आज हमारे दूर-दराज के गाँवों में स्कूल-कॉलेजों और प्राथमिक चिकित्सालयों की कमी है जिसके चलते स्वास्थ्य और शिक्षा का स्तर नीचे गिर रहा है। यह एक गंभीर समस्या है, इसलिए इसे समाप्त करने के लिएं एक संवैधानिक सुधार की जरूरत है कि कोई सरकार एक सीमा के बाद किसी को कुछ भी नहीं दे सकती। सरकार को चाहिए कि वह इस नाहक सब्सिडी को पूरी तरह से खत्म करने की कोशिश करे, क्योंकि इससे जरूरतमंद लोगों को नुकसान होता है और उन्हें गैरजरूरी चीजें मुहैया करायी जाती हैं।

अगर भारत से मुफ्तखोरी खत्म हो जाए, तो देष्ठा में पूँजीनिवेश दोगुना हो जाएगा। पुल, सड़कें, स्कूल, अस्पताल आदि के निर्माण में इजाफा हो जाएगा। उद्योग तेजी से बढ़ेंगे और अर्थव्यवस्था सुधर जाएगी। आज देश में मौजूदा पूँजीनिवेश से कहीं ज्यादा पैसा सब्सिडी में खर्च हो जाता है।

(७)प्रश्न: मतदाताओं को पैसे या उपहार देकर चुनाव जीतने की समस्या से कैसे निजात पाया जा सकता है? मई, २०१६ में तमिलनाडु के दो विधानसभा क्षेत्रों में चुनाव आयोग द्वारा चुनाव प्रक्रिया रद्द करने से धनबल के जरिए चुनाव जीतने का जतन करने वालों को क्या कोई सबक मिल सकेगा?

उत्तर: पैसे के बल पर चुनाव जीतने की कोशिश हर स्तर के चुनाव में एक लंबे अरसे से देखने-सुनने को मिल रही है और इस समस्या ने एक गंभीर रूप धारण कर लिया है। विगत मई, 2016 में पाँच राज्यों के विधान सभा चुनावों के वक्त तमिलनाडु के अरावकुरिचि और तंजावुर विधान सभा चुनाव प्रक्रिया को निर्वाचन आयोग द्वारा दो बार इसलिए रद्द कर दिया गया, क्योंकि इन दोनों विधान सभा के प्रत्याशियों ने धनबल के जरिए चुनाव जीतने का जतन किया था। हालांकि यह कहना कठिन है कि चुनाव प्रक्रिया रद्द करने से प्रत्याशियों को कोई सबक मिलेगा या इस गंभीर समस्या का निदान निकल जाएगा, क्योंकि निर्वाचन आयोग ने तमिलनाडु के दोनों प्रत्याशियों को पहले भी चेताने का काम किया था, लेकिन हालात बदले नहीं। बार-बार के स्थगन का कहीं कोई असर नहीं हुआ और उलटे निर्वाचन आयोग के पर्यवक्षकों ने यह पाया कि प्रत्याशी और उनके समर्थक मतदाताओं को पैसा और उपहार देने में जुटे हुए थे। निर्वाचन आयोग के मुताबिक फिलहाल इन स्थानों पर स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से मतदान कराना संभव नहीं और जब माहौल अनुकूल होगा तब मतदान की तिथि

घोषित की जाएगी। सवाल यह है कि इसकी क्या गारंटी कि आगे माहौल अनुकूल हो ही जाएगा? इसके पूरे आसार हैं कि मतदान की तिथि घोषित होते ही संबंधित प्रत्याशी नए सिरे से लोगों को पैसा और उपहार बाँटने में जुट सकते हैं।

इसलिए मेरा मत है कि मतदाताओं को पैसे देकर चुनाव जीतने की समस्या से निजात पाने का एक ही उपाय है कि निर्वाचन आयोग को पैसे बाँटकर चुनाव जीतने की कोशिश करने वालों के खिलाफ कार्रवाई का अधिकार मिले। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि वैसे प्रत्याशियों को कुछ समय के लिए चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित किया जाय। यदि निर्वाचन आयोग चुनाव सुधार संबंधी और अधिकारों से लैस नहीं होता है तो इसमें संदेह है कि मतदान स्थगित कर देने जैसे उपाय प्रभावी साबित होंगे। चुनावी कदाचार स्थागत भ्रष्टाचार का आधार है और इसकी रोकथाम के लिए कड़े कदम उठाने जरूरी हैं।

खरीद-फरोख्त की इस स्थिति के लिए करीब-करीब सभी राजनीतिक पार्टियाँ जिम्मेदार हैं। राज्यसभा के सदस्यों के चुनाव में भी विधायकों की खरीद-फरोख्त का मामला उजागर हुआ है जिससे यह स्पष्ट है कि आने वाले समय में धन के बलबूते उच्च सदन में भी पहुँचने वालों की संख्या और बढ़ेगी। दरअसल, राजनीतिक दलों के द्वारा जानबूझकर ऐसे लोगों को प्रत्यक्ष या परोक्ष से समर्थन प्रदान किया जा रहा है। इससे राज्यसभा और साथ ही संसद की गरिमा में कोई वृद्धि होनेवाली नहीं है। राजनीतिक दलों को यह समझना होगा कि राजनीतिक सुधार अनिवार्य हो चुके हैं और यदि वे इन सुधारों की दिशा में आगे बढ़ने से इनकार करेंगे तो राजनीति के हर स्तर पर खामियाँ बढ़ती चली जाएगी और इससे कुल मिलाकर राजनीतिक दलों की छवि को ही नुकसान होगा।

पैसे के बल पर राज्यसभा की सीट खरीदनो की प्रवृत्ति भी लोकतंत्र के लिए कम शर्मनाक नहीं मानी जाएगी। अब तो स्थिति यहाँ तक आ गई है कि पिछले दिनों कर्नाटक के राज्यसभा चुनाव के वक्त विधायक अपने उपर कीमत का टैग लगाकर घूम रहे थे। उनमें से एक ने पाँच करोड़ की रकम भी बता डाली। राज्यसभा चुनाव ने एक बार फिर यह उजागर कर दिया है कि हमारा राजनीतिक मंच कितना सड़-गल चुका है। एक विडंबना यह है कि राजनीतिक दलों ने राज्यसभा को अपनी मनमर्जी के अखाड़े में तब्दील कर दिया है। एक नया सिलसिला यह भी कायम हुआ कि सक्रिय

राजनीति से इतर लोगों को राज्यसभा भेजा जा रहा है।

वक्त का तकाजा है कि राज्यसभा की प्रणाली पर फिर से निगाह डाली जाए और इस पर भी विचार किया जाए कि क्या राजनीतिक दलों को उच्च सदन माने जानीं वाली राज्यसभा की गरिमा गिराने की इजाजत मिलनी चाहिए? वे एक तरह से सबसे बड़ी बोली लगाने-वाले को सीट बेचने का काम करके उच्च सदन की गरिमा गिराने में लगे हुए हैं। जो कुछ भी कर्नाटक में हुआ यह अब अन्य राज्यों में भी होता दिखाई दे रहा है। हरियाणा में हुए राज्यसभा के चुनाव में क्रास वोटिंग कर विधायकों ने जो कुछ किया उसे तो बेजोड़ माना जाएगा और वहाँ जो कुछ घटा है उसके आधार पर चुनाव प्रक्रिया में नए सुधार की जरूरत है, क्योंकि वहाँ कॉंग्रेस-इनेलोद के उम्मीदवार के आधे से अधिक वोट इसलिए रद्द कर दिए गए, क्योंकि मतदान-पत्र पर निशान निर्धारित कलम से नहीं, किसी दूसरी कलम से लगाई गई जिससे चुनाव प्रक्रिया का बेमानीपन उजागर होता है। संभव है, इसमें गहरी राजनीतिक साजिश की भी कोई कहानी जुड़ी हो। दूसरे दलों के विधायकों को तोड़ने में भी पैसों के लेन-देन के आरोप खुलकर उछले। लिहाजा, कानून और प्रणाली में सुधार की जरूरत है।

पैसे के बल पर राज्यसभा की सीट खरीदने की प्रवृत्ति को लोकतंत्र के लिए शर्मनाक माना जाएगा। अबतक स्थिति यहाँ तक आ गई हैं कि पिछले दिनों कर्नाटक के राज्यसभा चुनाव के वक्त विधायक अपने उपर कीमत का टैग लगाकर घूम रहे थे। उनमें से एक ने पाँच करोड़ की रकम भी बता डाली। राज्यसभा चुनाव ने एक बार फिर बता यह उजागर कर दिया है कि हमारा राजनीतिक मंच कितना सड़-गल चुका है।

अब वक्त का तकाजा है कि राज्यसभा की प्रणाली पर फिर से निगाह डाली जाए और इस पर भी विचार किया जाए कि क्या राजनीतिक दलों को उच्च सदन माने जानी वाली राज्यसभा की गरिमा गिराने की इजाजत मिलनी चाहिए? वे एक तरह से सबसे बड़ी बोली लगाने वाले को सीट बेचने का काम करके उच्च सदन की गरिमा गिराने में लगे हुए हैं। जो कुछ कर्नाटक में हुआ वह अन्य राज्यों में भी हो रहा है।

(८)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि पिछले दिनों मई, २०१६ में हुए पाँच राज्यों के विधान सभा चुनावों के परिणाम दिल्ली की दरबारी संस्कृति वाली राजनीति के अंत का संकेत है?

उत्तरः मई, 2016 में हुए पाँच राज्यों के विधान सभा चुनावों के परिणाम आने

के बाद कम-से-कम असम और केरल की सत्ता में काँग्रेस च्यूत हो गई है और काँग्रेस का शासन अब सिर्फ एक बड़े राज्य कर्नाटक के अलावा पाँच छोटे राज्यों-उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम में सिमट गया है, जहाँ देश की सिर्फ सात फीसदी आबादी रहती है। राज्यों में पार्टी के सिमटने का सिलसिला उसके केंद्र की सत्ता से बेदखल होने के बाद से और तेज हो गया है।

2016 के जनादेश में एनडीए विरोधी मतों पर काँग्रेस की बजाय क्षेत्रीय दलों का दबदबा और बढ़ गया है। अब देश के दस राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सरकारें हैं, जहाँ देश की कुल 41.16 फीसदी आबादी रहती है। गौर करें, तो देश की सबसे पुरानी पार्टी पर अस्तित्व का यह संकट खुद उसके भीतर से ही उभरा है। सोनिया के बाद कौन, इस यक्ष प्रश्न को जितना टाला जा रहा है, संकट उतना ही गहरा होता जा रहा है। खासतौर पर काँग्रेस भ्रष्टाचार, अक्षमता और वंशवाद में उलझी नजर आ रही है।

यह निर्विवाद सत्य है कि काँग्रेस, किसी ढलान पर तेजी से रपटती वह पार्टी बन गयी है, जिसे रोकना या थामना किसी काँग्रेसी के बस का नहीं रह गया है। पार्टी शिखर से उतरी है और तलहटी की तरफ बेरोक चली जा रही है। यह इस बात का संकेत है कि दिल्ली की दरबारी संस्कृतिवाली राजनीति का अंत होने को है, क्योंकि एक आत्ममुग्ध परिवार के आभामंडल के अलावा काँग्रेस पार्टी के पास कोई पाथेय नहीं है। पार्टी की राजनीतिक समझ का हाल यह है कि इसने चुनाव जीतने का काम भी ठेके पर उठा दिया है और प्रशांत कुमार के कदमों से सत्ता तक पहुँचने का इंतजार कर रही है। जबकि जरूरत इस बात की है कि राज्यों की दिल्ली दौड़ बंद हो और दिल्ली की दौड़ राज्यों की तरफ हो। अब वह दरबारी संस्कृतिवाली राजनीति आत्मघाती होगी जिसमें प्रियंका गाँधी सिर्फ अपनी माँ और भाई के चुनाव क्षेत्र में जाएँगी। अब की राजनीति होगी कि या तो वे घर बैठें या फिर सबके लिए सब जगह पहुँचे। राजनीति में जो प्रयोग करने और जोखिम उठाने से बचते हैं, वे काँग्रेस दशा को ही प्राप्त होता है। भाजपा ने आखिर नरेन्द्र मोदी को सामने लाया न! यही नहीं पाँच राज्यों के चुनावों में उसने स्थानीय नेताओं पर भरोसा किया।

मेरा ख्याल है कि यदि काँग्रेस को सही ढंग से चलाना है, तो उसे राज्यों में नए सिरे से योग्य सिपहसालार खड़े करने पड़ेंगे और उसकी योग्यता के आधार पर, काम के आधार पर और सोशल इंजीनियरिंग के

आधार पर उसका चयन करना होगा। आत्मचिंतन और आत्ममंथन के साथ यह सोचना भी आवश्यक है कि संतान-मोह और परिवार-मोह का त्याग कर ही देश की रक्षा की जा सकती है और लोकतंत्र को अधिक मजबूत किया जा सकता है। अब वह समय आ गया है कि अब केवल दलालों और चाटूकारों की जमात पैदा कर तथा एक ही तरह विज्ञापनों में खांटी झूठ के लुभावने सच का खोल ओढ़ाकर जनता एवं उपभोक्ताओं को ललचाने से काम नहीं चलेगा। राजनीतिक दलों को अपने छद्म को वादों की चासनी में लपेटकर मतदाताओं के सामने परोसने से काम कतई नहीं चलेगा। विकास और समृद्धि के लिए बेहतर शासन और नीतियों की आवष्यकता होती है तथा जरूरतमंद को राहत पहुँचाना होता है। यही सरकार का उत्तरदायित्व है।

(९)प्रश्नः केंद्र में नरेन्द्र मोदी सरकार के दो साल के ष्शासन को आप किस रूप में आँकते हैं?

उत्तर: 26 मई, 2014 को नरेन्द्र मोदी की सरकार केंद्र की सत्ता में अपने दम पर बहुमत से जीत कर आई थी और इस प्रकार 26 मई, 2016 को इस सरकार के दो साल बीत गए। इस दो साल के कार्यकाल के दौरान काँग्रेस नेहरू-गाँधी परिवार के नेतृत्व में देश के बड़े हिस्से पर छह दशकों तक शासन करने वाली सरकार आज बदलते भारत में अपनी प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रही है और उसका राष्ट्रीय स्तर पर कोई प्रभाव नहीं है, जबकि नरेन्द्र मोदी का प्रभाव खासतौर पर मई, 2016 में हुए पाँच राज्यों के विधान सभा चुनावों के बाद पूरे देश में है।

मोदी सरकार के दो साल के कार्यकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था में दो साल पहले की तुलना में सुधार के साथ ही स्थिरता दिखने लगी है। वैश्विक मंदी के बावजूद भारत दूनिया की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में सर्वाधिक तेज गति से बढ़ने वाला देश बन गया है, लेकिन लगातार निर्यात और रोजगार सृजन की धीमी रफ्तार को गति देने की चुनौती कायम रही। इसमें कोई संदेह नहीं कि मोदी सरकार ने अपने पहले दो वर्षो में ढाँचागत क्षेत्र की ठप पड़ी परियोजनाओं को चालू कर विकास दर को उच्च स्तर पर पहुँचाया। विश्व की कई संस्थाओं ने ऐसा अनुमान व्यक्त किया है कि सबसे तेज गति से आर्थिक विकास करने के मामले में भारत ने चीन को भी पीछे छोड़ दिया है। उम्मीद है कि 2016 में भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर 7.6 फीसदी रहेगी। यही नहीं मोदी सरकार द्वारा देश में मैन्युफैक्चरिंग को बढ़ावा देने के कारण भारत ने 2015 में विदेशी निवेश आकर्षित करने के

मामले में चीन को पीछे छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त सुगम कारोबारी माहौल बनाने, नई उद्यमिता को प्रोत्साहित करने, रिटर्न भरने की प्रक्रिया का सरलीकरण, प्रशासनिक प्रक्रियाओं को पारदर्शी बनाने की प्रणाली को आसान बनाने की दिशा के प्रयासों में तेजी आई।

लेकिन इस प्रयासों के बावजूद आमजन को जिस तरह से महंगाई ने हलकान कर रखा है उससे ये तमाम सफलताएँ मायने खोती लग रही हैं। बीते दो साल के मोदी सरकार के कार्यकाल के दौरान थोक और खुदरा मुद्रास्फीति अपने निम्न स्तर पर रही। लेकिन इसके बावजूद खाद्य पदार्थों खासकर दाल और चीनी जैसी चिजों के दाम अर्श पर पहुँच गए हैं। बारिश की कमी और जमाखोरी एवं मुनाफाखोरी के चलते दालों, आटा, चावल, चाय, चीनी, हल्दी, मिर्च, साबुन और दंतमंजन जैसी जरूरी वस्तुओं के दामों में खासा उछाल दर्ज किया गया है।

मोदी सरकार ने सत्ता में आने के बाद जोर-शोर से 'मूल्य स्थिरता कोप' बनाया, लेकिन जब दालों की कीमत बढ़ी तो यह कोप कुछ प्रभावी साबित नहीं हुआ। इसी प्रकार भाजपा सरकार का यह प्रचलित वादा था कि वह सरकार बनाने के 100 दिनों में ही विदेश में जमा भारतीयों का अरबों डॉलर का काला धन ले आएगी, मगर वह वादा अभी तक पूरा नहीं हो सका। हाँ, इतना जरूर है कि इस दौरान देश में 55.5 अरब डॉलर का एफडीआई आया है, जो सालभर पहले की अपेक्षा 22.8 प्रतिशत अधिक है।

मोदी सरकार ने वित्तीय 'छुआछूत' मिटाने के लिए अवश्य छलांग लगाई। महात्मा गाँधी और बाबा साहेब डॉ. भीम राव अम्बेडकर ने 20वीं सदी की शुरुआत में अस्पृश्यता समाप्त करने का जो बिगुल फूँका था उसके करीब 100 साल बाद मोदी सरकार ने गरीबी दूर करने को देश से 'वित्तीय छुआछूत' मिटाने का बीड़ा उठाया है। इस सरकार ने वित्तीय तंत्र से अछूत रहे करोड़ों लोगों को 'जनधन' के जरिए बैंक, बीमा और पेंशन तंत्र से जोड़कर लंबी छलांग लगाई है। 11 मई 2016 तक 'जनधन' के 21.81 करोड़ बैंक खाते खुल चुके हैं। वित्तीय समायोजन का जो काम छह दशक में नहीं हुआ, 'जनधन' ने दो साल में उसे कर दिखाया। अब असली चुनौती 'जनधन' की नींव पर 'जन सुरक्षा' की इमारत खड़ी करने की है। प्रधानमंत्री ने पिछले साल 'जनधन' से जन सुरक्षा का नारा देकर 9 मई को कोलकाता से सामाजिक सुरक्षा की तीन योजनाएँ- 'अटल पेंशन योजना, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति योजना और प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना शुरू की। इनकी

...गति भी अभूतपूर्व गति से हुई और साल भर के भीतर 12.65 करोड़ लोग इससे जुड़ चुके हैं।

राजग सरकार ने ऐसे कई कदम उठाए हैं, जो कि भारतीय अर्थव्यवस्थां को दीर्घकाल में फायदा पहुँचाएँगे। दिवालिया संबंधी कानून में संशोधन ऐसा ही एक कदम है। इसके साथ ही सरकार ने लाभार्थियों के खाते में सीधे नगद रूप में सब्सिडी की राशि भेजने और नकली लाभार्थियों को छाँटने के लिए प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण योजना भी लागू की है। नौकरशाही की जवाबदेही सुनिश्चित कर सरकार ने सुष्ठासन पर खासा जोर दिया है जो भविष्य के लिए एक अच्छा संकेत है।

इसी प्रकार मोदी सरकार का भ्रष्टाचार पर कड़ा रूख है। आखिर तभी तो मोदी सरकार के दो साल के शासन में एक भी घोटाला या भ्रष्टाचार का मामला सामने नहीं आ सका है। यह किसी भी सरकार के लिए बड़ी बात है। भ्रष्टाचार पर रोक लगाकर मोदी सरकार ने 36 हजार करोड़ रुपए के लीकेज को रोका है। इतनी राशि हर साल बचेगी।

विदेश नीति के मोर्चे पर केंद्र को सबसे ज्यादा स्रुलता मिली है। इसने दो साल के अल्प समय में अलग छाप छोड़ी है। पिछले दो सालों में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अनेक देशों की यात्रा कर भारत को अंतरराष्ट्रीय जगत में प्रमुख शक्ति के रूप में स्थान दिलाने का अथक प्रयास किया है जिसके परिणामस्वरूप विश्व के अमेरिका, जापान, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, चीन जैसे शक्तिशाली और विकसित भारत के प्रयासों की सराहना मुक्त कंठ से कर रहे हैं और संभवत: पहली बार हम देशवासियों को अपने ऊपर गर्व हो रहा है। गुटनिरपेक्षता की बात अब पीछे छूट गई है। दरअसल, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सरकार का मुख्य ध्यान समान विचारधारावाले देशों के साथ मजबूत संबंध स्थापित करने पर है, ताकि भारत को आर्थिक और कूटनीतिक मोर्चे पर बढ़त दिलाई जा सके।

दक्षिण चीन सागर को लेकर चीन और दूसरे पड़ोसी देशों के बीच उपजे विवाद में भी भारत ने सशक्त भूमिका निभाई है। एक अलग पाकिस्तान नीति भी विकसित की गई है जिसके तहत नई दिल्ली इस्लामाबाद पर दबाव बनाने के लिए संयुक्त अरब अमीरात और सउदी अरब जैसे पाकिस्तान के सहयोगियों का उपयोग कर रही है। अमेरिका ने भी पाकिस्तान के आतंकवाद के सवाल पर उसकी चाल को समझते हुए उसे आर्थिक सहयोग से अपना हाथ अब पीछे खीच रहा है।

नि:संदेह केंद्र की नरेन्द्र मोदी सरकार ने अपने दो वर्षो के कार्यकाल में भारतवर्ष को विश्व पटल पर एक नए रूप में स्थापित की है जो लगातार उन्नति के नए रास्ते खोल दुनिया को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। मोदी सरकार की मेरे ख्याल से सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसने देश का मूड बदलकर उम्मीद जगाई है। राष्ट्रवाद और देशभक्ति को लेकर मोदी सरकार के आने के बाद दो साल में जो माहौल बना है उसके मद्देनजर यह कहा जा सकता है कि भारत जैसे बहुलतावादी देश मे कट्टर राष्ट्रवाद को उचित कतई नहीं ठहराया जा सकता है। आजादी के 70 सालों बाद पहली बार ऐसा महसूस हो रहा है कि हिंदी में कामकाज को बढ़ावा मिला है और अब हिंदी में कामकाज को बढ़ावा मिला है और अब हिंदी के प्रति नजरिया बदला है तथा हिंदी अब शर्म की भाषा नहीं रह गयी है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो दो साल किसी सरकार की उपलब्धियों और कमियों के मूल्याँकन के लिए पर्याप्त समय नहीं होता है, मगर यह एक सही मौका होता है उसकी दशा दिशा पर नजर डालने का। सरकार की नीतियों का प्रकिलन अगल तीन साल में परिलक्षित होगा।

फिलहाल मोदी सरकार जिस तेजी से विभिन्न महत्वाकांक्षी योजनाओं पर लगातार काम करती दिख रही है, हर क्षेत्र में कुछ पहलकदमियाँ कर रही हैं, उम्मीद की जानी चाहिए कि कुछ महीनों या कुछ वर्षो के बाद उनके नतीजे सामने आने पर देश एक बड़े बदलाव की आहट महसूस करेगा और भाजपा बीते दो वर्षो में खासतौर पर मई, 2016 में हुए पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों के जनादेश के संकेतों को समझते हुए भविष्य में सामाजिक मोर्चे पर सदभाव के साथ 'सबका साथ-सबका विकास' और आम आदमी के जीवन में खुशहाली जल्द लाने के उपायों पर नए सिरे से गौर करेगी।

बहरहाल मोदी सरकार ने राष्ट्र निर्माण की मजबूत नींव रख दी है। अब जरूरत केवल इस बात की है कि इस नींव पर अपनी नीतियों को धार देते हुए सशक्त, सक्षम और सामर्थ्यवान भारत के निर्माण के सपने को पूरा करने की चुनौती को पूरा किया जाए। मगर इतना तो कहा ही जा सकता है कि मोदी के प्रधानमंत्री का पदभार संभालते वक्त जो उन्हें विरासत मे एक संघर्ष करती अर्थव्यवस्था मिली थी, उन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों को आज अनुकूल बना लिया है। मोदी सरकार के द्वारा अप्रत्यक्ष कर की चोरी के रूप में जहाँ एक ओर 51000 करोड़ रुपए का विगत दो वर्षो में पता

...ाया गया है, वहीं दूसरी ओर कालेधन की जाँच के दो वर्ष के भीतर लगभग 1400 मामले दर्ज किए गए और इसकी जाँच के लिए एक विशेष जाँच दल का गठन किया गया है। इसी प्रकार प्रधानमंत्री के अनुरोध पर संपन्न वर्ग से रसोई गैस के उपभोक्ताओं ने स्वेच्छा से एक करोड़ से अधिक त्याग किया जिसका लाभ गरीब परिवारों को मिला।

फिलहाल मोदी सरकार जिस तेजी से विभिन्न महत्वाकांक्षी योजनाओं पर लगातार काम करती दिख रही है, हर क्षेत्र में कुछ पहलकदमियाँ कर रही हैं, उम्मीद करनी चाहिए कि कुछ महीनों या कुछ वर्षो के बाद उनके नतीजे सामने आने पर देश एक बड़े बदलाव की आहट महसूस करेगा और भाजपा बीते दो वर्षो में खासतौर पर मई, 2016 में हुए पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों के जनादेश के संकेतों को समझते हुए भविष्य में सामाजिक मोर्चे पर सद्भाव के साथ 'सबका साथ-सबका विकास' और आम आदमी के जीवन में खुशहाली जल्द लाने के उपायों पर नए सिरे से गौर करेगी।

26 मई, 2014 से अबतक मोदी सरकार ने शासन और कार्य प्रणाली में पारदर्शिता पर बल दिया है जिसका परिणाम विश्व में भारत की छवि में व्यापक सुधार के रूप में दिखाई भी देता है जो विगत वर्षो मे भ्रष्टाचार की वजह से धूमिल हो चुकी थी यह उसी पारदर्शिता का असर है कि आज केंद्र सरकार और नौकरशाहों के बीच आपसी सामंजस्य बढ़ा है। सही अर्थ में हम पहली बार सरकार में परदर्शिता का अनुभव कर रहे हैं। सरकार का अधिकतर कामकाज ऑनलाइन हो चुका है। यह मोदी सरकार के अथक प्रयासों का प्रतिफल है।

(१०)प्रश्नः दिल्ली में आम आदमी पार्टी के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल के आप समर्थक रहे हैं, मगर १५-१६ महीनों के अपने कार्यकाल के बाद अपनी ओछी बयानबाजियों के साथ केजरीवाल किसी भी तरह से राजनीतिक शूचिता का परिचय देते नहीं दिखते हैं और इनके मंत्रियों-विधायकों की फर्जी डिग्री, रिश्वत माँगने व आपराधिक मामलों में फँसने के साथ नए बवाल भी सामने आते रहे हैं। मौजूदा हालात के मद्देनजर आज की तिथि में 'आप' के मुखिया और दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तरः निःसंदेह आम आदमी पार्टी भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के गर्भ से जन्मी है और उसका घोषित उद्येश्य था राजनीति के कीचड़ को सफ़ करना

तथा जनता को चतुर्दिक पारदर्शिता के साथ सुशासन देना। सूचना के अधिकार आंदोलन के प्रमुख कार्यकर्ता और पैरोकार रहे केजरीवाल दिल्ली विधान सभा के 10 फरवरी, 2015 को आए नतीजे में 70 में से 67 सीटें जीतकर अरविंद केजरीवाल आम आदमी पार्टी की सरकार के मुख्यमंत्री बने और 14 फरवरी, 2015 को 6 मंत्रियों के साथ उन्होंने सरकार बनाई। इसमें कोई शक नहीं कि प्रारंभिक महीनों में केजरीवाल ने अपने कार्यकलापों से अन्य राजनीतिक दलों और उसके नेताओं को आईना दिखाया। इस देश्ा के लोग सरकार के विभिन्न विभागों में निरंतर बढ़ती प्रवृत्ति को देखते हुए यह मान बैठे थे कि भ्रष्टाचार अब इस देश से कभी नहीं मिट पाएगा। इसलिए हालात को देखते हुए लोग भ्रष्टाचार को शिष्टाचार मान बैठे थे, मगर केजरीवाल ने अपने कार्यकलापों से भ्रष्टाचार पर रोक लगाई और उनकी सरकार के अधिकारियों एवं कर्मचारियों में उनके डर से दहशत है तथा रिश्वत लेने का साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। कुछ इन्हीं सब कारणों से मैं उनका समर्थक रहा हूँ, मगर जैसे-जैसे दिन बीतते गए केजरीवाल और उनकी सरकार के मंत्रियों की छवि धूमिल होती गई, कुछ तो उनके मंत्रियों के कार्यकलापों के कारण और कुछ उनके अनर्गल बयानबाजी के चलते।

अभी-अभी कुछ दिनों पूर्व दिल्ली के उपराज्यपाल नजीब जंग को चिट्ठी लिखकर मुख्यमंत्री केजरीवाल ने जो व्यंग्य किया है वह उनके पद की गरिमा के अनुकूल बिल्कुल नहीं दिखता। उन्होंने कहा कि आप चाहे कितने भी गैर-कानूनी जनविरोधी और असंवैधानिक काम कर लें पीएम मोदी आपको कभी उपराष्ट्रपति नहीं बनाएँगे। उपराज्यपाल ने उनके पत्र के जवाब में सिर्फ इतना ही कहा कि उनके उत्पीड़न के भ्रम पर मुझे खेद है।' दरअसल अपने पत्र के जरिए केजरीवाल यह जताना चाहते थे कि उपराज्यपाल के इशारे पर उनकी आम आदमी पार्टी के खिलाफ साजिश रचते रहे हैं और उपमुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया या मंत्री गोपाल राय को भ्रष्टाचार निरोधक शाखा के मार्फत मिला सम्मन भी ऐसी ही साजिशों की अगली कड़ी है। केजरीवाल यह भूल गए कि लोकतंत्र में कोई संस्था को अपने अधिकार का इस्तेमाल करने का अधिकार है और यदि उपराज्यपाल ने भ्रष्टाचार निरोधक शाखा(एसीबी) के जरिए यदि सम्मन जारी किया है तो वह साजिश नहीं, बल्कि उन्होंने अपने कर्तव्य का निर्वह्न किया।

दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि हमेशा राजनीतिक शुचिता और भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन की याद दिलाने वाले केजरीवाल ने अपने 21

विधायकों को आनन-फानन में संसदीय सचिव बना देने के मामले में वे ऑफिस ऑफ प्रोफिट के विवाद में घिर गए, क्योंकि संविधान में संशोधन का बना नियम स्पष्ट बताता है कि सरकार बनाने वाली पार्टी एक निश्चित संख्या में ही अपने विजयी उम्मीदवारों को मंत्री पद दे सकती है या संसदीय सचिव बना सकती है। दलो द्वारा सरकार बनाने पर मंत्रियों की बड़ी फौज की प्रवृत्ति पर नियंत्रण के लिए सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश वेंकटचलैया की रिपोर्ट के आधार पर 2003 में बने कानून के मुताबिक केंद्र तथा राज्यों में सदन की संख्या के 15 फीसदी से अधिक सदस्य मंत्री नहीं बन सकते, परंतु दिल्ली के लिए विशेष प्रावधानों के तहत 10 फीसदी यानी मुख्यमंत्री के अलावा 6 लोग ही मंत्री बन सकते हैं। मगर सत्ता सुख की होड़ मे दबाव के फलस्वरूप केजरीवाल ने 21 विधायको को संसदीय सचिव के पद पर नियुक्त करके मंत्री का दर्जा दे दिया। यही नहीं उन्होंने विधायकों के वेतन-भत्ते में 4 गुना की बढ़ोतरी करके उनकी लिप्सा को शांत करने का यत्न भी किया जो उनकी नैतिकता के अनुरूप बिल्कुल नहीं दिखता।

इस प्रकार हम भी यह महसूस करते हैं कि सत्ता में आने के पश्चात् केजरीवाल की नैतिकता और आदर्शवाद की हवा निकलती जा रही है। इनकी सरकार ने 21 संसदीय सचिव की नियुक्ति के बाद जब चुनाव आयोग ने इसका संज्ञान लेकर कारण पूछा, तो विधायी प्रक्रिया में बदलाव की युक्ति अपनायी गयी। संसदीय सचिवों की नियुक्ति को वैध साबित करने के लिए बहुमत के बल पर विधानसभा में बैकडेट में एक कानून बनाया गया जिसे राष्ट्रपति ने हस्ताक्षर करना स्वीकार नहीं किया। इसी वजह से उन्हें एक साथ 21 विधायकों की सदस्यता के रद्द होने का खतरा सामने है, क्योंकि कानून के अनुसार विधायक या सांसद अगर कोई अन्य लाभ का पद लेते हैं तो सदन से उनकी सदस्यता रद्द हो सकती है। केजरीवाल द्वारा नियुक्त 21 संसदीय सचिवों को स्टॉफ कार, सरकारी ऑफिस, फोन, एसी, इंटरनेट तथा अन्य सुविधाएँ दी गई हैं जिसे राजनीतिक लूट की संज्ञा दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त केजरीवाल ने अपने आत्मप्रचार के विज्ञापन हेतु बजट को 16 गुना बढ़ाकर 33 करोड़ से 526 करोड़ कर दिया।

यदि 21 विधायकों की सदस्यता रद्द हो जाती है, तो भी केजरीवाल सरकार का राजनीतिक बहुमत तो रहेगा ही, पर उनकी श्रेष्ठता के दावे का क्या होगा? इस प्रकार आए दिन केजरीवाल के हास्यास्पद बयानों, उनके मंत्रियों-विधायकों के आपराधिक मामलों में फँसने के साथ केजरीवाल सरकार की छवि पर

बार-बार उठे सवाल और नए बवाल से केजरीवाल किसी भी तरह से राजनीतिक शुचिता का परिचय नहीं देते दिखते।

इस कड़ी में दिलचस्प बात यह भी है कि चाहे कोई स्थानीय प्रकरण हो, जिसका केंद्र सरकार से कोई लेना-देना न भी हो, केजरीवाल दोष भाजपा और नरेन्द्र मोदी के मत्थे ही मढ़ते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आगामी लोकसभा चुनाव के मुकाबले केजरीवाल अपने को विपक्ष का राष्ट्रीय नेता बनने की कवायद कर रहे हैं। किसी भी नेता का महत्वांकांक्षी होना या राजनीति करना उनका अधिकार है, लेकिन परिवर्तन और ईमानदारी की राजनीति के जिस घोड़े पर सवार होकर केजरीवाल आए हैं उसमें उनसे उम्मीद की जाती है कि वह जनता को गुमराह न करके सही मुद्दो के लिए संघर्ष करें। केवल टकराव की राजनीति और पूर्ण राज्य जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर यों ही विवाद खड़ा करने से न तो देश्ा का भला होगा और न जनता का। मुझे तो लगता है कि दिल्ली को पूर्ण राज्य का दर्जा दिलाने के लिए केजरीवाल जनमत संग्रह की बात कर रहें हैं वह ब्रिटेन के प्रधानमंत्री डेविट कैमरीन द्वारा यूरोपीय संघ से अलग होने को लेकर कराए गए जनमत के परिणाम जैसा केजरीवाल की भी स्थिति न हो जाए और जिससे राष्ट्र की एकता और अखंडता एवं भाइचारे पर न आँच आ जाए। कहीं ऐसा न हो कि केजरीवाल जी की हालत एक समय अंतरराष्ट्रीय स्तर तक लोकप्रियता हासिल करने वाले बिहार के एक मुख्यमंत्री की स्थिति में न आ जाए।

(११)प्रश्नः राष्ट्रीय राजनीति के लिए इस देश के सामने संघीय मोर्चा (फेडरल फ्रंट) की कितनी संभावना है?

उत्तरः काँग्रेस और भाजपा-यही दोनों राष्ट्रीय पार्टी के रूप में राष्ट्रीय राजनीति में दिखाई पड़ रही है। इसमें भी वर्ष 2014 में हुए लोकसभा चुनाव और वर्ष 2016 में पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों के परिणाम के बाद तो काँग्रेस पार्टी मात्र छह राज्यों उसमें भी कर्नाटक को छोड़ बाकी सभी छोटे-छोटे पहाड़ी राज्यों में ही सिमटकर रह गई है और दूसरी ओर भाजपा ने अपना विस्तार किया है। ऐसी स्थिति में भाजपा के नेतृत्व में बनी केंद्र सरकार के खिलाफ कोई विश्वसनीय चुनौती दिखाई नहीं देती है। यह चिंता का विषय इसलिए है कि यदि लोकतंत्र में भरोसेमंद विपक्ष न हो तो राष्ट्र कमजोर पड़ जाता है। भूतकाल के घोटाले और भ्रष्टाचार में लिप्त काँग्रेस पार्टी को पुनर्जीवित करने के लिए सोनिया के स्थान पर जबरदस्ती काँग्रेस प्रमुख बनाने की कोशिश बहुत फलदायक होगी। पार्टी में व्यापक सुधार किए

जाएँगे ऐसी आशा करने का कोई आधार नहीं दिखता, क्योंकि काँग्रेस की नाकामी की वजह से यह पार्टी लगातार कमजोर होती जा रही है। ऐसी स्थिति में काँग्रेस के अलावा एक मात्र विकल्प क्षेत्रीय दल हैं जिन्होंने राज्यों के मुद्दों पर ईमानदारी सें काम करके राज्यों की राजनीति पर अपनी पकड़ कायम रखी है, मगर दुर्भाग्य यह है कि केंद्र में सरकार बनाने के लिए अंतिम समय में अवसरवादी गठबंधन बनाने के लिए एकजूट होने के अलावा वे कभी एक साथ नहीं आ सके। स्वाभाविक है कि ऐसी बाजीगरी से राष्ट्रीय स्तर की विश्वसनीयता हासिल नहीं होगी। दूसरी बात यह है कि राज्यों के मुख्यमंत्री प्राय: प्रदेश के हित को राष्ट्रीय हित के ऊपर रखते रहे हैं। क्षेत्रीय दलों के नेताओं के राजनीतिक स्वार्थ से संघीय मोर्चा का गठन मुश्किल लग रहा है। मेरा ख्याल है कि संघीय मोर्चा को सही दिशा प्रदान करने के लिए एक संघीय परिषद या आयोग गठित करने की आवश्यकता होगी जिसके सभी क्षेत्रीय पार्टियों के सदस्य शामिल होंगे और जिसका काम होगा कि वह राज्यहित के ऊपर राष्ट्रीय हित की श्रेष्ठता सुनिश्चित कर सकें।

यह परिषद या आयोग ही पार्टियों के बीच आंतरिक कलह या टकरावों का भी समाधान निकालने का काम कर सकेगा। मसलन यह परिषद या आयोग यूरोपीय संघ जैसा होगा जिसमें एक केंद्रीय संस्था यूरोपीय संघ के हितों को देखती है, जबकि सदस्य देशों के पास उनकी अपनी ताकत बनी रहती है। इससे संघीय मोर्चे की स्थिरता सुनिश्चित होगी।

सबसे बड़ी बात तो काबिलेगौर यह है कि संघीय मोर्चे के कठिन काम को पूर्व के अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है कि क्षेत्रीय दल जब एकजूट होते हैं तो भी उनके प्रति संदेह बना रहता है और दूसरी बात यह कि मौजूदा दौर में प्राय: प्रत्येक क्षेत्रीय दल के प्रमुख चाहे लालू यादव हों या नीतीश कुमार, मायावती हों या मुलायम सिंह यादव सभी प्रधानमंत्री के दावेदार हैं। यही नहीं, लोकसभा में हो या विधान सभा में विपक्षी दलों के सांसद एवं विधायक केवल विरोध के लिए विरोध करते हैं। आपने देखा नहीं 2015 एवं 2016 में संसद के किसी भी सत्र को चलने नहीं दिया सांसदों ने।

जनप्रतिनिधियों और राजनेताओं के कारनामों की वजह से ही आमजन में इतनी हताशा और संत्रास इस कदर हावी हो चुका है कि अभिव्यक्ति भी दम तोड़ती नजर आने लगी है। राजनीति में जो कुछ लोग अच्छे बचे हैं तो उनकी तटस्थता, उनकी चुप्पी इतनी गहरी है कि उनतक

आम आदमी की आवाज जाना नामुमकिन-सा लगता है। पता नहीं कब लोग अपनी तटस्थता को छोड़ और चुप्पी को तोड़ आम आदमी के जीवन की विसंगतियों की कड़ी धूप से नेह लगाएँगे। ऐसी भयावह स्थिति में क्षेत्रीय दलों के प्रमुख राजनेताओं द्वारा संघीय मोर्चा के गठन की संभावना क्षीण नजर आती है क्योंकि वैश्विक मंच का गौरव बन चुके नरेन्द्र मोदी के विरोध का प्रयास मात्र विपक्षी अस्मिता बचाना है। मोदी आजाद भारत के बाद के सबसे दमदार राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय नेता के रूप में उभरे हैं।

दरअसल, केंद्र की सत्ता पर आसीन होने की महत्वाकांक्षा के सिवा संघीय मोर्चा में शामिल क्षेत्रीय दलों के नेताओं का पूरा नजरिया दिशाहीन लगता है। लोकतंत्र का हवाला देकर वे भारतीय जनमानस को ठगने के सिवा उनके दिमाग में कुछ नहीं रहता। कारण कि उनके लिए नरेन्द्र मोदी का प्रधानमंत्री बनना और उनके द्वारा उम्मीद की किरण उनके लिए असह्य हो रही है। उनके दिमाग में सकारात्मक भूमिका निभाने की बात कभी नहीं आती। इस दृष्टि से देखा जाए तो संघीय मोर्चा की संभावना फिलहाल क्षीण दिखती है।

(१२)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि राहुल गाँधी के काँग्रेस के अध्यक्ष बनने पर काँग्रेस पार्टी की स्थिति सुधरेगी?

उत्तर: विगत तकरीबन पाँच दशक से पीवी नरसिम्हा राव के पाँच-छह साल छोड़कर काँग्रेस पार्टी परिवार भरोसे ही रही, क्योंकि इस पार्टी के कार्यकर्ता भी यह समझते रहे हैं कि गाँधी-नेहरू परिवार ही काँग्रेस पार्टी को जोड़कर रखेंगे, मगर इधर पिछले एक-डेढ़ दशक के दौरान देशवासियों के मन में काँग्रेस के प्रति घोर निराशा रही है जिसका एक कारण तो काँग्रेस का भ्रष्टाचार और घपले-घोटाले में लिप्त रहना रहा है और दूसरा उनकी खानदानी और परिवारवाद से भी लोगों का मोहभंग हो रहा है। हालांकि देखा जाए, तो भाजपा, जद(यू), तृणमूल काँग्रेस तथा वामदलों को छोड़कर राष्ट्रीय जनता दल, समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय लोकदल, द्रमुक, राष्ट्रीय लोकतांत्रिक पार्टी, शिव सेना, आदि राजनीतिक पार्टियाँ परिवार केंद्रित हैं।

अब यह सवाल उठता है कि क्या सोनिया गाँधी द्वारा अध्यक्ष पद छोड़ने पर राहुल गाँधी काँग्रेस पार्टी की डूबती नैया को किनारे लगा सकेंगे? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि पिछले कई वर्षो से काँग्रेस पार्टी के उपाध्यक्ष पद पर रहकर राहुल गाँधी ने ऐसा कोई काम नहीं किया है जिसके बल पर यह कहा जाए कि काँग्रेस पार्टी आगे बढ़ी है, बल्कि सच तो यह

है कि जब से जनवरी, 2013 के जयपुर चिंतन शिविर में राहुल गाँधी को काँग्रेस पार्टी के उपाध्यक्ष पद पर बैठाया गया, तब से पार्टी लगातार गिरावट के साथ ढलान पर है और मई, 2016 में हुए पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों के बाद तो पूरे भारत में यह पार्टी केवल छह राज्यों में सिमटकर रह गई है। पिछले दो सालों में ऐसा कुछ नहीं हुआ जिसके बल पर राहुल गाँधी के कार्यकलाप को सराहा जा सके। हाँ, काँग्रेस ने अकेले चलने की बजाय नरेन्द्र मोदी और भाजपा विरोधी ताकतों के खड़े होने का फैसला किया है जिससे इस पार्टी के नकारात्मक रूख का पता चलता है। बीते दो सालों में राज्यसभा में कुछ सरकारी विधेयकों को लेकर लोगों ने ऐसा कुछ नहीं किया, जिसे याद रखा जाए।

जहाँ तक मैं समझता हूँ काँग्रेस पार्टी के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है लगातार हार को रोकना, संगठन को मजबूत करना, भ्रष्टाचार के विरूद्ध आवाज उठाना और पार्टी को नया वैचारिक आधार प्रदान करना तथा सामाजिक आधार को पुनः वापस लाना। मुझे लगता है कि राहुल गाँधी के लिए इनमें से किसी एक पर भी अमल करना बूते की बात नहीं। उनके लिए यह संभव नहीं कि इनमें से किसी एक पर भी वह पहल कर सकें। ऐसी स्थिति में राहुल गाँधी के अध्यक्ष बनने पर भी काँग्रेस पार्टी की स्थिति में सुधार की कोई गुँजाइश नहीं दिखती।

मुझे नहीं लगता कि राहुल गाँधी में इतना राजनीतिक कौशल है कि वह पार्टी के सामने खड़ी बहुआयामी चुनौतियों के झंझावात से निकालकर सामान्य अवस्था में ले आएँगे। सच तो यह है कि जब काँग्रेस को एक ही गाँधी-नेहरू परिवार से नेतृत्व तलाशना है तो फिर उनके पास कोई अन्य विकल्प नहीं है और यह अपने आप में काँग्रेस का एक बहुत बड़ा संकट है। यह भी सत्य है कि जब भी गाँधी-नेहरू परिवार के किसी सदस्य या परिवार से बाहर के प्रधानमंत्री रहने पर काँग्रेस केंद्र की सत्ता में रही है तब कई घोटालों में शामिल रही है या उस पर घोटालों के आरोप लगत रहे हैं।

यूनाइटेड किंग्डम की महारानी एलिजाबेथ ने अपने 67 वर्षीय बेटे प्रिंस चार्ल्स के लिए सत्ता त्यागने से इनकार कर दिया था, क्योंकि उन्हें ऐसा लगता था कि उनका बेटा अच्छा राजा नहीं बन पाएगा। सोनिया गाँधी को भी ऐसा ही करना चाहिए। हालांकि काँग्रेस की स्थिति इतनी बद से बदतर होती जा रही है कि सोनिया गाँधी से भी इतनी बुरी हालत में सुधार की आशा नहीं की जा सकती है, क्योंकि सोनिया जी भी कोई ऐसी प्रशासक नहीं है

कि उनसे हालत में कोई फर्क आने वाला है और फिर सोनिया जी के प्रति भी इस देश की जनता का रूख बहुत अच्छा नहीं दिखता है। कारण कि इनके काँग्रेस अध्यक्ष रहते ही तो इतने सारे घोटाले हुए।

(१३)प्रश्न: क्या लोकतंत्र दागी राजनीति से मुंक्त हो सकेगा? अगर हाँ, तो कैसे?

उत्तर: इस देश को आजाद करने के लिए हजारों देशवासियों ने अपने जीवन को भारत की बलिवेदी पर न्योछावर कर दिया, मगर आजादी के बाद संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली के तहत जब अपने देश के लोगों के हाथ सत्ता आई, तो डेढ़-दो दशक तक तो सब कुछ ठीक-ठाक चला, पर उसके बाद सफेदपोश नेताओं ने इस देश को बर्बाद करना शुरू कर दिया और आजादी के सात दष्ठाक बीत जाने के बावजूद आज स्थिति यह है कि यहाँ कि जनता गरीबी, भूखमरी, बेकारी, बेरोजगारी, महँगाई और भ्रष्टाचार एवं घपले-घोटालों से घिर गई है और लोगों में घोर निराशा और हताशा है। दूसरी ओर हमारे नेता और जन प्रतिनिधि लूट-खसोट, एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप, अभद्र एवं अशोभनीय टिप्पणियाँ, संसद एवं विधान सभाओं मे देश की समस्याओं पर चर्चा न कर हंगामा कर राजनीति का स्तर दिनानुदिन गिरा रहे हैं। जिसे हम अगुआ चुनकर समाज व देश के विकास की पटकथा लिखने के लिए संसद एवं विधानसभाओं में भेजते हैं, अगर वे ही संवाद की बजाय हंगामा और असभ्य आचरण करने लगें, तो हो चुका देश का निर्माण और विकास।

लोकतंत्र की बुनियाद है राजनीति जिसकी जनता की आँखों में पारदर्शिता होनी चाहिए, परंतु आज राजनीति ने इतने मुखौटे पहन लिए हैं कि उसका सही चेहरा पहचानना आम आदमी के लिए बहुत मुश्किल होता जा रहा है। पिछले सत्तर सालो में जिस प्रकार भारतीय राजनीति का अपराधीकरण हुआ है और अपराधियों, बाहुबलियों तथा धनपशुओं का राजनीति में बोलबाला बढ़ा है उससे लोकतंत्र में हमारी आस्था कमजोर हुई है। राजनीतिक दलों एवं उसके नेताओं द्वारा आज अपराधियों एवं भ्रष्टाचारियों को जिस तरह शह दिया जा रहा है और राजनीति में जिस तेजी से उसकी पैठ होती जा रही है उससे हमारी समूची लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ शर्मसार हो रही हैं। आज कर्तव्य से ऊँचा कद कुर्सी का हो गया है और जनता के हितों से ज्यादा वजनदार निजी स्वार्थ बन गया है। राजनीतिक मूल्य ऐसे नाजुक मोड़ पर आकर खड़े हो गए हैं कि सभी का पैर फिसल सकता है। जनप्रतिनिधियों एवं नेताओं पर से आम आदमी का भरोसा जिस तेजी से

खत्म होता जा रहा है उससे चिन्तित होना स्वाभाविक है, क्योंकि राजनेताओं की बुराइयों ने पूरे राजनीतिक तंत्र और पूरी व्यवस्था का प्रदूति कर दिए हैं।

दरअसल, जहाँ नैतिकता और निष्पक्षता नहीं है, वहाँ भरोसा करने का कोई सवाल नहीं उठता। सत्ता में आने और बने रहने के लिए सिद्धांतों एवं आदर्शो से समझौता करना तथा भय, प्रलोभन या झूठे वादे और आश्वासनों के बल पर मतों की खरीद-फरोख्त के चलते अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में हमारे देश का भाग्य सौंप दिया जाता है जिसका दुष्परिणाम जतना भुगत रही है। राजनीति में व्याप्त इन सभी बुराइयों से छुटकारा पाने के बाद ही हमारा लोकतंत्र दागी राजनीति से मुक्त हो पाएगा।

(१४)प्रश्नः क्या आज छद्मपंथ निरपेक्षकों का सेक्युलरवाद केवल मुस्लिम वोट बैंक तक ही सीमित नहीं है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, आज छद्मपंथ निरपेक्षकों का सेक्युलरवाद केवल मुस्लिम वोट बैंक तक ही सीमित है, क्योंकि चाहे साहित्यकारों और प्रबुद्धजनों का कुछ तबका हो या कुछ तथाकथित पंथनिरपेक्ष राजनीतिक पार्टियाँ और उसके नेता, पंथनिरपेक्षक सहयोगी काँग्रेस, राष्ट्रीय जनता दल, जेपी, लोहिया की राह पर चलने वाली समाजवादी पार्टियाँ, सभी की विचारधारा आतंकियों के प्रेरणाश्रोत डॉ. जाकिर नाइक, कश्मीर और जंगलराज का पोस्टर ब्वॉय कहे जाने वाले मो. शहाबुद्दीन को लेकर साझा है। पं. नेहरू मुस्लिम सांप्रदायिक शक्तियों के खिलाफ कभी मुखर नहीं रहे, बल्कि उनकी मानसिकता ऐसी शक्तियों से समझौता करने की थी। घोर सांप्रदायिक कश्मीरी नेता शेख अब्दुल्ला को नेहरू जी सेक्युलरिस्ट मानते थे और जब उन्हें अपनी गलती का बोध हुआ तो उन्होंने ही शेख को जेल की सीकंजों में बंद किया। जाकिर का सोनिया राहुल के प्रति स्नेह और मो. शहाबुद्दीन की लालू के प्रति स्वामिभक्ति इसी मानसिकता की परिचायक है। आखिर तभी तो वर्ष 2011 में इस्लाम के उपदेशक डॉ. जाकिर नाइक के संगठन इस्लामिक रिसर्च फाउन्डेशन से काँग्रेस या सोनिया-राहुल की संस्था राजीव गाँधी चैरिटेबुल ट्रस्ट ने 50 लाख रुपए भेंट स्वरूप स्वीकार किया।

इसी प्रकार कश्मीर के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जिस तरह दिल्ली से श्रीनगर पहुँचे वार्ताकार संसदीय प्रतिनिधिमंडल के माकपा के महासचिव सीताराम येचुरी, भाकपा के डी.राजा. और जद(यू) के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष शरद यादव ने व्यक्तिगत रूप से अलगाववादियों के नेता हुर्रियत नेता सैयद अली शाह गिलानी, उमर फारूक सहित सभी से उनके घर जाकर बात

करनी चाही, तो इन नेताओं ने घर की खिड़कियों से प्रतिनिधि मंडल के तथाकथित पंथनिरपेक्ष सदस्य नेताओं को देखा जरूर, मगर उनके लिए घर का दरवाजा भी नहीं खोला। पाकिस्तान परस्त अलगाववादियों ने इन नेताओं से जिस प्रकार व्यवंहार किया वह देश के छद्मपंथनिरपेक्ष नेताओं के मुँह पर किसी तमाचे से कम नहीं कहा जाएगा।

कट्टर आपराधिक छवि के मो. शहाबुद्दीन के मामले में बिहार के लोहियावादी मुखिया अपराध नियंत्रण अधिनियम का उपयोग करते और किसी वरिष्ठ वकील को उच्च न्यायालय में खड़ा करते, तो साक्ष्यों को प्रभावित करने की संभावना और आपराधिक पृष्ठभूमि की वजह से मो. शहाबुद्दीन जमानत पर जेल से बाहर नहीं आते। बिहार में कट्टर इस्लामी विचारधारा और मो. शहाबुद्दीन का आपराधिक रेकॉर्ड सभी जानते हैं आखिर तभी तो उसे मदद करने के कारण बिहार ही नहीं पूरे देश के नागरिकों द्वारा बिहार सरकार की इतनी छिछालेदर नहीं होती और न आरोपित शहाबुद्दीन खुली हवा में सांस ले पाते। बिहार सरकार की निष्क्रियता और प्रशासनिक ढिलाई के कारण ही यह सब संभव हो सका। कुल मिलाकर देखा जाए तो आज छद्म-पंथनिरपेक्षकों का सेक्युलरवाद केवल मुस्लिम वोट बैंक तक ही सीमित हो गया है।

(१५)प्रश्नः क्या आप भी ऐसा महसूस करते हैं कि समाजवादी पार्टी के मुखिया मुलायम सिंह यादव के परिवार में राजनीति में सत्ता को लेकर हुआ अंदरूनी संघर्ष में अस्थायी संघर्ष विराम ही हुआ है?

उत्तरः हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि हाल ही में समाजवादी पार्टी के प्रमुख मुलायम सिंह यादव के परिवार के अन्दर राजनीति को लेकर सत्ता के लिए जो अंदरूनी संघर्ष हुआ वह अस्थायी संघर्ष विराम ही है, क्योंकि चाचा-भतीजे में सत्ता को लेकर जो संघर्ष हुआ है उसका पटाक्षेप इतनी जल्द नहीं होने वाला है। यह तो कहिए कि उत्तरप्रदेश के वर्तमान मुख्यमंत्री अखिलेश यादव अपने पिता को खुश करने के लिए तत्काल उनकी बात मान गए हैं। सच तो यह है कि वह दिल से अपने चाचा शिवपाल यादव का न तो विभाग वापस करना चाहते थे और न गायत्री प्रजापति को फिर से मंत्री बनाना ही। इसलिए भले ही मुलायम सिंह यादव की छत्रछाया में पारिवारिक राजनीति का यह संघर्ष सतह पर शांति स्थापित हो गया है, मगर सपा में भविष्य की विभाजन रेखा खींच गयी है और इसे टालना असंभव इसलिए लगता है कि इतिहास गवाह है कि सत्ता के लिए अतीत में

पिता-पुत्र, माँ-बेटी, बाप-बेटी और चाचा-भतीजे में संघर्ष सदैव होता आया है और आज भी हो रहा है। चाहे करुणानिधि का परिवार ले लीजिए या उत्तरप्रदेश में कृष्णा पटेल और अनुप्रिया पटेल के संघर्ष को देखिए। महाराष्ट्र में बाल ठाकरे के दोनों पुत्रों की लड़ाई तो सबको पता है। आखिर कौरव और पांडव भी तो दोनों भाई ही थे।

दरअसल, मेरा मानना यह है कि अखिलेश यादव ने संघर्ष विराम की जो शर्ते रखीं उनमें से एक यह था कि टिकट बँटवारे में उनकी चाहत को महत्व मिले। कारण कि अखिलेश जानते हैं कि यदि उनको अपने नेतृत्व की स्थापना करनी है तो सबसे पहले ज्यादा से ज्यादा विधायक उनकी पसंद के निर्वाचित होने चाहिए। वर्तमान विधानसभा में उनके नेतृत्व की स्थापना नहीं हो पाई है, क्योंकि कभी पिता का दबाव तो कभी चाचा का और इन दोनों से उबरे तो अमर सिंह का। अखिलेश जानते हैं कि वर्तमान विधायकों में शिवपाल सिंह के समर्थकों की संख्या बहुत ज्यादा है। इसलिए वह चाहकर भी एक सीमा से आगे नहीं जा सकते थे। इस स्थिति को वह बदलना चाहेंगे। इसमें फिर संघर्ष होना तय है। उनके पिताश्री मुलायम सिंह यादव अभी अपने भाई शिवपाल सिंह का पक्ष लेते हुए दिखाई पड़ रहे हैं, क्योंकि उन्होंने एक बार भी अपने पुत्र अखिलेश के फैसलों को सही या गलत नहीं ठहराया, बल्कि जैसा उन्होंने आदेश दिया, पुत्र अखिलेश को मानने के लिए बाध्य होना पड़ा।

यही नहीं उधर, सपा में रणनीतिकार एवं पार्टी के बौद्धिक चेहरे रामगोपाल यादव भी अखिलेश को समझाने में सफल नहीं हुए। फिर आपने यह भी देखा कि राम गोपाल यादव के भतीजे समेत आठ लोगों को पार्टी से निकाल दिया गया। इन सबको लेकर भविष्य में सत्ता संघर्ष तीखा होने की उम्मीद है, क्योंकि ऐसे संघर्षो का अंत जल्द नहीं होता। चाचा-भतीजे और उनके समर्थकों के बीच जो खाई उत्पन्न हो गई है। उसका असर उत्तरप्रदेश के आसन्न विधानसभा चुनाव में भी देखने को मिलेगा। इसलिए टिकट बँटवारे को लेकर एक टकराव और आने वाला है। स्वाभाविक है कि संघर्ष विराम अस्थायी है।

(१६)प्रश्नः अरुणाचल प्रदेश में हाल ही में लंबी राजनीतिक उठापटक के बाद सत्ता फिर से हासिल करने वाली काँग्रेस की सत्ता का सूरज पुनः डूबना क्या काँग्रेस की खुद की किलता नहीं कही जाएगी?

उत्तरः अरुणाचल प्रदेश में हाल ही में लंबी राजनीतिक उठापटक के बाद सत्ता फिर से हासिल करने वाली काँग्रेस के हाथ से सत्ता विगत 17 सितंबर,

2016 को फिर निकल गयी, क्योंकि एक नाटकीय घटनाक्रम में मुख्यमंत्री पेमा खाँडू के नेतृत्व में काँग्रेस के 43 विधायक पिपुल्स पार्टी ऑफ अरुणाचल (पीपीए) में शामिल हो गए जिससे काँग्रेस सरकार पीपीए सरकार में बदल गई। उल्लेखनीय है कि पीपीए, भाजपा की अगुवाईवाले नार्थईस्ट डेमोक्रेटिक अलायंस का घटक दल है। मुख्यमंत्री खांडू ने अरुणाचल विधान सभाध्यक्ष से मिलकर कहा कि 'हम काँग्रेस का पीपीए में विलय कर रहे है।' राज्य की 60 सदस्यीय विधानसभा में काँग्रेस के 40 विधायक थे जिसमें से 43 विधायकों का पीपीए में विलय करने के बाद काँग्रेस ने पार्टी में बगावत को नियंत्रित करने के प्रयास के तहत विगत जुलाई में तुकी की जगह खांडू को मुख्यमंत्री बनाया था। इस नए घटनाक्रम के बाद अब पूर्वोत्तर में मणिपुर, मेघालय और मिजोरम में ही काँग्रेस की सरकार रह गई है।

अब सवाल यह है कि आखिर काँग्रेस की सत्ता का सूरज डूबते जाने की वजह क्या है? मुझे ऐसा लगता है कि काँग्रेस की इस स्थिति के लिए काँग्रेस का आंतरिक कलह ही मुख्य कारण है, मगर पूरे भारत में काँग्रेस की जो विफलता है उसकी वजह से भी यह स्थिति उत्पन्न हो रही है।

एक घटना की याद दिलाऊ कि मुख्यमंत्री पेमा खांडू विगत जुलाई, 2016 में मुख्यमंत्री पद की शपथ लेने के बाद सोनिया व राहुल से मिलने दिल्ली आए थे, पर माँ-बेटे ने उन्हें पूरे तीन दिन इंतजार कराया। फिर उन्हें प्रधानमंत्री कार्यालय से मिलने का केवल दो घंटे समय मिला जिसमें नरेन्द्र मोदी प्रदेश के विकास के संबंध में बातचीत हुई। इस घटना के बाद पेमाखांडू ने अनुभव किया कि सोनिया-राहुल में न तो आगन्तुक को सम्मान देने की भावना है और न पूर्वोत्तर के मुद्दों की कोई समझ है। ऐसा ही वाकया कलिखो पेमा के साथ 2015 में भी हुआ था। इससे ऐसा लगता है कि काँग्रेस आलाकमान ने तय कर लिया है कि वे नहीं सुधरेंगे।

अरुणाचल के इस घटनाक्रम ने हरियाणा में 1980 के उस 'आयाराम, गया राम' की याद ताजा कर दी जिसमे भजनलाल शामिल थे और उस वक्त जनता पार्टी सरकार का नेतृत्व कर रहे थे। भजन लाल जनता पार्टी से वगावत कर सभी विधायकों के साथ काँग्रेस में शामिल हो गए थे। उसी समय इंदिरा गाँधी की देश की सत्ता में वापसी हुई थी।

काँग्रेस की सरकार अब पूरे देश के सिर्फ छह राज्यों में बची हैं। ये राज्य हैं-कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, मणिपुर, मेघालय और मिजोरम। इसके अलावा केंद्रशासित प्रदेश पुडुचेरी में भी काँग्रेस की सरकार है।

(१७)प्रश्न: क्या आप भी यह मानते हैं कि राजनीति में परिवारवाद सिर्फ सत्ता प्रतिष्ठानों पर कुछ परिवारों के दखल का नाम नहीं है, बल्कि यह देश की लोकतांत्रिक यात्रा के कदमों में पड़ी बेड़ी है? कैसे?

उत्तर: हाँ, मैं भी यह मानता हूँ कि राजनीति में परिवारवाद सिर्फ सत्ता प्रतिष्ठानों पर कुछ परिवारों के दखल का नाम नहीं है, बल्कि यह देश की लोकतांत्रिक यात्रा के कदमों में पड़ी बेड़ी है जिससे मुक्त होकर ही समता मूलक, समावेशी और समृद्ध समाज व भारत देश की कल्पना की जा सकती है। दरअसल, मुख्य मुद्दा यह है कि क्या हमारी राजनीति पारिवारिक झंझटों, पदों की होड़ और अपने मनमाफिक लोगों को खास ओहदों पर बिठाने की जुगतों से ही संचालित होती रहेगी? उत्तरप्रदेश में सत्ता पर विराजमान समाजवादी पार्टी और सरकार में मचे घमासान पर इसके नेता चाहे जो बयान दें, सच यही है कि पूरा प्रकरण पार्टी प्रमुख मुलायम सिंह यादव के पारिवारिक सदस्यों की आपसी महत्वकांक्षाओं के टकराव और अपने वर्चस्व को बनाए रखने की कोशिश का परिणाम है। यही नहीं, 2015 के बिहार विधानसभा चुनाव के बाद जब जद(यू), राजद और काँग्रेस महागठबंधन की सरकार नीतीश कुमार के नेतृत्व में बनी तो लालू प्रसाद के छोटे पुत्र तेजस्वी यादव के उपमुख्यमंत्रे पद के लिए नाम आगे आने पर लालू परिवार में भी बड़े पुत्र तेज प्रताप यादव को उपमुख्यमंत्री पद पर बिठाने के लिए आंतरिक कुनमुन व सुगबुगाहट की आहट सुनाई पड़ी थी, मगर राजद प्रमुख लालू प्रसाद यादव के व्यक्तित्व के सामने बात दब गई और तेज प्रताप यादव को मंत्री से ही संतोष करना पड़ा। वैसे भी इतिहास साक्षी है कि जहाँ-जहाँ मुसलमानों का शासन रहा है बाप-बेटे भी सत्ता की कुर्सी के लिए आपस में लड़ते रहे हैं।

जहाँ तक भारतीय राजनीति की बात है सपा तथा राजद ही नहीं, इतिहास बताता है परिवारवाद कोई नया अध्याय नहीं है। यह बात अलग है कि राजनीति में वंशवाद के प्रखर आलोचक डॉ. राम मनोहर लोहिया के सान्निध्य में राजनीति का ककहरा सीखने और उनके गाँधीवादी समाजवादी के आदर्श पर चलने का दावा करने वाले मुलायम सिंह यादव और लालू प्रसाद यादव ने परिवारवाद को पनपाने में अपनी मुख्य विशेषता बना ली है। कहा जाता है कि पंचायत की सत्ता से मुख्यमंत्री पद तक मुलायम सिंह यादव परिवार के 13 सदस्य और लालू प्रसाद यादव के परिवार के चार सदस्य विभिन्न पदों पर काबिज हो चुके हैं। दिक्कत यह है कि राजनीतिक

दलों में एक या कुछेक परिवारों के वर्चस्व के चलते जनता के सामने विकल्प सीमित हो जाते हैं। इससे दलों का मूल्याँकन नीतियों और कार्यकर्मो तथा विचारधाराओं के आधार पर न होकर व्यक्तियों की पहचान से निर्देशित होने लगता है। चाहे बात करें तमिलनाडु में करुणानिधि परिवार की हो चाहे महाराष्ट्र में शिवसेना के एक समय प्रमुख रहे बाल ठाकरे या नवीन पटनायक अथवा जम्मू-कश्मीर के उमर अब्दुल्ला या महबूबा की हो, यह बीमारी सभी राज्यों में फैल चुकी है। इसकी मुख्य वजह है कि इस देश के अधिकांश राजनीतिक दल अलोकतांत्रिक हो चुके हैं जिसके परणिामस्वरूप यहाँ भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी, विषमता, सामाजिक भेदभाव, हिंसा और असंतोष से मुक्ति की आस पूरी नहीं हो पा रही है।

(१८)प्रश्नः यूरोपीय लोकतंत्र का मॉडल अपनाकर भी भारतीय राजनीति में ऐसी भयंकर विकृत्तियाँ कैसे पैदा हो गई हैं?

उत्तरः आप इस बात से अवगत हैं कि हमारे देश की लोकतांत्रिक प्रणाली यूरोपीय लोकतंत्र के मॉडल पर आधारित है और भारतीय संविधान में भी ब्रिटिश संविधान से बहुत कुछ लिया गया है। फिर भी यूरोपीय लोकतंत्र की तुलना में भारतीय लोकतंत्र व राजनीति में इतनी सारी विकृत्तियाँ आखिर कैसे आ गई हैं। इसके पूर्व कि मैं इन विकृत्तियों के कारणों पर आप से चर्चा करूँ, एक ज्वलंत उदाहरण ब्रिटेन के पूर्व प्रधानमंत्री डेविड कैमरन का आपके समस्त प्रस्तुत करता हूँ।

ब्रिटेन के गंभीर महत्व के विषय ब्रेक्जिट पर जनमत-संग्रह अभियान के बाद प्रधानमंत्री डेविड कैमरन ने अपने पद से तुरत त्यागपत्र इसलिए दे दिया, क्योंकि उनके नहीं चाहने पर भी ब्रिटेन की जनता ने यूरोपियन संघ से नाता तोड़ने का निर्णय जनमत-संग्रह के जरिए लिया और कैमरन ने जनता के निर्णय को सर्वोपरि माना।

यही नहीं, कैमरन ने न केवल जनता के फैसले का स्वागत करते हुए प्रधानमंत्री के पद से त्यागपत्र दे दिया, बल्कि उन्होंने संसद से भी त्यागपत्र देकर राजनीति को अलविदा कह दिया। आप जरा अनुमान करें, यूरोपीय लोकतंत्र पर आधारित भारतीय लोकतंत्र की राजनीति में भारत का कोई प्रधानमंत्री या और कोई नेता इस तरह का साहस जुटा सकता है, जो अपनी जनता के नकारने के बाद अपने पद से ही नहीं पूरी राजनीति से विदा ले ले? यहाँ तो विकृत्तियाँ इस हद तक आ गई हैं कि हजार गलतियाँ करने के बावजूद सत्ता से चिपके रहना उनकी नियति बन गई है और आए दिन

जनता के नहीं चाहने पर भी गलत-से-गलत काम करने पर आमादा रहते हैं। आपने देखा नहीं देश के एक कुख्यात अपराधी जिसपर एक-से-एक कई दर्जन हत्या, दुष्कर्म, चोरी-डकैती, अपहरण आदि से जुड़े मुकदमें अदालत में चल रहे हों और जेल में ग्यारह साल से बंद हो उसे अदालत से जमानत दिलाने में सत्ता पर बैठे हुक्मरानों ने किस प्रकार बेशर्मी से उसकी मदद की यह जगजाहिर हो चुका है।

दरअसल, हमारे देश में राजनीतिक दलों ने अपने सांसदों एवं विधायकों तक का मुँह बाँध रखा है। वे तय पार्टी लाइन के सिवा कुछ नहीं कर सकते। इस प्रकार यहाँ सांसद या विधायक राजनीतिक दलों और उसके शीर्ष पर बैठे नेताओं की कठपुतली हैं। चार-छह बड़ी पार्टियों के नेता सारा निर्णय पहले से तय कर देते हैं। यह संसद या विधान मंडल को व्यर्थ बनाना नहीं तो क्या है? कोई सांसद या विधायक अपने विवेक से नहीं बोल सकता। आपने देखा नहीं बिहार के एक पूर्व सांसद और केंद्रीय मंत्री रघुवंश प्र. सिंह द्वारा खामियों-कमियों पर सवाल उठाने पर कितना हाय-तौबा मचा? उन्हें तो भारतीय लोकतंत्र तक की दुहाई देनी पड़ी। यह न लोकतंत्र है और न हमारे संविधान की भावना के अनुरूप। इसीलिए यूरोपीय लोकतंत्र से तुलना कर भारतीय लोकतंत्र की विकृतियाँ समझने का प्रयास करना चाहिए।

भारत में देशहित से ऊपर पार्टी हित और पार्टी हित से ऊपर उसके शीर्ष पर बैठा नेता हो गया है और पार्टी के और नेता एवं कार्यकर्ता केवल उसके इशारे पर नाचते हुए उसकी जी-हुजूरी में लगे हैं। यही आप देखिए न, नवंबर में होने वाले अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव का प्रचार-प्रसार अपने चरम पर है, हिलेरी उसी डेमोक्रेटिक पार्टी की उम्मीदवार हैं जिस पार्टी के बराक ओबामा राष्ट्रपति है, इसके बावजूद ओबामा अपनी सरकार का कामकाज छोड़कर कभी भी अपनी पार्टी की उम्मीदवार को जिताने के लिए प्रचार-प्रसार में नहीं देखे गए, बल्कि लगता ही नहीं कि चुनाव अभियान में ओबामा से कोई अपेक्षा भी है। यह कितना महत्वपूर्ण अंतर है यूरोपीय लोकतंत्र और भारतीय लोकतंत्र की गतिविधियों में।

यूरोपीय देशों में सभी सांसद और सीनेटर अपनी बातें प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र हैं और उनकी पार्टी इस पर कोई बंदिश लगाना सोच भी नहीं सकती। वहाँ सांसद और सरकार के बीच कार्य-विभाजन पार्टी सदस्यता से प्रभावित नहीं होता। सत्ताधारी दल का सांसद या विधायक भी सरकार के कार्य की उसी कड़ाई से परख करने के लिए स्वतंत्र है, जैसे

कोई और। इसकी तुलना में अलग राय रखने वाला नेता लताड़े जाते हैं और उनके बयान को 'निजी' बयान करार दिया जाता है। यह परिपाटी यूरोपीय लोकतंत्र से मेल न खाकर वामपंथी तानाशाहियों से मेल खाती है। हमारी दलीय व्यवस्था की इतनी बड़ी विकृति का ही परिणाम है कि यहाँ पार्टी देश का और नेता पार्टी का पर्याय हो गया है। यही कारण है कि किसी राष्ट्रीय समस्या पर वास्तविक विमर्श तक नहीं होता, समाधान खोजना तो दूर रहा।

ब्रिटेन में ब्रेक्जिट के बाद कैमरन ने प्रधानमंत्री पद से जब त्यागपत्र दिया, तो कितनी सहजता से सत्ताधारी पार्टी के दो-तीन लोगों ने स्वयं को उम्मीदवार घोषित किया प्रधानमंत्री पद के लिए और अमेरिका में तो बाकायदा प्राथमिक समर्थन के लिए एक पार्टी के कई नेता उम्मीदवार बनने हेतु अपनी ही पार्टी के दूसरे व्यक्ति के विरूद्ध खुला अभियान चलाकर समर्थन जुटाते हैं। इसका पार्टी अनुशासन से कोई लेना-देना ही नहीं यानी कहीं भी पार्टी अध्यक्ष या आलाकमान कुछ नहीं तय करता, जबकि भारत में यह सब अकल्पनीय है। यूरोप, अमेरिका में देष्ठाहित और समाजहित सर्वोपरि है, क्योंकि वहाँ प्रत्येक व्यक्ति जिम्मेदार है और स्वतंत्र है। इसलिए वे देशहित को दलीयहित में बंधक नहीं बना सकते। जबकि भारत में पार्टीहित या चंद नेताओं का मंसूबा ही संपूर्ण राजनीति की धूरी बन गया है। बाकी उसके चापलूस या असहाय दर्शक हैं। यदि पार्टी राजनीति को देशहित के नीचे खींचकर नहीं लाया गया, तो हालात बदलने वाले नहीं।

(१९)प्रश्नः क्या आपको बिहार में जद(यू), काँग्रेस और राजद के गठबंधन का भविष्य अनिश्चित नजर आ रहा है? आखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, किंचित कई वजहों से बिहार में जद(यू), काँग्रेस और राजद के महागठबंधन का भविष्य मुझे अनिश्चित नजर आ रहा है। पहली बात तो यह कि 2015 में हुए बिहार विधान सभा चुनाव में जद(यू) अकेले न लड़कर राजद के साथ गठबंधन कर चुनाव लड़ना मुझे कुछ अटपटा-सा इसलिए लगा, क्योंकि उसके पूर्व 2010 के विधान सभा चुनाव में राजद को पराजित करके और राजद के शासन को जंगलराज अथवा आतंकराज का पर्याय कहते हुए जद(यू) के नेता नीतीश कुमार मुख्यमंत्री बने थे, लेकिन 2015 के चुनाव में न तो उन्हें अपने पर विश्वास हुआ और न बिहार के मतदाताओं पर। अपने पर विश्वास न करने का कोई कारण मुझे इसलिए नजर नहीं आता, क्योंकि वे सुशासन बाबू के नाम से तो प्रसिद्ध हो ही गए थे, एक समय ऐसा भी आ गया था जब उनकी लोकप्रियता राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि

अंतरराष्ट्रीय स्तर तक पहुँच गई थी। ऐसे में भला उन्हें बिहार का केजरीवाल होने से कैसे रोका जा सकता था, जबकि अरविंद केजरीवाल से नीतिष्ठा कुमार अनेक मायनों में आगे थे। फिर 2014 के आम लोक सभा चुनाव के वक्त तो आपको मालूम है कि बिहार के मतदांताओं ने लोक सभा चुनाव में नरेन्द्र मोदी तथा आगे आने वाले बिहार विधान सभा चुनाव यानी 2015 में नीतीश कुमार को ही बिहार की सत्ता सौंपने का मन बना लिया था, मगर मैं फिर कह रहा हूँ कि न तो उन्हें अपने पर विश्वास हुआ और ना ही बिहार के मतदाताओं पर। अगर मान भी लिया जाए कि 2015 के बिहार विधान सभा के चुनाव में खुदा न खास्ते नीतीश कुमार पराजित भी हो जाते, तो उन पर पहाड़ तो नहीं गिर जाता? राजनीति में तो जीत-हार लगा ही रहता है। उन्हें तो अपने बड़े भाई लालू प्रसाद यादव से ही सीख लेनी चाहिए थी कि 15 साल तक बिहार के सरताज रहे बड़े भाई को हराकर पिछले दशक से वे बिहार की सत्ता पर विराजमान हैं, मगर आज की तिथि में तो वही आपके सुपर मुख्यमंत्री बन बैठे हैं अपने दो बेटों को उपमुख्यमंत्री और मंत्री बनाकर। जब आपके बड़े भाई एक दशक से ज्यादा तक बिना सत्ता के रह सकते हैं तो छोटे भाई ने मात्र पाँच साल तक भी इंतजार करना मुनासिब नहीं समझा, यह बात समझ से परे हैं। जहाँ तक मैं समझता हूँ पाँच साल तक सत्ता से बाहर रहने के बाद फिर छोटे भाई को बिहार के मतदाता सत्ता पर बैठा देते और आज के जैसे हालात नहीं होते और वे इस जहालत से तो बच जाते। जो कुछ मैं आपको कह रहा हूँ अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ और पिछले चार दशक से नीतीश कुमार जी के सही कदमों का मैं समर्थक रहा हूँ, मगर जब भी उनके कदम लड़खड़ाए, मैने उन्हें आगाह कर अपना फर्ज निभाया।

जहाँ तक जद(यू), राजद और काँग्रेस के बिहार के गठबंधन के भविष्य का सवाल है, वह बीते महीनों के हालात को देखते हुए तो बहुत सुखदायी नजर नहीं आ रहा है। और वैसे भी जिस राजनेता को पराजित कर यदि कोई उसकी सत्ता पर स्वयं बैठ जाता है तो स्वाभाविक है कि जैसी राजनीति की मौजूदा स्थिति है उसमें बिहार की सत्ता पर विराजमान नेता कैसे सोच लेते हैं कि उन्हें वह नेता सत्ता पर आपको स्थिर से बैठने देगा? इतिहास साक्षी है कि सत्ता पर विराजमान होने के लिए बेटा ने बाप को क्या नहीं किया, भाई ने भाई को मारा और राजनीति में क्या-क्या नहीं हुआ। सत्ता की कुर्सी जो न करा दे!

अभी देखिए न, चार बार लोकसभा और दो बार विधान सभा में

सीवान का प्रतिनिधित्व कर चुके राष्ट्रीय जनता दल के नेता गिरीश और सतीश–दो भाइयों की तेजाब डाल कर हत्या करने के आरोप में 2005 से 11 वर्षों तक जेल में रहे मो. शहाबुद्दीन पटना उच्च न्यायालय से जमानत मिलने के बाद बाहर आने पर जो सियासी हलचल मचा है उससे महागठबंधन की अनिश्चितता और बढ़ गयी है।

दरअसल, धन, बल और अपराध की अब पूरे देश की राजनीति में है और बिहार में बीते दो दशकों से मो. शहाबुद्दीन 'राजनीति के अपराधीकरण' के प्रमुख उदाहरण के रूप में उभरे हैं और उनकी दबंगई के नमूने जेल से बाहर आते ही शुरू हो गए हैं। एक समय वह था जब वर्तमान मुख्यमंत्री ने ही शहाबुद्दीन और उनके सरीखे अनेक नेताओं को जेल में भिजवाकर बिहार की जनता को चैन की नींद सोने का अहसास कराया था और आज फिर जैसा कहा जाता है उन्हीं के सौजन्य से वही शहाबुद्दीन जेल से बाहर आते हैं तो न्यायिक प्रणाली की सुस्ती और जाँच में ढिलाई जैसी खामियों का फायदा तो शहाबुद्दीन जैसे नेता उठाएँगे ही। यह बात ठीक है कि विभिन्न आरोपों के कठघरे में खड़े शहाबुद्दीन पर अंतिम निर्णय अदालत को करना है, लेकिन सार्वजनिक जीवन में जनता की सुरक्षा और समाज में अमन–चैन की जवाबदेही जिन प्रमुख राजनेताओं पर है, उन्हें शहाबुद्दीन जैसे नेताओं को संरक्षण देने से पहले क्या आत्मचिंतन नहीं करना चाहिए? बिहार ही नहीं, देश की पूरी जनता को यह सवाल पूछना चाहिए कि जिस राज्य में शराब की एक बोतल रखने की वजह से किसी को जेल की सीखचों में बंद किया जा सकता है, तो वहाँ शहाबुद्दीन जैसे बाहुबली को जेल में बनाए रखना क्यों कठिन हो गया? यदि नीतीश कुमार सचमुच महागठबंधन के नेता बने रहना चाहते हैं, तो उन्हें शहाबुद्दीन और अनंत सिंह में भेद करना छोड़ना होगा। वैसे सच कहा जाए, तो उन्होंने अपने पैर में उसी दिन कुल्हाड़ी मार ली जिस दिन राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन से अपना नाता तोड़कर जद(यू), काँग्रेस और राजद के तथाकथित महागठबंधन में शामिल होने का निर्णय लिया था। इसलिए इस दिन को तो उन्हें देखना ही था।

आपको याद होगा 2005 का बिहार विधान सभा चुनाव जंगलराज से मुक्ति और सुशासन के मुद्दे पर हुआ था। सुशासन का आश्वासन और अपराध के प्रति लोगों की नाराजगी ने शासन को पलट कर रख दिया था, मगर 2015 के चुनाव के बाद बिहार में अपराध, चोरी, डकैती, दुष्कर्म और आए दिन हत्या की वजह से लोगों में जो नाराजगी है, वह 2005 के पहले

के हालात की याद कराती है। ऐसे में यदि नीतीश सरकार का भविष्य अनिश्चय में दिखाई देता है, तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि नीतीश जी को सुशासन बहाली करने के लिए अपनी सरकार की कुर्बानी भी देना पड़े, तो उसे इन्हें अंगीकार करना चाहिए, क्योंकि संभावनाओं के नए दरवाजे खुल जाएँगे और कौन कितना पानी में है इसका भी पता चल जाएगा। खुले दरवाजे जो हवा आएगी उसमें बिहार की जनता चैन की सांस लेगी, ऐसी मुझे उम्मीद है। कारण कि आमजन अमन-चैन चाहते हैं। चाहते हैं कि उनका निर्विघ्न विचरण हो। कारोबार में कोई रूकावट नहीं हो। विकास के चलते जो कामकाज का माहौल बन रहा है उसका लाभ उन्हें मिले। सत्ता में जो लोग बैठे हैं उन्हें भी पता है कि अगर अशांति का वातावरण बनता है, तो जनता उन्हें माफ़ नहीं करेगी। ऐसी स्थिति में जब नीतीश जी को भी यह पता है कि सुशासन ही उनकी सबसे बड़ी पूँजी है जिसे बचाकर वह बहुत कुछ हासिल कर सकते हैं। यदि यह खत्म हुआ तो उनका सब कुछ किया-धरा भी खत्म हो जाएगा। जाति या धर्म के नाम पर जो लोग आज उनके साथ हैं सभी बिखर जाएँगे, क्योंकि वैसे लोगों की प्रतिबद्धता, विचारधारा पर आधारित न होकर स्वार्थपूर्ण और अस्थाई होती है।

शहाबुद्दीन की जमानत को लेकर नीतीश जी भले ही इसे न्यायिक प्रक्रिया का ही परिणाम कहें, मगर इस सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता कि इस जमानत में राज्य सरकार की मिलीभगत रही है और उसकी कोताही ही जिम्मेदार है यह नीतीश जी भी जानते हैं और वह न्यायिक प्रक्रिया का हवाला देकर अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकते।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जेल से छूटने के पश्चात् भागलपुर सेन्ट्रल जेल के बाहर जो नजारा था, वह स्तब्ध करने वाला इसलिए कहा जाएगा कि शहाबुद्दीन को महिमामंडित करने के लिए तकरीबन 1200 गाड़ियों सहित बिहार सरकार के दर्जनों मंत्री एवं हजारों लोगों की भीड़ उनके दर्शनार्थ पलक पांवड़े बिछाए खड़ी थी। एक अपराधी को ऐसी सामाजिक स्वीकृति से आने वाले दिनों में बिहार के लोगों को भारी मुसीबत झेलनी पड़ेगी। ऐसे कर्मो से शासन का नैतिक आधार छीज रहा है, जो अंततः बिहार सरकार के पराभव में ही परिलक्षित होगा।

(२०)प्रश्नः खुद कई गंभीर समस्याओं से गुजर रहे बिहार राज्य के सियासी गलियारों में अगले प्रधानमंत्री को लेकर हो रही चर्चा के परिदृश्य को क्या राज्य का सियासी भटकाव नहीं माना जाएगा?

उत्तर: हाँ, ऐसे वक्त जब लोकसभा का अगला चुनाव वर्ष 2019 यानी आज से ढाई-तीन साल बाद होगा और बिहार जब खुद बाढ़-सुखाड़ सहित कई गंभीर समस्याओं से गुजर रहा है इस राज्य के सियासी गलियारों में अगले प्रधानमंत्रे को लेकर जोरदार चर्चा और संभावित प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवारों की रेटिंग किया जाना राज्य का सियासी भटकाव ही माना जाएगा। वास्तव में अपनी आंतरिक कठिनाईयों और समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक चर्चा करके उनका समाधान तलाशने की बजाय राजनीतिक पार्टियाँ अगले प्रधानमंत्री की अटकलबाजी में बेमौसम बरसात जैसा माहौल बना रही है या यों कहा जाए कि वे दलों के ऐसे नेता आमजनता के समक्ष माखौल बन रहे हैं और अपनी खिल्ली उड़ा रहे हैं।

बिहार की सत्ता पर विराजमान तथा कथित महागठबंधन दो महीने बाद अपने कार्यकाल पूरा कर लेगा, मगर आज इस राज्य के सामने वे तमाम समस्याएँ उसी तरह मौजूद हैं जैसे कुछ साल पहले थी। चाहे अपराध की घटनाएँ हों या कानून-व्यवस्था का सवाल, शिक्षा और परीक्षा प्रणाली में सुधार या स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव अथवा महिलाओं पर अत्याचार और दुष्कर्म की घटनाएँ या प्रत्येक विभागों में बढ़ते भ्रष्टाचार और बेसुमार चोरी-डकैती की घटनाएँ सभी बेकाबू हैं और बिहार के मुखिया शराबबंदी की बासूरी बजाने में व्यस्त। राज्य सर्वोपरि है और इसकी जनता और मतदाता के हाथों में ही प्रधानमंत्री बनाने का अधिकार। दरअसल राजनीतिक दलों के मुखिया को प्रधानमंत्री की नहीं अपनी गद्दी की चिंता अधिक है या अपने बेटों को मुख्यमंत्री की गद्दी पर ऐन-केन-प्रकारेण बैठाने की आकांक्षा। 2019 अभी दूर है। तब तक देश की नदियों में बहुत पानी बह चुका होगा। इसलिए बिहार की जनता को मूर्ख बनाने की बजाय उसकी रोजी-रोटी की व्यवस्था सहित बिहार के विकास की चर्चा करें तो प्रधानमंत्री की गद्दी भी मिल सकती है और लोकप्रियता भी लौट सकती है।

(२१)प्रश्न: क्या आप मानते हैं कि इस्लाम के धर्मगुरु जाकिर नाईक के संगठन से चंदा लेने का मामला काँग्रेस के जनाधार को और कमजोर करेगा?

उत्तर: हाँ, मैं भी मानता हूँ कि इस्लाम के धर्मगुरु जाकिर नाइक के संगठन से चंदा लेने का मामला काँग्रेस के जनाधार को और कमजोर करेगा। पिछले दिनों एक खबर आई कि काँग्रेस के राजीव गाँधी फाउन्डेशन को इस्लामी उपदेशक जाकिर नाइक के एक गैर-सरकारी संगठन को 50 लाख रुपए का

चंदा मिला है। चंदा मिलने की इस खबर से काँग्रेस पार्टी निश्चित रूप से विवादों में घिर गई, हालांकि कहा जाता है कि वह पैसा लौटा दिया गया है।

जाकिर नाइक के संगठन इस्लामिक रिसर्च फाउन्डेशन को 'प्राथमिकता सूची' में रखने वाले केंद्रीय गृह मंत्रालय के अधिकारियों के अनुसार जाकिर नाइक के उक्त संगठन ने राजीव गाँधी फाउन्डेशन से संबद्ध संस्था राजीव गाँधी चैरिटेबल ट्रस्ट को वर्ष 2011 में चंदा के रूप 50 लाख रुपए दिया था। जब जाकिर के इस्लामिक रिसर्च फाउन्डेशन पर आतंकवाद और जबरन धर्मांतरण के आरोप में फँसने की खबर आई, तो इसकी भनक के कुछ पहले चंदा लौटाने की बात कही गई। उल्लेखनीय है कि गृह मंत्रलय ने भारतीय रिजर्व बैंक को विवादित उपदेशक जाकिर नाईक के गैर-सरकारी संगठन इस्लामिक रिसर्च फाउन्डेशन को किसी तरह का धन जारी करने से पहले मंत्रलय से सलाह लेने को कहा गया है। जिसका मतलब साफ है गद्दार तथा देश विरोधि गतिविधियों में संलग्न संगठनों को चंदा देना देशहित में नहीं होगा। अब सवाल उठता है कि क्या काँग्रेस के नेताओं को इस्लामी प्रचारक की गतिविधियों की जानकारी नहीं थी। गृह मंत्रालय ने तो साफ कहा है कि नाइक का संगठन इस्लामिक रिसर्च फाउन्डेशन विदेशी चंदा नियमन कानून विपरीत क्रियाकलापों में लिप्त रहा है। इसीलिए तो उस पर विदेश से सीधे धन लेने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। वैसे भी जाकिर नाइक पर आतंकी कृत्यों के लिए युवाओं को कट्टर बनाने तथा लुभाने का आरोप है। नाइक सुरक्षा एजेंसी की नजर में तब आए थे जब बांग्लादेशी अखबार डेली स्टार ने खबर दी थी कि ढाका में हुए एक जुलाई, 16 के हमले के एक हमलावर रोहन इम्तियाज ने नाइक के हवाले से पिछले साल यानी 2015 में फेसबुक पर दुष्प्रचार अभियान चलाया था। क्या जाकिर नाइक की इन गतिविधियों से काँग्रेस वाकि नहीं थी? केंद्रीय मंत्री रविशंकर प्रसाद का तो यहाँ तक कहना है कि राजीव गाँधी फाउन्डेशन को यह 'यह घूस जाकिर नाइक की गैर कानूनी, देश विरोधी गतिविधियों पर पर्दा डालने के लिए दी गई थी।' 4 अक्टूबर, 2012 को सूचना एवं प्रसारण मंत्री मनीष तिवारी ने संसद में कहा था कि 24 विदेशी चैनल देश की सुरक्षा के लिए खतरा है। पीस टीवी भी इनमें था। तो सवाल उठता है कि काँग्रेस ने 2012 में ही पैसे क्यों नहीं लौटाए? हालांकि पैसे लौटाने के दावे पर जाकिर नाइक के संगठन ने अभी तक कोई चंदे की राशि वापसी की बात नहीं की है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो भ्रष्टाचार और घपले-घोटाले में फँसे होने की वजह से ही काँग्रेसी सरकार को 2014 में केंद्र की सत्ता से हाथ धोना पड़ा है और अब जाकिर नाइक जैसे देश विरोधी इस्लामी उपदेशक से 50 लाख रुपए के चंदा लेने का मामला तो निश्चित रूप से काँग्रेस के जनाधार को और कमजोर करेगा।

(२२)प्रश्न: राजनीति पर धर्म के नियंत्रण का आपके विचार से कोई औचित्य है क्या? नहीं तो क्यों?

उत्तर: नहीं, मेरे विचार से राजनीति पर धर्म के नियंत्रण का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि कोई शासक, राजनेता अपने-आपको सत्ता में आने पर अपने को बरकरार रखने के लिए हर संभव हथकंडे अपनाता है और उसकी सभी कोशिशें इसी बिंदु पर केंद्रित रहती हैं कि किस प्रकार सत्ता प्राप्त की जाए और ऐसा क्या किया जाए कि सत्ता में आने के बाद उसी का शासन हमेशा के लिए चलता रहे और अपनी इसी मनोकामना को पूरी करने के लिए वह धर्म तथा धर्मगुरुओं की शरण में चला जाता है। धर्मगुरु भी राजनेताओं को सत्ता में आने और बने रहने के लिए उन्हें मदद इसलिए करते हैं, ताकि वे अपनी गोटी लाल कर सकें।

इतिहास साक्षी है कि इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन इराक पर जबतक हुकूमत की तबतक उसने इराकियों के साथ भरपूर मनमानी एवं अत्याचार किया और वह और उसके पुत्र संभवतः अल्लाह के बाद धरती पर अपने परिवार को ही सर्वोच्च शक्तिशाली समझने की गलतफहमी पाले रहे, परंतु जब उसके गले तक अमेरिकी हाथ पहुँचने लगा तो उस समय वही तानाशाह सद्दाम हुसैन पूरी दुनिया के मुसलमानों को एक होने तथा अमेरिका के विरूद्ध जेहाद छेड़ने का न्यौता देने लगा। आखिर सद्दाम हुसैन को इस प्रकार की धार्मिक ब्लैकमेलिंग करने की जरूरत सत्ता को हाथों से खिसकता देखने के बाद क्यों महसूस हुई। जिस वक्त वह क्रूर शासक के रूप में कभी ईरान से युद्ध कर बैठता था,तो कभी कुवैत पर चढ़ाई कर देता था, तो कभी अपने ही देश के विभिन्न समुदायों के लोगों पर सामूहिक अत्याचार करता था जिसके परिणामस्वरूप हजारों लोग मारे गए, उस समय सद्दाम हुसैन को जेहाद, मुस्लिम इत्तेहाद और धर्म आधारित भाइचारे की बात क्यों नहीं याद आती थी? करीब-करीब यही स्थिति अफगानिस्तान में मुल्ला उमर, ओसामा बिन लादेन तथा एमन-अल-जवाहिरी से लेकर बगदारी जैसे उन सभी लोगों की रही है जो धर्म एवं राजनीति के संयुक्त

उद्यम के पोषक रहे हैं जिनकी नीतियों की वजह से अनेक देश खंडहरों और वीरानों में परिवर्तित हो गए हैं। इसी गलत नीति ने समाज में ऊँच-नीच, छूत-अछूत, काले-गोरे का अन्तर और शिया-सुन्नी के बीच मतभेद पैदा होते रहे हैं। धर्म और राजनीति के ऐसे ही घिनौने घालमेल का परिणाम है हिटलर का नाजीवाद, अफगानिस्तान-पाकिस्तान में तालिबानियों द्वारा अल्पसंख्यकों पर अत्याचार। एक शासक को शासक चलाने के लिए जरूरी होता है आमजन के लिए रोजी-रोटी मुहैया कराना, महंगी को नियंत्रित करना, कृषि तथा उद्योग को बढ़ावा देना, समस्त नागरिकों के लिए समान शिक्षा और स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ उपलब्ध कराना तथा देश को समृद्ध एवं समाज को खुशहाल बनाना। इन सबों को जमीन पर उतारने में धर्म भी आड़े आ रहा है। इसलिए राजनीति पर धर्म के नियंत्रण का कोई औचित्य नहीं दिखता।

(२३)प्रश्न: क्या आपेको ऐसा लगता है कि अनुवाद द्वारा हम भौगोलिक और भाषायी दीवारों को ढहाकर विश्वमैत्री को और भी सुदृढ़ बना सकते हैं? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, हमें भी ऐसा लगता है कि अनुवाद द्वारा हम भौगोलिक और भाषायी दीवारों को ढहाकर विश्वमैत्री को और भी सुदृढ़ बना सकते हैं, क्योंकि आज जब वैश्वीकरण की अवधारणा उत्तरोत्तर बलवती होती जा रही है, सूचना प्रौद्योगिकी ने व्यक्ति के दैनंदिन जीवन को एक-दूसरे के निकट लाकर खड़ा कर दिया है, क्षितिजों तक फैलती दूरियाँ सिमट रही हैं, ऐसे में अनुवाद की महत्ता और उपयोगिता की ओर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है। अनुवाद वह साधन है, जो हमें भौगोलिक सीमाओं से उस पार ले जाकर हमें दूसरी दुनिया के ज्ञान-विज्ञान, कला-संस्कृति, साहित्य-शिक्षा आदि की विलक्षणताओं से परिचित कराता है। मोटे तौर पर कहा जाए तो यह अनुवादक ही है जो दो संस्कृतियों, राज्यों, देशों एवं विचारधाराओं के बीच 'सेतु' का काम करता है। और तो और यह अनुवादक ही है जो भौगोलिक सीमाओं को लाँघकर भाषाओं के बीच सौहार्द, सौमनस्य एवं सद्भाव को स्थापित करता है तथा हमें एकात्मकता एवं वैश्वीकरण की भावनाओं से ओत-प्रोत कर देता है। इस दृष्टि से यदि अनुवादक को समन्वयक, मध्यस्थ, संवाहक अथवा भाषायी दूत आदि की संज्ञा दी जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं कही जाएगी।

कविवर बच्चन जी, जो स्वयं एक कुशल अनुवादक रहे हैं, ने ठीक ही कहा है कि अनुवाद दो भाषाओं के बीच मैत्री का पुल है। वह

कहते हैं- 'अनुवाद एक भाषा का दूसरी भाषा की ओर बढ़ाया गया मैत्री का हाथ है। वह जितनी बार और जितनी दिशाओं में बढ़ाया जा सके, बढ़ाया जाना चाहिए।'

दरअसल, हर भाषा का अपना एक अलग मिजाज होता है, अपनी एक अलग प्रकृति होती है, जिसे दूसरी भाषा में ढालना या फिर अनुवादित करना असंभव नहीं तो कठिन जरूर होता है। उदाहरण के तौर पर हम अँग्रेजी के 'स्कूटर' शब्द को लें। चूँकि इस दुपहिए वाहन का प्रारंभ हमने नहीं किया, अतः इनसे जुड़ा हर शब्द जैसे टायर, पंक्चर, सीट, हैंडल, गियर, ट्यूब आदि को अपने इसी रूप में ग्रहण करना और बोलना हमारी विवशता ही नहीं हमारी समझदारी भी कहलाएगी। इन शब्दों के बदले बुद्धिबल से तैयार किए गए संस्कृत के तत्सम शब्दों की झड़ी लगाना, स्थिति को हास्यास्पद बनाना है। स्टेशन, सिनेमा, बल्ब, पावर मीटर, सिग्नल पाइप आदि न जाने और कितने सैकड़ो शब्द हैं जो अँग्रेजी भाषा के हैं, परंतु हम इन्हें अपनी भाषा के शब्द समझकर इस्तेमाल कर रहे हैं। ऐस शब्दों को उनके मूल रूप में स्वीकार करने में कोई हर्ज नहीं है। टेक्निकल को तकनीक बनाकर हमने उसे लोकप्रिय कर दिया और रिपोर्ट को रपट करने से काम चल गया तथा अलेक्जेंडर का हमने सिकंदर एवं एरिस्टोटल को अरस्तु और रिक्रूट को रंगरूट कहकर काम चला लिया, लेकिन मोबाइल टेलिफोन के जबतक हिंदी में कोई सरल शब्द निर्मित नहीं होते हैं, तो मोबाइल टेलिफोन को ही गोद लेने में हमे कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए ठीक उसी प्रकार जैसे अँग्रेजी ने हमारी धोती को अंगीकार कर लिया है। इस प्रकार किसी दूसरी भाषा के शब्दों के ग्रहण करने में भाषा समृद्ध होती है और अनुवाद करके तो हम भौगोलिक एवं भाषायी दीवारों को ढहाकर विश्वमैत्री को और भी सुदृढ़ बना सकते हैं।

(२४)प्रश्नः भारत के राजनीतिक दल सार्वजनिक जीवन में पारदर्शिता लाने के हामी हैं, ताकि भ्रष्टाचार को मिटाया जा सके, लेकिन बात जब खुद को पारदर्शी बनाने की आती है तो वे किसी न किसी बहाने क्यों मुकर जाते हैं?

उत्तरः कोई नियम दूसरों पर लागू हों, तो अच्छे लगते हैं, लेकिन अपने ऊपर लागू हों, तो अक्सर कोशिश होती है कि नियम में बँधने से इनकार कर दिया जाए। हालांकि आम समझ ऐसे आचरण को पाखंड कहता आया है, लेकिन विडंबना देखिए कि एक खास मामले में भारत के राजनीतिक दलों का

व्यवहार इससे अलग नहीं है। वे सार्वजनिक जीवन में पारदर्शिता लाने के हिमायती तो हैं, ताकि भ्रष्टाचार को मिटाया जा सके, लेकिन बात जब खुद को पारदर्शी बनाने की आती है, तो वे किसी न किसी बहाने मुकर जाते हैं। पार्टी को चंदा किन-किन श्रोतों से हासिल हुआ, यह बताने में कभी आनाकानी तो कभी उनका इनकार इसी का नजीर है। अगर राजनीतिक दलों को दानदाताओं से 20 हजार रुपयों से ज्यादा की रकम हासिल हो, तो जनप्रतिनिधित्व कानून के हिसाब से उन्हें इसका पूरा ब्योरा चुनाव आयोग को अपनी सालाना रिपोर्ट में देना होता है। ऐसा नहीं करने पर नियम है कि पार्टियों को करों में छूट नहीं दी जाएगी। चुनाव आयोग पार्टियों की इस सालाना रिपोर्ट को सार्वजनिक करता है, ताकि लोगों को जानकारी हो कि किस पार्टी को किसने कितने रुपए दिए। एक नियम यह भी है कि कोई कंपनी विगत तीन साल के अपने शुद्ध मुनाफे के पाँच फीसदी से ज्यादा रकम किसी पार्टी को चंदे के रूप में नहीं दे सकती, लेकिन किसी पार्टी की किसी कंपनी या ट्रस्ट द्वारा साल में एक से अधिक दफे चंदा देने पर कोई पाबंदी नहीं है। दोनों नियमों को मिलाकर पढ़ें, तो एक चोर दरवाजा साफ़ दिखता है कि पार्टियों की कोई व्यक्ति, कंपनी या ट्रस्ट 20 हजार या इससे कम की रकम साल में अनगिनत बार दे सकता है और पार्टियाँ बेखटक उसके नाम के खुलासे से बच सकती हैं।

(२५)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि जिस तेज गति से दिल्ली सरकार में आम आदमी पार्टी के मंत्री, विधायक और नेता पथ भ्रष्ट होते जा रहे हैं और एक-एक कर उन्हें सरकार से हटाया जा रहा है, ऐसी स्थिति में लंबी उड़ान पर निकला 'आप' का विमान बादलों में घिरकर जनता की आँखों से ओझल हो जाएगा?

उत्तरः हाँ, मैं भी यह महसूस करने लगा हूँ कि जिस तेज गति से दिल्ली सरकार में आम आदमी पार्टी के मंत्री, विधायक और नेता पथ भ्रष्ट होते जा रहे हैं और एक-एक कर उन्हें सरकार से हटाया जा रहा है, ऐसी स्थिति में लंबी उड़ान पर निकला 'आप' का विमान बादलों में घिर कर जनता की आँखों से ओझल हो जाएगा।

अभी-अभी दिल्ली सरकार समाज कल्याण मंत्री संदीप कुमार केजरीवाल सरकार के ऐसे चौथे मंत्री हैं जिन्हें 18 महीनों के दौरान अनियमितता, अनैतिकता और भ्रष्टाचार के आरोपों के तहत हटाया गया है। इसके पूर्व कानूनमंत्री जितेन्द्र तोमर को फर्जी डिग्री और पर्यावरण मंत्री

असीम अहमद खान को भ्रष्टाचार के आरोपों के तहत हटाया गया था। इस बीच, जून, 2016 में परिवहन मंत्री गोपाल राय को भी प्रीमियम बस खरीदने में भ्रष्टाचार के आरोपों के चलते उस विभाग से हटा दिया गया था। अभी-अभी पंजाब में आसन्न चुंनाव के पूर्व 'आप' ने पंजाब शाखा के संयोजक सुच्चा सिंह छोटेपुर को भी रिश्वत लेकर टिकट देने के आरोप में पद से हटा दिया गया। इसके पूर्व चार में से दो सांसदों धर्मवीर गाँधी और हरिंदर सिंह फुलका को पार्टी से मुअत्तल कर दिया गया था। इसी प्रकार लोकसभा सदस्य भगवत मान पर उन्हीं के राज्य से एक सांसद ने संसद में शराब पीकर आने का आरोप लगाया है।

आम आदमी पार्टी जब केंद्र शासित दिल्ली प्रदेश की आधी-अधूरी सत्ता पाकर इतनी भ्रष्ट हो सकती है, तो अगर उसे किसी राज्य या बाद में देश की पूर्ण सत्ता हासिल हो जाए, तो उसका क्या होगा? यह कहना कदाचित अनुचित नहीं होगा कि जिस आम आदमी पार्टी ने दिल्ली में मिली लंगड़ी सत्ता के माध्यम से समूची सत्ता का सपना देखा और वह उन्हीं तिकड़मों मे लग गई जिनके विरूद्ध उसने आंदोलन किया था। भ्रष्टाचार पर जिस तेजी से दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल ने प्रहार करना प्रारंभ किया था, मुझे उनसे काफी आशा बँधी थी कि भ्रष्टाचार पर काबू पाया जा सकता है, मगर इन 18 महीनों के भीतर ही आम आदमी पार्टी खुद भ्रष्टाचार के दलदल में फँस गई और जॉन एफ कैनेडी के कथनानुसार कविता सच्चाई और ईमानदारी का वह गीत है जिसे गाते हुए कभी लोग जंतर-मंतर और रामलीला मैदान में इकट्ठे हुए थे, वह गींत 'आप' के चालाक नेताओं और कार्यकर्ताओं के सोशल मीडिया और स्टिंग ऑपरेशन में खो गया है। अब तो ऐसा लगता है कि लंबी उड़ान पर निकला 'आप' का उड़ान बादलों में घिरकर आमजन की आँखों से ओझल होता जा रहा है।

(२६)प्रश्नः केंद्र सरकार की सांसद आदर्श ग्राम योजना और लोहिया ग्राम योजना से गाँवों के विकास के सपने क्या अबतक अधूरे नहीं दिख रहे हैं?

उत्तर: राजनीति ने भारत के 6 लाख 38 हजार गाँवों के सर्वांगीण विकास के लिए सांसद आदर्श ग्राम योजना और लोहिया ग्राम योजना नाम से दो योजनाओं की शुरुआत की और बहुत नारेबाजी की। अरबों की धनराशि इन ग्राम विकास योजनाओं के पेट में गई। धन पंचायतों को मिल रहा है, क्योंकि वित्त आयोग ने ग्राम पंचायतों, क्षेत्रों, पंचायतों व जिला पंचायतों के लिए

अलग से धनराशि की सिफारिश की थी। विधायक, सांसद, क्षेत्रीय निधि का धन प्रावधान अलग से हुआ, लेकिन जहाँ तक नतीजे का सवाल है, ढाक के वही तीन पात। गाँवों का रूप, स्वरूप जस का तस है। मनरेगा के बावजूद गाँव में न रोजगार है और न पीने का शुद्ध पांनी तथा बीमार को न दवाई। अधिकांश गाँवों में बिजली, खंभे हैं तो तार नहीं, तार हैं तो खंभे नहीं और जहाँ ये दोनों है तो ट्रांसफॉर्मर नहीं। कृषि से आय नहीं के बराबर।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने गाँवो को स्वावलंबी बनाने के ध्येय से लोकनायक जयप्रकाश नारायण की जन्मतिथि के दिन सांसद आदर्श ग्राम योजना की घोषणा की थी। उन्होंने सांसदों से अपने संसदीय क्षेत्र में कम से कम तीन आदर्श ग्राम चयन की अपेक्षा की थी जिसका लक्ष्य 2019 तक पूरा करना था। योजना में अच्छे स्कूल, स्वास्थ्य सुविधाएँ, गरीबों को आवास आदि के काम सम्मिलित किए गए थे। हालांकि इन कार्यो के लिए पहले से जारी इंदिरा आवास योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, मनरेगा, पंचायतों में उपलब्ध धनराशि और सांसद निधि आदि से धन सदुपयोग अपेक्षित था। योजना में आदर्श ग्राम का मॉडल है। इसी प्रकार लोहिया ग्राम योजना में ग्राम चयन के मानक हैं, लेकिन न तो राज्य सरकारों द्वारा सहयोग किया गया और न सभी विभागों से आवश्यक तालमेल और व्यवहार में लोहिया ग्राम योजना के तहत ग्राम चयन के मानक तय किए गए, बल्कि सच तो यह है कि ज्यादातर लोहिया ग्रामों का चयन राजनीतिक स्तर पर हुआ। ग्राम विकास का विचार कई संस्थाओं व कार्यक्रमों में घूमता रहा और गाँवों की हालत आजतक नहीं सुधरी।

आश्चर्य तो तब होता है जब हम देखते हैं कि ग्राम विकास का धन लूटने के ठेकेदार युद्धरत हैं और उनके माध्यम से सरकारी अधिकारियों की जेबें भरी जा रही हैं। यही वजह है कि जहाँ सरकारी संचिकाओं में सड़कें हैं वहाँ वास्तव में नाला है और जहाँ मनरेगा के धन से बना तालाब लिखा है वहाँ मौके पर किसी ताकतवर की अवैध कब्जेवाली जमीन है। गाँव हताश्च और निराश हैं इसलिए गाँव के शिक्षित-अशिक्षित सभी शहर की ओर पलायन कर रहे हैं रोजगार और अच्छी शिक्षा एवं चिकित्सा के लिए।

अधिकांश नेता ग्राम विकास की बातें तो बड़े जोर-शोर से करते हैं, पर जमीन पर उनके काम कहीं दिखते नहीं । वास्तव में विकास एक गाली जैसा शब्द हो गया है, क्योंकि ग्राम विकास का संचालन महज कागजी खानापूर्ति तक सीमित है। आखिर तभी तो पंचायतों से जुड़े मुखिया, प्रखंड

प्रमुख तथा जिला स्तर के पंचायत अध्यक्षों के निवास परिसर में दो-दो, तीन-तीन बोलेरों और स्कॉर्पियों गाड़ियाँ देखी जा रही हैं।

आदर्श ग्राम योजना की स्थिति तो अब यहाँ तक आ गई हैं कि कुंछ गाँवों के निवासी आदर्श ग्राम का तमगा सुनकर नाराज हो जाते हैं। दरअसल, योजना के क्रियान्वयन में सांसदों की उदासीनता के चलते अधिकारी भी ज्यादा रुचि नहीं ले पा रहे हैं। इसलिए इन दिनों स्थिति यह है कि गाँव की सड़कें कीचड़ से सनी हैं। बीमार के इलाज के लिए 20 से 30 किलोमीटर तक की दूरी तय करनी पड़ती है। इसी प्रकार बिजली, पानी, शिक्षा समेत सभी प्रकार की समस्याएँ आज भी आदर्श गाँव का मजाक उड़ा रही हैं।

(२७)प्रश्नः मणिपुर के इम्फाल में बीते १६ सालों से अनशन पर बैठी इरोम शर्मिला चानू द्वारा ९ अगस्त, २०१६ को अपने भूख हड़ताल तोड़ने से उसकी हार न होकर क्या ग्रह भारतीय राजसत्ता की सबसे बड़ी नैतिक हार नहीं कही जाएगी? शर्मिला पर लगे आत्महत्या की कोशिश के आरोप से अदालत ने क्यों बरी किया?

उत्तरः नवंबर, 2000 में मणिपुर में 10 लोगों की फर्जी मुठभेड़ में मारे जाने की घटना के बाद बीते 16 साल में मणिपुर की राजधानी इम्फाल में इरोम शर्मिला चानू अनशन यानी भूख हड़ताल पर (अफस्पा) आर्म्ड फोर्सेस स्पशल पॉवर एक्ट को हटाने के लिए बैठी थी। उसकी माँग है हिंसक घटनाओं के कारण सरकार द्वारा अशांत घोषित किए गए क्षेत्रों में तैनात सशस्त्र सेनाओं कों मिले विशेषाधिकारों को समाप्त किया जाए। मगर अनुष्ठान शुरू करने के तुरंत बाद से ही सरकार ने शर्मिला को हिरासत में लेकर इम्फाल के एक अस्पताल के कमरे को ही अस्थायी जेल के रूप में बदल दिया गया था, जहाँ उन्हें सीमित लोगों से मिलने-जुलने की अनुमति थी।

इरोम शर्मिला चानू न तो अलगाववाद की पक्षधर है और ना ही स्वतंत्रता की, बल्कि उनका जोर सम्मानीय एकीकरण, जनता के नेतृत्व में विकास, शिक्षा और उनके लोगों की अपनी संस्कृति और जीने के तरीकों के प्रति आदर पर है। वह मानवीय प्रेम, न्याय, शांति, भयमुक्त जीवन के अधिकार जैसी अच्छाइयों में अटूट आस्था रखती हैं। भारत के सबसे लंबे समय तक हिरासत में रहने वाली राजनीतिक कैदी शर्मिला का 16 वर्ष लंबा अनुष्ठान शांतिपूर्ण सत्याग्रहों की सूची में एक विशेष स्थान इसलिए रखता है, क्योंकि इस संघर्ष ने उन सभी सवालों को एक नया संदर्भ दिया है जिनसे

हमारा लोकतंत्र बीते सात दशकों से जूझता रहा है। मानवाधिकार, सम्मान, अस्मिता, अहिंसा और संवाद के महत्व को इरोम का यह अनष्ठान तो स्थापित करता ही है, साथ ही उन प्रश्नों के प्रति सरकारों के उदासीन रवैए को भी रेखांकित करता है। इस दृष्टि से देखा जाए, तो शर्मिला के अनष्ठान तोड़ने से उनकी हार नहीं हुई है, बल्कि उन्होंने कुछ हासिल किया है तो वह यह कि उन्होंने एक भिन्न प्रकार की राजनीति का बीज बोया है और एक ऐसे बौद्धिक क्रांति की नींव रखी है, क्रूर ताकत की जगह आत्मशक्ति पर निर्भर है। उनका दृढ़ और विनम्र व्यक्तितत्व अहिंसा की शक्ति को परिलक्षित करता है। असंतुष्टों को शोर मचाने, नारे लगाने या बंदूक उठाने की जरूरत नहीं है। क्रूर सत्ता के सामने झुकने से इनकार करने की चुनौती को स्वीकार किया जा सकता है। अकेले कोने में बंद कर राज्य ने शर्मिला को चुप कराने की कोशिश की है, लेकिन इस कार्रवाई से उनकी आवाज को बुलंद करने मे मदद मिली है।

सच तो यह है कि इरोम शर्मिला द्वारा अनशन खत्म करने से उनकी हार नहीं हुई है, बल्कि भारतीय राजतंत्र की इससे बड़ी नैतिक पराजय कुछ और नहीं हो सकती है। भारतीय इतिहास में 9 अगस्त गणतंत्र के लिए एक ऐतिहासिक दिन है, क्योंकि 9 अगस्त को ही भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हुआ था और शर्मिला ने इसी 9 अगस्त, 2016 को अनशन समाप्त करने की घोषणा करते हुए स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि वह सामान्य जीवन जीना चाहती है और शादी करना चाहती है तथा अगले साल होने वाले विधान सभा का चुनाव लड़ना चाहती है। जो भी हो, भूख हड़ताल खत्म करने का फैसला हर रूप में एक ऐतिहासिक फैसला है जो भारतीय लोकतंत्र को लगातार आईना दिखाता रहेगा। वैसे भी राजनीति संभावनाओं का खेल है।

जहाँ शर्मिला की गिरफ्तारी के पीछे सरकार का तर्क है कि उनकी कोशिश आत्महत्या की थी, जो एक कानूनी अपराध है, लेकिन 30 मार्च, 2016 को दिल्ली की एक अदालत ने शर्मिला को आत्महत्या की कोशिश के आरोपों से बरी करते हुए इस बात को रेखांकित किया है कि उनकी लड़ाई जीने के अधिकार के पक्ष में एक राजनीतिक संघर्ष है, न कि मर जाने की कोई चाह। 18 जुलाई, 2016 को सर्वोच्च न्यायालय ने भी यह फैसला दिया है कि मणिपुर में आत्मरक्षा की आड़ में सुरक्षा बलों द्वारा बड़े पैमाने पर की जा रही हत्याओं को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है। इस सबसे

बड़ी अदालत ने यह भी स्पष्ट किया है कि सुरक्षाकर्मी सिर्फ आरोप या संदेह के आधार पर देश के नागरिकों को मार देते हैं, तो वे 'शत्रु' हैं। इससे न सिर्फ कानून के शासन को, बल्कि लोकतंत्र को भी खतरा हो सकता है।

मणिपुर में कथित मुठभेड़ों में मारे गए लोगों के पीड़ित परिजनों द्वारा दायर याचिका में कहा गया था कि बीते दशक में 1528 लोगों को फर्जी मुठभेड़ में हत्या की गई है। अदालत ने क्रेद्र सरकार के इस तर्क को भी खारिज कर दिया कि राज्य (मणिपुर) में युद्ध जैसे हालात हैं। दरअसल, अदालत में आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पॉवर एक्ट (अफास्पा) की वैधता पर सवाल उठाए बिना कहा है कि यदि अनिश्चित काल तक किसी इलाके में सुरक्षा बलों को तैनात करना पड़ रहा है, तो यह साफ तौर पर शासन-व्यवस्था की असफलता है। वर्ष 1998 में सर्वोच्च न्यायालय की एक संवैधानिक पीठ ने भी अशांत क्षेत्रों मे अत्यधिक बल प्रयोग को गलत करार दिया था। इरोम शर्मिला द्वारा बीते 16 साल से भूख हड़ताल करने के पीछे भी उनकी मंशा यही थी कि आर्म्ड फोर्सेस स्पेशल पॉवर एक्ट की वैधता को खत्म किया जाए, क्योंकि सुरक्षाकर्मी संदेह के आधार पर निर्दोष और बेगुनाहों की हत्या कर रहें हैं। इस प्रकार देखा जाए तो शर्मिला की मांग अपनी जगह सही है। इसलिए सरकार को इरोम के प्रति अपना दृष्टिकोण सकारात्मक रखना चहिए और उनके द्वारा चलाए जा रहे आंदोलन के प्रति भी सरकार को सकारात्मक सहानुभूति रखनी चाहिए।

मणिपुर से सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून (अफस्पा) हटाए जाने की माँग को लेकर पिछले 16 साल से अनशन कर रही मानवाधिकार कार्यकर्ता इरोम चानू शर्मिला ने राजनीति में अपना हाथ आजमाने और संभवत: ब्रिटिश मूल के गोवावासी डेसमंड कोतिन्हा से शादी करने के ख्याल से विगत 9 अगस्त, 2016 को भारत छोड़ो आंदोलन के दिन अपना अनशन तोड़ना दुनिया के हर उस व्यक्ति के लिए खुशखबरी है जो मानवाधिकार में विश्वास रखता है। उसने सत्याग्रह के हथियार का अधिकतम उपयोग कर यह साबित कर दिया है कि किसी संकल्पवान व्यक्ति और विशेषकर स्त्री का आत्मबल कितना प्रबल होता है और राज्य की प्रचंड शक्ति के आगे किस हद तक टिका रह सकता है, मगर उनका यह फैसला उनके अपने ही लोगों खासतौर पर उनकी माँ को रास नहीं आया। शर्मिला की माँ कहती थी, जिस दिन अफस्पा खत्म होगा उस दिन वे बेटी को अपने हाथ से भोजन खिलाएगी। शर्मिला के नजदीकी इसलिए भी नाराज हैं कि

उन्होंने ब्रिटिश मूल के गोवावासी डेसमंड कोतिन्हो से नजदीकी बढ़ाई है और जेल से रिहा होने के बाद उनसे शादी भी कर सकती है। दूसरी तरु मणिपुर के उग्रवादी संगठन केसीवाई और केवाईकेल ने शर्मिला को जान से मारने की धमकी दी है।

इतने लंबे अरसे तक अनशन करने के बाद शर्मिला अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में जिस तरह विफल रहीं यह स्थिति इसलिए चिंताजनक है, क्योंकि भारत सरकार ने सोलह साल सत्याग्रह का सम्मान न करके लोकतंत्र में अन्याय के खिलाफ अहिंसक संघर्ष करने की परंपरा को कमजोर किया है।

सत्याग्रह अँग्रेजों के राज में तो प्रभावी हथियार था, लेकिन आजाद भारत की केंद्र सरकार और उसके प्रभुवर्ग को इससे विचलित नहीं किया जा सकता। आजाद भारत का प्रभुवर्ग और मुख्यधारा की राजनीति इतनी असंवेदनशील हो जाएगी, इसकी कल्पना तो अनशन और सत्याग्रह को निहत्थे लोगों का औजार बताने वाले महात्मा गाँधी ने भी नहीं की होगी। बहरहाल, शर्मिला के इस फैसले के बाद भी क्या हमारे सत्ता प्रतिष्ठान में अफस्पा जैसे कानून पर पुनर्विचार की कोई सोच पैदा होगी? असल में, अगर हम अशांत इलाकों में यकीन का वातावरण नहीं करेंगे, तो देश के प्रति एकता की भावना भी मजबूत नहीं हो पाएगी। छार्मिला को तो बस यही जुनून था कि मणिपुर में आतंकवाद के खात्मे के नाम पर निर्दोष लोगों को मारने का लाइसेंस देने वाला 'अफस्पा' या सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम हटाया जाए। वैसे भी भारत का इतिहास साक्षी है कि जन आंदोलन की पीठ पर बैठकर सत्ता शिखर तक पहुँचने के सभी प्रयोग अस्फल रहे हैं।

(२८)प्रश्नः ऐसा क्यों है कि बुनियादी समस्याओं के प्रति राजनीतिक दल दूरगामी सोच नहीं रख पा रहे हैं और वे जो भी नीतियाँ बना रहे हैं उनमें तात्कालिक चुनावी लाभ उठाने की मंशा ही अधिक नजर आती है?

उत्तर: एक लंबे अरसे से यह दिखता आ रहा है कि संसद के दोनों सदनों में विपक्ष की ओर से आमतौर पर वही मुद्दे उठाए जाते हैं जो मीडिया की सुर्खियों में रहते हैं। अक्सर ये मसले ऐसे होते हैं जो साल में दो-चार बार किसी न किसी रूप में सामने आते हैं तो फिर पूरी राजनीतिक बहस उसी पर केंद्रित हो जाती है। हाल के वर्षो में संसद में जो मसले गूँजे उनमें प्रमुख थे दलित उत्पीड़न, कश्मीर के हालात, नेताओं की बदजुबानी और महंगाई। तात्कालिक महत्व के मुद्दों की भी अपनी अहमियत है, लेकिन विपक्ष

अगर सारा समय ऐसे ही मुद्दों पर सरकार को घेरने में खपा देगा तो फिर वह दीर्घकालिक मसलों पर कब चर्चा करेगा? चूकि ऐसे मसलों पर सत्ता पक्ष के पास यह जवाब होता है कि ऐसा पहले भी होता रहा है इसलिए उनपर गंभीर चर्चा नहीं हो पाती। दूसरी ओर सत्तापक्षं भी जो नीतियाँ अपना रहे हैं उनमें तात्कालिक चुनावी लाभ उठाने की मंशा ही अधिक नजर आती है।

यह कहना कदाचित अनुचित नहीं होगा कि पिछले एक-डेढ़ दशक से संसद में बहस का स्तर गिरावट की ओर है। विपक्ष बुनियादी समस्याओं पर संसद में किसी ठोस सुझाव के साथ सामने नहीं आती। वह शोर-शराबा का सरकार को कठघरे में खड़ा करने की कोशिश भर करता दिखता है। उसकी कोशिश यह साबित करने की होती है कि जो भी कमियाँ हैं उनके लिए वर्तमान सरकार ही दोषी व जिम्मेदार है।

आज यह देश जिन जटिल समस्याओं से जूझ रहा है उनका फौरी नहीं, स्थायी समाधान करने की जरूरत है और इसके लिए दीर्घकालिक उपाय करने होंगे। इन उपायों के तहत लोगों को कड़वी गोली के लिए भी तैयार रहना चाहिए। दुर्भाग्य से फिलहाल कोई भी दल समस्याओं के स्थायी समाधान के लिए सार्थक और रचनात्मक बहस के लिए तैयार नजर नहीं आता। कहने को तो हर दल दशकों से भारत को विकसित देश बनाने का दम भर रहा है, लेकिन इसके लिए जिस तरह की ईमानदारी, संकल्प और प्रयासों की आवश्यकता है इसका अभाव ही अधिक दिखता है। राजनीतिक दलों ने अभी तक लोगों के सामने यह भी स्पष्ट नहीं किया है कि उनके लिए विकसित देश के क्या मायने हैं? राजनीतिक दल संसद का कीमती वक्त बर्बाद न करें और अपनी बहस को एक ऐसे स्तर पर ले जाएँ जिससे नागरिकों को यह अहसास हो कि देश की मूल समस्याओं के प्रति वे उतने ही गंभीर हैं जितने कि अपना वोट बैंक को बचाने के लिए रहते हैं।

(२९)प्रश्न: निर्वाचन आयोग द्वारा इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) से छेड़छाड़ की खुली चुनौती दिए जाने के बाद सभी राजनीतिक दलों के पीछे हटने को आप किस रूप लेते हैं और क्यों?

उत्तर: निर्वाचन आयोग द्वारा इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) से छेड़छाड़ की खुली चुनौती दिए जाने के बाद प्राय: सभी विपक्षी राजनीतिक दलों के पीछे हटने को हम छल-कपट और फरेब की राजनीति मानते हैं, क्योंकि हमारे देश में विपक्षी दलों द्वारा तिल का ताड़ बनाने का खेल जारी है। वैसे तो ईवीएम की विश्वसनीयता पर सवाल खड़े करने का काम 16 राजनीतिक

दलों ने किया था, लेकिन सबसे ज्यादा हो-हल्ला मचाया आम आदमी पार्टी और बसपा ने। यह कोई सामान्य हो-हल्ला नहीं था, क्योंकि जहाँ बसपा ने जगह-जगह ईवीएम विरोध दिवस का आयोजन किया था, वहीं आम आदमी पार्टी यह साबित करने के लिए विधान सभा का विशेष सत्र ही बुला लिया कि ईवीएम से छेड़छाड़ हो सकती है।

आप याद करें कि इस फरेब के साथ किस तरह ईंट-से-ईंट बजाने की धमकी दी गई थी और किस प्रकार यह समझाने की भोंड़ी कोशिश हुई थी कि चुनाव आयोग मोदी सरकार के इशारे पर काम करने लगा है, मगर जब अयोग ने सभी ऐसे दलों को ईवीएम को जाँचने की चुनौती दी, तो सभी भाग खड़े हुए। ईवीएम में छेड़छाड़ की खुली चुनौती में हिस्सा लेनें पहुँची माकपा और राकांपा के भी आखिर समय में इससे पीछे हटने के बाद निर्वाचन आयोग ने यह घोषणा की कि ईवीएम में किसी तरह का हेरुेर संभव नहीं है। आयोग ने यह भी कहा कि अब भविष्य के सारे चुनाव ईवीएम में मतदाता पेपर ट्रेल मशीन लगाकर किए जाएँगे। माकपा और राकांपा दोनों दलों के प्रतिनिधियों की तकनीकी जागरूकता का हवाला देकर छेड़छाड़ में हिस्सा नहीं लिया। दोनों दलों ने तकरीबन चार घंटे तक हैंकिंग से लेकर इससे तकनीकी पहलुओं पर आयोग के विशेषज्ञों और चुनाव आयुक्तों से अलग-अलग चर्चा की। इससे साफ हो गया कि छेड़छाड़ की बात उठाने के बावजूद किसी दल ने आयोग की चुनौती को स्वीकार नहीं किया। इसलिए आगे के सभी चुनाव अब ईवीएम में वीवीपीएटी मशीन लगाकर कराए जाएँगे। जब मतदाता बटन दबाएगा, तो वीवीपीएटी पूरा देख सकेगा कि उसने जो बटन दबाया है वोट उसे ही गया है।

निर्वाचन आयोग की चुनौती नहीं स्वीकारने के बाद यह स्पष्ट हो गया कि छल-कपट की राजनीति कैसा माहौल रचती है और उसके जरिए किस तरह देश का कीमती वक्त जाया करने के साथ लोगों को बरगलाया जाता है, इस पर एक बार फिर मुहर लग गयी जब चुनाव आयोग की चुनौती का सामना करने आए माकपा और राकांपा- इन दो दलों ने भी यह कहते हुए अपने हाथ खड़े कर दिए कि वह तो केवल प्रक्रिया समझने आए थे। आखिर ऐसे शरारती राजनीतिक दलों के रहते स्वस्थ लोकतंत्र की उम्मीद कैसे की जा सकती है? अच्छा होगा कि ऐसी व्यवस्था की जाए जिससे भविष्य मे कोई यह कहकर लोगों को बरगलाने से बाज आए कि कौआ कान ले गया।

(३०)प्रश्नः आपराधिक एवं दागी पृष्ठभूमि के दबंगनेता आखिर राजनीतिक दलों की किस मजबूरी में टिकट पाकर विधायी सदनों के सदस्य निर्वाचित हो जाते हैं?

उत्तर: विगत वर्षों में किसी न किसी राजनीतिक दल के कई विधानसभा व विधान परिषद के माननीय कहे जाने वाले सदस्यों पर महिलाओं विशेष तौर पर कम उम्र की लड़कियों के साथ अभद्रता से लेकर दुष्कर्म, लूटपाट, हत्या और अपहरण जैसे संगीन अपराधों के आरोप लग चुके है और कई वैसे विधायक तो अभी भी सलाखों के पीछे हैं और कई जमानत पर जेल के बाहर आ चुके हैं। इन विधायकों में अभी तक राजद, जद(यू), कॉंग्रेस के नेताओं के नाम तो आते ही रहे हैं, मगर इधर कुछ दिनों पूर्व यानि 24 जुलाई, 2016 को इसबार भाजपा के बिहार विधान परिपद के एक सदस्य पर आरोप लगा है कि उन्होंने चलती ट्रेन में एक नाबालिग लड़की के साथ अभद्र व्यवहार किया। यह बात ठीक है कि राजनीतिक दलों ने ऐसी आपराधिक प्रवृत्ति के विधायकों को तत्काल निलंबित कर स्पष्टीकरण माँगे हैं, मगर विधायकों के जेल जाने या दलों द्वारा निलंबित किए जाने से न तो राजनीतिक नेतृत्व की जवाबदेही पूरी हो जाती और न इससे संबंधित राज्यों की शर्मिंदगी मिट जाती। अहम सवाल तो यह है कि आपराधिक एवं दागी पृष्ठभूमि के ऐसे दबंग नेताओं को आखिर राजनीतिक दलों की किस मजबूरी में विधायी सदनों के सदस्य के निर्वाचन में भाग लेने के लिए टिकट पा जाते हैं और विधायक निर्वाचित हो जाते हैं? क्या राजनीतिक दलों के शीर्ष नेताओं को ऐसे उम्मीदवारों की आपराधिक प्रवृत्ति के बारे में पहले से मालूम नहीं रहता है?

पिछले कुछ महीनों में जिन विधायकों पर आपराधिक मामले दर्ज हुए हैं, उनमें एक भी ऐसा नहीं है जिनकी पृष्ठभूमि दागी न रही हो। इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है कि राजनीतिक दल संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली की कमजोरियों का फायदा उठाकर ऐसे व्यक्तियों को कानून बनाने का अधिकार दे रहे हैं, जिनका इतिहास कानून तोड़ना रहा है। सच तो यह है कि ऐसे विधायकों की रुचि संसदीय कार्य में न होकर अपना कारोबार एवं दबंगई बढ़ाने में रहती है। वे सदन में न तो वास्तविक जनहित के सवाल उठाते हैं और न ही ऐसी बहस में हिस्सा लेते हैं।

ऐसा भी नहीं कि दल के शीर्ष नेता और टिकट बाँटने वाले नेता टिकट माँगने वालों की आपराधिक प्रवृत्ति और उसकी दबंगई के बारे पहले

से जानते नहीं हैं, बल्कि सच्चाई यह है कि जानबूझकर वे वैसे ही धनपशुओं और बाहुबलियों को टिकट इसलिए देते हैं कि उनके जीतने की संभावना अधिक होती है और उन नेताओं की थैली भी भर जाती है। इसलिए राजनीतिक दलों और उसके नेताओं की मजबूरी यही है कि वे एन-केन-प्रकारेण सत्ता पर काबिज होना चाहते हैं और उसे पाने के लिए उनसे कोई भी कूकर्म संभव है। स्वहित की राजनीति आज पराकाष्ठा पर है जो चिंतनीय है।

दूसरी बात यह है कि राजनीतिक दल और उसके नेता तो दोषी हैं ही उससे कम दोषी हम जनता विशेष तौर पर मतदाता भी नहीं हैं। आज हमलोग अपने जनप्रतिनिधि के रूप में वैसे को चुनकर संसद और विधानसभाओं में भेजते हैं, जो समाज का सबसे बेकार, भ्रष्ट और जिसका लंबा आपराधिक इतिहास रहा है। सरकार गठन के समय भी सरकार ऐसे ही लोगों को तरजीह देती है। जहाँ तक बिहार विधानसभा का सवाल है मौजूदा 243 सदस्यों में से 148 माननीय सदस्यों पर विभिन्न आपराधिक मामले दर्ज हैं। ऐसे जनप्रतिनिधियों से अगर हम सच में बेहतर और पारदर्शी प्रशासन चाहते हैं तो सबसे पहले शिक्षित, ईमानदार, निष्ठावान तथा योग्य लोगों को राजनीति में सक्रिय होना पड़ेगा तथा मतदाताओं को चुनाव के वक्त जाति, धर्म, मजहब और क्षेत्रीयता आदि से ऊपर उठकर मतदान करना होगा। तभी हम अच्छी सरकार और शासन-प्रशासन की उम्मीद कर सकते हैं।

(३१)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक राजशाही चल रही है? क्या समाजवादियों ने भी इस लोकतांत्रिक राजशाही को आत्मसात नहीं कर लिया है?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक राजशाही चल रही है। हालांकि यह भी सच है कि मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति में ही नहीं, बल्कि इस देश में तो लोकतांत्रिक राजशाही का बीजारोपण 1959 में ही तब हो गया था जब काँग्रेस के तमाम दिग्गज नेताओं को दरकिनार कर इंदिरा गाँधी को भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस पार्टी का राष्ट्रीय अध्यक्ष बना दिया गया था। इस प्रकार प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने अपने जीवनकाल में ही जनतांत्रिक व्यवस्था को लोकतांत्रिक राजशाही मे बदलने का रास्ता भी खोल दिया था।

आमतौर पर यह उम्मीद की जाती है कि सार्वजनिक जीवन में सक्रिय लोगों के आचरण का आदर्श के रूप में देखे और उसका अनुसरण

करें, लेकिन किसी ने इस बात को आदर्श रूप में ग्रहण नहीं किया कि महात्मा गाँधी, लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल, बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन, मौलाना अबुल कलाम आजाद, रफी अहमद किदवई, मदन मोहन मालवीय, गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपत राय और अब्दुल कलाम आजाद जैसे नेताओं ने परिवार के लोगों को अपने रसूख का फायदा उठाकर आगे नहीं बढ़ाया। अब तो लोग उन बातों को ज्यादा सहजता से अंगीकार कर लेते हैं जो उनके अपने निहीत स्वार्थ की पूर्ति करती हो।

दरअसल, काँग्रेस पार्टी ने ही भारतीय राजनीति में जनतांत्रिक व्यवस्था को लोकतांत्रिक राजशाही में बदलने की शुरुआत कर दी थी। आखिर तभी तो नेहरू जी के बाद उनकी बेटी इंदिरा गाँधी देश की प्रधानमंत्री बनीं, फिर इंदिरा जी की हत्या के बाद उनके बेटे राजीव गाँधी देश के प्रधानमंत्री बने और अब राजीव गाँधी के बेटे राहुल गाँधी को देश के प्रधानमंत्रे के पद पर बैठाने की कवायद चल रही है।

वैसे काँग्रेस की तर्ज पर अब तो समाजवादियों ने भी परिवारवाद की राजनीति को इस तरह आत्मसात कर लिया है जैसे यही राजनीति का मूलमंत्र हो। मैं यह नहीं कहता कि किसी नेता के बेटे-बेटी को राजनीति में आना कोई बुराई है और जनतांत्रिक व्यवस्था में इसे रोका भी नहीं जा सकता, मगर जिस प्रकार लालू प्रसाद के चारा घोटाले में जेल जाने पर उन्होंने अपनी पत्नी राबड़ी देवी को बिहार के. मुख्यमंत्री की गद्‌दी पर बैठाया, मुलायम सिंह यादव ने अपने बेटे अखिलेश यादव को उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनाया, ओडिशा में बीजू पटनायक के बाद उनके बेटे नवीन पटनायक मुख्यमंत्री बने या चंद्र बाबू नायडू या अरुणाचल में पेमा खांडू जैसे तमाम नेताओं को पिता की जगह पुत्र को राजगद्‌दी मिली वह इस बात की संपुष्टि करती है कि लोकतांत्रिक राजशाही में सिर्फ एक नियम तय है और वह यह कि जब परिवार के पास सत्ता आएगी तो वह परिवार में ही रहेगी। अब तो नेता पार्टी में परिवार के एक सदस्य के आने भर से संतुष्ट नहीं होते, बल्कि जितने ज्यादा से ज्यादा अपने परिवार से सदस्य आ जाएँ, उतना ही अच्छा। मुलायम सिंह यादव और लालू प्रसाद यादव तो इसके उदाहरण हैं। द्रमुक प्रमुख एम. करुणानिधि ने अपने छोटे बेटे एम.के.स्टालीन को अपना राजनीतिक वारिस घोषित कर यही उदाहरण तो प्रस्तुत किया है।

(३२)प्रश्न: मतदान को अनिवार्य बनाना तथा मताधिकार का प्रयोग नहीं करने वालों को दंडित करना क्या संभव है? आखिर क्यों? इसका विकल्प क्या हो सकता है?

उत्तर: मतदान को अनिवार्य बनाना तथा मताधिकार का प्रयोग नहीं करने वालों को दंडित करना संभव नहीं है, क्योंकि अनिवार्य मतदान भारतीय संदर्भ में अव्यावहारिक है और मतदान नहीं करने वाले करोड़ों मतदाताओं को दंडित करना बहुत दुष्कर होगा। पिछले साल 2015 में गुजरात के स्थानीय निकायों में इसे लागू करने की कोशिश हुई थी, पर उच्च न्यायालय ने उसे स्थगित कर दिया था। पिछले साल विधि आयोग ने भी चुनाव सुधारों पर अपनी रिपोर्ट में इसे नकार दिया था।

मेरा ख्याल है कि अनिवार्य मतदान की जगह पर राजनीतिक दलों और निर्वाचन आयोग समेत सभी संबंद्ध पक्षों को लोगों को मताधिकार के बारे में सजग करने की दिशा में प्रयास करना चाहिए और मतदाताओं में जागरूकता पैदा करने की कोशिश की जानी चाहिए। पिछले वर्ष 2014 के आम चुनाव में 66.4 प्रतिशत मतदाताओं की भागीदारी उत्साहवर्द्धक रही है।

(३३)प्रश्न: पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में भारत द्वारा की गई सैन्य कार्रवाई का सबूत माँगने की जैसी होड़ राजनेताओं में मची उसे आप क्या कहेंगे?

उत्तर: पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के भीतर तीन कि.मी. स्थित आतंकवादियों के सात कैंपों को ध्वस्त कर तकरीबन 40 आतंकियों को भारतीय सेना के द्वारा सर्जिकल स्ट्राइक में मौत के घाट उतारने के सबूत माँगने की विपक्षी दलों के कुछ राजनेताओं में जैसी होड़ मची उसे सस्ती राजनीति का नया उदाहरण तो कहा ही जाएगा, बेहद शर्मनाक नमूना कहना भी कदाचित अनुचित नहीं होगा। कहाँ तो आम आदमी पार्टी के संयोजक और दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री ने हमारे सैन्य द्वारा विगत 28-29 सितंबर 2016 की रात 12.30 बजे से 4.30 बजे तक चार घंटे तक की सर्जिकल स्ट्राइक के बाद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को बधाई देते हुए उन्हें सैलूट मारा, फिर उन्होंने दूसरे दिन ही सर्जिकल स्ट्राइक के सबूत माँग कर अपने ओछेपन का परिचय दिया।

इसी प्रकार काँग्रेस की अध्यक्षा सोनिया गाँधी और उनके सुपुत्र एवं काँग्रेस पार्टी के उपाध्यक्ष राहुल गाँधी ने सैन्य कार्रवाई की प्रशंसा करते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को उनके साहस के लिए बधाई दी, पर उसी पार्टी के बड़बोले नेता संजय निरूपम ने भी बहुत भौंड़े तरीके से सर्जिकल स्ट्राइक

के प्रमाण प्रस्तुत करने को कहा। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि अगर सरकार सबूत नहीं प्रस्तुत करती है, तो फिर सैन्य कार्रवाई का दावा फर्जी माना जाएगा। ऐसा ही कुछ तो पाकिस्तानी नेता भी कह रहे हैं यानी दुश्मन देश पाकिस्तान के नेताओं के सूर में सूर मिलाकर आखिर अपने देश के प्रति किस प्रतिबद्धता का परिचय दिए। हैरत की बात तो यह भी है कि भारत के पूर्व मंत्री और अनुभवी नेता पी. चिदम्बम भी कुछ ऐसी ही अरविंद केजरीवाल और निरूपम की भाषा बोलते नजर आए।

क्या इन नेताओं द्वारा सबूत माँगने की बात से फूहड़ बात और क्या हो सकती है कि मोदी सरकार पर निशाना साधने के फेर में बड़बोले नेता सेना पर अविश्वास कर रहे हैं? क्या इन नेताओं को चार दिन पुरानी यह बात याद न रही कि सैन्य कार्रवाई की यह घोषणा सैन्य अभियान के महानिदेशक ने की थी और भारत सरकार ने तीस देशों को इसकी सूचना तक दे डाली थी? सरकार सहित देश के अधिकांश राज्यों के मुख्यमंत्रियों सहित पूरे देशवासियों ने तो भरोसा कर लिया और इस साहसिक कार्रवाई पर खुशी जताई, मगर हमारे चंद सिरफिरे स्वार्थी-संकीर्ण नेताओं को यह सैन्य अभियान हजम नहीं हो पा रहा है। दरअसल, सैन्य कार्रवाई के चलते मोदी सरकार की हर तरफ वाहवाही हो रही है और विश्व के सभी देशों के द्वारा पाकिस्तान की निंदा। ऐसे नेता निंदा और भर्त्सना के पात्र हैं। इसे राजनीतिक संकीर्णता की हद नहीं तो और क्या कही जाएगी?

इस बात से आपको यह सहज अंदाजा लग गया होगा कि भारतीय राजनीति का स्तर कितनी तेजी से गिर रहा है? किसी भी देश के इतिहास में यह सुना भी नहीं गया होगा कि उसके नागरिकों खासकर राजनीतिक नेताओं ने दुश्मन देशों के खिलाफ जारी सैन्य अभियान की विश्वसनीयता पर सवाल उठाते हुए कभी सबूत माँगे होंगे। क्या ओसामा बिन लादेन के खिलाफ अमेरिका के सर्जिकल ऑपरेशन के बारे में कभी कोई अमेरिकन जानने का प्रयास किया? भारत में भी 1947, 1962, 1965, 1971 और कारगिल युद्ध के दौरान चलाए गए सैन्य अभियानों की असलियत पर सवाल उठाते हुए क्या कभी सबूत माँगने की जरूरत समझी?

सेना के 'सर्जिकल स्ट्राइक' पर गैर-जिम्मेवाराना बयाने देने वाले राजनेता केजरीवाल, निरूपम और चिदम्बरम भारतीय चिंतन परम्परा के 'आपद धर्म' के विचार को भुला बैठे जिसमें कहा गया है कि सामान्य दिनों वाले किसी व्यवहार के यदि किसी संकट की घड़ी में व्यक्ति या समाज के

लिए घातक होने की आशंका हो तो उसे हालात सामान्य होने तक स्थगित रखा जाना चाहिए। वे भुला बैठे कि राष्ट्रहित से बड़ी राजनीतिक सच्चाई कुछ और नहीं हो सकती।

यह सभी को समझ लेना चाहिए कि सेना की रणनीति और सामरिक अभियान की बातों को कभी सार्वजनिक नहीं किया जाता है, इनसे जुड़ी जानकारियों को उजागर करना कानूनन दंडनीय अपराध है। हालिया सर्जिकल स्ट्राइक का साक्ष्य माँग रहे नेता भी सरकारी गोपनीयता कानून के प्रावधानों से अच्छी तरह वाकिफ नहीं है, तो फिर संसद में कानून बनाने वाले नेताओं से क्या उम्मीद की जाए? बहुत संभव है कि उनका इससे पाला भी पड़ा हो। यह समझ से परे है कि कोई नेता या पार्टी स्वार्थ में इस कदर कैसे डूब सकता है कि वह राष्ट्रीय संकट के समय भी एक स्वर से नहीं बोल पाए। इन नेताओं की मंशा चाहे जो भी हो, लेकिन इनकी यह हरकत और बेतूके बोल बेहद निंदनीय हैं। सैन्य अभियान का सुबूत माँग कर ये लोग निजी लाभ के लिए अथवा राजनैतिक लाभ के लिए देश के साथ गद्दारी कर रहे हैं जिसके लिए जनता इन्हें चुनावों में सबके सिखाएगी।

इन्हें यह पता होना चाहिए कि सेना सर्जिकल स्ट्राइक में मारे गए दुश्मन आतंकवादियों की लाश और उनकी अस्थियाँ भी सीमापार से लेकर आए। मुझे आश्चर्य इस बात को लेकर हो रहा है कि जो भारतीय सेना अपने पराक्रम, निडरता, बहादुरी और राष्ट्र की खातिर अपना सर्वस्व न्योछावर करने की भावना को लेकर दुश्मनों के दाँत खट्टे करते हैं और जिसके लिए सारी दुनिया उनकी वीरता की सराहना करती है उसी सेना को नीचा दिखाने की कोशिश हमारे देश के राजनीतिक दल और उसके नेता कर रहे हैं और देश की एकता, अखंडता और संप्रभुता के साथ राजनीति करने से बाज नही आ पा रहे हैं। ऐसा करके वे अभिव्यक्ति की आजादी का मजाक उड़ा रहे हैं और सैन्यबलों का मनोबल गिराने का प्रयास कर रहे है जिसके लिए देश की जनता इन्हें कभी माफ नहीं करेगी। काँग्रेस का तो वैसे भी बेड़ा गर्क में है, आम आदमी पार्टी के भी दिन अब दुर्दिन में चल रहे हैं। और आज पूरा देश सरकार एवं सेना के साथ है तो दीवारों पर लिखे इन नेताओं को पढ़ लेना चाहिए और उस पर गौर करना चाहिए। वोट के लिए देश की साख और विश्वसनीयता को चोट पहुँचाना बेहद शार्मनाक है। इसका पूरजोर विरोध किया जाना चाहिए।

सैनिक कार्रवाई का वीडियो भारत को क्यों नहीं जाहिर करना

चाहिए, इस पर पूर्व थल सेनाध्यक्ष जनरल शंकर राय चौधरी जो भाजपा के सदस्य भी नहीं हैं, के बयान से स्थिति स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने कहा कि 'यह वीडियो पाकिस्तान की सेना और उसकी खुफिया एजेंसी आईएसआई के लिए हीरे-जवाहरात से भी कीमती है। सरकार का किसी भी हालत में इसे सार्वजनिक नहीं करना चाहिए। दुनिया की कोई भी की फौज ऐसा नहीं करती।'

दरअसल, बात यह है कि भारत के आम नागरिकों को अपनी सेना और सरकार दोनों की बातों पर पूरा भरोसा है। पूरा देश इस बात पर गर्व कर रहा है कि हमने पठानकोट और उरी हमले का माकूल जवाब दे दिया है। हमारे देश की राजनीतिक पार्टियों के नेताओं को यही बात खल रही है कि इस सर्जिकल स्ट्राइक की कार्रवाई का सारा श्रेय मोदी सरकार को मिल रहा है, उन्हें यह कैसे स्वीकार हो सकता है? इसके लिए अपनी सेना पर संदेह करना पड़े, तो करेंगे। दूसरी बात यह कि विपक्ष में रहते हुए राष्ट्रवाद के नाम पर लोगों की भावनाएँ भड़काना आसान है, पर सत्ता में आने के बाद कुछ करके दिखाना क्या होता है अब उन्हें समझ में आ रहा है। इस संदर्भ में सांसद परेश रावल का यह बयान मुझे काबिलेतारीफ लगा कि केजरीवाल अपने दो चेहरों में से कम-से-कम एक की सुंदरता बचा कर रखें। मुझे लगता है कि गैर-काँग्रेसवाद से शुरू हुई सत्ता विरोध की राजनीति धर्मनिरपेक्षता बनाम साम्प्रदायिकता और बहुसंख्यकवाद बनाम अल्पसंख्यकवाद से होती हुई मोदी विरोध पर केंद्रित हो गई है, मगर इससे अब क्या फर्क पड़ता है, क्योंकि देशवासियों और समर्थकों का भरोसा नरेन्द्र मोदी और उनकी सरकार पर पहले से अधिक मजबूत हो गया है। लेकिन हार्दिक पटेल जैसे अतिसाधारण युवा नेता के गले भी यह बात नहीं उतरती है तो आश्चर्य होता है। आगे उन्होंने भी यह बयान दे डाला कि गोली खाई सेना ने, शहीद हुआ सेना का जवान, आतंकियों को मार गिराया सेना ने, तो फिर इसका लाभ भाजपा और पीएम मोदी क्यों ले रहे हैं? उनसे कौन पूछे कि सत्ता पर आसीन सरकार और उसके नेता को ही न इसका श्रेय मिलेगा।

(३४)प्रश्नः काँग्रेस पार्टी के उपाध्यक्ष राहुल गाँधी ने सर्जिकल स्ट्राइक को लेकर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी पर जवानों के खून की दलाली का आरोप लगाकर क्या नेहरू-गाँधी परिवार का यह वारिस काँग्रेस पार्टी को मिट्टीपलीद नहीं कर रहा है? आपका क्या ख्याल है?

उत्तरः हाँ, मेरा भी यही ख्याल है कि काँग्रेस पार्टी के उपाध्यक्ष राहुल गाँधी ने सर्जिकल स्ट्राइक को लेकर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी पर जवानों के खून की

दलाली का आरोप लगाकर नेहरू-गाँधी परिवार का यह वारिस काँग्रेस पार्टी की मिट्टी पलीद कर रहा है। दरअसल, राहुल गाँधी यह हजम नहीं कर पा रहे हैं कि प्रधानमंत्री ने सेना को सर्जिकल स्ट्राइक की इजाजत देकर देश के माहौल को बदल दिया है। कहाँ तो पहले राहुल गाँधी ने सर्जिकल स्ट्राइक के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की तारीफ करते हुए उन्हें बधाई दी और फिर अपनी ही पार्टी के युवा नेता संजय निरूपम को मात देने पर आमादा हो गए, क्योंकि उन्होंने खुद एक छुटभैए काँग्रेसी नेता की तरह सड़क छाप भाषा का इस्तेमाल सार्वजनिक तौर पर न केवल अपनी बौखलाहट का परिचय दिया है, बल्कि अपनी नासमझी का परिचय देकर असंयमित भाषा का प्रयोग किया है।

राहुल गाँधी को शायद यह नहीं मालूम कि सोनिया गाँधी ने गुजरात के मुख्यमंत्री के तौर पर नरेन्द्र मोदी का जब मौत का सौदागर कहा था काँग्रेस को कितना बड़ा नुकसान उठाना पड़ा था? जिस तरह मौत का सौदागरवाला बयान आज तक सोनिया गाँधी का पीछा नहीं छोड़ रहा वैसे ही खून की दलालीवाला बयान राहुल गाँधी का पीछा नहीं छोड़नेवाला। यह सोचकर सद्चितवाले देशवासियों के साथ काँग्रेस के कुछ अच्छी सोचवाले राजनेताओं को भी शर्मिंदगी महसूस हो रही है कि नेहरू-गाँधी परिवार का यह वारिस किस तरह काँग्रेस की मिट्टीपलीद कर रहा है। मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि खून की दलालीवाली टिप्पणी कर राहुल गाँधी ने उत्तर प्रदेश के आसन्न चुनाव में भी पानी फेर दिया है।

(३५)प्रश्नः आपने झारखंड की राजधानी राँची में एक दशक से अधिक अवधि तक सरकारी सेवा की है। क्या आप बता सकते हैं कि सिर्फ झारखंड में ही आंदोलनकारियों पर बार-बार गोली चलाने में शासक-प्रशासक को जरा-सी भी हिचक नहीं होती है?

उत्तरः आपने सही कहा कि भारतीय रेलवे की नौकरी छोड़कर जब मैंने भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के महालेखाकार, बिहार, राँची के कार्यालय में एक दशक से अधिक अवधि तक सेवा की और जब बिहार से अलग होकर झारखंड राज्य बनने का सिलसिला चलने लगा, तो पटना में महालेखाकार, बिहार की एक शाखा स्थापित होने पर मेरा स्थानांतरण पटना हो गया सन् 1973 के दिसंबर में और तब से लेकर सन् मई, 2000 तक पटना स्थित महालेखाकार कार्यालय मे रहा। फिर एक जून, 2000 से मैंने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर सार्वजनिक जीवन जीना शुरू किया और उसी में रहकर आज तक रचना-कर्म से जुड़ा हूँ। इस बीच बिहार संस्कृत शिक्षा

बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद भी मुझे मिला, पर तीन साल तक कार्यकाल पूरा करने के बाद उसे भी मैने स्वेच्छा से छोड़ा, क्योंकि वह भी मुझे रास नहीं आया या यों कहा जाए कि सृजन करना मुझे ज्यादा पसंद आया।

अब रही बात झारखंड में एक दशक से अधिक अवधि तक राँची में रहकर आदिवासी समाज की जो संस्कृति देखी, उनके रहन-सहन और कार्यकलाप एवं उनकी जीवटता, सरलता और सहजता से परिचित हुआ वह मेरे स्मृति पटल पर आज भी मौजूद है। जहाँ तक सिर्फ झारखंड में आंदोलनकारियों पर बार-बार गोली चलाने में शासन-प्रशासन की जरा सी भी हिचक नहीं होने का सवाल है उसका उत्तर यह है कि उनका सत्याग्रही आंदोलन बहुत कुछ गाँधी के सत्याग्रह आंदोलन से मिलता-जुलता है।

झारखंड के चतरा इलाके में एनटीपीसी का एक बिजली घर बन रहा है जिसके लिए कोयला चाहिए। एक कंपनी का कोयला देने का ठेका मिला है। जिस इलाके की जमीन खोद कर कंपनी कोयला निकालना चाहती है वह हजारीबाग के बड़कागाँव में पड़ता है। पूरा क्षेत्र काफी उपजाऊ है। लोगों की जिंदगी की डोर खेती की इसी जमीन पर टिकी है। किसान एक साल में कई फसल उगा लेते हैं। कहा जाता है बड़कागाँव के गुड़ की खूशबू और स्वाद की शोहरत दूर-दूर तक है। इलाके के अधिकांश आदिवासी किसान अपनी उपजाऊ जमीन नहीं देना चाहते हैं। वे कई सालों से इसके खिलाफ सत्याग्रह चला रहे हैं। अधिकतर गाँववालों का आरोप है कि उनकी जमीन बिना उनकी रजामंदी के अधिगृहीत की जा रही है। इस बीच कोयला खनन की प्रक्रिया भी तेज हो गयी। तब पिछले 15 सितंबर 2016 को काँग्रेसी विधायिका निर्मला देवी के नेतृत्व में बड़कागाँव के डाढ़ीकलां इलाके में गाँववालों ने 'कफन सत्याग्रह' शुरू कर दिया। 15 दिन बाद 30 सितंबर की देर रात अचानक पुलिस आती है और विधायिका को जबरन उठाकर ले जाती है। गाँववाले विरोध करते हैं, पुलिस लाठी चलाती है। इस प्रकार गाँववालों पर कहर बरपा कर उन्हें तबाह किया जाने लगा। फिर पुलिस गोली भी चलाती है, जिसमें कई लोग मारे जाते है और कई गायब हैं। इतने के बाद भी पुलिस का आतंक रूक नहीं रहा है। कार्यकर्ताओं का कहना है कि जो मारे गए उन्हें गोली कमर से उपर लगी है। गौरतलब है कि यह सब 'सत्याग्रही' महात्मा गाँधी की 147 वीं जयंती के 24 घंटे पहले हो रहा था। इससे पहले भी यहाँ के बाशिंदों पर दो बार गोलियाँ चल चुकी हैं। वे अपनी

बात पर ध्यान दिलाने के लिए एक बार चिता सजा कर 'चिता सत्याग्रह' भी कर चुके हैं। बात सिर्फ इतनी ही है कि 2013 में काफी जद्दोजहद के बाद किसी परियोजना या काम के लिए भूमि अधिग्रहण करने का कानून बना है जिसके मुताबिक, जमीन लेने के लिए उस इलाके मे रहनेवालों की रजामंदी जरूरी है और उनकी सही और पर्याप्त पुनर्वास जरूरी है। मुआवजा उचित मिले, इसकी गारंटी हो। गाँववाले इसी की माँग कर रहे हैं, मगर किसी के कान पर जूँ नहीं रेंग रही, क्यों?

दरअसल, बिना रजामंदी, बिना सही और पर्याप्त पुनर्वास और मुआवजा के जमीन अधिगृहीत करने का प्रयोग वे कर रहे हैं जिन्हें आदिवासियत से कोई लेना-देना नहीं है। इस विकास में यहाँ के लोगों की कोई भूमिका नहीं है। जिनके नाम पर और जिनके विकास के लिए झारखंड बना वे आज कहाँ है? विकास तो उनका हो रहा है या हुआ, जिनके लिए जल-जंगल-जमीन महज दोहन व मुनफा का जरिया है। सत्याग्रही जल-जंगल जमीन वाले हैं। यही वजह है कि जब कोमलकारों या बड़कागाँव में सत्याग्रह आंदोलन होता है, तो इसमें शामिल लोग माटी की खूशबू से गुँथे लोग होते हैं जाति-धर्म-पंथ-संप्रदाय से परे। बड़कागाँव के आंदोलनकारी सत्याग्रही इस मायने में भी बहुत खास हैं। वे किसी मंदिर या मस्जिद के लिए नहीं लड़ रहे हैं। वे तो अपनी जिंदगी के लिए जद्दोजहद कर रहे हैं और साथ ही सत्याग्रह भी कर रहे हैं। इसलिए जब खून बहा तो साझा बहा। ऐसा ही तो गाँधी जी का भी सत्याग्रह था। इसलिए आज उनपर गोलियाँ चल रही हैं।

(३६)प्रश्नः क्या आप इस बात से सहमत हैं कि राजनीति हो या कारोबार, एक कुशल मेडियेटर ही सफल नेतृत्व प्रदान कर सकता है? आखिर क्यो?

उत्तरः विजय जी, आपने इस कहावत पर ध्यान दिया होगा कि 'विद्वान किसी विषय पर एकमत नहीं हो सकते।' यह मतभिन्नता रचनात्मक संभावनाओं की ओर संकेत करती है। राजनीति हो या कारोबार मतभिन्नता की परिस्थितियों से इनकार नहीं किया जा सकता। ऐसे में मध्यमार्गी विकल्प खुला रखा जाता है। नेतृत्व करने वाला इस विकल्प को लेकर जितना निपुण होगा, उसकी टीम उतनी ही कामयाब होगी।

एक सफल उद्यमी, निवेशक और ऑनलाइन मार्केटिंग गुरु जॉन रैंपटोन अपने अनुभव के आधार पर बताते हैं कि हर इनसान में विशिष्ट प्रतिभा, योग्यता और क्षमता होती है, किंतु सभी का व्यक्तित्व, अभिव्यक्ति

और काम करने का तरीका अलग-अलग होता है। ये सब एक समूह में काम करते हैं तो जाहिर है कि उनके बीच वैचारिक विविधता ही नहीं, मतांतर भी होते हैं। ऐसे में एक अच्छी टीम के एक अच्छे सदस्य और टीम का कुशल नेतृत्व प्रदान करने वाला नेता होना चुनौतीपूर्ण होता है।

ऐसी स्थिति मे यदि कोई नेता टकराव को टालता है या टकराव होने की परिस्थितियों का आकलन पहले से करता हैं और जितनी जल्दी एवं जितनी कुशलता से समस्या का समाधान निकालता है तो उतना ही सफल नेतृत्व प्रदान करेगा। इसी तरह गलतफहमी को दूर करने वाला साझा लक्ष्य के प्रति आगाह करने वाला तथा समझौते को प्राथमिकता देने वाला एवं टीम बदलने को अंतिम विकल्प देने वाला नेता ही सफल नेतृत्व प्रदान करता है। मौजूदा दौर की राजनीति में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी इसके एक उदाहरण माने जा सकते हैं।

(३७)प्रश्न: उड़ी हमले के बाद भारतीय सेना द्वारा पाक अधिकृत कश्मीर में किए गए सर्जिकल स्ट्राइक पर जिस तरह की सियासत देश में हो रही है उसे आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तर: सर्जिकल स्ट्राइक के बाद जिस तरह की सियासत देश में हो रही है वह निराशाजनक है, क्योंकि जिस सेना ने यह दमखम दिखाया है वह अपना काम करके बैरक में वापस जा चुकी है और अपनी सीमा सुरक्षा चौकसी में लग चुकी है, मगर इस देश के राजनीतिक दलों के नेता पूरे मसले पर सियासी फायदे के लिए मुखर हैं। हालांकि किसी भी दल या नेता ने इस मसले पर गंभीरता नहीं दिखाई, बल्कि सच तो यह है काँग्रेस, आम आदमी पार्टी के नेताओं ने तुरंत सेना को इस उत्कृष्ट सर्जिकल स्ट्राइक की तारीफ करते हुए प्रधानमंत्री नरेंन्द्र मोदी को बधाई तो दे दी, मगर दूसरे ही दिन उन्हें यह भान होने लगा कि इसका श्रेय तो सत्ताधारी पार्टी को मिल रहा तो पाकिस्तानी नेताओं की तरह इस देश के नेता भी सर्जिकल स्ट्राइक के सबूत माँगने लगे यानी सेना के कार्यकलापों पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। पता नहीं उन्हें यह भी अहसास होना चाहिए कि राजनीतिक दल की सरकार के वक्त सेना के द्वारा की गई कार्रवाई का लाभ तो मिलना स्वाभाविक है चाहे इसके पूर्व 2008, 2011 और 2013 के सर्जिकल स्ट्राइक क्यों न हों।

मुझे नहीं लगता कि मौजूदा केंद्र सरकार का नेतृत्व कर भाजपा या उसके गठबंधन के नेताओं ने सेना इन उपलब्धियों का ढिंढोरा पीट-पीटकर अपना प्रचार किया हो, बल्कि देश की जनता को इस हमले के बाद उसे

तसल्ली मिली है हमारी सेना ने उड़ी के हमले का जवाब ठीक से दिया। इसमें तो नेताओं को समझदारी दिखानी चाहिए। संसदीय लोकतंत्र के कार्य का यही तकाजा है।

(३८)प्रश्न: क्या आजादीं की लड़ाईवाली राष्ट्रीय काँग्रेस २१वीं सदी में पूरी तरह परिवारवाद से ग्रस्त हो गई है?

उत्तर: हाँ, आजादी की लड़ाईवाली भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस 21वीं सदी में पूरी तरह परिवारवाद से ग्रस्त हो गई है। राहुल गाँधी में देश का विकल्प ढूँढ़ा जा रहा है जबकि राहुल की अपरिपक्वता पार्टी के विनाश की वजह बनती जा रही है। जेनएयू के छात्रों ने बिना सोचे-समझे वामदलों के साथ मोदी विरोध के लिए राष्ट्र विरोधी नारों को अभिव्यक्ति की आजादी कहकर देश विरोधी लोगों को शह देना राहुल के लिए साधारण बात तो हो सकती है, किंतु जो लोग काँग्रेस के इतिहास से वाकि हैं, उन्हें पीड़ादायक सदमा लगा था। जिस दिन नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में केंद्र की सरकार बनी उसी दिन से राहुल गाँधी का उनकी आलोचना करना, प्रत्येक विधेयक पर संसद में हंगामा करना, नरेन्द्र मोदी की विदेश यात्राओं जिनसे देश को अपार लाभ आज दिख रहा है, उनकी खिल्ली उड़ाना और सर्जिकल स्ट्राइक पर मौत की दलाली जैसे शब्द का प्रयोग करना और सबसे बड़ी बात यह कि एक खाटी देशी अंदाज की सरकार को शूट-बूट की सरकार कहना, हास्यास्पद नहीं तो और क्या है?

दरअसल, राहुल गाँधी रह-रहकर ऐसी सोच प्रदर्शित करते रहते हैं जिसके जरिए राजनीति में आगे बढ़ पाना मुश्किल दिखता है। राहुल गाँधी यह सुझाव दे रहे हैं कि जो समुदाय अपने जिन परंपरागत पेशों पर निर्भर था उन्हीं पर ध्यान केंद्रित करे। यह तो न संभव है और यदि संभव हो भी तो उसके जरिए परंपरागत पेशों पर निर्भर समुदाय तरक्की नहीं कर सकते। आज का भारत नेहरू-इंदिरा के युग का भारत नहीं है। वर्तमान में समाज का निर्धन से निर्धन तबका भी अपने लिए बड़े से बड़ा न केवल देख रहा है, बल्कि उन्हें पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध भी है। ऐसा लगता है कि राहुल गाँधी के पास ले-देकर यही बचा है कि की किसानों के कर्जे मा़फ किए जाएँ और गरीबों को ज्यादा से ज्यादा सब्सिडी दी जाय। वक्त के साथ राहुल गाँधी नहीं बदल पा रहे हैं।

(३९)प्रश्न: क्या सचमुच में मुस्लिम वोट मंडी के माल हैं ?

उत्तर: आपके इस प्रश्न कि क्या सही में मौजूदा दौर की राजनीति में मुस्लिम आबादी को वोट बैंक मान लिया गया हैं, मेरा उत्तर सकारात्मक है, क्योंकि

आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बाद भी मुसलमानों का पिछड़ापन दूर नहीं हो पाया है और आज के समय मुस्लिम युवक-युवतियों को आधुनिक तकनीकी शिक्षा नहीं दी गई जबकि देश पर आजादी के बाद अधिकतर समय में काँग्रेस का शासन रहा है। यही नहीं प.बंगाल में तो 30 सालों तक कम्युनिस्टों का शासन रहा था। मुस्लिम-मुस्लिम का रट लगाने वाली कम्यूनिस्ट पार्टियाँ प.बंगाल में मुसलमानों का कल्याण क्यों नहीं कर पाई? यही स्थिति बिहार और उत्तर प्रदेश की थी। बिहार में लालूजी और नीतीश कुमार तथा उत्तरप्रदेश में मुलायम सिंह यादव मायावती जी का ही शासन रहा जो मुसलमानों की हितैषी होने का दावा करते रहे हैं और उत्तरप्रदेश विधानसभा के आसन्न चुनाव तथा बिहार में अपराधियों के सरगना मो. शहाबुद्दीन की जमानत पर जो हो-हल्ला हो रहा है वह भी तो मुस्लिम तुष्टीकरण के चलते ही हो रहा है।

आखिर मुसलमान राजनीतिक दलों और उसके नेताओं से पूछते क्यों नहीं हैं कि वे पिछड़े क्यों हैं? सच्चर कमिटी की रिपोर्ट में भी तो काँग्रेस पार्टी सहित तथाकथित समाजवादी एवं अपने को धर्मनिरपेक्ष कहने वाली पार्टियों की मुस्लिम कल्याण राजनीति का पर्दाफाश हुआ है। सच्चर कमिटी की रिपोर्ट में कम्यूनिस्ट पार्टियों पर भी उँगलियाँ उठी हैं। यदि मुस्लिम आबादी की मानसिकता इसी वोट से बँधी रहेगी तो फिर उनकी उन्नति कैसे सुनिश्चित होगी। आखिर तभी तो आज मुस्लिम समाज पूरे विश्व में एक पिछड़े समुदाय के रूप में हम सबके सामने हैं।

दरअसल, मुस्लिम का सही में वोट की मंडी के माल की बात प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इधर उठाई है। उनके द्वारा मुसलमानों को वोट की मंडी कहे जाने का आशय यह है कि मुस्लिम आबादी को राजनीतिक पार्टियाँ वोट की मंडी का माल समझती हैं, क्योंकि वे आश्वासन और प्रलोभन के बल पर वोट की मंडी से मुस्लिमों का वोट खरीदते हैं, मगर चुनाव के बाद फिर सारे वादे और आश्वासन को रद्दी की टोकरी में फेंक देते हैं। नरेन्द्र मोदी ने तो एकात्म मानववाद के प्रणेता दीनदयाल उपाध्याय की परिभाषा को दोहराते हुए कहा कि दीन दयाल उपाध्याय का कहना था कि मुस्लिम आबादी का न तो तिरस्कार करो, न पुरस्कृत करो, बल्कि इन्हें परिष्कृत करो।

यह सच है कि भय के कारण ही मुस्लिम आबादी वोट की मंडी समझने वाली पार्टियों की छत्रछाया में जाने के लिए विवश होती हैं। असहिष्णुता का जितना बड़ा बवंडर वामपंथियों और उनके समर्थक लेखकों,

..नाकारों, साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों द्वारा खड़ा किया, वह जगजाहिर है। दरअसल, ऐसी ताकतें भाजपा का हौवा खड़ा कर मुस्लिम आबादी को डराने का ही काम करते रहे हैं जिसका ही परिणाम है कि मुस्लिम आबादी के लिए ठोस रूप में आज तक कुछ किया नहीं जा सका है। हाँ, सेक्यूलर देश होते हुए भी यहाँ हज सब्सिडी जारी है जबकि हज सब्सिडी मुस्लिम देशों में भी अमान्य है। इसे आप मुस्लिम तुष्टीकरण नहीं तो और क्या कहेंगे? हज सब्सिडी की जगह पर मुस्लिम युवक-युवतियों के लिए अच्छे विद्यालय, रोजगार की आधुनिक तकनीक, अच्छे अस्पताल, अच्छा आवासीय कॉलोनियों की माँग वे क्यों नहीं करते? मदरसा और हज सब्सिडी के तिलिस्म से जब तक मुसलमान बाहर नहीं निकलेंगे तब तक उनका विकास संभव नहीं है।

(४०)प्रश्न: राजनीति पर हावी होते परिवार और वंशवाद पर आप क्या कुछ कहना चाहेंगे? क्या परिवारवाद के राजनीति पर हावी होने से लोकतंत्र की अवधारणा को चोट पहुँचती है?

उत्तर: भारतीय राजनीति में परिवारवाद की जब चर्चा होती है, तब आमतौर पर गाँधी परिवार का नाम लिया जाता है। गाँधी परिवार से मतलब है इंदिरागाँधी से लेकर राहुल गाँधी तक, परंतु सच्चाई यही है कि लोकतंत्र के निचले स्तर यानी पंचायत और नगरपालिकाओं से लेकर देश की सर्वोच्च संवैधानिक संस्था संसद तक का कोई ऐसा हिस्सा नहीं है जहाँ परिवारवाद और वंशवाद का वर्चस्व राजनीति में नहीं दिखता है। मौजूदा दौर की राजनीति में कश्मीर से कन्याकुमारी तक की राजनीति पार्टियों पर यदि आप नजर डालें तो शायद कोई भी राष्ट्रीय या क्षेत्रीय दल परिवारवाद या वंशवाद के रोग से अछूता नहीं है।

परिवारवाद के समर्थक यह दलील देते हैं कि राजनीतिक परिवारों के लोग सक्रिय राजनीति करते हैं तो उन्हें जनता द्वारा निर्वाचित किया जाता है। बिहार के एक अनुभवी राजनेता, जो केंद्रीय मंत्री रह चुके हैं और आज भी राष्ट्रीय जनता दल के वरिष्ठ नेता हैं ने तो यहाँ तक कहा है कि डॉक्टर और इंजीनियर अथवा आई.ए.एस.-आई.पी.एस. का बेटा जब डॉक्टर, इंजीनियर अथवा आई.ए.एस.-आई.पी.एस. हो सकता है तो राजनेताओं का बेटा-बेटी अथवा परिवार का कोई सदस्य नेता क्यों नहीं हो सकता? लेकिन उन्हें कैसे बताया जाए कि लोकतांत्रिक राजनीति सिद्धांतत: अवसरों की समानता और योग्यता पर टिकी होती है। जिन शासन-व्यवस्थाओं में इन तत्वों को व्यवहार में लाया जाता है वे अन्य की तुलना में बेहतर होता है। जब लोकतांत्रिक व्यवस्था में परिवारवाद या वंशवाद हावी होता है, तो लोकतंत्र

न सिर्फ कमजोर होता है, बल्कि भ्रष्टाचार और शासकीय लापरवाही जैसी समस्याएँ भी अपनी जड़ें जमाती हैं तथा परिवारों के वर्चस्व से लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का उल्लंघन होता है, क्योंकि सक्रियता और योग्यता के आधार पर चुनाव लड़ने या राजनीति करने वाले लोग परिवारों की संगठित क्षमता, धनबल, जातीय और क्षेत्रीय समीकरणों जैसे तत्वों का मुकाबला नही कर पाते। इस लिहाज से देखा जाए तो यह समस्या लोकतांत्रिक आदर्शों और मूल्यों के लिए घातक है। भारतीय संविधान के द्वारा एक ही समानता प्रदत्त की गयी है और वह है राजनीतिक समानता। आर्थिक और समानता वे लक्ष्य हैं जिन्हें हमें लोकतांत्रिक संस्थाओं के द्वारा हासिल करना है, लेकिन परिवारवाद या वंशवाद जैसी बाधाएँ राजनीतिक समानता के अधिकार को ही सीमित करती हैं। इसलिए परिवारवाद के राजनीति पर हावी होने से लोकतंत्र की अवधारणा पर चोट पहुँचती है। नामी-गिरानी समाचारपत्र 'द हिंदू' के एक विश्लेषण के अनुसार मौजूदा लोकसभा के 545 निर्वाचित सदस्यों में कम-से-कम 130 राजनीतिक परिवारों से आते हैं और केंद्र की वर्तमान मंत्रिपरिषद में 26 फीसदी मंत्री वंशानुगत हैं। पिछली लोकसभा में तीस से कम उम्र के सभी और 40 उम्र तक के 65: सांसद पारिवारिक प्रतिनिधि थे। उत्तर प्रदेश की राजनीति में छाए समाजवादी पार्टी के प्रमुख का पूरा परिवार राजनीति में ही नहीं, बल्कि लाभ के पद पर भी काबिज हैं। 29 पदों पर उनके बंशज काबिज हैं और सब-के-सब समाजवादी पार्टी के टिकट पर ऐसे में उनके परिवार के सिवाय कोई भी दूसरा राजनेता किसी भी पद पर चुनाव जीतना तो दूर, चुनाव लड़ने की भी नहीं सोच सकता, खासतौर पर इटावा, फिरोजाबाद, मैनपुरी, बदाऊँ आदि में। केवल सपा ही नहीं, राजद, शिवसेना, द्रमुक, रालोद, अकाली दल, हरियाणा में देवीलाल से लेकर उनके पड़पोते लोकसभा सदस्य दुष्यंत चौटाला तक देखा जाए तो कुल मिलाकर भारतीय राजनीति में परिवारवाद हावी हो चुका है जिससे ऐसा प्रतीत होता है भविष्य में स्वच्छ और निस्पृह राजनीति के दिन अब हवा हुए और लोकतंत्र का मतलब आज परिवार तंत्र बन गया है। विरासत की राजनीति के चलते जनतांत्रिक भारत में एक नई राजशाही पनप रही है।

(४१)प्रश्न: क्या हमारे देश व समाज के सार्वजनिक जीवन को संचालित करने वाले नियम-कायदों के पवित्र कूप जल में किसी ने भांग तो नहीं मिला दी है?

उत्तर: आज देश व समाज के लोगों के मन में उठ रही तरंगों के हिसाब से

जो बात-व्यवहार किए जा रहे हैं, पूरे परिवेश में जिस तरह की बौखलाहट है और जिस तेजी से लोग विवेक का दामन छोड़ रहे हैं उससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि एक बहुप्रचलित मुहावरा – 'कुएँ में भांग घुलना' चरितार्थ हो रहा है। अखबारों में आँख भिन्न-भिन्न जगहों और क्षेत्रों से जो अजीबोगरीब खबरें आ रही हैं, ये खबरें देश के कोने-कोने में व्याप्त एक प्रकार की बौड़ाहट का संकेत दे रही है। ऐसी खबरों से यह आशंका स्वाभाविक रूप से जाग रही है कि हमारे देश-समाज के सार्वजनिक जीवन को संचालित करने वाले नियम-कायदों के पवित्र कूपजल में किसी ने भांग तो नहीं मिला दी है।

एक ओर जहाँ एड्स जागरूकता अभियान के तहत नागपुर नगरपालिका द्वारा रोग से बचाव के लिए नगरवासियों को हनुमान चालीसा पाठ सुनाने का फैसला किया जाता है, तो वहीं दूसरी ओर भारत-वेस्टइंडीज क्रिकेट मैच में भारत की पराजय पर राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान जैसे स्वायत्त शिक्षण संस्थान, श्रीनगर, कश्मीर के छात्रों द्वारा बम-पटाखे फोड़ना तथा कुछ छात्रों द्वारा 'भारत माता की जय' कहे जाने पर हुए विवाद में पुलिस कार्रवाई की नौबत आने को आखिर क्या कहा जाएगा ?

प्रश्न: भाषा को लेकर आपके विचार से हम अवगत होना चाहेंगे।

उत्तर: भाषा ही मनुष्य को सभी प्राणियों से अलग करती है। यानी भाषा मनुष्य होने की बड़ी बुनियादी पहचान है। पूरी दुनिया में तकरीबन चार-पाँच हजार भाषाएँ हैं और यही मनुष्य के जीवित होने का प्रमाण है। अतएव मनुष्य का विकास भी भाषा के समानांतर ही चलेगा। यह तभी संभव है जब उसकी अपनी मातृभाषा में ही उसे शिक्षा दी जाए तथा उसके जीवन के दूसरे कार्यव्यवहार में भी शामिल हो।

मौजूदा दौर में भाषा को संदेह की नजर से देखा जाना गलत है। धर्म और भाषा के चलते किसी पर शक करना सही नहीं है। पिछले दिनों अमेरिका में इस्लाम या अरबी भाषा को संदेह की दृष्टि से देखा गया जो गलत है। संयुक्त राष्ट्र महासचिव बान की मून के साथ डिनर व लेक्चर कार्यक्रम से लौट रहे यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया से राजनीति विज्ञान की डिग्रीधारी 26 वर्षीय युवा छात्र खैदलदीन मखजूमी जब साउथवेस्ट एयरलाइंस के विमान में सीट पर बैठकर फोन पर बगदाद में चाचा से अरबी भाषा में बात कर रहा था, तभी एक महिला कर्मचारी ने उन्हें देख लिया तथा तत्काल अधिकारियों को इसकी सूचना दे डाली। जाँच की वजह से उसका विमान छूट गया। इस प्रकार भाषा के नाम पर भेदभाव सरासर गलत है।

(४२)प्रश्नः भारत एक बहुभाषी देश है। यहाँ हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच किस प्रकार के संबंध होने चाहिए?

उत्तरः भारत एक बहुभाषी देश है जहाँ तकरीबन सवा करोड़ लोग रहते हैं। इस सवां करोड़ में से लगभग 70 फीसद लोग हिंदी बोलते या समझते हैं। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गाँधी और हमारे देश के अन्य नेता पूरे देश में घूमते थे। इसलिए बापू ने हिंदुस्तानी भाषा की बात की थी इसलिए नहीं कि वह हिंदी के पक्ष की बात थी, बल्कि उन्हें पता था कि पूरे देश में कौन सी भाषा समझी जा रही है। मगर कुछ नेताओं द्वारा ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न की गई, प्रचारित की गई कि जैसे हिंदी थोपी जा रही है और उसकी आड़ में अँग्रेजी अपना रास्ता बनाती रही। दरअसल, सत्ता हासिल करने के लिए उन्हें वोट चाहिए था जिसके लिए खासतौर पर दक्षिण के राज्यों में रहने वाले लोगों को वे नाखूश नहीं करना चाहते थे। उन्हें लगा कि हिंदी उनपर थोपी जा रही है इसलिए भारतीय भाषाओं में गुत्थम-गुत्था होता रहा। इस स्थिति में अँग्रेजी का वर्चस्व बढ़ता गया और आज तक वही स्थिति दिख रही है। पर सच तो यह है कि प्रारंभ से यदि सभी भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने हेतु उन्हीं भाषाओं में शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था होती तो उसी के साथ हिंदी भी आगे बढ़ती जाती, क्योंकि मेरा अभी भी मानना है कि बिना भारत की अन्य भाषाओं के उन्नयन के हिंदी आगे नहीं बढ़ सकती। इसलिए अपनी-अपनी भाषाओं में पढ़ाई होनी चाहिए। इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। आज भी केरल, आँध्र प्रदेश, तमिलनाडु, ओड़िशा, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में लोग अपनी जरूरत के हिसाब से हिंदी सीख रहे हैं।

दरअसल, हिंदी राज्यों ने ही त्रिभाषा सूत्र को नहीं अपनाकर भूल की जिसके परिणामस्वरूप अन्य प्रांतों में भी हिंदी पिछड़ गई। भाषा तो हमारी दुनिया को बनाने और बदलने में प्रमुख भूमिका निभाती है। वर्तमान में संचार और अभिव्यक्ति को संभव बनाने के साथ-साथ पीछे की पीढ़ियों के साथ आज की पीढ़ी की सांस्कृतिक निरंतरता के लिए सेतु और माध्यम का भी काम करती है। उसके माध्यम से ज्ञान और कौशल का संचय, हस्तांतरण और परिवर्धन संभव हो पाता है। त्रिभाषा सूत्र को नहीं अपनाने की वजह से लोग ज्ञान और कौशल का संचय हस्तांतरण और परिवर्धन से वंचित रह गए। भाषा को तो 'बहता नीर' कहते हैं। इस मायने में भी वह अद्‌भुत है।

(४३) प्रश्नः भाषा और राजनीति के संबंध को आप किस रूप में आँकते हैं?

उत्तरः हमारे जीवन में राजनीति जिस तेजी से सर्वव्यापी होती जा रही है और बेरोकटोक निर्बाध गतिं से हर क्षेत्र में अधिकार जमाती जा रही है कि अबं हमारे सांस्कृतिक-सामाजिक जीवन का ताना-बाना ज्यादातर राजनीति के सूत्रों द्वारा ही संचालित होने लगा है। इस संदर्भ में यदि राजनीति और भाषा के संबंध को हम आँकते हैं, तो भाषा को राजनीति को चलाने के सबसे महत्वपूर्ण और खास किस्म का औजार के रूप में पाते हैं। भाषा के उपयोग का राजनीतिज्ञ जोर और ताकत बढ़ाते और कभी-कभी कम भी कर देते हैं। उनका प्रभाव क्षेत्र विस्तृत होता है।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान प्रयुक्त नारे, संबोधन और भाषण कितने असरदार होते थे, यह सर्वविदित है। भाषा के जरिए जहाँ सत्य की रचना करते हैं, वहीं बहुत हद तक भाषा हमारे यथार्थ की सीमा भी तय करती है। भाषा व्यवहार को संयोजित करती है और राजनीति के लिए भी सही है। लेकिन मौजूदा दौर की राजनीति में राजनेताओं के आरोप-प्रत्यारोप में जिस भाषा का प्रयोग किया जा रहा है वह अक्सर शिष्ट और सभ्य आचरण के समाज-स्वीकृत मानकों से विचलन ही प्रस्तुत कर रहे होते हैं। सामाजिक संदर्भ में वह जोड़ती भी है और तोड़ती भी। इसलिए प्रजातंत्र की अक्षुण्णता के लिए अपने से भिन्न दूसरी आवाजों को भी सुनना होगा।

(४४) प्रश्नः नीति-निर्माताओं पर राज्य-देश चलाने, कानून बनाने का जिम्मा है, मगर देखा जा रहा है कि वे ही लुटेरे, बेईमान और भ्रष्टाचार में लिप्त होते जा रहे हैं। अब आप ही बताइए कि जनता किस पर भरोसा करे और कैसी हो ईमानदार राजनीति?

उत्तरः आपने ठीक कहा कि नीति-निर्माताओं पर राज्य-देश चलाने और कानून बनाने का जिम्मा है, मगर वे ही लुटेरे, बेईमान और भ्रष्टाचार में लिप्त दिखाई दे रहे हैं। दरअसल, राजनीति का चरित्र ऐसा होता जा रहा है, जहाँ ईमानदार लोगों का अभाव दिखता है। खुद जनता को अपने काम के लिए घूस देना पड़ता है। देश की जनता भुक्तभोगी है, इसलिए वह ऐसी खबरों पर भरोसा कर लेती है।

आपको याद होगा 2005 में 11 सांसदों पर पैसा लेकर सवाल पूछने का आरोप लगा था। तहलका ने स्टिंग ऑपरेशन के बाद यह खुलासा कर सचमुच तहलका मचा दिया था। सांसदों की सदस्यता रद्द कर दी गई

थी। आज के तकनीक के जमाने में तो स्टिंग ऑपरेशन कैमरा सहित मोबाइल फोन, सीसीटीवी आदि के चलते आसान हो गया है जिसके बल पर रिश्वतखोरों को पकड़ा जा सकता हे। अभी-अभी कुछ दिनों पूर्व प0 बंगाल में एक स्टिंग ऑपरेशन में सत्तारूढ़ तृणमूल काँग्रेस कें तीन मंत्री और तीन सांसदों को पैसा लेते दिखाया गया।

ऐसी बात नहीं है कि सिर्फ किसी खास दल के सांसद या विधायक ही ऐसी घटनाओं में शामिल रहे हों। 2005 वाली घटना में तो भाजपा के पाँच, बसपा के तीन, काँग्रेस और राजद के एक-एक सांसद शामिल थे। राजनेता यह जानते हैं कि तकनीक के इस जमाने में पैसा लेने पर एक न एक दिन फँसेंगे बावजूद इसके वे अपनी हरकतों से बाज नहीं आ रहे हैं। आए दिन विधायकों-सांसदों के बड़े वर्ग पर भ्रष्टाचार में शामिल होने के आरोप लग रहे हैं। योजनाओं में कमीशन लेना, पैसे लेकर सवाल पूछना, किसी योजना में सहयोग देने के एवज में पैसा लेना यह आज की राजनीति का हिस्सा हो गया है। ऐसा नहीं है कि अपवाद में कुछ सांसद-विधायक नहीं है जिन्हें आज भी ईमानदारी के लिए जाना जाता है, मगर ऐसे लोगों की संख्या दिनानुदिन कमती जा रही है। आखिर तभी तो लोगों का अपने नेताओं पर से भरोसा टूट चुका है। यह राजनीति के गिरते स्तर का संकेत है। इसलिए जरूरत है ईमानदार राजनीति की। मगर यह हो तो कैसे? यह जटिल प्रश्न है जिसका उत्तर इतना आसान भीं नहीं है।

हालांकि यह भी सच है कि केंद्र के साथ दिल्ली, ओडिशा, प. बंगाल और बिहार की मौजूदा सरकार के नेतृत्व करने वाले राजनेताओं ने स्वयं को अपने उपर भ्रष्टाचार का दाग लगने नहीं दिया है, मगर प. बंगाल और बिहार के किसी विभाग में भ्रष्टाचार पर रोक वहाँ के मुख्यमंत्रियों के दावे के बावजूद नहीं लग सकी है और उनके विधायकों एवं मंत्रियों को भी रिश्वत लेते पकड़ा गया है। मुझे लगता है कि जब तक तुष्टीकरण के नाम पर वोट की राजनीति चलेगी भ्रष्टाचार पर रोक नहीं लग पाएगी। दूसरी बात यह कि राजनीति में जबतक ईमानदार और साफ छंवि के लोग नहीं आएँगे और वैसे जो अभी राजनीति में हैं उन्हें तरजीह नहीं दी जाएगी तबतक स्थिति में बदलाव संभव नहीं।

काँग्रेस के शशि थरूर जैसे गहराई से पढ़े-लिखे नेता जेएनयू छात्र संघ के अध्यक्ष जैसे एक छात्र नेता को आज का भगत सिंह कहते हैं, सीताराम येचूरी जैसे माकपा के वरिष्ठ नेता उस छात्र नेता को स्टार प्रचारक

के रूप में अग्रसर करने की बात करते है तथा नयनतारा सहगल जैसी सुप्रसिद्ध बुद्धिजीवी एवं ख्यातिप्राप्त लेखिका जब उक्त छात्र नेता को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के टक्कर के नेता बताती हैं, तो इससे हमारे चिंतन की सामूहिक विकृति का सहज अंदाजा लगाया जा सकता है। किसका-किसका बखान किया जाए पिछले दिनों बिहार विधानसभा के एक सदस्य ने जहाँ हत्या की राजनीति शुरू करने का बयान दिया, वहीं बिहार विधान परिषद के एक सदस्य जिन्हें राष्ट्रगान तथा राष्ट्रगीत में अंतर तक का ज्ञान नहीं हैं उन्हें राष्ट्रगान में गुलामी की तारीफ नजर आने लगी और उन्होंने राष्ट्रगान पर पुनर्विचार करने की माँग तक कर डाली। आश्चर्य है ये दोनों नेता सत्ताधारी जद(यू) से जुड़े हैं। इन सारे नेताओं एवं प्रबुद्धजनों के द्वारा व्यक्त तथ्यों के आलोक में यह कहना बिल्कुल सही होगा कि आजाद भारत में शहीद भगत सिंह का उनके विचारों का, सपनों का और उनके बलिदान का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है।

इन दिनों भारत में धर्म और देश पर बहस छिड़ी हुई है। कुछ नेता धर्म को हथियार बनाकर देष्ठा में अशांति फैलाने का काम कर रहे हैं। वे अपने धर्म के लोगों को उकसाकर एक भीड़तंत्र कायम करना चाहते हैं। सांसद ओवैसी जैसे लोग इसी वर्ग में आते हैं जिनका बयान आया कि 'कोई गले पर छुरी रख दे तब भी भारत माता की जय नहीं बोलूँगा' देश हमारा है और यहाँ की शांति, एकता, अखंडता के रखवाले हम सब देशवासी हैं। जाति और धर्म के पहले हम एक भारतीय हैं, जो देश का अपमान नहीं सह सकते। ओबैसी के बयान का देश के मुस्लिमों ने जिस प्रकार प्रतिकार किया है उससे यह सिद्ध हो चुका है कि धर्म से बड़ा देश है।

इस संदर्भ में एक और बात काबिलेगौर है कि वर्तमान में छद्म नायकों का दौर है। असल नायक विलुप्त हो गए हैं और उनकी जगह ले ली है सतही, लंपट, अज्ञानी, लोभी और अवसरवादी नेताओं ने जिनकी एक पूरी-की-पूरी जमात देश, समाज और राजनीति के हर हिस्से में अपनी पैठ बना चुकी है। इन लोगों ने नेतागिरी को एक व्यवसाय बना लिया है, एक ऐसा सफेदपोश व्यवसाय, जिसके लिए किसी औपचारिक योग्यता की जरूरत नहीं होती। आज के नेता सब कुछ पाना चाहते हैं चाहे वह देश की कीमत पर ही क्यों न हो। वैचारिक, स्वच्छ, मूल्य आधारित राजनीति के लोप होने से चारों ओर धन, पद और प्रतिष्ठा की होड़ ऐसी बढ़ी कि सारी नैतिकता, नियम और मूल्य धरे के धरे रह गए। आज की राजनीति समाज

सेवा के बदले स्वार्थपूर्ति का साधन-मात्र बनकर रह गयी है। राजनीति में तथाकथित ज्ञानियों की भरमार है जो दुनिया के किसी भी विषय पर टिप्पणी करने या बयान देने या ज्ञान बाँटने से गुरेज नहीं करते। हालांकि जनता उनपर हँसती है, क्योंकि उन नेताओं का केवल काम ही रह गया है बयान देना और आरोप-प्रत्यारोप लगाकर वाहवाही लूटना, क्योंकि उनके आला भी उनके बयानों पर खुश दिखते हैं। चिंता इस बात की है कि आखिर हमारे देश के नेता और जनप्रतिनिधि कबतक लोकतंत्र को कलंकित करते रहेंगे?

इसमें कोई शक नहीं कि केंद्र की नरेन्द्र मोदी सरकार सुशासन और भ्रष्टाचार मुक्त शासन दे रही है। यही कारण है कि जनता के दिलों पर मोदी राज कर रहे हैं। विपक्ष को हकीकत समझनी चाहिए और शुद्ध राजनीति की बजाय सकारात्मक राजनीति करनी चाहिए। निःसंदेह भ्रष्टाचार जैसे अतिमहत्वपूर्ण मुद्दे पर बेआबरू हुई पूर्ववर्ती सप्रंग सरकार का हश्र देखकर सत्ता में आते ही नीतियों में मौजूद भ्रष्टाचार के सुराखों को बंद करने में केंद्र की मोदी सरकार काफी हद तक सफल रही है। खासतौर से प्राकृतिक संसाधनों के आवंटन में होने वाले भ्रष्टाचार की तो जड़ पर ही सरकार ने सीधे प्रहार किया है। मोदी सरकार ने नीतियों को पूरी तरह पारदर्शी और जवाबदेह बनाया है जिसके प्रभावी नतीजे सामने आए हैं। कोयला ब्लॉकों की नीलामी में सरकारी खजाने में भारी भरकम दो लाख करोड़ रुपए आ चुके हैं। यह दर्शाता है कि यदि नीतियाँ सही हों और ईमानदारी से प्रयास किए जाएँ तो भ्रष्टाचार मिट सकता है। नरेन्द्र मोदी ने यह महसूस किया है कि भ्रष्टाचार सामाजिक व्यवस्था की देन है और इसे समाप्त करने के लिए सामाजिक व्यवस्था में ही सार्थक परिवर्तन करने पड़ेंगे। मोदी ने अपने 'विजनरी' नेतृत्व का परिचय देते हुए सत्ता सुख के मोह से मुक्त होकर वास्तव में देश-समाज को प्रगति के पथ पर ले जाने के लिए अग्रसर हैं।

(४५)प्रश्नः क्या आपने कभी ऐसा सोचा होगा कि देश की राजनीति कभी इस दौर से भी गुजरेगी जब 'भारत माता की जय' बोलने और नहीं बोलने पर भी राजनीति होगी?

उत्तरः हमारी बात तो छोड़िए, 15 अगस्त, 1947 को 'भारत माता की जय' के उद्घोष के साथ ही जब भारत में आजादी का सूर्य उदय हुआ होगा और उसकी लालिमा से भारत का हर कोना आच्छादित हुआ होगा तब किसी ने भी यह नहीं सोचा होगा कि देश की राजनीति कभी इस दौर से भी गुजरेगी जब 'भारत माता की जय' बोलने और नहीं बोलने पर भी राजनीति होगी।

स्वाधीनता संग्राम ही नहीं, बल्कि आज भी प्राय: सभी राष्ट्रीय समारोहों एवं उत्सवों पर सर्वाधिक प्रयुक्त एवं जोशीला नारा है 'भारत माता की जय'। दरअसल, राजनीतिक दलों की वैचारिक और सैद्धांतिक लड़ाई, विभिन्न मुद्दों पर उनकी सहमति और असहमति तो समझ में आती है, किंतु इन सबके बीच देष्ठा के मूल्यों को जिस प्रकार घसीटा जा रहा है वह शर्मनाक ही नहीं, बल्कि खतरनाक भी है। अतएव इसके लिए देश के हर नागरिक को सावधान और चेतनायुक्त रहना आवश्यक है, अन्यथा प्रत्येक घटना, प्रदर्शन और बयानों से राजनीतिक दल और उसके सांसद ओवैसी तथा विधायक वारिस खान जैसे नेता कब उसमें अपना नफा और नुकसान की गणित तलाश लेंगे, कहना मुश्किल हैं, क्योंकि हम जो यह भूल जाते हैं कि राष्ट्र सभी धर्मों, जातियों, वर्गो, भाषाओं, क्षेत्रों और भौगोलिक इकाइयों से ऊपर है।

(४६)प्रश्न: क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि आज राजनीतिक वर्ग ने बौद्धिक वर्ग को हाशिए पर धकेलकर स्वयं उसकी जगह ले ली है?

उत्तर: हाँ, मैं महसूस करता हूँ कि आज राजनीतिक वर्ग ने बौद्धिक वर्ग को हाशिए पर धकेलकर स्वयं उसकी जगह ले ली है। शिक्षा हो या संस्कृति, ज्ञान हो अथवा परंपरा, इन सबका निर्धारण करने की दृष्टि से राजनीतिक वर्ग आज का सबसे बड़ा 'सेलिब्रिटी' है, जिनका अनुकरण अक्सर किया ही जाता है। राजनीतिक लाभ पर आधारित विचार ही एक लंबे अरसे से भारतीय समाज के जीवन-दर्शन के रूप में सामने आता रहा है। इसमें तनीक भी आश्चर्य इसलिए नहीं होना चाहिए, क्योंकि यह किसी भी युग के किसी भी राष्ट्र की राजनीति का अंतर्निहित चरित्र होता है। हाँ, उनके दर्शन की गुणवत्ता पर बहस जरूर हो सकती है, लेकिन इसके मूल चरित्र पर नहीं। तभी तो अपने अस्तित्व के लंबे अनुभवों के बाद समाज ने अपनी बात को कह पाने के हक को एक कानूनी जामा पहनाया। मगर इतने भर से लोकतंत्र मजबूत नहीं होगा। मेरा मानना है कि स्रूल और सुदृढ़ लोकतंत्र से पहले एक सजग और जिम्मेदार समाज का होना आवश्यक है और ऐसे समाज के निर्माण में हर वर्ग और समुदाय की समान भागीदारी जरूरी है। यानी समाज स्वयं इतना चेतना संपन्न होना चाहिए कि कोई भी स्वार्थी दल उसे मनचाही दिशा में मोड़ने की हिम्मत न कर सके।

(४७)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि सुरक्षा से जुड़े मामलों पर देश में भ्रम फैलाना और लोगों को गुमराह करना सही राजनीति नहीं है?

उत्तर: हाँ, मैं भी आपकी इस बात से सहमत हूँ कि सुरक्षा से जुड़े मामलों पर देश में भ्रम फैलाना और लोगों को गुमराह करना सही राजनीति नहीं है। ऐसा कैसे हो सकता है कि कोई राजनेता जब सरकार में रहे, तो संसद हमले के मुख्य आरोपी अफजल गुरु की सजा पर अपनी मुहर लगाए और सरकार से हटते ही उसपर सवाल खड़े करने लगे। पूर्व केंद्रीय गृह मंत्री पी.चिदंबरम द्वारा अफजल गुरु की सजा पर पिछले दिनों दिए गए बयान से तो यही सवाल उठता है। अफजल गुरु की सजा पर उनके द्वारा सवाल उठाने के मसले को उनकी व्यक्तिगत राय मान कर देखना सही नहीं होगा। पूर्व गृह सचिव जी.के.पिल्लई ने भी हालिया बयान में कहा कि इशरत जहां के लश्कर तेयबा से संबंध को लेकर सरकार द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में पेश हलफनामें को चिदंबरम के निर्देश पर बदल दिया गया था। पिल्लई ने साफ़ कहा कि इशरत जहाँ के कथित मुठभेड़ केंद्र सरकार के अधीन कार्यरत इंटेलिजेंस ब्यूरो की कार्रवाई थी। इसका मतलब है कि इस कार्रवाई को गृह मंत्रलय की मंजूरी हासिल थी। इसके बावजूद अगर काँग्रेस और उसके नेता पी. चिंदबरम अपने संदेहों को लेकर गंभीर हैं, तो उन्हे अपनी मंशा स्पष्ट करनी चाहिए और संबंधित जानकारियाँ देश के समक्ष पेश करनी चाहिए। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो माना जाएगा कि सुरक्षा से जुड़े मामलों पर उन्होंने देश में भ्रम फैलाया और लोगों को गुमराह किया जिसे सही राजनीति कतई नहीं कही जाएगी।

यही नहीं खुद पी. चिदंबरम पिता-पुत्र ने 2006 में एयरसेल मैक्सिस डील के दौरान एडवांटेज स्ट्रेटेजिक कंसल्टिंग प्राइवेट लिमिटेड को अनुचित तरीके से लाभ पहुचाया था। आखिर एक ओर देश की संपत्ति को नुकसान पहुँचाकर अपना घर भरने का पाप है तो दूसरी ओर राजनीतिक प्रतिशोध के लिए देश की सुरक्षा के साथ समझौता करने का अपराध। इस ख्याल से जरूरत इस बात की है कि 'इशरतु जहां मुठभेड़' प्रकरण में पूर्व गृह मंत्री पी. चिदंबरम की संदिग्ध भूमिका और मामले की गहन छानबीन की तार्किक जाँच की जाय और पूर्व की तमाम साजिश और मनमानी को जनता के सामने लाया जाय जिससे तथाकथित नेता और संबंधित कर्ताधर्ता की करतूत उजागर हो सके। यदि आतंकवाद से जुड़े मामले भी राजनीति के बंधक होंगे, तो फिर आपराधिक न्याय प्रणाली पर किसे भरोसा होगा?

(४८)प्रश्न: क्या डॉ. लोहिया और नरेन्द्र देव के समाजवाद को उनके शिष्य एवं मौकापरस्त नेताओं ने 'छद्म समाजवाद' का रूप देकर उसे नंगा कर दिया?

उत्तर: हाँ, समाजवादी पार्टी के प्रमुख मुलायम सिंह यादव हों या राष्ट्रीय जनता दल के सुप्रीमो लालू प्रसाद यादव या फिर पूर्व प्रधानमंत्री देवगौड़ा की जनता दल (देवगौड़ा) सभी मौकापरस्त अपने आप को समाजवादी कहने वाले नेताओं ने जग-जाहिर कर दिया कि समाजवाद से उनका दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं, बल्कि सच तो यह है कि उनका सारा खेल परिवार, वंशवाद और सत्ता का है। 20 करोड़ की आबादी वाले उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव और 10 करोड़ से ज्यादा आबादी वाले प्रदेश बिहार में व्यवहारिक रूप से राजनीतिक परिवार तक समूची राजनीति सिमट गयी और बिहार में डॉ. लोहिया के एक और शिष्य नीतीश कुमार ने चारा घोटाले के आरोपी लालू प्रसाद को पुनर्जीवित कर उन्हें असली मुख्यमंत्री का रिमोट थमा दिया। समाजवाद के नाम पर परिवारवाद और वंशवाद तथा जातिवाद के जाल में उत्तरप्रदेश और बिहार को ऐसा उलझाया गया कि समाजवादी चिंतक ही नहीं, उनके राजनीतिक प्रतिद्वंदी भी आज हतप्रभ हैं। गरीबी, बेरोजगारी व बढ़ते अपराध से कराहते इन दोनों प्रदेशों में 'समाजवादी' का झुनझुना पकड़कर चुनाव-दर-चुनाव वे मतदाताओं को बहलाने में सफल रहे। लोहिया और नरेन्द्र देव के समाजवादी आदर्श कब दफन हो गए, किसी को पता ही नहीं चल सका।

(४९)प्रश्नः क्या आपको भी ऐसा लगता है कि जुगाड़ लोकतंत्र न सिर्फ आम मतदाता और निवेशक को लालची, मेहनत से फिरंट और परिस्थिति की गहरी समझ से विमुख बनाता है, बल्कि वह करिश्माती और आत्ममुग्ध नेताओं को भी नई पीढ़ी से दूर कर देता है?

उत्तर : हाँ, मुझे भी ऐसा लगता हैं कि जुगाड़ लोकतंत्र न सिर्फ आम मतदाता और निवेशक को लालची, मेहनत से फिरंट और परिस्थिति की गहरी समझ से विमुख बनाता है, बल्कि वह करिश्माती और आत्ममुग्ध नेताओं को भी नई पीढ़ी से दूर कर देता है जिसके ज्वलंत उदाहरण हैं समाजवादी पार्टी के प्रमुख मुलायम सिंह यादव और आगे आने वाले दिनों में यही घटना कहीं बिहार में भी न दुहरायी जाए।

दरअसल, आज की तारीख में कश्मीर से लेकर तमिलनाडु तक तमाम राजनीतिक दलों में नया खून सामने और उसे संवारने के कष्टसाध्य प्रयास करने की बजाय अपने एक बड़े नेता को ही ताउम्र आलाकमान का दर्जा दे रखा है। गुजरते समय के साथ उत्तर में मुलायम सिंह यादव और दक्षिण में एम. करुणानिधि ने राजनीतिक जुगाड़ के इसी क्रम को बढ़ाते हुए

अपने परिवार के लोगों को ही पार्टी के सभी महत्वपूर्ण पदों पर बैठाकर खुद आलाकमान की डोर थामे रहना चाहते थे, मगर 'न आएँगे' बाहरी खून और न पनपेंगे भीतरघाती षडयंत्र का उनका जुगाड़ काम, क्योंकि उनका बेटा अखिलेश यादव को अपने पिता के सुर में सुर मिलाकर आरती गाते रहना नागंवार गुजरा और फिर अपने कैरियर की भी याद आई। राजनीति है ही ऐसी चीज कि एक बार सत्ता की कुर्सी मिल जाने के बाद उसे गँवाना कोई नहीं चाहता। आपने देखा नहीं नीतीश कुमार को भी पाँच-सात माह तक भी कुर्सी से अलग रहना पसंद नहीं आया, उसी कुर्सी की वजह से फिर मकड़जाल में वे फँस भी तो गए।

वंशागत आधार पर राजनीतिक पद या बाप-दादा की जायदाद के वारिस बने हमारे अधिकतर नेता और उद्योगपति इसीलिए अक्सर वैश्विक बाजार के साथ निर्यात कारोबार या साझेदारी की संभावनाओं और देशों की नई पीढ़ी में आ रहे बदलावों का पूर्वानुमान लगाने में किल होते दिख रहे हैं। वे बाहर जाकर अपने राज्य में निवेश के लिए न्योता तो दे आते हैं, लेकिन बाहरी पूँजी इसलिए झिझकती है कि कहीं उसका पैसा डूब न जाए।

अब राजनीति में भी जुगाड़ मानसिकता की कीमत राजनीतिक दलों के नेता चुका रहे हैं। अब पार्टियों के भीतर असली लोकतंत्र यानी नियमित दलगत चुनाव और जनता एवं दलों के भीतर की विविध पीढ़ियों के बीच निरंतर संवाद और भरोसा बहाली लगभग खत्म है। आलाकमान भी अब बढ़ती उम्र और गिरते स्वास्थ्य की वजह से जहाँ एक ओर परेशान हैं, वहीं दूसरी ओर कोई विद्रोही संततिर निवासी कलहों और दलीय भीतरघात से त्रस्त। अस्सी के दशक के अधिकतर नेता जनता के बीच, खासतौर पर युवा मतदाताओं के बीच अपनी पकड़ खो चुके हैं, लेकिन कमान त्यागना उनके लिए शेर से उतरने जैसा बन गया है। बालू की भीत और पवन के खंभों पर जुगाड़ की अल्पायु मृगमरीचिका रची जा सकती है, लेकिन कालजयी राजनीति या अर्थनीति की इमारत नहीं खड़ी की जा सकती।

(५०)प्रश्न: भारतीय लोकतंत्र में आखिर जनमत को सबसे कम क्यों आंका जाता है?

उत्तर: मुझे भी ऐसा लगता है कि भारतीय लोकतंत्र में जनमत को सबसे कम आंका जाता है। आखिर तभी तो पाँच वर्ष के अंतराल पर होते लोकसभा या विधानसभा के चुनाव के दिन ही और वह भी पाँच साल में एक दिन जनमत की महत्ता को समझते मतदाताओं को नेताओं और राजनीतिक दलों द्वारा

तरजीह दी जाती है। और वह भी तो वर्तमान दौर के भ्रष्टाचार में मतदाताओं को तरह-तरह के लालच यहाँ तक कि पैसे देकर उनके मतों को खरीद लिया जाता है। ऐसी जनमत की स्थिति और बद से बदतर होती जा रही है। ऐसी स्थिति सत्ता पर आसीन निर्वाचित सरकार जो चाहे वह कर सकती है और करती भी हैं। हालांकि, सरकार या राजनेता तकरीबन हमेशा तत्कालीन जनमत के आधार पर ही कदम उठाता है, इसलिए सत्ता के अत्यंत प्रभावी रूप देखने के लिए जनमत पर काबू किए जाने की जरूरत है।

दरअसल, सैद्धांतिक रूप से जनमत हर व्यक्ति की सूचना पर आधारित राय पर बनना चाहिए, मगर ऐसा होता नहीं है। हमेशा ही कुछ नेता खासतौर पर दबंग-बाहुबली अथवा धनपशु सरीखे नेता या संस्थाएँ होती हैं जिनका जनमत पर ज्यादा प्रभाव होता है। रोजी-रोटी में व्यस्त ज्यादातर आम नागरिक, जिनपर भरोसा होता है, उन्हीं के हिसाब से राय कायम करते हैं या ज्यादातर मामलों के कोई राय कायम करते ही नहीं।

इसी तरह भारतीय लोकतंत्र में यह व्यवस्था काम करती रही है पिछले सत्तर साल से सिर्फ एक खासियत के साथ और वह यह कि जनमत पर लगभग हमेशा श्रेष्ठ वर्ग की पकड़ रही है, यद्यपि इधर हाल के वर्षो मे श्रेष्ठ वर्गो की पकड़ इसलिए कम हुई है, क्योंकि आमजनों में जागरूकता बढ़ी है और वे बिना किसी की सलाह के मतदान करते हैं। अभिलाषी भारत का जैसे-जैसे उदय हो रहा है अपने वोट के अधिकार को लोग समझने लगे हैं। हाँ इतना जरूर है कि आमजनों से पढ़े-लिखे शिक्षित लोगों की आवाज थोड़ी ऊँची तो होती ही है, उनकी बात तार्किक या यकीन दिलाने वाले ढंग से अभिव्यक्त कर सकते हैं जैसे आमजन नहीं कर सकते। इसक़ी भरपाई संख्या से करके लोगों को गले अपनी राय उतारकर करते हैं।

अभिलाषी भारत को व्यवस्थित रूप से अपनी बात कहना और उचित व्यवहार करना सीखना होगा। उसे दूसरों के प्रति दिमाग खुला रखना होगा, तभी श्रेष्ठतम विचार की जीत होगी और सत्ता पर विराजमान सरकार या राजनेता भी जनमत की कदर कर सकेंगे।

(५१)प्रश्न: पूरे देश में उत्तर प्रदेश की राजनीति चर्चा का विषय बनी इसलिए कि पुत्र अखिलेश यादव सत्ता की कुर्सी पर तो चाबी पिता मुलायम सिंह यादव के पास। क्या ऐसा नहीं कि अखिलेश पढ़-लिखकर राजनीति में आने और अपने संस्कारों की कीमत चुका रहे हैं?

उत्तर: पूरे देश में चर्चा में रही उत्तरप्रदेश की राजनीति में पुत्र अखिलेश

यादव जहाँ सत्ता की कुर्सी पर, तो वहीं चाबी पिता मुलायम सिंह यादव के पास। मुलायम सिंह ने शायद सोच रखा था कि अपने पुत्र को सत्ता सौंपकर उसका संचालन वह खुद करते रहेंगे जिसके लिए चाबी उन्होंने अपने पास रख ली, लेकिन एक तो वह भूल गए कि एक बार जिसे सत्ता की भूख या यों कहें कि सत्ता का मजा चख लेता है उसे जिंदगी भर वह छोड़ना नहीं चाहता, दूसरे मुलायम सिंह यह भूल गए कि उनकी दूसरी पत्नी से एक बेटा तैयार है जिसकी नजर भी मुख्यमंत्री की कुर्सी पर लगी है। बस टकराहट का यह भी एक कारण है।

नि:संदेह जहाँ एक तरफ अखिलेश युवा एवं पढ़ा-लिखा है इसलिए उसे अपने काम और विकास पर भरोसा है तो दूसरी तरफ मुलायम सिंह अपने चुनावी अंकगणित एवं बाहुबली पर यकीन रखते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि सत्ता में रहने के लिए काम करना जरूरी नहीं होता, बल्कि उसके लिए तो बिसात बिछानी पड़ती है शह और मात की जिसके लिए उनके भाई शिवपाल यादव ने जातीय गणित और बाहुबली मुख्तार अंसारी की पार्टी को सपा में विलय कराया, लेकिन एक पढ़े-लिखे उदारवादी सोच के नौजवान अखिलेश, जो उ.प्र. के लोगों को पढ़ा-लिखा रहा है, लैपटॉप बाँट रहा है, एक्सप्रेस हाईवे बना रहा है, सड़के सुधार रहा है, अस्पताल और कॉलेज स्थापित कर रहा है और कानून व्यवस्था से लेकर प्रदेश के मूलभूत ढाँचे को सुधारने में चार साल से लगा है, युद्ध स्तर पर काम करके मेट्रो बनवा रहे हैं, भला उसे बाहुबल और जाति-धर्म का गणित कैसे रास आ सकता है? दूसरी तरह जिसने अपने ऊपर समाजवाद का मुलम्मा चढ़ाकर अपने जीवन का हर चुनाव केवल जाति, अल्पसंख्यक के वोटों के बल पर जीते हों, उनसे इस सोच से ऊपर उठने की अपेक्षा आखिर कैसे की जा सकती है? इस दृष्टिकोण से यदि देखा जाए, तो उत्तर प्रदेश का युवा वर्ग एवं शिक्षित मध्यम वर्ग अखिलेश के साथ है और हाल के पारिवारिक घटनाक्रमों से उत्तरप्रदेश के लोगों के मन में अखिलेश के लिए सहानुभूति है और इस तरह का आकलन एक सर्वे रिपोर्ट में भी किया गया है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस मुश्किल परिस्थितियों में अखिलेश सरकार को इन चार सालों में काम करना पड़ा है वह तो कोई अखिलेष्ठा से पूछे कि मुख्यमंत्री की कुर्सी पर तो अखिलेश बैठे थे, लेकिन वहाँ के नौकरशाह एवं प्रशासनतंत्र मुलायम और शिवपाल की ज्यादा सुनते रहे। यही कारण है कि अखिलेश अब किसी भी कीमत पर अपनी छवि से

समझौता नहीं करना चाहते। इसलिए तो 2014 के लोकसभा चुनाव में उत्तरप्रदेश को 80 में से 71 सीटें भाजपा या यों कहिए नरेन्द्र मोदी को मिलीं। लेकिन वहाँ के मतदाता का जनमानस बिल्कुल दुविधा में नहीं था और सच तो यह है कि भारत के मतदाता इस माने में समझदार हैं और वह अपनी और देश की भलाई बहुत ही बेहतर समझते हैं। यह बात अलग है कि इस बार के चुनाव में भारतीय सेना द्वारा किए गए लक्षित हमले राजनीतिक समीकरण बहुत कुछ बदल सकते हैं, लेकिन उ.प्र. के कार्यकर्ता एवं शिक्षित मध्यम वर्ग अखिलेश के साथ दिख रहा है, लेकिन उनका परिवार नहीं। शायद वह पढ़-लिखकर राजनीति में आने और अपने संस्कारों की कीमत चुका रहे हैं।

अगर कोई अपनी योग्यता से समाज अथवा राजनीति में अपनी अवस्थिति प्रमाणित करता है, तो इसका भी स्वागत होना चाहिए। यह बात ठीक है कि अखिलेश यादव, जो कभी ऑस्ट्रेलिया में टेक्नाक्रेट थे, मुलायम सिंह यादव का बेटा होने की वजह से उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री की सत्ता हासिल की, लेकिन यह भी सत्य है कि उन्होंने इस मुख्यमंत्री के पद पर रहकर अपनी योग्यता और अवस्थिति को प्रमाणित किया इसलिए इसका स्वागत किया जाना चाहिए।

भारत का लोकतंत्र दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होन से गौरवान्वित तो होता रहता है, पर छोटी-छोटी बातें इस लोकतंत्र को छोटा भी बनाती रहती हैं। इनमें से एक है, आज भी समाज में कुलीनों और कुछ परिवारों का विशिष्ट होना। मुलायम सिंह यादव का परिवार ऐसा ही विशिष्ट हुआ। परिवारवाद राजनीतिक सत्ता में भागीदारी के मुद्दे पर ही निर्णायक नहीं बनता, सड़क पर गुंडागर्दी करने वाला युवा भी पकड़े जाने पर लोगों ही नहीं, पुलिस को भी धमका देता है कि वह अमुक परिवार का है और उसकी धमकी का प्राय: असर भी हो जाता है। कभी-कभी परिवारवाद के विरोध के नाम पर योग्य और सक्षम व्यक्ति को भी उसका प्राप्य नहीं दिया जाता। निर्णायक व्यक्ति की क्षमता और उपयुक्तता होनी चाहिए, मगर यही अखिलेश के पिताजी को अखर रहा है। लोकतंत्र की सफलता का वास्तविक निणायक समाज की लोकतात्रिक मानसिकता ही हो सकती है और यह एक लंबे सृजन संघर्ष के द्वारा ही संभव है।

(५२)प्रश्न: क्या आप भी इस बात से सहमत हैं कि लोकतंत्र में जनता के गुस्से का अच्छा परिणाम नहीं निकलता है?

उत्तर: हाँ, मैं भी इस बात से सहमत हूँ कि लोकतंत्र में जनता के गुस्से का अच्छा परिणाम नहीं निकलता है। आपको बिहार का एक श्रेष्ठ उदाहरण देता हूँ कि लालू-राबड़ी सरकार के 15 साल के जंगलराज से जब बिहार की जनता परेशान हो गई और हर तबके में गुस्सा देखने में आना शुरू हो गया, तब यहाँ के मतदाताओं ने हर हाल में चुनाव में उन्हें पराजित करने का मन बना लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि चुनाव आने पर नीतीश कुमार के नेतृत्व में बिहार की सरकार बनी।

इसी प्रकार जिस लालू-राबड़ी सरकार के जंगलराज को खत्म करने के लिए नीतीश कुमार को यहाँ की जनता ने सत्ता पर बैठाया उन्होंने ही लालूजी के साथ महागठबंधन बनाकर फिर 2015 में चुनाव लड़ा और नीतीश कुमार के नेतृत्व में जद(यू), राजद और काँग्रेस के महागठबंधन में सरकार बनी, मगर सत्ता पर विराजमान होने के एक साल की अवधि में ही आए दिन चोरी, डकैती, अपहरण, बलात्कार आदि की आपराधिक घटनाएँ आज इतनी बढ़ गई हैं कि वही जंगलराज पुन: यहाँ स्थापित हुआ दिख रहा है और जनता के बीच नीतीश सरकार के प्रति गुस्सा दिख रहा है। कोई आश्चर्य नहीं होगा जब यहाँ किसी वक्त या तो मध्यावधि चुनाव के लिए जनता बाध्य कर दे अथवा 2020 के बिहार विधान सभा के चुनाव में नीतीश सरकार को पराजित होना पड़े।

इसी प्रकार 1977 में जनता पार्टी गठबंधन और 2013 व 2015 में दिल्ली के विधान सभा के चुनाव में अरविंद केजरीवाल और उनकी आम आदमी पार्टी की जीत के उदाहरण भी आपके सामने हैं, मगर आम आदमी पार्टी के अंदर जो कुछ चल रहा है और मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल के मंत्रिमंडल के आधे मंत्रियों पर भ्रष्टाचार से लेकर दुष्कर्म की घटनाओं के आरोप लग रहे हैं उससे तो ऐसा लगता है कि जनता के गुस्से का परिणाम इन्हें भी भुगतना पड़ेगा, क्योंकि 'आप' भी राजनीतिक व्यवस्था बदलने में नाकाम रही। दिल्ली विधानसभा के चेहरे बदल गए, लेकिन दोषारोपन का खेल जारी है। भ्रष्टाचार अब भी बरकरार है और राजनीतिक व्यवस्था ठप है। जनता पार्टी को भी 1977 में जनता ने आपातकाल से क्रोधित होकर ही चुना था। जनता के गुस्से से उपजा कई दलों के नेताओं का मिश्रित समूह फिर नतीजे देने में नाकाम रहा। इन सभी घटनाओं से तो इसी धारणा को

मजबूती मिलती है कि लोकतंत्र में जनता के गुस्से का अच्छा परिणाम नहीं निकलता है।

(५३)प्रश्न: क्या अतिशय परिवारवाद और सत्तालोलुपता ने समाजवादी पार्टी और उसकी सरकार को पतन की राह पर लाकर खड़ा कर दिया है?

उत्तर: हाँ, आपकी बात सही है कि अतिशय परिवारवाद और सत्तालोलुपता ने समाजवादी पार्टी और उसकी सरकार को पतन की राह पर लाकर खड़ा कर दिया है। उत्तर प्रदेश में सत्तारूढ़ समाजवादी परिवार में चरम पर पहुँच चुकी वर्चस्व की जंग के समाप्त होने के आसार अब कम लग रहे हैं। जिस डॉ. राम मनोहर लोहिया के समाजवाद की राह पर मुलायम सिंह यादव चल रहे थे वे तो वंशवाद और भ्रष्टाचार के कट्टर विरोधी और राजनीति में शुचिता के समर्थक थे। मगर कभी जिस राज्य की राजनीतिक पहचान केंद्र की सत्ता तक पहुँचने की सीढ़ी के रूप में होती थी, आज वही उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव से ठीक पहले सत्ताधारी पार्टी के प्रमुख के पारिवारिक सदस्यों के बीच छिड़ी सबसे बड़ी कलह से झाँकती साजिशों को देखने-सुनने के अभिशप्त है। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के बाद केंद्र में प्रधानमंत्री बनने का सपना मुलायम सिंह यादव का धरा का धरा रह गया, क्योंकि अंतर्कलह के बीच दो फाड़ होने के कगार पर पहुँची सपा फिलहाल चाचा-भतीजा, पिता-पुत्र, सौतेली माँ, शकुनी और महाभारत जैसे शब्दों के सहारे राजनीतिक सच्चाइयों को समझने-सुलझाने ये कुछ इस तरह घिरी दिख रही है, मानों 21वीं शताब्दी उत्तरप्रदेश के समाजवाद के लिए यही सबसे संभावनाशील शब्दावली हो। पार्टी में परिवारजन और उनके चहेतों को रखने-निकालने, इस्तीफा लेने-देने और चिट्ठी लिखकर एतराज जताने जैसे दांव-पेंच के बीच मुख्यमंत्री अखिलेश यादव भरी सभा में रूंधे गले से कह रहे हैं कि 'मैं पार्टी तोड़ने थोड़े ही आया हूँ, आप सबका ही कहा करूँगा।'

दरअसल, अपनी प्रतिभा और कर्मयोग से समाजवाद को भारतीय सच्चाइयों के अनुरूप खड़ा करने वाले राम मनोहर लोहिया के साथ मुलायम सिंह और उनकी पार्टी ने कुछ अनोखा नहीं किया है। विचारधाराओं के साथ अक्सर यही होता हैं कि वक्त बीतने के साथ उनमें से विचार गायब हो जाते हैं, बस धारा रह जाती है। डॉ. लोहिया ने देश को जातिप्रथा और वंशवाद की जकड़न से मुक्त करके उसके भीतर एक अधिकार चेतस व्यक्ति-मानव की रचना करना चाहते थे, लेकिन उनके शिष्य मुलायम सिंह हों या लालू

प्रसाद दोनों ने पार्टी के भीतर अपने परिवार को, परिवार के राजनीतिक वर्चस्व को स्थापित करने में लगाया और प्रदेश के भीतर एक जाति के दबदबे को स्थापित करने की राजनीति की है। लोहिया के विचार या मिशन को प्रासंगिक बनाए रखने के लिए उसमें नवाचार करना मुलायम या लालू प्रसाद के लिए संभव न हो सका।

मुलायम सिंह यादव तमिलनाडु के राजनीतिक पितपुरुष करुणानिधि की तरह उत्तरप्रदेश के सबसे बड़े राजनीतिक परिवार के पितपुरुष हैं और अगर करुणानिधि बिरानवें साल की उम्र में पार्टी की बागडोर किसी को देने के लिए तैयार नहीं हैं तो भला छिहत्तर साल के मुलायम सिंह यादव कैसे सत्ता छोड़ देंगे? इसलिए आशंका यह है कि कहीं मुलायम सिंह अपने बेटे अखिलेश यादव को ही न कहीं पार्टी और पद से हटा दें जिस तरह द्रमुक से करुणानिधि अपने बेटे अझागिरी निकाले गए, लेकिन अखिलेश की अच्छी छवि के चलते मुलायम सिंह वैसा नहीं कर सकते। हाँ, सत्ता की चाभी भले अपने पास रखें। मुलायम सिंह यादव ने सिर्फ अपने कुनबे और एक जाति-मजहब के लिए कार्य करके समाजवाद को पलीता लगाने का काम किया है।

(५४)प्रश्न: क्या पाक-परस्त नेताओं पर भी कानूनी कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए?

उत्तर: हाँ, पाक-परस्त नेताओं पर भी कार्रवाई की जानी चाहिए। काँग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गाँधी द्वारा 'खून की दलाली', काँग्रेस के महासचिव दिग्विजय सिंह द्वारा प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को 'मौत का सौदागर', काँग्रेस नेता संजय निरूपम द्वारा सर्जिकल स्ट्राइक को फर्जी करार दिया जाना और अरविंद केजरीवाल जैसे 'आप' के संयोजक और दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री द्वारा सर्जिकल स्ट्राइक का 'सबूत माँगना' जैसे शब्दों का इस्तेमाल कर भारतीय सेना की खिल्ली उड़ाना या तो उनकी अपरिपक्वता की निशानी है या देश विरोधी गतिविधियाँ। ऐसा प्रतीत होता है भारतीय सेना के द्वारा पाक अधिकृत कश्मीर में की गई सर्जिकल स्ट्राइक पर कुछ दोहरे चरित्र के नेताओं को कुछ मिर्ची लगी है। जबतक हमारे देश में ऐसे नेता मौजूद हैं, तबतक पाकिस्तान को भारत के विरूद्ध सीधी कार्रवाई करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि आखिर तभी तो ऐसे राष्ट्रविरोधी नेताओं के बयान पाकिस्तान के सभी अखबारों में सुर्खियों में छापे जाते हैं।

दरअसल, पाकिस्तान परस्त नेतागण ही सत्ता सुख के लिए भारत

के टूकड़े करा देंगे। दुखद स्थिति यह है कि जब काँग्रेस पार्टी सत्ता से बाहर रहती है, तो यदा-कदा राष्ट्रवाद की बात करती है मगर सत्ता में आते ही तुष्टीकरण में लग जाती है। काँग्रेसी नेता मणिशंकर अय्यर का पाकिस्तान में दिया गया बयान भारतीयों के जेहन में अभी तक कौंध रहा है। वर्तमान सरकार को घर में छिपे आस्तीन के सांपों पर ध्यान देकर उनके विरूद्ध कानूनी कार्रवाई करना अनुचित नहीं होगा।

जहाँ तक भारतीय सेना द्वारा सर्जिकल स्ट्राइक के लाभ की बात है, तो जिस प्रकार 1971 के युद्ध में सैन्य पराक्रम का लाभ काँग्रेस को मिला था, उसी तरह इस बार के सर्जिकल स्ट्राइक का लाभ अगर भाजपा को मिलता है, तो इसमें बुराई क्या है। जब भी किसी राजनीतिक दल और उसके गठबंधन की सरकार रहने पर देशहित में कोई काम होता है तो उसका श्रेय तो उसे मिलेगा ही इसमें कौन सी नई बात है। इसलिए विपक्षी पार्टियों में बौखलाहट क्यों? बल्कि इससे तो उन्हें सरकार से सीख लेनी चाहिए और उन्हें अपनी सेना पर गर्व करना चाहिए कि उन्होंने सर्जिकल स्ट्राइक से ईट का जवाब पत्थर से दिया है। इससे हर देशवासी का मस्तक ऊँचा हो गया। हमारे वीर सैनिकों ने अपने भाइयों के बलिदान को 'जाया नहीं होने दिया, पर बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि कुछ राजनीतिक दल के बड़े और कुछ छुटभैये नेताओं की ओर से सेना की इस कार्रवाई का सबूत माँगा जा रहा है। यह कितनी शर्म की बात है कि जो सैनिक हर विषम परिस्थिति में अपनी जान की बाजी लगाकर देश की सीमाओं की रक्षा करते हैं, उनके पराक्रम का अपमान किया जा रहा है। हर समय सुरक्षाकर्मियों से घिरे रहने वाले ऐसे नेता, एक दिन भी जनता के बीच बिना सुरक्षा नहीं रह सकते, फिर भी वे अपनी ओछी हरकतों से बाज नहीं आते। देश की जनता सब कुछ बर्दाश्त कर सकती है, पर अपने वीर सैनिकों का अपमान नहीं सह सकती। इसलिए नेताओं को संयत में रहकर बयान देना चाहिए अन्यथा जनता चुनाव के वक्त भी इसे याद रखना जानती है।

(५५)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि उत्तरप्रदेश में अखिलेश यादव मुलायम सिंह यादव परिवार के आखिरी मुख्यमंत्री हैं?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि अखिलेश यादव उत्तर प्रदेश के मुलायम सिंह यादव परिवार के आखिरी मुख्यमंत्री हैं, क्योंकि समाजवादी पार्टी प्रमुख मुलायम सिंह यादव परिवार में छिड़ी आपसी लड़ाई पार्टी के चुनावी भविष्य को चौपट कर रही है। अभी तक मुलायम सिंह को पार्टी और परिवार में

सर्वोच्च माना जाता था, लेकिन अपनी पार्टी और अपने बेटे तथा छोटे भाइयों से यह सार्वजनिक दुर्गति उनको चुभती होगी।

आज जब दल अपनी रणनीति बनाने, नित नए सामाजिक समूहों को अपनी तरफ आकर्षित करने में जुटा है तब यादव परिवार का यह मूसल युद्ध पार्टी और परिवार की राजनीति को ही खत्म करने पर आमादा है और आज समाजवादी पार्टी और खुद मुलायम सिंह यादव के कुनबे की लड़ाई बता रही है कि आज सबसे मुश्किल भूमिका में खुद मुलायम सिंह ही दिखाई दे रहे हैं। समाजवाद और लोकतंत्र का माला जपने और अपने निहित स्वार्थों को छुपाने से अब बात नहीं बनेगी।

यह बात ठीक है कि पुरानी पीढ़ी के पास अनुभव, कुटिलता, हथकंडेबाजी तो है, मगर नई पीढ़ी के पास, ईमानदारी के साथ काम करने वाली छवि है जिसे देखते हुए पीढ़ी को अधिकार सौंपने में पुरानी पीढ़ी को कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। यह देश हित में तो होगा ही पार्टी के भविष्य के लिए भी बेहतर होगा। पुरानी पीढ़ी की छवि भ्रष्ट लोगों को प्रश्रय देने की है जिन्हें आज नहीं तो कल जनता उखाड़ फेंकेगी, लेकिन पुरानी पीढ़ी अपनी मनमानी से बाज नहीं आ पा रही है।

जो भी हो समाजवादी पार्टी का हश्र वंशवादी पार्टियों को चेतावनी है, जब संगठन किसी परिवार की चाकरी करने लगता है, तो सहज नेतृत्व परिवर्तन की गारंटी नहीं दी जा सकती, खासतौर पर तब जब परिवार यादव वंश जितना विशाल हो। मुझे यह कहने के लिए विवश होना पड़ रहा है कि उन्मादपूर्ण स्पर्धा के युग में शायद पारिवारिक उत्तराधिकार को टा-टा कहने और अधिक पारदर्शी योग्यता से संचालित नेतृत्व परिवर्तन का वक्त आ गया है, फिर चाहे राजनीति हो या व्यापार। आपने देखा नहीं समाजवादी पार्टी की तरह टाटा समूह के सामने भी अभूतपूर्व संकट आ खड़ा हो गया और आप इंतजार कीजिए शीघ्र ही यही परिदृश्य आपको बिहार की राजनीति में वंशवाद के पोषक परिवार में भी देखने को मिल जाएगा। महाराष्ट्र में ठाकरे परिवार द्वारा संचालित शिवसेना और तमिलनाडु में करुणानिधि द्वारा संचालित द्रमुक का नजारा तो आप देख ही चुके हैं।

(५६)प्रश्नः क्या आपको लगता है कि मध्यप्रदेश में सिमी आतंकियों के मुठभेंड़ में मारे जाने के विवाद राजनीति से प्रेरित हैं?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि मध्यप्रदेश में सिमी आतंकियों के मुठभेड़ में मारे जाने के विवाद राजनीति से प्रेरित हैं, क्योंकि मध्यप्रदेश की

राजधानी भोपाल स्थित भोपाल सेंट्रल जेल से फरार प्रतिबंधित संगठन स्टूडेंट इस्लामिक मूवमेंट ऑफ इंडिया (सिमी) के आठ आतंकियों को आठ घंटे के भीतर स्थानीय पुलिस और इंटेलिजेंस वींग के तुरंत सक्रिय होने की वजह से एक मुठभेड़ में मार गिराया, वरना ये आतंकी यदि सुरक्षा बलों को पुनः चकमा देने में कामयाब हो जाते तो हमारे लिए एक बड़ा खतरा बन सकते थे। मगर एक ओर जहाँ आम जनमानस जेल से फरार आतंकियों के मारे जाने की वजह से खुशी में डूबा था और देशवासी हर्ष मना रहे थे, वहीं दूसरी ओर अफसोसजनक ढंग से हमारे देश के कुछ राजनेता इस मसले पर सर्वथा अनापेक्षित जोर-आजमाइश कर मुठभेड़ को फर्जी बताते हुए इनकी न्यायिक जाँच की माँग कर रहे थे। जिस तरह की बयानबाजी विपक्षी दलों के राजनेताओं द्वारा की गई उसे कतई उचित नहीं कहा जा सकता। असद्दीन ओवैसी ने तो आतंकियों के जेल से भागने के इस पूरे प्रकरण को ही अविश्वसनीय करार दिया। ऐसा महज इस कारण हुआ, क्योंकि मारे जाने वाले सारे आतंकी एक खास समुदाय से थे और उनका मार गिराने वाली पुलिस भाजपा शासित मध्यप्रदेश की थी।

उल्लेख्य है कि भोपाल की सेंट्रल जेल से जो आतंकी भागे थे, उनमें से तीन ऐसे भी थे जो पहले भी जेल से भाग चुके थे। ये तीन आतंकी अपने तीन और साथियों के साथ अक्टूबर, 2013 में खंडवा जेल से भागे थे। आतंकी जिस तरह से जेल से भागे, जिस तरह से उन्होंने जेल में सुरक्षा गार्ड के रूप में पदस्थापित हवलदार की हत्या कर दूसरे गार्ड को रस्सी से बाँध रखे थे उससे स्पष्ट है कि वे न तो निर्दोष थे और न ही मासूम। फिर भी आतंकियों के समर्थन में कुछ बुद्धिजीवियों, नेताओं और राजनीतिक दलों का इस तरह जुटना चिंताजनक है। वे यह न भूलें कि आम जनमानस आठ आतंकवादियों के मारे जाने की इस घटना का जिस तहेदिल से स्वागत कर रहा था उसका एक नमूना सोशल मीडिया पर चल रहा यह मेसेज है कि 'भोपाल एनकाउंटर अगर असली है, तो भोपाल पुलिस को सौ सलाम और अगर ये फर्जी हैं तो दो सौ सलाम, क्योंकि आतंकी तो असली थे।'

हमारे बयान वीर राजनेताओं को यह बात समझनी चाहिए कि आतंकवाद और राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे मसलों पर सियासत उचित नहीं है। आतंक के खिलाफ इस लड़ाई को राजनीतिक रंग देने की कोशिश न केवल निंदनीय है, बल्कि आतंकवादियों के साथ होने वाली मुठभेड़ पर सवाल उठाना वोट बैंक की राजनीति है। आखिर कबतक तुष्टीकरण की नीति

चलती रहेगी? क्या आतंकवादी का कोई धर्म या मजहब होता है? यदि ऐसा ही होता रहेगा तो इससे बाहरी ताकतों को बल मिलेगा, जो देश की एकता और अखंडता को तोड़ना चाहती है। हमारे लिए तो देश की सुरक्षा सर्वोपरि है। काँग्रेस के दिग्विजय सिंह जैसे नेता इस मामले पर यह सवाल उठाएँ कि मुस्लिम ही क्यों जेल से भागते हैं, तो यह उनकी सोच पर भी सवाल है। अगर ये आतंकवादी हमारे सुरक्षा गार्ड को मार कर भाग जाते और पुलिस की मार से बच निकलते, तो यही लोग कहते कि पुलिस ने कुछ नहीं किया। अब जब उन्हें मार गिराया गया है तो इस पूरे मामले पर ही सवाल उठाए जा रहे हैं। दरअसल देशहित पर इन नेताओं की सोच क्षीण हो गई हैं, क्योंकि सत्ता से वे च्यूत हैं। मुझे नहीं लगता कि ऐसा करके उनकी पार्टी कभी अब सत्ता में आ पाएगी, क्योंकि जनता यह सब देख रही है।

(५७)प्रश्न: वन रैंक वन पेंशन के मसले पर आंदोलनरत एक पूर्व सैनिक की आत्महत्या के बाद दिल्ली में नेताओं ने आसमान सिर पर क्यों उठा लिया?

उत्तर: वन रैंक वन पेंशन के मसले पर आंदोलनरत एक पूर्व सैनिक की आत्महत्या के बाद दिल्ली के नेताओं ने आसमान सिर पर इसलिए उठा लिया, क्योंकि इन नेताओं का एकमात्र मकसद केंद्र सरकार को काली स्याही से रंगना था। ऐसा करने के लिए राजनीति को बदलने और उसे ठीक करने का दावा करने वाले काँग्रेस के उपाध्यक्ष राहुल गाँधी और आम आदमी पार्टी के संयोजक तथा दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल सरीखे नेताओं ने इस पूर्व सैनिक की मौत पर राजनीतिक रोटियाँ सेंकने में कोई कसर नहीं छोड़ी। खुद को पूर्व सैनिकों का परम हितैषी और केंद्र सरकार को उनका विरोधी दिखाने के लिए इन दोनों नेताओं ने अपने समर्थकों के साथ जिस तरह लेडी हार्डिंग अस्पताल, दिल्ली को सियासी अखाड़ा बनाने की हर संभव कोशिश की वह सस्ती राजनीति के शर्मनाक नमूने के अलावा और कुछ नहीं। चूँकि जैसा कि मैंने आपको कहा कि इन नेताओं का एकमात्र उद्येश्य सरकार को काली स्याही से रंगना था इसलिए उन्होंने पुलिस को रोक-टोक में आपातकाल की शक्ल भी देख ली, क्योंकि पुलिस ने इन दोनो नेताओं के अतिरिक्त उनके कई समर्थकों को हिरासत में ले लिया और फिर आधी रात को छोड़ा।

जहाँ तक वन रैंक वन पेंशन के मसले का सवाल है मैं आपको इस मामले की अद्यतन जानकारी देना चाहूँगा कि केंद्र सरकार ने अपने वादे

के अनुरूप दशकों पुराने इस समस्या को हल कर लिया है जिससे करीब 90 प्रतिशत पूर्व सैनिक वन रैंक वन पेंशन संबंधी प्रावधानों से संतुष्ट हैं और जो कमियाँ और जटिलता रह गई हैं उन्हें दूर करने के लिए सरकार ने एक आयोग का गठन किया है। वन रैंक वन पेंशन के तहत अभी तक पाँच हजार करोड़ रुपए से अधिक राशि पूर्व सैनिकों को वितरित की जा चुकी है, लेकिन इस मामले में येन-केन-प्रकारेण सरकार को घेरने के लिए एंड़ी-चोटी का जोर लगा रहे राहुल गाँधी और अरविंद केजरीवाल सरीखे विरोधी नेता इस तथ्य को भी जानबूझकर ओझल कर रहे हैं, क्योंकि विरोधी नेता इस मसले पर सस्ती राजनीति करने का कोई मौका नहीं छोड़ना चाहते और इसीलिए इस समस्या का हल होते देख एक बढ़िया मौका से चूक जाने का जो भय उन्हें सता रहा है।

दूसरी बात यह भी जानने की जरूरत है कि पूर्व सैनिक राम किष्ठान ग्रेवाल ने किन हालातों में अपनी जान दी, क्योंकि रक्षा मंत्री मनोहर पार्रिकर को वन रैंक वन पेंशन की विसंगति दूर करने संबंधी चिट्ठी लिखने के अगले दिन ही आत्महत्या करना गले नहीं उतरता। आखिर पूर्व सैनिक रामकिष्ठान ने जब चिट्ठी लिखी तो रक्षा मंत्री से मिलने की तैयारी के क्रम में दूसरे ही दिन आत्महत्या करने का फैसला क्यों किया? राजनीति और आलेचना मुद्दों पर होनी चाहिए भावनाओं को भड़काकर नहीं।

दरअसल, जब पूर्व सैनिकों की वन रैंक वन पेंशन की मुख्य माँग का समाधान होते देख लिया, तो पूर्व सैनिकों का एक गुट भी अपनी राजनीति चमकाने में लगा है। कूछ पूर्व सैन्य अधिकारी यह प्रकट करने में लगे हैं कि सरकार को उनकी समस्त शर्ते जस-का-तस मान लेनी चाहिए। आखिर ऐसा कैसे संभव है? हो सकता है कि कुछ विसंगतियों को दूर करने की जरूरत हो, लेकिन क्या कोई विधान-प्रावधान ऐसा हो सकता है जो सभी को सर्वथा संतुष्ट करने में समर्थ हों? राजनीतिक दलों के पास राजनीति करने और सरकार को घेरने के लिए तमाम मसले हैं। उन्हें कम-से-कम पूर्व सैनिकों को मोहरा बनाने से तो बाज आना चाहिए।

सीमा पर शहीद होने वाले सैनिकों के मजारों पर एक दीया जलाने की याद इन नेताओं को कभी नहीं आती। वन रैंक वन पेंशन को लागू करने का मुद्दा पिछले 43 सालों से अटका पड़ा था। इसकी जटिलताओं के मद्देनजर पिछली सभी सरकारों ने इसके प्रति टालने का रवैया अपनाए रहीं, लेकिन प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में बनी केंद्र

सरकार ने जब इसे लागू कर दिया तो सभी सियासी दलों को अपच होने लगा और नेताओं ने अपने राजनीतिक उद्येश्यों की पूर्ति के लिए गैर-जिम्मेदाराना तेवर व बयानबाजी के साथ-साथ सड़क पर उठना शुरू कर दिया जबकि अन्य तरीकों से भी सरकार पर दबाव बना सकते थे।

वैसे भी पूर्व सैनिक राम किशन को अवकाश प्राप्त करने के बाद हर महीने 24999 रुपए पेंशन मिल रहे थे, केवल बैंक की गड़बड़ी के कारण 5000 रुपए कम मिल रहे थे। अब एक बड़ा सवाल यह उठता है कि क्या एक सैनिक की इच्छाशक्ति इतनी कमजोर हो सकती है कि वह मात्र 5000 रुपए के लिए आत्महत्या कर ले? और दूसरा सवाल यह उठता है कि क्या ऐसी कायरतापूर्ण आत्महत्या के लिए उन्हें 'शहीद' कहा जा सकता है? इन दोनों सवालों के जवाब नकारात्मक होंगे। निश्चित रूप से यह किसी बड़ी राजनीतिक साजिश की ओर इशारा करता है। कहीं राम किशन को आत्महत्या के लिए उकसाया तो नहीं गया? कहीं यह पूरा खेल सिर्फ केंद्र सरकार को बदनाम करने की साजिश तो नहीं? यह संभव इसलिए है कि रामकिशन काँग्रेस के कार्यकर्ता थे और काँग्रेस के समर्थन से चुनाव भी लड़ चुके थे।

जो हो, पर इतना तो स्पष्ट है कि एक सैनिक को आगे करके यदि इस देश के नेता राजनीति करेंगे तो उससे सिर्फ दश का ही नुकसान नहीं होगा, बल्कि उनके दल का भी होगा।

(५८)प्रश्न: जब तकरीबन समूचा विपक्ष नोटबंदी के खिलाफ उठ खड़ा हुआ, तो सड़कों पर आमजनों में गुस्सा नजर क्यों नहीं आया?

उत्तर: आपको याद होगा आज से महज पाँच साल पहले भ्रष्टाचार के खिलाफ दिल्ली सहित समूचा देश सड़कों पर उतर आया था। शहरों की बातें छोड़िए, गाँवों और कस्बों तक में भ्रष्टाचार के खात्मे को लेकर मोमबत्तियाँ जल उठी थीं, लेकिन आज जब नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में बनी केंद्र सरकार द्वारा भ्रष्टाचार खत्म करने के लिए कालेधन पर चोट करने हेतु नोटबंदी का फैसला किया गया, तो आज लोग विपक्षी पार्टियों के साथ खड़े होने के लिए कतई तैयार क्यों नहीं हैं? इस सवाल का जवाब तो यही हो सकता है कि केंद्र के इस कड़े फैसले से इसलिए लोग खुश हैं, क्योंकि भ्रष्टाचार खत्म करने के लिए नोटबंदी जैसे कड़े कदम को जनता ठीक समझती है। यही कारण है कि प्राय: सभी विपक्षी पार्टियों द्वारा नोटबंदी के खिलाफ किए जाने के बाद भी लोग सड़कों पर नहीं उतरे।

दरअसल, आमजन सड़क पर उतरे भी तो कैसे? जिस काँग्रेस के उपाध्यक्ष राहुल गाँधी भूचाल लाने की बात कह रहे थे, महज ढाई साल पहले तक उसी काँग्रेस के हाथ देश की सत्ता थी। कॉमनवेल्थ, टूजी स्पेक्ट्रम घोटाला और कोलगेट जैसे भारी-भरकम घोटाले काँग्रेस के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के राज के दौरान हुए थे। पाँच साल पहले दिल्ली के जंतर-मंतर पर समाजसेवी अन्ना हजारे के नेतृत्व में शुरू हुए आंदोलन मूलतः काँग्रेस के खिलाफ ही था। दिल्ली सरकार के आज के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल तो खुद उस भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन की न सिर्फ उपज हैं, बल्कि उस आंदोलन के मुख्य कर्णधार भी, लेकिन वही केजरीवाल आज नरेन्द्र मोदी द्वारा भ्रष्टाचार के खिलाफ लिए गए नोटबंदी के फैसले का पूरजोर विरोध कर रहे हैं, पर जनता साथ नहीं दे रही है। इससे यह तो स्पष्ट हो रहा है कि जनता न तो काँग्रेस को अभी पूरी तरह माफ कर सकी है और उस पर लगे भ्रष्टाचार के आरोप अब तक लोगों के जेहन में ताजा है।

नोटबंदी का आक्रामक विरोध कर रही आम आदमी पार्टी और उसके संयोजक अरविंद केजरीवाल हों या तृणमूल काँग्रेस की अध्यक्षा और प. बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी अथवा बसपा सुप्रीमों मायावती एवं सपा सुप्रीमों मुलायम सिंह यादव या जद(यू) के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष श्तरद यादव तथा राजद के लालू यादव द्वारा नोटबंदी के खिलाफ छेड़े गए आंदोलन जनता को नहीं लुभा पा रहे हैं । ऐसा नहीं है कि नोटबंदी से आमजन परेशान नहीं हुआ है, मगर फिर भी नोटबंदी के फैसले के साथ है, क्योंकि उसने यह भी देखा कि अबतक कोई थैलीशाह विधायक, सांसद अथवा कालेधन रखने वालों को बैंकों से अपनी कमाई हासिल करने के लिए कतार में लगे नजर नहीं आए, क्योंकि बैंको के बड़े अधिकारियों की मिली भगत से अपनी काली कमाई के करोड़-करोड़ रुपए कालेधन को सफेद कर लिए।

आपने देखा नहीं जनधन योजना के तहत आम आदमी द्वारा खोले गए खातों में बैंककर्मियों की मिलीभगत से वही थैलीशाहों और बड़े-बड़े नेताओं तथा उद्योगपतियों ने अपनी काली कमाई के करोड़ों-करोड़ रुपए के कालेधन को उनके खाते में जमा कर लिए जिसका पर्दाफाश हुआ। आखिर जनता इन विपक्षी नेताओं पर कैसे विश्वास करे जब मायावती और उनके भाई के नाम पर खोले गए खाते में एक सौ करोड़ से अधिक की रकम पकड़ी जाती है? इसी प्रकार तमिलनाडु के मुख्य सचिव मोहन राव के घर

से करोड़ों रुपए छापामारी में पाए जाते हैं, तो आप कल्पना करें कि इन नेताओं से संरक्षण प्राप्त नौकरशाह भी कालेधन जमा कर मालामाल हो गए। इन्हीं नेताओं द्वारा नोटबंदी के खिलाफ उठाई जा रही आवाज को जनता कैसे सुने और सड़कों पर आए?

सच तो यह है कि केंद्र में मोदी सरकार का सत्ता पर आसीन होना विपक्षी पार्टियों के खासतौर पर बड़े धड़े को पच नहीं पा रहा है। वह शुरुआती दौर में इस ताजपोशी से सदमे में रहा। लोकतंत्र की मर्यादा और परंपरा के मुताबिक उसने जनता के इस फैसले को न तो खुले मन से स्वीकार किया और न ही सरकार के प्रति सहयोगी रूख अख्तियार किया। आखिर तभी तो 2016 में संसद का शीतकालीन सत्र बिना कोई कामकाज खत्म हो गया। राज्यसभा के सभापति हमीद अंसारी ने तो इशारे में ही सांसदों को संबोधित करते हुए कह डाला कि संसद में तो सांसद नोटबंदी के खिलाफ इतने हंगामें कर रहे हैं, पर सड़कों पर आमजन आखिर क्यों नहीं उतर पा रहे हैं?

मुझे लगता है कि मोदी सरकार का केंद्र में सत्ता पाने के बाद उनके द्वारा किए जा रहे कार्यो से जनता पर अच्छा असर पड़ा है और वह खुश है जिससे परेशान होकर विपक्षी पार्टियों को आगे का समय धुँधला नजर आ रहा है, मगर आज से तकरीबन एक साल पूर्व बिहार विधान सभा के चुनाव में भाजपा की करारी हार के बाद विपक्षी पार्टियों का मनोबल थोड़ा बढ़ा है और उसे ऐसा लगने लगा है कि सभी विपक्षी पार्टियाँ मिलकर यदि केंद्र की मोदी सरकार के फैसले का विरोध किया जाए तो आने वाले दिनों में उन्हें सफलता मिल सकती है, पर हकीकत का एक पहलू यह भी है जिसे विपक्षी पार्टियाँ भूल रही हैं कि जातिवाद के जंजाल में बूरी तरह जकड़े बिहार में जातीय समीकरण की वजह से महागठबंधन बना और उसकी जीत हुई, मगर उसका खामियाजा एक ओर जहाँ बिहार के मुखिया को भोगना पड़ रहा है, वहीं दूसरी ओर बिहार की जनता को भी भुगतना पड़ रहा है जिसे वह अब महसूस कर रही है। बहरहाल इन मुद्दों को विपक्ष ने इस तरह तूल दिया कि जनता का एक बड़ा वर्ग विपक्ष ही हर गतिविधि को मोदी सरकार को तंग करने की सोची-समझी चाल मानने लगा जिसके परिणामस्वरूप भी नोटबंदी के नकारात्मक पहलुओं पर भी जनता विपक्षी पार्टियों की बात नहीं सुन रही और न सड़कों पर उतर पा रही हैं।

(59)प्रश्नः भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी एक सफल राजनीतिज्ञ तो थे ही, साथ ही वह एक सफल कवि भी थे। उनकी कविता की किन पंक्तियों से सुशासन को सबसे बड़ी प्रेरणा मिलती है और क्यों?

उत्तर: हाँ, भारत के पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी एक सफल राजनीतिज्ञ के अलावा एक सफल कवि भी थे। उनकी कविता 'राह कौन सी जाऊँ मैं?' की निम्न पंक्तियों से सुशासन की सबसे बड़ी प्रेरणा मिलती है –

"चौराहे पर लुटता चीर, प्यादे से पीट गया वजीर
चलूँ आखिरी चाल कि बाजी छोड़ विरक्ति सजाऊँ,
राह कौन सी जाऊँ मैं, सपना जन्मा और मर गया,
मधु ऋतु में ही बाग झर गया,
तिनके टूटे हुए बटोरूँ या नव सृष्टि सजाऊँ मैं
राह कौन सी जाऊँ मैं?'

जब कोई व्यक्ति जनता के पास पहुँचने में कठिन रास्ते को चुनता है तो उसे कई तरह की रूकावटों, उथल-पुथल और तूफान का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए। कभी न कभी प्रत्येक व्यक्ति इस दुविधा में पड़ सकता है कि क्या सभी बाधाओं का सामना करते हुए आगे बढ़ा जाए या पीछे लौट चला जाए। जिसके पास नहीं होता वह पहली बाधा के सामने आते ही लौटना पसंद करेगा, लेकिन मजबूत इच्छाशक्ति वाला नेता प्रत्येक बाधाओं को पार करते हुए आगे बढ़ना चाहेगा और अंततोगत्वा अपना निर्धारित लक्ष्य हासिल कर लेगा।

अटल बिहारी वाजपेयी इसी तरह के एक विजयी नेता रहे हैं जिन्होंने अपनी मजबूत इच्छाशक्ति के बल पर बाधाओं को पार करते अपने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त किया है जिससे इन्हें देशवासियों के हृदय में अमिट जगह मिली।

वाजपेयी जी की कविता 'राह कौन सी जाऊँ मैं' की उपर्युक्त पंक्तियों से सुशासन की सबसे बड़ी प्रेरणा मिलती है। सुशासन की अवधारणा का उद्भव भी कहीं और से नहीं, बल्कि अटल बिहारी वाजपेयी ही उसके जनक हैं। आपको याद होगा विजय जी, कि 7 सितंबर, 2000 में एशिया सोसाइटी को संबोधित करते हुए वाजपेयी जी ने कहा था कि हमारा विश्वास है कि व्यक्ति विशेष के सशक्तीकरण का अर्थ राष्ट्र का सशक्तीकरण है और यह तीव्र आर्थिक विकास और तीव्र सामाजिक परिवर्तन से आएगा।

25 दिसंबर यानी अटल जी के जन्म दिवस को केंद्र सरकार ने सुशासन दिवस के रूप में मनाने का फैसला इसलिए किया, क्योंकि वाजपेयी जी की तरह नरेन्द्र मोदी ने भी उनकी विरासत को आगे बढ़ाने और सुशासन के उनके सपनें को पूरा करने के लिए कदम बढ़ाया है जिसमें देश के विकास की रूपरेखा को तय करने में समाज के सबसे कमजोर और असुरक्षित वर्गों की समान भागीदारी की पहल की है। सुशासन के एक अंग के रूप में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने तभी तो भ्रष्टाचार मिटाने के लिए ठोस पहल के लिए नोटबंदी का फैसला किया। निश्चित रूप से उनका यह कदम अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा जलाई गई सुशासन की मशाल को आगे ले जाएगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

(६०)प्रश्नः दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में जब सरकार नागरिकों से उनके जमा-खर्च के पाई-पाई का हिसाब पूछ सकती है, तो इस देश के नागरिक राजनीतिक पार्टियों की कमाई की गुप्त-गंगोत्री को कोई इतिहास-भूगोल क्यों नहीं जान सकते हैं?

उत्तरः हाँ, आपका कहना सही है कि जब सरकार नागरिकों से उनके जमा-खर्च के पाई-पाई का हिसाब पूछ सकती है, तो देश के नागरिकों का भी यह अधिकार है कि वे राजनीतिक पार्टियों की चंदे के रूप में की गई कमाई की गुप्त-गंगोत्री के इतिहास-भूगोल की जानकारी प्राप्त करे, लेकिन राजनीतिक पार्टियाँ अपनी कमाई का हिसाब-किताब जनता के समक्ष रखने से कतरा रही हैं। आखिर तभी तो इन राजनीतिक पार्टियों को पारदर्शिता के नियमों और सूचना के अधिकार जैसी व्यवस्थाओं से उन्हें परहेज हो रहा है। आश्चर्य तो तब होता है जब नोटबंदी के जरिए कालेधन पर अंकुश लगाकर भ्रष्टाचार के खात्मे की बात तो की जा रही है, मगर कायदे से खुद को ऊपर रखने के कारनामें में अव्वल ये पार्टियाँ ही दिख रही हैं। ऐसे में लोगों के मन में पार्टियों के भ्रष्टाचार रोकने के वादों और दावों पर भरोसा कैसे बनेगा? निर्वाचन आयोग के आयुक्त ने भी चिंता जाहिर की है कि ऐसे ही चलता रहा, तो चुनावी प्रक्रिया से लोगों का विश्वास खत्म हो जाएगा।

चुनाव आयोग ने हाल ही में 200 कागजी राजनीतिक दलों की एक सूची बनाई है, जो चुनाव नहीं लड़तीं, मगर बटोरती हैं और भयंकर आयकर पर छूट लेती हैं। आयोग ऐसे दलों की आमदनी का लेखा जानने के लिए आयकर विभाग को चिट्ठी लिखने का मन बना चुकी है, क्योंकि आयोग को यह आशंका है कि ऐसे राजनीतिक दल कालेधन को स्फेद करने

का एक जरिया हैं। इस आशंका से चुनाव लड़ने और जीतने वाली पार्टियाँ भी परे नहीं हो सकती है। नियम की ढाल लेकर राजनीतिक दल इनकार की तलवार भाँजते हैं कि 20 हजार रुपए के चुनावी चंदे के श्रोत का खुलासा हम क्यों करे?

राजनीतिक दलों की बढ़ती कमाई को देखकर यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि कहीं नियमों के तिनके का सहारा लेकर काली कमाई का ऊँट तो नहीं छिपा जा रहा है? खबर तो यह है कि राष्ट्रीय दलों को वर्ष 2015 में 102 करोड़ रुपए का चंदा 20 हजार से ऊपरवाली श्रेणी में हासिल हुआ, फिर भी आखिर क्या वजह है कि वैसे अधिकांश दल अपनी कमाई के बारे में बताते हैं कि वह 20 हजार या इससे कम की नकदी में हासिल हुआ है?

एसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिॉर्म्स की रिपोर्ट के मुताबिक, 2004 से 2015 के बीच हुए 71 विधानसभा चुनावों के दौरान राजनीतिक दलों ने 3368.09 करोड़ रुपए जमा किए, जिसमें नकदी में मिला चंदा 63 प्रतिशत थे। नियमों की आड़ लेकर इस नकदी को राजनीतिक दलों ने अपने गुमनामी खातों में रखा। चूँकि कंपनियों से राजनीतिक दलों को सबसे ज्यादा चंदा हासिल होता है, सो चुनाव आयोग का यह सुझाव सराहनीय है कि राजनीतिक दलों के लिए दो हजार से ऊपर के चंदे का श्रोत बताना जरूरी बना दिया जाए। नोटबंदी के साथ जब आमजन के धन की बारीकी से जाँच की जा रही है, तब राजनीतिक चंदे के मामले में पुराने चलन को क्यों कायम रखा जा रहा है? वर्तमान राजग सरकार इस बारे में पहल करे।

(६१)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि जिस तरह की अनर्गल बातें राहुल गाँधी करके अपनी जग हँसाई कर रहे हैं यदि इसे उन्होंने शीघ्र ही बंद नहीं किया, तो इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि खुद काँग्रेसी उनके बोलने से डरने लगेंगे?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि जिस तरह की अनर्गल बातें राहुल गाँधी आए दिन कर रहे हैं जिससे उनकी जगहँसाई हो रही है। ऐसी स्थिति में इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि खुद काँग्रेसी भी उनके बोलने से डरने लगेंगे। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि राजनीति को दिशा देने निकले राहुल गाँधी कभी प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी पर सर्जिकल स्ट्राइक के बाद खून की दलाली का आरोप लगाते हैं तो कभी यह साबित करने की कोशिश करते हैं कि मोदी गरीबों के पैसे उद्योगपतियों को देने में

लगे हुए हैं। पिछले दिनों उन्होंने प्रधानमंत्री पर यह भी आरोप लगाया कि वह भ्रष्टाचार में लिप्त हैं जिससे सबूत उनके पास हैं, लेकिन उन्हें संसद में बोलने नहीं दिया जा रहा है। यदि वे संसद में बोलेंगे तो भूकंप आ जाएगा। जब लोगों ने उन्हें संसद से बाहर प्रधानमंत्री पर उद्योगपतियों से रिश्वत लेने का आरोपं सबूत के साथ रखने को कहा गया, तो पिछले दिनों राहुल गाँधी ने बिड़ला और सहारा समूहों से पैसा लेने की वही बात कहीं जिसे पहले अधिवक्ता प्रशांत भूषण ने सहारा और बिड़ला समूहों सरीखी कंपनियों की ओर से नरेन्द्र मोदी को पैसे देने के अपने आरोप को पुष्ट करने के लिए जो कथित दस्तावेज अदालत में पेश किए थे। उन्हें सुप्रीम कोर्ट ने सिरे से खारिज कर दिया था, लेकिन आश्चर्य है कि आखिर काँग्रेस पार्टी के किसी नेता ने राहुल गाँधी को यह सामान्य सी जानकारी क्यों नहीं दी? यह सवाल इसलिए कि प्रशांत भूषण को सुप्रीम कोर्ट ने यह मौका भी दिया था कि वह कुछ विश्वसनीय दस्तावेज लेकर आएँ, तो उनकी दलीलों पर गौर किया जाए, लेकिन प्रशांत भूषण अबतक सुप्रीम कोर्ट के समक्ष ऐसा कोई दस्तावेज पेश नहीं कर सके हैं जो जाँच के आदेश का आधार बन सके।

आपको मैं बता दूँ कि राहुल गाँधी जिन आरोपों को प्रधानमंत्री पर लगा रहे हैं दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल भी उन्हीं आरोपों को पहले ही दिल्ली विधानसभा में पेश कर चुके हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि राहुल गाँधी सचमुच केजरीवाल से राजनीति की सीख ले रहे हैं? यह सवाल इसलिए कि एक बार वह इसकी जरूरत जता चुके है। जिन तथाकथित दस्तावेजों के सहारे प्रशांत भूषण और अरविंद केजरीवाल ने मोदी पर आरोप मढ़े थे वे बीते कई वर्षो से मीडिया के विभिन्न हिस्सों में खास खबर का हिस्सा बनते रहे हैं। एक तथ्य यह भी है कि कथित तौर पर आयकर विभाग से हासिल किए गए ये दस्तावेज उस दौर के हैं जब केंद्र में काँग्रेस के नेतृत्ववाली सरकार सत्ता में थी।

यदि राहुल गाँधी इन्हीं आरोपों के सहारे संसद में भूकंप लाने के साथ-साथ मोदी सरकार को हिलाने जा रहे थे, तो उन्होंने अपनी जगहँसाई कराने के अलावा और कुछ नहीं किया। यह पहली बार नहीं जब राहुल गाँधी ने राजनीतिक अपरिपक्वता का परिचय दिया है। वह एक अरसे से ऐसा कर रहे हैं। खास बात यह कि अब वह रह-रहकर ऐसे बेतुके बयान देने लगे हैं। अब तो वह यह भी कहने लगे हैं कि बैंको में आम आदमी का पैसा सुरक्षित नहीं।

इसी संदर्भ में मैं आपको यह भी जानकारी दे दूँ कि एनजीओ कॉमन काउज ने इसी मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट में एक जनहित याचिका दायर की थी और पिछले सप्ताह यानी दिसंबर 2016 के तृतीय सप्ताह में अबके प्रधान न्यायाधीश जे.एस.खेहर ने इस मामले की सुनवाई करने से मना कर दिया था। साथ ही यह भी कहा था कि इसमें कोई साक्ष्य नहीं है, बल्कि प्रधानमंत्री के खिलाफ केवल आरोप हैं। खंडपीठ ने वकील प्रशांत भूषण से साक्ष्य देने को कहा, ताकि वह इस बारे में निर्णय कर सकें कि क्या याचिका स्वीकार की जा सकती है?

उल्लेख्य है कि गुजरात में बतौर मुख्यमंत्री के 12 वर्ष के कार्यकाल के दौरान नरेन्द्र मोदी के बारे में किसी तरह के घोटाले की कोई भनक नही सुनाई पड़ी। इसी प्रकार बतौर प्रधानमंत्री उनके अबतक के कार्यकाल में भी उनके तथा उनके मंत्रिमंडल के किसी मंत्री पर भ्रष्टाचार के कोई आरोप नहीं लगे हैं। ऐसे में भले ही भाजपा की फंडिंग भी अन्य राजनीतिक दलों की तरह होती हो, लेकिन भ्रष्टाचार के मामले में मोदी को एक किस्म की विश्वसनीयता हासिल है। राष्ट्रीय राजनीति में फिलहाल ऐसा किसी अन्य नेता के साथ नहीं है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि नोटबंदी के बाद नकदी में हो रही कमी की वजह से आयी दिक्कतों का जिक्र तो लोग कर रहें हैं, लेकिन वे प्रधानमंत्री का सहयोग भी करना चाहते हैं, क्योंकि उन्होंने यह मान लिया है कि प्रधानमंत्री ने भ्रष्टाचार के खिलाफ एक अच्छा कदम उठाया है। ऐसी स्थिति में जिस नेता का खुद या उसके परिवार के सदस्य का अगस्ता वेस्टलैंड घोटाले में नाम आ रहा हो, तो यह देश के अधिकांश लोगों को हजम नहीं होता, बल्कि उससे तो उनके खुद के साथ-साथ पार्टी की छवि भी खराब होती जा रही है और काँग्रेस नेताओं को उनके बोलने से डर लग रहा है।

काँग्रेस सबसे पुरानी पार्टी है। राहुल गाँधी को खुद की न सही कम-से-कम अपनी पार्टी और राजनीतिक परिवार की साख का ख्याल तो रखना चाहिए। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी पर ऐसे अनर्गल आरोप लगाकर वह जनता के साथ ही अदालत का भरोसा भी खोते जा रहे हैं, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले पर पहले ही कहा है कि कोई कंपनी या उद्योगपति अपनी डायरी या खाते में यदि किसी राजनीतिक दल के नेता का नाम लिख ले और कहे कि उसे अमूक राशि दी गई, तो इससे भ्रष्टाचार का मामला तबतक नहीं बनेगा जबतक वह साक्ष्य नहीं पेश करता है। प्रशांत भूषण और अरविंद

केजरीवाल ने भी यही आरोप प्रधानमंत्री पर लगाए थे, मगर अदालत द्वारा माँगे गए साक्ष्य आज तक पेश नहीं कर पाए। वैसे भी इस देश के लोगों को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की बेदाग छवि और कार्यक्षमता पर विश्वास है। जनता नरेन्द्र मोदी पर लगे भ्रष्टाचार के आरोप की कल्पना तक नहीं कर सकती।

(६२)प्रश्न: राजनीतिक दलों द्वारा अज्ञात चंदा प्राप्त करने पर कोई संवैधानिक या कानूनी पाबंदी नहीं है, बल्कि राजनीतिक दलों को विदेशी कंपनियों से चंदा लेने तथा आयकर से छूट मिल गई है। यह छूट राजनीतिक दलों को क्यों मिलनी चाहिए और क्या यह आचरण स्वस्थ लोकतंत्र के लिए पारदर्शिता की माँग का सरासर उल्लंघन नहीं है?

उत्तर: मैं आपकी इस बात से सहमत हूँ कि राजनीतिक दलों द्वारा अज्ञात चंदा प्राप्त करने पर कोई संवैधानिक या कानूनी पाबंदी नहीं है, लेकिन जनप्रतिनिधित्व कानून 1951 की धारा-29 सी के तहत चंदे की घोषणा की जरूरत के जरिए अज्ञात चंदे पर 'परोक्ष आशिंक प्रतिबंध' है, अगर कोई भी दल चंदे की घोषणा नहीं करता है। आशा के विपरीत राजनीतिक दलों को विदेशी कंपनियों से मिलने वाले चंदे पर रोकथाम कानून में ऐसे परिवर्तन कर दिए गये हैं कि अब विदेशी कंपनियों से चंदा लेने की भी छूट मिल गई है। बस जनता को भरमाने के लिए राजनीतिक दल एक-दूसरे को भरमाते और आरोप लगाते रहते हैं।

सियासी संगठनों की ईमानदारी की हकीकत विदेशी कंपनियों से चंदा लेने के कानून में भाजपा सरकार द्वारा किए गए संशोधन से भी यह बात साफ हो जाती है। मूल कानून में यह व्यवस्था थी कि 49 प्रतिशत से अधिक विदेशी भागीदारी वाली कंपनी से कोई भी राजनीतिक दल या उम्मीदवार, एनजीओ, सरकारी कर्मचारी यदि चंदा लेगा, तो उसे विदेशी सहयोग नियमन अधिनियम (एफसीआए) का उल्लंघन माना जाएगा। एसोसियेशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स ने 2011 में दिल्ली उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर कहा था कि भाजपा और काँग्रेस ने वेदांता नाम की कंपनी से चंदा लेकर एफसीआरए कानून तोड़ा है। इस मामले में अदालत के आदेश के खिलाफ काँग्रेस ने सर्वोच्च न्यायालय में अपील की थी, जिसे हाल ही में मूल कानून में बदलाव के बाद वापस ले लिया गया। क्या इससे स्पष्ट नहीं है कि चंदा लेने के मामले में दोनों राष्ट्रीय राजनीतिक दल एक ही राह पर हैं।

इसी प्रकार आयकर कानून, 1961 की धारा 13ए के मुताबिक राजनीतिक 'दलों को आयकर छूट मिली हुई है। चुनावों में कालेधन के

इस्तेमाल पर रोक लगाने को लेकर चुनाव आयोग ने सरकार से अनुरोध किया है कि राजनीतिक दलों को 2000 रुपए और इससे ज्यादा के अज्ञात चंदे पर पाबंदी के लिए कानून में संशोधन किया जाए। साथ ही आयोग ने यह भी प्रस्ताव दिया है कि सिर्फ उन्हीं राजनीतिक दलों को आयकर में छूट मिलनी चाहिए जो चुनाव लड़ते हों और लोकसभा या विधानसभा चुनावों में जीती हों। यहाँ तो स्थिति यह है कि 1900 निबंधित राजनीतिक पार्टियों में से 400 पार्टियाँ आज तक चुनाव लड़ी ही नहीं, केवल चंदे प्राप्त करने और आयकर से छूट के लिए राजनेता कालेधन छिपाने के लिए राजनीतिक पार्टियाँ गठित कर ली हैं। इसलिए यह छूट राजनीतिक दलों को नहीं मिलनी चाहिए, क्योंकि यह आचरण स्वस्थ लोकतंत्र के लिए पारदर्शिता की माँग का सरासर उल्लंघन है।

(६३)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि एक प्रत्याशी को दो सीटों से चुनाव लड़ने की छूट को समाप्त करने या फिर उसके दोनों सीटों से जीतने की स्थिति में रिक्त सीट के उपचुनाव का खर्च उठाने की जिम्मेदारी उसी पर डालने का प्रावधान बनाने की जो सिफारिश चुनाव आयोग ने की है, वह चुनाव सुधारों की दिशा में एक बढ़ा हुआ कदम है?

उत्तर: चुनाव आयोग ने सिफारिश की है कि एक प्रत्याशी को दो सीटों से चुनाव लड़ने की छूट को समाप्त किया जाय और साथ ही यह भी कहा है कि उसके दोनों सीटों से जीतने की स्थिति में रिक्त सीट के उपचुनाव का खर्च उठाने की जिम्मेदारी उसी पर डालने का प्रावधान किया जाए। निश्चित रूप से यह चुनाव सुधार की दिशा में एक बढ़ा हुआ कदम माना जाएगा, मगर यह सिफारिश सीमित प्रभावशाली है।

दरअसल, राजनीतिक दलों को जो चंदा मिलता है उसका न तो कोई हिसाब-किताब है और सूचना के अधिकार के तहत लाने में भी राजनीतिक दल आनाकानी कर रहे हैं। यही नहीं जिन पर किसी किस्म की सार्वजनिक देनदारी बकाया है उन्हें चुनाव लड़ने के अयोग्य ठहराया जाए और चुनाव लड़ने से उन्हें भी रोका जाए जो संगीन आपराधिक मामलों का सामना कर रहे हैं और जिनके खिलाफ आरोप पत्र भी दाखिल हो चुका है, लेकिन राजनीतिक दलों का तर्क है कि दोषी साबित न होने तक हर किसी को निर्दोष समझा जाना चाहिए। सच तो यह है कि राजनीतिक दल खुद को किसी तरह के सुधारों का हिस्सा बनाने के लिए तैयार नहीं। राजनीतिक दलों को चुनाव सुधारों के साथ-साथ राजनीतिक सुधारों की दिशा में भी आगे

बढ़ना चाहिए, क्योंकि इसका कोई औचित्य नहीं कि प्रत्येक क्षेत्र में तो सुधार हों, लेकिन हर क्षेत्र को प्रभावित करने वाली राजनीति पुराने तौर-तरीकों से ही संचालित होती रहे।

(६४)प्रश्नः क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि चुनाव सुधार के पक्षी की गर्दन राजनीतिक दलतंत्र ने दबोच रखी है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि चुनाव सुधार के पक्षी के गर्दन राजनीतिक दलों ने दबोच रखी है, क्योंकि चुनाव सुधार के प्राण राजनीतिक सुधारों में बसते हैं, मगर राजनीतिक दल नहीं चाहते कि चुनाव सुधार हों। चुनाव सुधारों पर 1993 में बनी वोहरा समिति ने संसदीय संस्थाओं में अपराधियों के प्रवेश पर गंभीर चिंता प्रकट की थी। इसके पूर्व 1990 में चुनाव सुधारों पर बनी गोस्वामी समिति ने कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए थे। संप्रति विधि आयोग ने अपराधियों को चुनाव से रोकने संबंधी प्रस्ताव बनाए हैं। पाँच साल या ज्यादा की सजा वाले अपराधों के आरोपी को चार्जशीट लगने के बाद अयोग्य घोषित करने का सुझाव है। राजनेताओं के विरूद्ध चल रहे मुकदमों की सुनवाई के लिए फास्ट ट्रैक न्यायालय की सिफारिश है। फास्ट ट्रैक कोर्ट से दोषी लोगों के ऊपर के न्यायालयों में अपील के बावजूद अयोग्य घोषित करने के प्रस्ताव हैं।

संसद और विधानमंडल भारतीय लोकतंत्र के भाग्य विधाता हैं। यहाँ भी अपराधियों की उपस्थिति राष्ट्रीय बेचैनी है। चुनाव आयोग ने भी एक व्यक्ति के दो सीटों से चुनाव लड़ने की व्यवस्था की समाप्ति का सुझाव दिया है। दोनों सीटों से जीतने की स्थिति में एक सीट के उपचुनाव का खर्च उसी उम्मीदवार पर डालने का प्रस्ताव है जिसे राजनीतिक दलों की बैठक बुलाकर पास कराना है। चुनाव सुधार का मूल अर्थ है समूची दल प्रणाली का आमूल-चूल रासायनिक परिवर्तन करना। दलतंत्र जनतंत्र का राजनीतिक उपकरण है और चुनाव दलतंत्री लड़ाई के कुरूक्षेत्र हैं। दल जिताऊ उम्मीदवार की खोज में माफिया का चयन करते हैं, क्योंकि वे ही चुनाव जीतने में प्रभावी होते हैं।

(६५)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि केंद्र में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में सरकार बनने के बाद आम जनता का सरकार और उसके नेतृत्व पर भरोसा वापस लौटा है? और यदि भरोसा वापस लौटा है तो क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि वर्ष 2014 में हुए लोकसभा चुनाव के बाद

जब केंद्र में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में सरकार बनी, तब आम जनता का सरकार और उसके नेतृत्व पर भरोसा वापस लौटा है, क्योंकि विरासत में मिली जर्जर अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए सरकार ने अनेक आर्थिक सुधार किए। मई 2014 के बाद जितने भी आर्थिक फैसले लिए गए वे 1992 के बाद 22 साल तक नहीं लिए गए। अर्थव्यवस्था को पारदर्शी बनाने के लिए आर्थिक मामलों में सरकारी दखल को कम किया गया जिससे ब्राडबैंड, कोयला खादानों की निलामी बिना किसी गफलत के हुई और सरकारी खजाने को भारी लाभ हुआ। नोटबंदी के बड़े फैसले से जहाँ करोड़ों का कालाधन अर्थव्यवस्था में वापस लाया, वहीं अर्थव्यवस्था के डिजिटलीकरण को बल मिला। यह नोटबंदी और अन्य सुधारों का ही नतीजा है कि 90 लाख से भी अधिक नए करदाता बढ़े हैं और राजस्व में 18 प्रतिशत का इजाफा हुआ है।

इसी प्रकार गरीब कल्याण की योजनाओं में होने वाले भ्रष्टाचार को खत्म करने के लिए डीबीटी कानून बनाकर 224 सरकारी योजनाओं को इसके दायरे में लाया गया जिससे तकरीबन 52 हजार करोड़ के भ्रष्टाचार को रोका जा सका। यही नहीं आर्थिक सुधारों से सरकारी खजाने में जो अतिरिक्त राजस्व आया उससे मोदी सरकार ने जनकल्याण के कामों को एक नया आयाम दिया। पहले की सरकारों की मुफ्तखोरीवाली योजनाओं से हटकर मोदी सरकार ने गरीबों को ऐसे लाभ दिए जिससे उनमें आत्मविश्वास बढ़े और उनका आर्थिक और सामाजिक स्वावलंबन हो सके। उज्ज्वला योजना से दो करोड़ महिलाओं को रसोई गैस, साढ़े चार करोड़ शौचालयों, 14 हजार गाँवों के बिजलीकरण, आसान होम लोन, फसल बीमा, कृषि उत्पाद के बेहतर दाम और सस्ता स्वास्थ्य बीमा योजना जैसे तमाम प्रयासों के द्वारा मोदी सरकार ने गरीबों को राहत दी है।

स्वतंत्र भारत में छोटे उद्यमियों और गरीबों को बैकिंग प्रणाली का लाभ पहली बार मोदी सरकार ने मुद्रा बैंक योजना के जरिए दिया। इसमें 7,64,11,764 लोगों को 3,28,452 करोड़ रुपए का कर्ज मिला है जिससे करोड़ों की संख्या में रोजगार का सृजन हुआ है।

मोदी सरकार में अंतरराष्ट्रीय जगत में भी भारत का सम्मान तेजी से बढ़ा है। आज नरेन्द्र मोदी की गिनती दुनिया के सर्वमान्य और लोकप्रिय नेता के रूप में होती है। अमेरिका, रूस, यूरोप, एशिया, अफ्रिका जहाँ कहीं भी मोदी गए वहाँ अमिट छाप छोड़ आए। आज दुनिया के हर देश में प्रवासी

भारतीय को सम्मान से देखा जाता है। यह भारत की बढ़ती अंतरराष्ट्रीय धाक और मोदी सरकार के प्रयासों का ही नतीजा है कि यमन, लीबिया, इराक और सीरिया में फँसे हजारों भारतीयों को सुरक्षित निकाला जा सका।

पिछले वर्ष 2016 के सितंबर में सीमापार सर्जिकल स्ट्राइक और अभी हाल में पाकिस्तानी बंकरों को ध्वस्त करके सरकार ने घुसपैठ करने वाले आतंकियों को सख्त संदेश दिया है। इन कार्रवाईयों से न सिर्फ सैन्य शक्ति का मनोबल मजबूत हुआ है; बल्कि हर भारतीय का सम्मान बढ़ा है।

सवा सौ करोड़ आबादीवाले देश में अभी भी समस्याएँ हैं और विकसित राष्ट्र बनने के लिए अभी लंबा रास्ता तय करना है, लेकिन इतना तो मानना ही होगा कि नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में देश को एक निश्चित दिशा मिली है जिसकी वजह से देश का भविष्य बेहतर दिखता है। स्वाभाविक है कि इन सभी कारणों से देश की आम जनता का प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और उनके नेतृत्ववाली केद्र सरकार पर भरोसा वापस लौटा है।

(६६)प्रश्नः संसद के २०१६ के शीतकालीन सत्र से हमारे नेता क्या कुछ सबक लेंगे और क्या यह उम्मीद की जा सकती है कि भविष्य में ऐसा नहीं होगा?

उत्तर: संसद के 2016 के शीतकालीन सत्र में भारी शोर-शराबे, आरोप-प्रत्यारोप और हंगामें से कोई ठोस काम नहीं हो सका और सत्र समाप्त भी हो गया जिसे लोकतंत्र के लिए शुभ कतई नहीं माना जा सकता कारण कि संसद सत्र के संचालन के लिए धन जनता की गाढ़ी कमाई से आता है जो पानी की तरह बह गया आखिर इसके लिए कौन जिम्मेदार है? निश्चित रूप से इसके उत्तर में सत्तापक्ष एवं विपक्ष के सभी सांसदों को जिम्मेदार ठहराया जाएगा। यह बात ठीक है कि संसद के संचालन की ज्यादा जिम्मेदारी सत्ता पक्ष की है, मगर विपक्ष की जवाबदेही भी कम नहीं है।

भारतीय जनता पार्टी के बुजुर्ग नेता लाल कृष्ण आडवाणी अत्यंत व्यथित हुए और उन्होंने अपनी पीड़ा को यह कहकर व्यक्त किया कि इसके लिए संसदीय कार्यमंत्री और लोकसभाध्यक्ष सीधे तौर पर जिम्मेदार हैं। मैं भी यह मानता हूँ कि संसदीय परंपराओं और मर्यादाओं के प्रति संवेदनशील हर सांसद और देशवासी की यह पीड़ा होगी, मगर मेरा मानना यह है कि जब यह इस देश के एक नागरिक भर नहीं है, तो माननीय आडवाणी जी केवल इस देश के एक नागरिक भर नहीं हैं, बल्कि वे एक सांसद भी हैं और इस देश के पूर्व उपप्रधानमंत्री भी रह चुके हैं। इस हैसियत से उन्होंने अपने

अनुभव और बुजुर्गियत का इस्तेमाल क्यों नहीं किया? वे भी तो प्रधानमंत्री, संसदीय कार्यमंत्री, लोकसभाध्यक्ष, राज्यसभा के सभापति तथा विपक्ष के नेताओं से संसद को चलाने के लिए बातचीत कर सकते थे, पर ऐसा उन्होंने कहाँ किया, केवल हंगामें का तमाशा देखते रह गए और अपनी भड़ास उन्होंने पीड़ा के रूप में निकाली। आखिर इसका क्या संदेष्ठा जनता में गया? यह भी चिंतन का विषय है। जनता इन सब विषयों पर उत्तर जानना चाहती है और हमारे माननीय सांसदों एवं राजनेताओं को भी इससे सबक लेना चाहिए।

(६७)प्रश्न: भारत जैसे विशाल संसदीय लोकतांत्रिक देश में संसद का न चलना क्या अत्यंत निराशाजनक नहीं है?

उत्तर: हाँ, भारत जैसे विशाल संसदीय लोकतांत्रिक देश में संसद का न चलना वास्तव में अत्यंत निराशाजनक है।

भारत को आजाद हुए सत्तर साल गुजर चुके हैं। पूरे विश्व में भारत का ही लिखित संविधान सबसे बड़ा है और यहाँ विशाल संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली है। यहाँ के भारतीय संविधान में राजनैतिक संस्थाओं को एक उत्तरदायित्व की जिम्मेदारी दी गयी है जिसमें सबसे बड़ी जिम्मेदारी भारतीय संसद को दी गयी है।

'पार्लियामेंट' एक फ्रेंच शब्द है जिसका अर्थ है कि वह सदन जहाँ विचारों का आदान-प्रदान हो और इससे जो निष्कर्ष निकले उसके आधार पर सरकार की नीतियों का कार्यान्वयन हो। लोकतांत्रिक देशों में ऐसा ही होता है, परंतु दुख इस बात का है कि इस विशाल देश में संसद ठप है और इसके प्रधानमंत्री कहे कि उन्हें संसद में बोलने नहीं दिया जा रहा है तथा काँग्रेस जैसे राष्ट्रीय पार्टी के उपाध्यक्ष राहुल गाँधी भी कहे कि उन्हें भी बोलने नहीं दिया जा रहा है और यदि उन्हें बोलने दिया जाए तो भूकंप आ जाएगा।

यही नहीं इस देश के राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने भी कई बार सार्वजनिक मंचों से इस बात पर चिंता जताई है कि जिस तरह संसद में अराजकता फैल रही है उससे अंत में भारत के लोकतंत्र को गहरा आघात लगेगा। संसद टकराव के कारण अखाड़े में बदल चुकी है और समय आ गया है कि सभी राजनीतिक दल और जनता इस बारे में गंभीर चिंतन करें। राष्ट्रपति ने वर्ष 2016 में दूसरी बार इस बात को उठाया है। इसी साल के फ़रवरी के बजट सत्र का आरंभ करते हुए उन्होंने याद दिलाया था - 'लोकतांत्रिक मिजाज का तकाजा बहस एवं विमर्श है, न कि विघ्न और

व्यवधान।' उन्होंने सांसदों से कहा था, संसद चर्चा के लिए है, हंगामें के लिए नहीं। उसमें गतिरोध नहीं होना चाहिए।

कहा जाता है कि हंगामा भी संसदीय राजनीति का एक तरीका है, लेकिन यह तरीका तभी इस्तेमाल में लाया जाता है, जब सारे विकल्प खत्म हो चुके हों। पहले यह आखिरी विकल्प होता है, पर आज इस संसदीय कर्म का विकल्प मान लिया गया है। आखिर तभी तो इस वर्ष 2016 में 16 नवंबर से शुरू संसद सत्र को 16 दिसंबर तक चलना था, मगर अबतक हालात ऐसे हैं कि कार्यवाही स्थगित करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं होता।

नोटबंदी को लेकर लोकसभा में यही तय नहीं हो पाया कि चर्चा किस नियम के तहत हो। पाकिस्तान की ओर से लगातार हो रही आतंकी गतिविधियों की फिक्र सांसदों को नहीं है। इन सब बातों को छोड़कर जन–प्रतिनिधि शोर मचा रहे हैं और संसद के दोनों सदनों में विपक्ष के सांसद किसी न किसी बहाने संसद को नहीं चलने दे रहे हैं और अध्यक्ष तथा पीठासीन अधिकारियों के समझाने–बुझाने के बावजूद विपक्ष के नेता मानने को तैयार नहीं हुए। इस तरह जनता की गाढ़ी कमाई के करोड़ों रुपए प्रतिदिन पानी में चले गए और देश आवश्यक सूचना पाने से वंचित रह गया। सबसे बड़ी बात तो यह कि जब संसद चलेगा ही नहीं, तो विधेयक कैसे पारित होगा? आश्चर्य तो तब होता है जब आज के सदन में बहुमत की आवाज को अल्पमत की आवाज से दबाया जा रहा है जिसे निश्चित रूप से निराशा और चिंताजनक कहा जाएगा। लोकतंत्र के मंदिर संसद को शिष्टाचार और मर्यादापूर्ण व्यवहार के लिए जाना जाना चाहिए, लेकिन जब उस मंदिर में रहने वाले लोग ही इसकी मर्यादा का ख्याल न रखें तो इससे शर्मनाक बात कुछ और नहीं हो सकती।

(६८)प्रश्नः आप तो बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के विगत चार दशक से कट्टर समर्थक रहे हैं। इस लिहाज से कृपा मुझे यह बताएँ कि बिहार में अपने सहयोगियों से विपरीत नोटबंदी का समर्थन करने के पीछे नीतीश कुमार की क्या मंशा रही है?

उत्तरः हाँ, आपने सही कहा कि बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का मैं विगत चार दशक से कट्टर समर्थक रहा हूँ। मुझे अच्छी तरह याद है जब महालेखाकार, बिहार, राँची के कार्यालय से सन् 1973 में कार्यालय, महालेखाकार, बिहार, पटना में मेरा स्थानांतरण हुआ, तो राजनीति में मेरी

दिलचस्पी रहने की वजह से राजनीति के किसी ऐसे खिलाड़ी को सहयोग करने और उसे खाद-पानी देने की इच्छा हुई, जो और नेताओं से भिन्न हों और बिहार को विकास के पथ पर ले जाने की जिसकी इच्छा प्रबल हो, जिसमें उन दिनों की राजनीति में नीतीश कुमार मेरी नजर में औरों से भिन्न थे और जे.पी. आंदोलन की उपज भी। कुछ इन्हीं तथ्यों के आलोक में 1975 से ही इनका सहयोग करना मैंने अपना कर्तव्य समझा और 1977 के बिहार विधान सभा के चुनाव में जब नालंदा के हरनौत विधानसभा के वे उम्मीदवार हुए, तो उनके प्रचार-प्रसार में मैं लग गया और गाँव-गाँव में सभा आयोजित कर उनके बारे में मतदाताओं को इनकी विशेषताओं से वाकिफ कराने लगा, जबकि उस समय भी उनसे व्यक्तिगत रूप से मेरी जान-पहचान नहीं थी और उसकी आवश्यकता भी मुझे नहीं थी।

फिर तो आगे चलकर, मेरा ऐसा दावा है कि राजपत्रित अधिकारी रहते हुए बिना नौकरी की फिक्र किए मैं नीतीश कुमार का साथ देता रहा और इनका खाद-पानी बना, बिना कोई लालसा के। यहाँ तक कि 1994 में आयोजित अखिल भारतीय चेतना महारैली के वक्त इन्हें राष्ट्रीय जनता दल से अलग करने में भी मेरी अहम भूमिका रही। अलग होने के बाद से अब तक पाँच बार वे मुख्यमंत्री की गद्दी संभाल रहे हैं, मगर 2015 में हुए बिहार विधानसभा चुनाव में जब से इनके कदम लड़खड़ाए और वह भी कुर्सी के मोह में, तो वह मुझे रास नहीं आया, क्योंकि जिस व्यक्ति की कभी कहा जाए, तो राष्ट्रीय ही नहीं अंतरराष्ट्रीय लोकप्रियता प्राप्त थी उसकी छवि का ग्राफ जितना नीचे गिरा है, उससे आप भी महसूस कर रहे होंगे।

जहाँ तक अपने सहयोगियों से विपरीत नोटबंदी का समर्थन के पीछे नीतीश कुमार की मंशा का सवाल है उसके बारे में मैं आपका बताऊँ कि बिहार की राजनीति में इन्हें चाणक्य वैसे ही नहीं कहा जाता है। कुछ तो इनकी खुबियाँ रही होंगी। यह तो आज भी लोग मानते हैं कि बिहार के और नेताओं से नीतीश कुमार भिन्न हैं और इनकी कुछ विशेषताएँ रही हैं, मगर जिस प्रकार और सभी राजनेताओं को कुर्सी की लालच और कुर्सी मिल जाने पर उसके प्रति व्यामोह हो जाता है उसके शिकार वे भी हो गए और आज स्थिति यह है कि कुर्सी के फेर में इनकी छवि आमजन में वह नहीं रह गई हैं जो पूर्व में थी।

केंद्र सरकार द्वारा आठ नवंबर, 2016 की आधी रात से नोटबंदी के कड़े फैसले लिए गए उसके बाद से तो मौसम के सियासी होने से

सियासी अंगीठी भी गर्म हो गई। इस गर्म अंगीठी में जब सभी राजनीतिक दलों और उसके नेताओं ने अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकनी शुरू कर दी तब भला जद(यू) के राष्ट्रीय अध्यक्ष और बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार क्यों नीछे रहते?

मगर राजनीति के चाणक्य होने के नाते इन्होंने सियासी फायदा उठाने के मकसद से सोच-समझ कर नोटबंदी के फैसले का समर्थन किया और अपने पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा विपक्षी नेताओं के साथ सुर में सुर मिलाने के लिए आजाद कर दिया।

यह बात किसी से अब छिपी नहीं रह गई है कि नरेन्द्र मोदी का विमुद्रीकरण का फैसला जोखिम के इम्तिहान में कामयाब इस माने में रहा है, क्योंकि इस देश की आमजनता अपनी परेशानी के बावजूद इस फैसले से खुश है। इसका असर उत्तर प्रदेश तथा अन्य चारों राज्यों में हो रहे विधानसभा चुनावों में ही केवल सीमित नही रहेगा, बल्कि 2019 के लोकसभा चुनाव में भी नजर आएगा। जल्दबाजी में जिस प्रकार ममता बंनर्जी ने नरेन्द्र मोदी के इस कड़े फैसले का मरते दम तक विरोध करते हुए नोटबंदी के फैसले को पूरी तरह वापस लेने की माँग की और केंद्र पर उनसे सत्ता पलट के लिए सेना का इस्तेमाल करने तक का आरोप लगा दिया, उसी प्रकार दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल ने इसे 8 लाख करोड़ रुपए का घोटाला कहा, तो काँग्रेस ने इसे एक और 'फेयर एंड लवली' या 'पेटू मोदी' यानी पेटीएम पर व्यंग्य करते हुए तमाशा कहा। इसी प्रकार बसपा सुप्रीमों मायावती और सपा सुप्रीमो मुलायम सिंह यादव ने भी उत्तरप्रदेश चुनाव के वास्ते पैसे की फिक्र में थोड़ा और समय की माँग की। सच तो यह है कि विशाल स्तर पर जनता का समर्थन, अधिकांश अर्थशास्त्रियों एवं विशेषज्ञों का समर्थन और कई अंतरराष्ट्रीयों एवं प्रमुखों के मिल रहे समर्थन को अगर विपक्षी नहीं देख रहे हैं, तो क्या यह समझा जाए कि मोदी के इस सकारात्मक कदम से विपक्षी दलों पर अस्तित्व का संकट आ गया है जो उनकी बौखलाहट से झलक रहा है।

अलबत्ता बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश जी कौटिल्य के रास्ते पर चलने वाले लगे और बड़े धैर्य के साथ कि मोदी जी भ्रष्टाचार और कालेधन का खात्मा करें और बेनामी संपत्ति पर भी इसी तरह की कार्रवाई की जाए। नीतीश अभी पटना के क्षत्रप हैं, लेकिन उनकी नजर दिल्ली पर लगी है ओर होना भी चाहिए, मगर अपनी राजनीतिक स्थिति देखकर। अन्यथा देवगौड़ा या

गुजराल जैसे अस्थायी प्रधानमंत्री बनने से क्या लाभ? नीतीश जी को अभी लगता है कि नरेन्द्र मोदी बहुत खतरनाक रास्ते पर चल पड़े हैं, लेकिन इस देश का आम आदमी उनके साथ है। इसलिए नरेन्द्र मोदी के इस फैसले का विरोध करना उन्होंने वाजिब नहीं समझा। हाँ, नरेन्द्र मोदी की नाकामी और लोगों की नाराजगी तक इंतजार करना ही नीतीश जी ने मुनासिब समझा। यदि नरेन्द्र मोदी अपने नोटबंदी के फैसले में कामयाब नहीं होते हैं तो नीतीश जी उनपर आसानी से आरोप लगाने में सक्षम हो जाएँगे और फिर नरेन्द्र मोदी के मुकाबले में 2019 के लोकसभा चुनाव के बाद प्रधानमंत्री के प्रबल दावेदार के रूप में उपस्थित होंगे, लेकिन दिक्कत यह है कि विपक्षी खेमे के भीतर ही कड़ा मुकाबला शुरू हो गया है। काँग्रेस तो पहले से ही ताल ठोककर राहुल गाँधी को प्रधानमंत्री पद पर उतारने के लिए उतावली है। फिर ममता बनर्जी आखिर क्या सोचकर बिहार में आकर नोटबंदी के खिलाफ धरना पर बैठ गई? हालांकि उन्हें मुँह की खानी पड़ी और निराशा एवं हताशा में क्या-क्या बोल गईं। वह तो जीएसटी का रास्ता रोकने की भी धमकी दे गयीं और कसम खायी कि मोदी को सत्ता ही नहीं, बल्कि राजनीति से भी बाहर कर देंगी। काँग्रेस का सूरज डूबता माना जा रहा है। कुछ इन्हीं सब तथ्यों के आलोक में नीतीश जी ने बहुत सलीके से नोटबंदी का समर्थन किया है 2019 के लोकसभा चुनाव पर नजर रखते हुए। मेरी शुभकामना।

(६९)प्रश्न : मौजूदा दौर के राजनेताओं को जयललिता से क्या सबक लेना चाहिए ?

उत्तर: 2000 की शुरुआत में जयराम जयललिता अपनी सभाओं में कहती थीं कि 'आपके सामने आपकी बहन खड़ी है', लेकिन 2012 में सत्ता में आने के बाद वे 'अम्मा' बन गईं। एक देवी जैसी जो परोपकारी भी है उनका दुख-दर्द भी जानती है। जयललिता ने राजनीति गरीबों के तात्कालिक लाभ के लिए समर्पित कर दिया। उनकी योजनाओं में 'अम्मा कैंटीन' का विपक्ष के पास भी कोई जवाब नहीं था। इस कैंटीन में सुबह के नाश्ते में 2 रुपए की दो इडली, सांभर के साथ मिलती है। साथ ही 3 रुपए में दो चपातियाँ भी मिलती हैं, जिनके साथ दाल मुफ्त होती है। कैंटीन में 5 रुपए में प्लेटभर 'लैमन राइस' या 'कढ़ी राइस' सांभर के साथ मिलता है।

मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति में ऐसे समर्थक किसी दूसरे नेता के नहीं होंगे जैसे जयललिता के हुए। भारत की राजनीति में सामाजिक सुरक्षा की बातें ज्यादा नहीं होतीं। जो नेता अपने राज्य के लोगों को मुफ्त में

सुविधाएँ देते भी हैं, उनपर आरोप लगते हैं कि वे गरीबों का तुष्टीकरण कर रहे हैं। मुफ्त में चीजें बाँटकर लोगों का वोट बैंक हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे ही आरोप जयललिता पर भी लगे थे, लेकिन जयललिता ने अपने राज्य में गरीबों की भलाई के लिए जो योजनाएँ चलायी उसने तमिलनाडु को सामाजिक तौर पर भारत के सबसे विकसित एवं समृद्ध राज्यों में शामिल कर दिया। क्या इससे राजनेताओं को सबक नहीं लेना चाहिए?

सच तो यह है कि जब लोगों के पेट भरे होते हैं तो सामान्य तौर पर उन्हें अपराध करने की जरूरत नहीं पड़ती। इसी तरह तमिलनाडु में बच्चों के खिलाफ अपराध की बहुत कम वारदात सामने आती हैं। इस मामले में तमिलनाडु दूसरे नम्बर पर है, जबकि पहले नम्बर पर मणिपुर है।

जयललिता द्वारा गरीबों के हितों में चलाई गई योजनाओं ने तमिलनाडु के लोगों का जीवन स्तर बेहतर किया और इसी वजह से गरीबों के बीच अम्मा के नाम से जानी जाती हैं। तमिलनाडु में दलितों के खिलाफ अपराध के भी कम ही मामले सामने आते हैं। इसमें तमिलनाडु तीसरे नम्बर पर है। तमिलनाडु में महिलाओं के खिलाफ अपराध सबसे कम होते हैं। ये सब कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिसकी वजह से तमिलनाडु की पाँच बार मुख्यमंत्री रहीं जयललिता द्वारा वहाँ के खासतौर पर गरीबों एवं महिलाओं के लिए चलाई गई योजनाओं के, जिनसे देश के अन्य राज्यों के मुख्यमंत्रियों एवं अन्य राजनेताओं को सबक लेना चाहिए।

(७०)प्रश्नः क्या इस्लाम में कोई ऐसी सत्ता नहीं है जो ये दावे के साथ कह सके कि वो सारे मुसलमानों के मतों का प्रतिनिधित्व करती हैं?

उत्तरः नहीं, इस्लाम में कोई ऐसी सत्ता आज तक नहीं आई जो ये दावे के साथ कह सके कि वह सारे मुसलमानों के मतों का प्रतिनिधित्व करती है। सदियों से अनगिनत संगठन या राजनीतिक पार्टियाँ भी बनीं जो अपने को मुस्लिम के हितों का रक्षक मानती रही हैं, मगर चाहे वो जमात-ए-इस्लामी हो या मुस्लिम लीग इनमें से कोई भी भारत में रह रहे सारे मुसलमानों के समर्थन का दावा नहीं कर सकता।

आप याद करें राजनीतिक दल मुस्लिम लीग और उसके पाकिस्तान की माँग का इतिहास। 1946 से पहले उसे मुस्लिमों का समर्थन कभी नहीं मिला। इसके पीछे तथ्य यह भी हो सकता है कि मुस्लिम लीग अपने समय के बड़े जमींदारों और उच्च मध्यवर्ग की पार्टी थी। आज भी जो संगठन अपने को मुसलमानों का प्रतिनिधि घोषित करते हैं उनमें से

ज्यादातर संगठन कुछ खास समूह के लोगों के द्वारा निर्मित दबाव समूह हैं जिनका आम लोगों के हितों से कोई खास नाता नहीं होता। ऐसे संगठनों की विविधता ऐसे देखी ज़ा सकती है कि आज अगर मुस्लिम पर्सनल ला बोर्ड है तो मुस्लिम वीमेन पर्सनल लॉ बोर्ड और शिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड भी हैं। जहाँ तक ऑल इंन्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड का सवाल है वह तीन तलाक की व्यवस्था में सुधार की मुस्लिम महिलाओं की माँग का विरोध कर रहे हैं। वैसे भी इस बोर्ड की बात को मुस्लिम समुदाय की सामूहिक राय नहीं कही जा सकती। दरअसल, इस्लाम में कोई धर्मगुरु नहीं है और ना ही कुरान और हदीश को छोड़ कोई और सत्ता।

(७१)प्रश्न: राजनीति जब ओछी राजनीति का पर्याय बन जाए, तो क्या उसके गिरने की सीमा नहीं रहती और किस तरह?

उत्तर: हाँ, जब राजनीति ओछी राजनीति का पर्याय बन जाए, तो उसके गिरने की सीमा नहीं रह जाती। आपने देखा नहीं इसका एक ज्वलंत उदाहरण तो प. बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने पिछले दिनों सेना को बदनाम करने की कोशिश कर प्रस्तुत किया। बात दरअसल यह थी कि कोलकाता समेत प. बंगाल के कुछ अन्य शहरों में सेना के रूटीन अभ्यास पर ममता बनर्जी ने यह कहकर देश को गुमराह किया कि इस बारे में उनके प्रशासन को कोई सूचना नहीं दी गई। उनका यह भी कहना था कि सचिवालय के निकट टोल प्लाजा पर जवानों की मौजूदगी उनकी सरकार का तख्ता पलटने की कोशिश है। क्या यह अकल्पनीय नहीं है कि इतना हास्यास्पद और शरारत भरा बयान एक मुख्यमंत्री की ओर से दिया गया? उन्होंने टोल प्लाजा पर सेना की मौजूदगी तक जिस तरह सचिवालय में ही चौबिस घंटे तक रहने का ऐलान किया उसे क्षुद्र राजनीतिक आचरण के अलावा और कुछ नहीं कहा जा सकता।

सबसे शर्मनाक तो यह है कि अपने मुख्यमंत्री की गलतबयानी को सही ठहराने के लिए प. बंगाल पुलिस ने भी कपटपूर्ण व्यवहार किया। राज्य पुलिस ने सेना की पूर्व सूचना से अनभिज्ञ होने का दिखावा कर यह साबित कर दिया कि उसने खुद को तृणमूल काँग्रेस की शाखा में तब्दील कर दिया।

प. बंगाल के कोलकाता में सेना के रूटीन अभ्यास पर लोकसभा में रक्षा मंत्री मनोहर पार्रिकर के जवाब के बाद इस मुद्दे पर विवाद का अंत हो जाना चाहिए था। सेना के मेजर जनरल सुनील यादव भी आरोपों को नकार चुके हैं। फिर भी बेवजह सेना के इस रूटीन अभ्यास को तूल देकर मुद्दा बनाने की कोशिश की गई, क्योंकि तृणमूल काँग्रेस के नेता अपनी

सरकार की पोल खुल जाने के बाद भी उलटे-सीधे बयान देने में लगे रहे। यह भी राजनीति का ओछापन ही कहा जाएगा कि सब कुछ साफ हो जाने के बावजूद कुछ अन्य नेता भी सेना के बयान से ज्यादा ममता बनर्जी के झूठ पर यकीन करने में लगे रहे और संसद का समय जाया करने में लगे रहे। वे ऐसा करने में इसलिए सक्षम हैं, क्योंकि उन्हें अन्य विपक्षी दलों के सांसदों का साथ मिल रहा है।

ऐसा लगता है कि विपक्षी दलों ने यह ठान लिया है कि वे तरह-तरह के बहाने बनाकर संसद को ठप्प करते रहेंगे। दुर्भाग्य से ममता बनर्जी और उनके दल के सांसद उनका काम आसान करने में लगे हुए हैं। इसका एक और प्रमाण भी तब मिला जब संसद के दोनों सदनों में तृणमूल काँग्रेस के सांसदों ने कहा कि पटना से कोलकाता लौट रहीं ममता बनर्जी की फ्लाइट उतरने में जो देरी हुई वह वस्तुतः उनकी जान को जोखिम में डालने की कोशिश का हिस्सा थी। इस बेतूके आरोप पर बिना सोच-समझे हंगामा किया गया। मेरा मानना है कि राजनीतिक युद्ध राजनीति के मोर्चे पर ही लड़े जाएँ तो बेहतर है। मगर वैसे हवा में कोई भी आरोप उठाल देना हमारे नेताओं की आदत बन चुकी है। इस प्रवृत्ति से कोई भी राजनीतिक दल अछूता नहीं है। सुर्खियाँ बटोरने के लिए आरोप लगाने का चलन तेजी से बढ़ता जा रहा है। यदि राजनीति इतनी अधिक नीचे गिर जाएगी कि सेना पर भी ओछे आरोप मढ़े जाएँ, तो आप इसे सीमा की हदें पार करना नहीं तो और क्या कहेंगे? बेहतर होगा नेता जनहित के मुद्दे पर आपस में टकराएँ, बेवजह के मुद्दों पर टकराव से किसी का कुछ हासिल नहीं होगा, क्योंकि जनता उनके तमाशे को देख रही है।

हालांकि ममता बनर्जी की छवि एक जुझारू नेता की रही है, मगर बदलते समय में उन्हें अपनी जिद्दपना और जज्बात को बदलने का प्रयास करना चाहिए। दरअसल, पिछले महीने प. बंगाल विधानसभा के चुनाव में यों तो तृणमूल काँग्रेस की भारी जीत हुई, मगर भाजपा की मत फीसद पिछले चुनाव की तुलना में बढ़ा है जिसके चलते भी शायद ममता जी का तेवर भाजपा के खिलाफ बढ़ गया है। दूसरी वजह मुझे यह दिख रही है कि नोटबंदी के खिलाफ बिहार की राजधानी में उनके धरने में सारे दल छिटक गए और वह अलग-थलग पड़ गई। इससे भी वह परेशान दिखती हैं। मगर सिर्फ अहम के टकराव सामने रखकर राजनीतिक करने से बचना चाहिए। आपने देखा नहीं हवा के रूख को पहचान कर ही बिहार के

मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने अपना रूख बदल दिया। वैसे भी राजनीति की 'लक्ष्मण रेखा' को पार कर राजनीति करना कतई ठीक नहीं। ममता बनर्जी ने रूटीन सैन्य अभ्यास को लेकर जिस सतहीपन का परिचय दिया वह उनके जुझारूपन के बिल्कुल विपरीत दिखा। उन्हें नीतीश कुमार जैसे नेता की परिपक्वता दिखानी होगी और सियासी विरोध में सेना को नाहक खींचने और प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को खामखाह पराजित करके ही दम लेने का सपना देखना बंद करना होगा, क्योंकि अपने कामकाज करने की शैली और देश के प्रति अपनी समर्पित भावना की वजह से दुनिया के जिस पटल पर वह आ खड़े हैं वहाँ पहुँचने के लिए आज की तिथि में धुरंधर से धुरंधर नेताओं के लिए आसान नहीं रह गया है।

(७२)प्रश्नः ५०० और १००० के नोटों पर पाबंदी के खिलाफ इस देश के काँग्रेस सहित अन्य विपक्षी वामपंथी दलों द्वारा विगत २८ नवंबर २०१६ को भारत बंद आखिर किसके लिए किया गया?

उत्तरः नरेन्द्र मोदी सरकार द्वारा विगत 8 नवंबर, 2016 की आधी रात से 500 और 1000 रुपए के नोटों पर पाबंदी लगाने के फैसले के खिलाफ भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस सहित राजद, सपा तथा वामपंथी पार्टियों ने 28 नवंबर 2016 को जो भारत बंद किया उसके बाद देश के आम नागरिकों के जीवन में कौन सा परिवर्तन हुआ, बल्कि सच तो यह है कि भारत बंद के चलते सामान्य नागरिकों को जरूर ढेर सारी परेशानियों का सामना पड़ा। केंद्र तथा राज्य सरकार के अधिकारियों एवं अन्य कर्मियों को जहाँ दफ्तर जाने में कठिनाई हुई, वहीं बच्चों का स्कूल जाना प्रभावित हुआ और मरीजों को अस्पताल जाने में परेशानी हुई। अगर यह मान भी लिया जाए कि जनता नोटबंदी से परेशान है तो इस बंदी से जनता की परेशानियों का हल क्या निकला? दुर्भाग्य है कि जिनके नाम पर भारत बंद किया गया, उसकी वजह से सबसे ज्यादा प्रभावित भी वही हुआ।

दरअसल, विपक्षी दलों द्वारा भारतबंद का किया जाना पलायनवादी सोच है जो मूल मुद्दों से लोगों को भटकाती है। विपक्ष जनता का ध्यान नोटबंदी के फायदे से हटाकर बेवजह के मुद्दों पर लगाना चाहती है। संसद बायकॉट कर चर्चा से भागने वाले लोगों के सड़क पर हुल्लड़ मचाने से न तो महंगाई कम होगी और न रोजमर्रा की समस्याएँ। ऐसे राजनेताओं को समझना चाहिए कि जनता समझदार हो चुकी हैं। उसे अब एक ऐसा नेतृत्व चाहिए जो उसे सही दिशा दिखा सके न कि हड़ताल, बंद और काम रोको

जैसे प्रदर्शनों के दम पर गुमराह करने की कोशिश करे। बेहतर होगा कि सिर्फ विरोध करने के लिए विरोध करने की मानसिकता से वे उबरें।

दरअसल, नोटबंदी के खिलाफ विपक्ष की वैसी पार्टियों ने भारतबंद करने का फैसला किया जिस पार्टी के उम्मीदवार होने के लिए टिकट खातिर लोगों को कभी सूटकेस लेकर कतार में लगना पड़ता था, आज उन्हें अपनी जिन्दगी की रेखा कटी-सी लगने लगी है। आम आदमी को जब वैसे नेता तीन सौ रुपए और खाने के एक पॉकेट पर अपनी रैलियों में नारे लगाने के लिए दिन भर का बँधुआ बना लेते हैं तब उन्हें कपट नहीं अपना बल दिखाई पड़ता है, मगर आज जब वही आदमी अपने पैसे निकालने अथवा पुराने नोटों के नए नोटों में बदलने के लिए बैंको में कतार में खड़ा हो रहे हैं, तो वैसे नेताओं को आम आदमी की परेशानी महसूस हो रही है। उन्हें जनता का कपट तब शायद इसलिए नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि वह कपट केवल उन्हीं पर प्रभाव डाल रहा होता है। उधर ईमानदार आदमी इसलिए प्रसन्न दिखता है, क्योंकि वह जानता है कि मोदी सरकार ने नोटबंदी का फैसला देश बदलने के लिए किया है और वह बैंकों के सामने कतार में लगकर वह देश बदलने में भागीदारी बन रहे हैं। वह आदमी अब निरीह नहीं महसूस कर रहा है। जिनके लिए छुआ-छूत बड़ी बीमारी थी आज वही कतार में एक-दूसरे से सटे हुए इस कुरीति पर प्रहार करते नजर आ रहे हैं।

(७३)प्रश्नः कब तक राजनेता अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए गरीबों के कंधे पर बंदूक रखकर गोली चलाते रहेंगे? दशकों से गरीबी की हालत में जीवनयापन कर रहे गरीब भी क्या अपने हालात बदलना नहीं चाहते हैं?

उत्तरः आपने ठीक कहा, कबतक राजनेता अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए गरीबों के कंधे पर बंदूक रखकर गोली चलाते रहेंगे, क्योंकि प्रायः प्रत्येक राजनेता भ्रष्टाचार के खिलाफ कोरी बयानबाजी करते रहते हैं, लेकिन हकीकत में कोई बड़ा कदम उठाया जाता है, तो वे लोग आम जनता को होने वाली परेशानी को बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करने लगते हैं जबकि वे खुद अवैध तरीके से बड़े पैमाने पर धन एकत्र कर रहे हैं। अपवाद स्वरूप कुछ राजनेताओं को यदि छोड़ दिया जाए, तो आप ही बताइए इस देश के जितने विधायक, सांसद और केन्द्र में मंत्री एवं राज्यमंत्री के पद पर बैठे हैं, उनमें से संभवतः सभी के पास दस-बीस लाख रुपए से लेकर करोड़ों-अरबों के कालेधन नहीं पड़े होंगे। अपने देखा नहीं बिहार के एक केंद्रिय मंत्री और विधायक के घर छापे पड़े तो कई करोड़ रुपए कालेधन के रूप में पाए गए।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि सरकार चाहे जिस भी राजनीतिक दल की हो, उसे सजा देने-दिलवाने में टारबटोर करते हैं, क्योंकि सभी एक ही घाट के पानी पीते हैं। ऐसी विषम स्थिति में नोटबंदी से लेकर बेनामी संपत्ति के खिलाफ कानून के जरिए नरेन्द्र मोदी ने नकद काला धन के विष्ठाल वृक्ष को पूरी तरह झकझोर दिया है जिससे राजस्व में बड़े इजाफे क़ी उम्मीद है। निश्चित रूप से राजस्व में इस वृद्धि का जब सरकार सदुपयोग करेगी, तो गरीबी की हालत में जीवनयापन कर रहे गरीब अपने हालत बदल सकेंगे।

इसे महज संयोग ही कहा जाए कि आजादी के बाद प्रधानमंत्री के पद पर नरेन्द्र मोदी जैसा निष्ठावान और देश के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित ने जब से 500 और 1000 रुपए के नोटों पर पाबंदी लगाने का फैसला लिया विपक्षी दलों और उसके नेताओं ने अरुचिकर बयानबाजी की और अपने भय छिपाने के लिए कृत्रिम बहाने बनाए। प्रधानमंत्री की व्यक्तिगत छवि एक ईमानदार नेता की होने से जहाँ उनके बयानों को बल मिला, वहीं विपक्षी पार्टियों के नेताओं के बयानों को आम जनता ने एक सिरे से खारिज करते हुए तमाम समस्याओं एवं परेशानियों के बीच अपनी खुशी का इजहार किया और बड़े लोग घबराए हुए हैं। अक्सर ऐसा होता नहीं है। लोगों ने नोटबंदी पर बेंमिशाल एकता का परिचय दिया।

जब देश के प्रधानमंत्री ने यहाँ की जनता से किए गए वायदे के अनुसार ताकतवर लोगों के खिलाफ जंग छेड़ दी है तो निश्चित रूप से उन्होंने अपनी ताकत का एकदम सही इस्तेमाल किया है जिससे अधिकांश लोगों ने इस कदम का स्वागत किया है और उनमें से गरीबों की संख्या सबसे अधिक है। जो लोग इस कड़े फैसले पर सवाल उठा रहे हैं वे कहीं न कहीं कालेधन के प्रति नरमी दिखा रहे हैं। इसमे कोई शक नहीं कि तमाम चुनौतियों के बावजूद नोटबंदी के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया सकारात्मक रही है। यह दिखाता है कि वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के जैसा लंबे अरसे से देश ने कभी ऐसा प्रधानमंत्री नहीं देखा था। ग्रामीण भारत में भी शहरों जैसी ही स्थिति है। ऐसा लगता है कि नोटबंदी के फैसले ने इतिहास की किताबों में दर्ज लाल बहादुर शास्त्री द्वारा लागों से एक वक्त का खाना त्यागने के आह्वान की याद ताजा कर दिया है। जनता और भावी पीढ़ी के लिए यह प्रधानमंत्री का आशा भरा साहसिक कदम है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रधानमंत्री के ऐसे ही कदम आगे बढ़ते रहे तो हमारे राजनेता गरीबों के कंधो पर बंदूक रखकर अपने

स्वार्थ की पूर्ति के लिए गोली नहीं चला पाएँगे और साथ ही दशकों से गरीबी की हालत में अपने जीवनयापन कर रहे गरीब अपने हालात बदलना चाहेंगे।

(७४)प्रश्न: क्या आपको लगता है कि भ्रष्टाचार के खिलाफ नोटबंदी सिर्फ एक शुरुआत है?

उत्तर: हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि भ्रष्टाचार के खिलाफ नोटबंदी सिर्फ एक शुरुआत है, जिसने आम आदमी की उस उम्मीद को फिर से जगा दिया जिस पर ढाई साल में विवादों की परते चढ़ाई गई थीं। 8 नवंबर, 2016 की आधी रात से 500 और 1000 रुपए के नोटों पर पाबंद लगाने के फैसले से तो मात्र कालेधन पर लगाम लग पाएगा, मगर जबतक भ्रष्टाचार रूपी पेड़ की जड़ को नहीं काटा जाएगा, वो फिर उग आएगा। पेड़ की जड़ को काटने के बाद ही डालियाँ अपने आप टूटकर गिर जाएँगी।

मेरा मानना है कि अगर एक आम आदमी के हर खर्च पर सरकार की नजर है तो फिर बेनामी संपत्ति खरीदकर जो नागरिक मालामाल हो रहे हैं उन पर भी गाज गिरनी चाहिए। केंद्र सरकार ने उच्च पथ के दोनों ओर की जमीनों को सस्ते दर में खरीद कर परियोजना पूरी होने के बाद उसकी भारी कीमत लेकर उसकी खरीद-बिक्री कर रहे हैं अथवा अपने रिश्तेदारों या जान-पहचान के लोगों के नाम कर लिए हैं उन पर छापेमारी कर एक अच्छी शुरुआत की गई है। इसी प्रकार राजनीतिक सुधार यानी पॉलिटिकल रिफॉर्म बिना राजनीति सुधार व्यवस्था में सुधार नहीं लाया जा सकता। इसलिए जरूरत इस बात की है कि पॉलिटिकल रिफॉर्म के लिए राजनीतिक दलों को मिलने वाले चंदे का सार्वजनिक किया जाना और राजनीतिक दलों को मिलने वाले चंदे को सूचना के अधिकार क्षेत्र के दायरे में लाने की पहल करनी होगी। हर चंदे की रसीद हो और कुछ भी छुपा न रहे। जिस दिन यह हो गया समझिए बड़े स्तर के भ्रष्टाचार की जड़ में मट्ठा डाल दिया गया।

मेरा मत है कि केंद्र सरकार द्वारा पॉलिटिकल फंडिंग के गुप्त खेल को सार्वजनिक बना दिया जाय तो ये भ्रष्टाचार खत्म करने की दिशा में एक बड़ा कदम होगा। फिर बात सिर्फ पॉलिटिकल फंडिग पर भी न रुके, ऐसे सुधार किए जाएँ कि चुनाव सस्ते हों, ताकि आम नागरिक चुनाव लड़ सकें, बाहुबली, धनपशु और आपराधिक छवि के लोग जन प्रतिनिधि न बन सकें। मगर यह भी सही है कि राजनीतिक दलों का इरादा पॉलिटिकल रिफॉर्म का नहीं है। एक लोकपाल तो आजतक बन नहीं सका जबकि सांसदों के वेतन एवं भत्ते के बिल आसानी से पास हो जाते हैं।

मगर आम जनता के मन में और पूरे राष्ट्र में जो अजीब से हीन भाव व स्वाभिमान हीनता से ग्रस्त हो गया इस गहरे अवसाद और बिषाद की कोख से ही नोटबंदी के फैसले से ही परिवर्तन ने जन्म लिया और परिवर्तन ने धीरे-धीरे आशावादिता की बुझती लॉ के लिए ईंधन का काम किया है जिनसे आमजनमानस के विश्वास को एक नया संबल दिया है, लेकिन अब हमें अपनी जिम्मेदारी और कर्तव्यबोध को भी जगाना होगा। हो सके तो सकारात्मकता की लौ फैलाएँ, यही इस आर्थिक शुचिता के महायज्ञ में हमारी ओर से एक आहूति होगी, क्योंकि कोई भी परिवर्तन या व्यवस्था शत-प्रतिशत त्रुटिरहित नहीं हो सकती। हमें सतर्क भी रहना होगा, क्योंकि राजनीति और कालेधन का रिश्ता विमुद्रीकरण को विफल करने पर आमादा है और गैर जिम्मेदार विपक्षी दल कालेधन द्वारा कतारों पर किए गए कब्जे से मची अफरा-तफरी के हथियार से सरकार के फैसले पर मार कर रहा है। इसलिए इससे सावधान भी रहना होगा। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने नोटबंदी का फैसला लेकर कालेधन पर जो चोट करने की कोशिश की है वह शुरुआत है। आगे भी कालेधन रखने वाले पूँजीपतियों को निशाना बनाया जा रंहा है जिसके परिणाम अच्छे निकलेंगे।

(७५)प्रश्नः क्या आप ऐसा महसूस करते है कि उत्तरप्रदेश में समाजवादी पार्टी का घमासान परिवार आधारित दलों के लिए चेतावनी भी है? और यदि है तो कैसे?

उत्तरः हाँ, मैं महसूस करता हूँ कि उत्तरप्रदेश में समाजवादी पार्टी का घमासान परिवार आधारित राजनीतिक दलों के लिए चेतावनी भी है, क्योंकि वहाँ जो भी घटनाक्रम हुआ है उसका अन्य राज्यों में परिवार आधारित राजनीतिक दलों पर असर जरूर पड़ेगा। चाहे बिहार में राष्ट्रीय जनता दला हो या पंजाब में शिरोमणि अकाी दल, तमिलनाडु में द्रमुक हो या जम्मू कश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस, हरियाणा में इंडियन नेशनल लोकदल हो या महाराष्ट्र में राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी, संभव है आने वाले दिनों में उत्तराधिकार को लेकर विवाद उठे।

जहाँ तक उत्तर प्रदेश की समाजवादी पार्टी का सवाल है वहाँ पारिवारिक विवाद इतना ज्यादा गहरा हो गया कि पिता-पुत्र, भाई-भाई, चाचा-भतीजा के रिश्तों में ऐसी कड़वाहट आई कि घर की लड़ाई सड़कों पर आ गई और गली-गली तथा मोहल्लों के साथ-साथ ऑनलाइन मंचों पर भी रिश्तों का मजाक बनाया जाने लगा।

दरअसल, 2014 के लोकसभा के चुनावों में समाजवादी पार्टी की उत्तरप्रदेश में हुई करारी हार से ही शिवपाल सिंह यादव उस मौके की तलाश में थे जब अखिलेश यादव पर धावा बोला जा सके, लेकिन अखिलेश सब कुछ समझते हुए चुपचाप काम करते रहे और उन्होंने अपनी एक पहचान बनाई। कारण कि उन्होंने आपराधिक प्रवृत्ति के नेताओं एवं कार्यकर्ताओं के साथ-साथ अमर सिंह को वह देखना नहीं चाहते थे जिसके परिणामस्वरूप उनकी छवि में निखार आया, मगर दूसरी ओर समाजवादी पार्टी की मजबूती के लिए खून-पसीना बहाने का दावा करने वाले शिवपाल सिंह यादव ने घर की लड़ाई को सड़कों पर लाने और पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता में आई पार्टी को रसातल में पहुँचाने में कोई कोर-कसर नही छोड़ा।

(७६)प्रश्नः क्या आप इसे हैरानी की बात नहीं कहेंगे कि अनियमितताएँ दूर करने की बात हर राजनीतिक दल करता है, पर जब किसी का कोई नेता ऐसे आरोप में पकड़ा जाता है, तो वह जाँच एजेंसी के कामकाज पर अँगुली उठाने लगता है? ऐसा क्यों?

उत्तरः हाँ, यह मुझे भी हैरानी की बात लगती है कि अनियमितताएँ दूर करने की बात तो हर राजनीतिक दल करता है, पर जब किसी दल का कोई नेता ऐसे आरोप में पकड़ा जाता है, तो वह दल जाँच एजेंसी के कामकाज पर अँगुली उठाने लगता है। प. बंगाल में कथित रोजवैली चिटफंड घोटाले में तृणमूल काँग्रेस के सांसद और लोकसभा में पार्टी के नेता सुदीप बंदोपाध्याय की जब गिरफ्तारी हुई, तब तृणमूल काँग्रेस की प्रमुख और प. बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी बंदोपाध्याय की गिरफ्तारी पर नाराज होकर उन्होंने केंद्र सरकार पर बदले की भावना से काम करने का आरोप लगाया जिसमें आम आदमी पार्टी के संयोजक तथा दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल ने भी ममता बनर्जी का साथ दिया। आखिर क्या हो गया है इन नेताओं को जो भ्रष्टाचार मिटाने का वादा करके ही सत्ता प्राप्त किए थे, वे आज भ्रष्ट नेताओं के पक्ष में ही खड़े नजर आ रहे हैं। इसे हैरानी की बात नहीं तो और क्या कहेंगे?

सांसद सुदीप बंदोपाध्याय की गिरफ्तारी के बाद तृणमूल काँग्रेस के कार्यकर्ताओं ने कोलकाता में भाजपा के कार्यालय पर हमला कर अपनी नाराजगी जताई। जबकि सीबीआई का कहना है कि उसके पास तृणमूल काँग्रेस के दोनों नेताओं के खिलाफ पर्याप्त सबूत हैं। आपको याद होगा सारदा घोटाले में भी तृणमूल काँग्रेस के सांसद तपस पॉल पर आरोप हैं और

उन्हें भी गिरफ्तार किया गया है। तृणमूल काँग्रेस का कहना है कि जिन नेताओं ने नोटबंदी का विरोध किया, मोदी सरकार उन्हें सबके सिखाने की मंष्ठा से ऐसा कदम उठा रही है, कुछ तर्कसंगत नहीं जान पड़ता।

उल्लेख्य है कि करीब सत्रह हजार करोड़ रुपएं के घोटाले से संबंधित रोज वैली चिटफंड के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में मामला लंबित है और सीबीआई घोटाले की जाँच उसी के तहत कर रही है। अगर सीबीआई ने तृणमूल काँग्रेस के कुछ नेताओं को सारदा एवं चिटफंड घोटालों में शामिल पाया है या इन कंपनियों को शह देने में उन नेताओं का हाथ देखा है, तो इस जाँच को राजनीतिक रंग देने की बजाय निष्पक्ष रूप से पूरा हो जाने देने में किसी दल को क्यों एतराज हो रहा है?

इस संदर्भ में मैं आपको यह भी बताना चाहूँगा कि सहारा समूह की तरह चिटफंड कंपनियों ने भी गरीबों की मेहनत की छोटी-छोटी कमाई से अपनी जेबे भरी हैं। छिपी बात है कि बगैर राजनीतिक शह के ये कंपनियाँ अपना धंधा नहीं फैला सकतीं। ऐसे मामलों में सत्तारूढ़ पार्टियों के नेताओं के साथ-साथ दूसरी पार्टियों के नेताओं की भी संलिप्तता होती है। पियरलेस में भी तो एक केंद्रीय नेता का शह था और वह भी ले-देकर चलता बना। अगर तृणमूल काँग्रेस के नेता वाकई निर्दोष हैं, तो उन्हें यह बात अदालत में साबित करने से क्यों परहेज होना चाहिए?

(७७)प्रश्नः क्या अपराध मुक्त राजनीतिक व्यवस्था के प्रति राजनीतिक दलों का हृदय-परिवर्तन होगा? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, अपराध मुक्त राजनीति राजनीतिक-व्यवस्था के प्रति देर-सबेर राजनीतिक दलों का हृदय-परिवर्तन होगा, क्योंकि न केवल यह समय की माँग है, बल्कि केंद्र सरकार का नेतृत्व कर रहे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी कहा है कि अब समय आ गया है कि सभी दल राजनीतिक चंदे में पारदर्शिता की बात करें। यह कालेधन और भ्रष्टाचार के खिलाफ छेड़े गए उनके अभियान की तार्किक परिणति हैं। यही नहीं सर्वोच्च न्यायालय ने भी भारतीय राजनीति के अपराधीकरण की प्रवृत्ति से मुक्ति दिलाने की दिशा में एक बड़ी पहल करने जा रही है। भारत. के नवनियुक्त प्रधान न्यायाधीश डी. एस.खेहर की अध्यक्षतावाली पीठ ने एक जनहित याचिका पर संविधान पीठ के गठन का फैसला किया है। यह पीठ गंभीर आपराधिक मुकदमों का सामना कर रहे व्यक्तियों और जनप्रतिनिधियों के विरूद्ध चार्जशीट होने पर या उनके सजायाफ्ता होने पर निर्वाचन के लिए अयोग्य ठहराने पर विचार

करेगी। शीर्ष अदालत राजनीति में धनबल-बाहुबल के बढ़ते दुष्प्रभावों से परिचित है।

जबसे भारतीय राजनीति और चुनावी राजनीति में भ्रष्टाचार धन और बाहुबल का वर्चस्व बढ़ा है, संसद और विधान सभाओं में दागी नेताओं की तादाद बढ़ी है। जाति और धर्म भी राजनीति के अपराधीकरण के लिए कम जिम्मेदार नहीं है। एसोसियेशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म (एडीआर) और 'नेशनल इलेक्शन वॉच' जैसे गैर-सरकारी संगठनों का अध्ययन बताता है कि 2009 की 15वीं लोकसभा की तुलना में 2014 की 16वीं लोकसभा चुनाव में दागी सांसदों की दर में इजाफा ही हुआ है। 2009 में जहाँ 30 फीसदी दागी सांसद थे, जो 2014 में बढ़कर 34 फीसद हो गए। अब तो हालत यह है कि कोई राजनीतिक दल ऐसा नहीं है, जिनमें दागी सांसद न हों। इसलिए राजनीति को अपराधमुक्त करने में राजनीतिक दलों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

निर्वाचन आयोग भी राजनीतिक दलों को मिलने वाले चंदे पर पारदर्शिता लाने के लिए कठोर कानून लाने की वकालत करता रहा है। इस संबंध में उसने हाल में ही जनप्रतिनिधित्व कानून में संशोधन करने का सुझाव दिया है। मुख्य चुनाव आयुक्त नसीम जैदी ने राजनीतिक दलों को मिलने वाले गुप्त दान या चंदे से संबंधित कानून में भी भारी बदलाव करने की माँग की है। वर्तमान में किसी राजनीतिक दल को बाध्य नहीं किया जा सकता है कि वह 20 हजार रुपए से कम दान या चंदा देने वाले सभी दानकर्ताओं या चंदा देने वालों के नाम सार्वजनिक करे। दुर्भाग्यवश इस प्रावधान का सभी राजनीतिक दल द्वारा दुरुपयोग किया गया है। अक्सर राजनीतिक पार्टियाँ अपने खातों में भारी मात्रा में नकदी जमा कराती हैं और फिर बताती हैं कि यह कुल राशि उन्हें 20 हजार रुपए से कम मिले चंदे से हासिल हुई हैं जबकि सच्चाई है कि यह पैसा मुख्यतः कालाधन होता है।

देखा जाए तो प्रावधान वास्तव में राजनीतिक भ्रष्टाचार का श्रोत बन गया है। लिहाजा आज इसमें बदलाव की जरूरत है। दूसरी बात चिंतनीय यह है कि अभी देश की 1900 से अधिक निबंधित राजनीतिक दलों में से 400 ऐसे राजनीतिक दल हैं जो पिछले 2005 से अभी तक किसी उम्मीदवार को चुनाव नही लड़वाया। दरअसल, आयकर कानून की वह धारा है जिसके तहत उन्हें टैक्स देने से छूट मिली हुई है। चूँकि 20 हजार रुपए से कम के दान या चंदे का श्रोत बताना बाध्यकारी नहीं है, लिहाजा

राजनीतिक पार्टियाँ कालेधन को खपाने की बनी हुई हैं। इसपर शीघ्रातिशीघ्र रोक लगाई जानी चाहिए। निर्वाचन आयोग इसी के मद्देनजर 20 हजार रुपए को कम कर दो हजार रुपए करने का सुझाव दिया है, ताकि राजनीतिक दल आयकर कानून की धारा का दुरुपयोग न कर सकें।

भ्रष्टाचार और कालेधन की जब भी बात आती है तब राजनीतिक दल और उसके नेताओं का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। अब समय आ गया है कि राजनीतिक पार्टियाँ और नेता देश के ईमानदार नागरिकों की भावनाओं और उनके गुस्से का आदर करें जिसके बिना स्वच्छ और भ्रष्टाचारमुक्त भारत संभव नहीं है। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि अपराधमुक्त राजनीतिक व्यवस्था के प्रति राजनीतिक दलों का हृदय-परिवर्तन अवश्य होगा।

(७८)प्रश्न: क्या आप ऐसा मानते हैं कि उपहार की राजनीति खासतौर पर चुनावों के पहले यथास्थितिवाद को बरकरार रखने का राजनीतिक खेल हैं? आखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, मैं मानता हूँ कि उपहार की राजनीति खासतौर पर चुनावों के पहले यथास्थितिवाद को बरकरार रखने का राजनीतिक खेल है। भारत के राजनीतिक दलों के घोषणा-पत्रों में मतदाताओं को अपनी ओर रिझाने के लिए जिस तरह से लोक-लुभावन वायदे किए जाने की राजनीतिक संस्कृति की नींव पड़ी है उससे बहुत सारे भ्रम टूट गए हैं। अब यह लगने लगा है कि उत्तर से दक्षिण भारत तक की सियासी पार्टियों में आमजन की स्थायी समस्याओं का स्थायी निदान ढूँढ़ने की दिशा में न कोई इच्छाशक्ति रह गई है और न ही उनके पास कोई विजन रह गया है। चावल, टीवी, मंगलसूत्र, महिलाओं को गेहूँ-चावल, प्रेशर कुकर, नौजवानों को लैपटॉप आदि उपहार बाँटने की परंपरा दक्षिण भारत से जो शुरू हुई थी, वह अब उत्तर भारत में भी देखने को मिल रही है। आखिर तभी तो फरवरी-मार्च, 2017 के दौरान देश के पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों के पहले समाजवादी पार्टी तथा भारतीय जनता पार्टी ने अपने-अपने घोषणा पत्रों में गरीब महिलाओं को मुफ्त गेहूँ, चावल, प्रेशर कुकर, नौजवानों को लैपटॉप और गरीबों को 25 रुपए किलो देसी घी, दस रुपए किलो चीनी देने के वायदे किए गए।

क्या इस तरह के उपहार बाँटने की राजनीति समाज में गुणात्मक परिवर्तन ला सकती है? राजनीतिक दलों की यह भूमिका अंततः जनता के स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनने के विचार को छीन लेने का कर्मकांड जैसा

ही है। देश में गरीबी दूर करने और रोजगार सृजित करने के उपायों पर रोशनी डालनी चाहिए। ऐसी ईमानदार और पारदर्शी व्यवस्था बनाने का संकल्प होना चाहिए, जिसमें गरीबों को भी न्याय मिलने की गुंजाइश हो। उपहार की यह राजनीतिक यथास्थिति वादे को बंरकरार रखने का राजनीतिक खेल है।

(७९)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि हमारे राजनीतिक दल अपने ही बनाए तौर-तरीकों का पालन करने के लिए तैयार नहीं? ऐसा क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि हमारे राजनीतिक दल अपने ही बनाए तौर-तरीकों का पालन करने को तैयार नहीं है, क्योंकि चुनाव संबंधी आदर्श आचार संहिता का निर्माण तो राजनीतिक दलों के साथ विचार-विमर्श और उनकी सहमति से ही हुआ था इसलिए यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उसका उल्लंघन लगातार बढ़ता चला जा रहा है। ऐसा लगता है कि चुनावों के अवसर पर राजनीतिक दल इस ताक में रहते हैं कि आदर्श आचार संहिता का उल्लंघन कैसे किया जाए। सच तो यह है कि जो बड़े राजनेता देश और समाज को बदलने का दावा कर बड़ी-बड़ी बाते करते हैं वे भी भ्रष्ट चुनावी तौर-तरीकों को अपनाने में संकोच नहीं करते।

पिछले दिनों जब चुनाव आयोग ने आम आदमी पार्टी के प्रमुख और दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल को उनके एक अनुचित बयान के लिए फटकार लगाई तो उन्होंने अपनी गलती का अहसास करने की बजाय चुनाव आयोग के फैसले पर ही सवाल उठा दिए। क्या इससे बढ़कर विडंबना कोई और हो सकती है कि नई तरह की राजनीति का दावा करने वाला राजनेता ही चुनाव आयोग के निर्देश का पालन करने के लिए तैयार नहीं। पिछले कुछ वर्षो में चुनावों के दौरान जिस तेजी से आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन के मामलों में वृद्धि होती चली जा रही है उससे यह स्पष्ट है कि सभी राजनीतिक दल साफ-सुथरी राजनीति के लिए कतई तैयार नहीं और स्वेच्छा से खुद में सुधार के लिए तनीक भी इच्छुक नहीं।

(८०)प्रश्नः परंपराएँ संस्कृति, धर्म और रीति-रिवाज से निकलती हैं और उनका सम्मान किया जाना चाहिए, किंतु क्या कोई भी परंपरा परिस्थिति और काल निरपेक्ष हो सकती है? इस संदर्भ में तमिलनाडु के जल्लीकट्टू खेल के आयोजन के लिए तमिलनाडु सरकार द्वारा एक अध्यादेश का लाया जाना, जबकि इसको लेकर २०१४ में ही उच्च्तम न्यायालय ने इस पर रोक लगाई थी और केंद्र सरकार उसकी

एक सप्ताह तक फैसला न देने की अपील को उच्चतम न्यायालय ने स्वीकार कर ली, क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि केंद्र एवं राज्य सरकार की सहकारी राजनीति का कोई संकेत है और इसे तुष्टीकरण की नीति नहीं कहेंगे?

उत्तर: तमिलनाडु के खेल जल्लीकट्टू पर उच्चतम न्यायालय का फैसला आना शेष रहने पर तमिलनाडु सरकार द्वारा इस खेल के आयोजन हेतु एक अध्यादेश लाना मेरे ख्याल से केंद्र एवं राज्य सरकार की सहकारी राजनीति का खेल तो है ही, साथ ही अध्यादेश लाना भी एक गलत उदाहरण है। अगर यह खेल सांस्कृतिक विरासत है तो इसे सहेजने के लिए क्रूरता विरोधी कुछ नियम-कायदों की बात क्यों नही स्वीकार्य की जाती है?

यह बात ठीक है कि परंपराएँ संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज से निकलती हैं और उनका सम्मान किया जाना चाहिए, किंतु परंपरा परिस्थिति और कालनिरपेक्ष नहीं हो सकती, क्योंकि समाज हमेशा अपनी परंपराओं का मूल्याँकन करता है और समय के अनुसार उसमें परिवर्तन लाता है। कहना नहीं होगा कि पिछले दिनों जल्लीकट्टू के समर्थन में जिस तरह का जनसैलाब उमड़ा और तमिलनाडु के सभी राजसमर्थन में आए, मगर यह भी सच है तमिलनाडु का ही एक वर्ग ऐसा भी है जो जल्लीकट्टू खेल को बैलों पर अत्याचार मानता है, क्योंकि जिस तरह उसे दौड़ने, भागने के लिए मजबूर किया जाता है वह पशु उत्पीड़न की सीमा में आता है। यहाँ तक कि बैलों को दौड़ाने के लिए नशा देने से लेकर कई प्रकार की उत्पीड़न की शिकायतें हैं। क्या जल्लीकट्टू समर्थक यह सुनिश्चित करेंगे कि बैलों के साथ किसी प्रकार का अत्याचार न हो?

(८१)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि कर्त्तव्य पालन के प्रति सतत सतर्क रहकर ही हम अपने अधिकारों को निरापद रखने वाले गणतंत्र का पर्व सार्थक रूप से मना सकते हैं? कैसे?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि कर्तव्य पालन के प्रति सतत सतर्क रहकर ही हम अधिकारों को निरापद रखने वाले गणतंत्र का पर्व सार्थक रूप से मना सकते हैं। दरअसल, अपने अधिकारों के बारे में तो आम नागरिक सतर्क है, पर उसे कर्त्तव्यों की जानकारी नाममात्र की भी नहीं है। इसी वजह से गणतंत्र का तंत्रवाला हिस्सा तिलिस्म सरीखा हो गया है जिसके सबसे बड़े दो कारण थे कि आजादी के बाद औपनिवेशिक नौकरशाही को बरकरार रखा गया और सत्ता के विकेन्द्रीकरण में अनावश्यक देरी हुई।

दुर्भाग्य यह है कि जनतांत्रिक चुनावी राजनीति के दबाव में पहचान की राजनीति ने गण की शक्ति को पथभ्रष्ट और कमजोर किया है। आजादी मिलने और गणतंत्र बनने से लेकर अबतक वतन की आवोहवा बदली है। करीब सात दशक से सफ़र में कई उपलब्धियाँ बेशक मिलीं, लेकिन कमियों की सूची भी छोटी नहीं है। ऐसी स्थिति में देश के विकास के लिए तंत्र और गण दोनों को एक-दूसरे का पूरक बनना होगा। केवल गण द्वारा अपने अधिकार के लिए संघर्ष करने से काम नहीं चलेगा। अपने कर्तव्य पालन के प्रति सतत सतर्क रहकर ही हम अपने अधिकारों को निरापद रखने वाले गणतंत्र का पर्व सार्थक रूप से मना सकते हैं।

(८२)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि लोकतंत्र की एक त्रासदी यह भी रही कि हमने लोकतंत्र को कुलीनता के पिंजरे में बंद कर दिया था? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि लोकतंत्र की एक त्रासदी यह भी रही कि हमने लोकतंत्र को कुलीनता के पिंजरे में बंद कर दिया था। यही कारण है कि औपनिवेशिक संस्थाएँ चाहे संस्थाएँ, न्यायालय, प्रशासनिक ढाँचा या अन्य महत्वपूर्ण संस्थाएँ हों, सभी बिना किसी बुनियादी सुधार के यथावत जारी रहीं उन्हें बनाने में यूरोपीय समाज व राजनीति का अनुभव और मस्तिष्क दोनों ही लगा था। उदाहरण के लिए पुलिस एवं नौकरशाही की पूरी कार्यशैली औपनिवेशिक राजनीति, कानून-व्यवस्था की उनकी परिभाषा और लोगों को देखने के नजरिए को दर्शाती है।

आजादी के बाद दशकों तक कुछ हद तक आज भी नौकरशाही भारतीय जनमानस से घुल-मिल नहीं पाई है। उसका विदेशज एवं कुलीन चरित्र लोगों को उनके प्रति असहज बनाकर रखता है। जबकि संस्थाओं की सफलता की पहली शर्त यही होती है कि वह दशज भाव को अभिव्यक्त करें। संस्थाएँ जो समाज के अनुभवों, संघर्षो से विकसित होती हैं वे लंबे समय तक प्रभावी रहती हैं। इसलिए जरूरत इस बात की है कि विदेशज में देशजभाव का संचार कैसे हो? इसके लिए पहचान की नहीं विचार की राजनीति हो, तभी कुलीनता के पिंजरे से हम निकल पाएँगे।

(८३)प्रश्नः क्या आप गणतंत्र के ६७ साल बीत जाने के बाद हम भरोसे के साथ कह सकते हैं कि शासन तंत्र जन-गण के लिए मंगलदायक है?

उत्तरः नहीं, गणतंत्र के 67 साल बीत जाने के बाद हम भरोसे के साथ यह

नहीं कह सकते हैं कि 'शासनतंत्र' जन-गण के लिए मंगलदायक है, क्योंकि भारतीय गणतंत्र में शासन का स्वरूप उतना नहीं बदला है जिसकी आशा की गई थी। दरअसल, जिसे बोलचाल की भाषा में आज नौकरशाही कहा जाता है वह वास्तव में औपनिवेशिक काल से चली आ रही भ्रष्ट और कमोवेश उत्पीड़क अफसरशाही ही है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि भले ही खुद को 'जनता का सेवक' कहते हों, सच तो यह है कि वे शासक वर्ग के सदस्य ही नजर आते हैं।

विधायिका और कार्यपालिका के बीच विभाजक रेखा धूमिल होती जा रही है। अवकाश प्राप्त सरकारी अधिकारी चुनाव लड़ने को आतुर रहते हैं, क्योंकि उन्हें असली ताकत राजनेता के हाथों में ही दिखाई देती है। वही सर्वशक्तिमान राजनेता को हर छोटा बड़ा काम करवाने के लिए अफसर की जरूरत पड़ती है। गण से अलग होता जा रहा यह समूह जनतंत्र की जड़ें कुतरता नजर आता है। न्यायपालिका की सक्रियता को संविधान में निर्धारित लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन बताना आसान है, पर फिलहाल यही एक अंकुश व्यवहारिक लगता है।

नि:संदेह असली समस्या इस कारण पैदा हुई है कि 'गण' ने 'तंत्र' में अपनी हिस्सेदारी और जिम्मेदारी के प्रति लापरवाही बरती है। आम नागरिक शुरुआत से ही इस घातक गलतफहमी का शिकार रहा है कि चुनावों में मतदान ही उसका अधिकार रहा है, मगर आज भी 'शासनतंत्र' गण पर हावी है।

(८४)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि महाराष्ट्र में शिव सेना और भाजपा के बीच दोस्ताना का टूटना छिछली होती सियासी जमीन को मजबूती देने के लिए यह सब कुछ किया जा रहा है? ऐसा क्यों?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि महाराष्ट्र में शिवसेना और भाजपा का 25 वर्ष पुराना दोस्ताना का टूटना छिछली होती सियासी जमीन को मजबूती देने के लिए किया जा रहा है। शिवसेना ने घोषणा की है कि बृहद मुंबई महानगरपालिका के चुनाव में अकेले दाव आजमाएगी। हालांकि यह सबकुछ अचानक नहीं हुआ। इस अलगाव की नींव 2014 के लोकसभा चुनाव के वक्त पड़ी, जब सीटों के बँटवारे को लेकर दोनों दल बेहद आक्रामक हो गए थे। दोस्ती में यह दरार काफी सालों तक महाराष्ट्र में बड़े भाई की भूमिका में अभ्यस्त हो चुकी शिवसेना को छोटे भाई भाजपा ने ज्यादा सीटों की माँग करके चौड़ी कर दी थी। स्वाभाविक है, वरिष्ठता क्रम पर सवाल उठाना शिवसेना को काफी नागवार लगा और दोनों दलों के मन मे खटास कम होने

की बजाय बढ़ती ही चली गई।

दरअसल, सालों तक उग्र हिंदुत्व की 'रेसिपी' पर राजनीति करने वाली शिवसेना समझ चुकी है कि नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा अब उसका कनीय होकर नही रह सकती। राज्य और केंद्र सरकार में भागीदारी कर शिवसेना काफी हील-हूज्जत के बावजूद भाजपा पर दबाव डालने में अस्फल रही है। यही कारण है कि उद्धव ठाकरे ज्यादा आक्रामक हुए हैं और अपनी भड़ास महानगरपालिका के चुनाव में निकालकर सियासी को मजदूरी देने का प्रयास कर रहा है।

(८५)प्रश्नः २०१७ के पाँच विधानसभा चुनावों में राजनीतिक दल आने लोकलुभावन घोषणा पत्रों में घी, चाय पत्ती, चीनी, प्रेशर कुकर, मुफ्त बिजली मतदाता को मुहैया कराने का आश्वासन देकर एक तरह से कहा जाए तो इस तरह की रिश्वत देकर क्या जनता को हमेशा के लिए मुफ्तखोरी की आदत का शिकार बनाना तो नहीं चाहते?

उत्तर: हाँ, हमें भी ऐसा ही अहसास होता है कि 2017 के पाँच विधानसभा चुनावों के वक्त राजनीतिक दल अपने लोकलुभावन घोषणा पत्रों में मतदाता को 25 रुपए किलो घी अथवा मुफ्त प्रेशर कुकर, चीनी, चाय पत्ती तथा मुफ्त बिजली मुहैया कराने का आश्वासन देकर एक तरह से कहा जाए तो रिश्वत देकर वस्तुतः जनता को हमेशा के लिए मुफ्तखोरी की आदत का शिकार बनाना चाहते हैं।

पंजाब में भाजपा ने नीले राशनकार्ड धारकों को जहाँ 25 रुपए प्रति किलो की दर से घी देने का अपने घोषणा पत्र में आश्वासन दिया है, वहीं काँग्रेस सस्ती चायपत्ती और चीनी देने का वादा तथा समाजवादी पार्टी स्कूल जाने वाले हर बच्चे को एक किलो घी मुफ्त और साथ ही हर महिला को एक प्रेशर कुकर मुफ्त देने का वादा किया।

दुनिया के सबसे कुपोषित राष्ट्रों में से एक देश भारत मुफ्त घी और सस्ती चाय पत्ती एवं चीनी तथा प्रेशरकुकर एवं हर बच्चे को एक किलो घी मुफ्त देने का वादा का आखिर इस देश की जनता को किस दिष्ठा की ओर राजनीतिक दल ले जाना चाहते हैं? यह जो वस्तुएँ राजनीतिक पार्टियाँ मुफ्त में मतदाता को देना चाहती हैं, कोई उनसे पूछे कि क्या वे इसे अपने घर से देंगे? कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारे ही शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे खर्चो में कटौती करके बदले में हमें 'घी' पिला देंगे, जो हमें चाहिए ही नहीं।'

पंजाब के किसानों को मुफ्त बिजली देने के वायदे ने वहाँ के

सरकारी खजाने का क्या हाल कर दिया है, किसी से छिपा नहीं है। सच तो यह है कि हमें इस तरह की रिश्वत देकर हमेशा के लिए इस तरह की मुफ्तखोरी की आदत का शिकार बनाना चाहते हैं। राजनीतिक दल जनता या मतदाता को इस लायक क्यों नहीं बना देते कि जरूरत पड़ने पर वे खुद ही घी या प्रेशर कुकर खरीद सके, जो उनके बस की बात है और वे ऐसा कर सकते हैं, लेकिन आजादी की सत्तर साल बीत जाने के बावजूद ऐसा नहीं कर सके, क्योंकि राजनीतिक दलों और उनके नेताओं की ऐसी मानसिकता ही नहीं है, बल्कि सच तो यह है कि मुफ्त में वस्तुएँ बाँटने का वादा कर एक तरह से रिश्वत देकर जनता को भी अपनी तरह भ्रष्ट बना रहे हैं।

दरअसल, चुनाव अब नेताओं के लिए व्यापार बनते जा रहे हैं। चुनावी घोषणा पत्र में लैपटॉप, स्मार्ट फोन से लेकर प्रेशर कुकर जैसे बुनियादी आवश्यकता की वस्तुएँ बाँटने से प्रारंभ होने वाली बात, अब घी, गेहुँ, चावल और पेट्रोल तक पहुँच गयी। कबतक हमारे नेता गरीबी की आग को पेट्रोल और घी से बुझाते रहेंगे?

(८६)प्रश्न: क्या आप लोकतंत्र की राजनीति के लिए राजनीतिक विचारधाराओं की मान्यता जरूरी समझते हैं?आखिर क्यों? यूरोप, अमेरिका तथा इंग्लैंड की क्या स्थिति है?

उत्तर: हाँ, लोकतंत्र की राजनीति के लिए राजनीतिक विचारधाराओं की मान्यता को मैं जरूरी समझता हूँ। बल्कि सच तो यह है कि आजादी के बाद के पहले के बीस वर्षो में यही स्थिति थी कि राजनीतिक दलों की पहचान विचारधाराओं से होती थी और राजनीति करने वालों की भी चाहे वह कार्यकर्ता हों या नेता उनकी भी पहचान विचारधाराओं से ही होती थी, मगर आजादी के सत्तर सालों के भीतर ही राजनीतिक दलों की और राजनीति करने वालों की भी यह पहचान समाप्त हो जाएगी, यह कल्पना न तो स्वतंत्रता सेनानियों ने की थी और न संविधान निर्माताओं की ही थी।

दरअसल, लोकतंत्र न केवल एक शासन व्यवस्था है, बल्कि यह न्याय और नैतिकता पर आधारित व्यवस्था है जिसे आज की तिथि में यूरोप और अमेरिका ने विचारधाराओं की मान्यताओं को संभाल कर रखा है। जहाँ तक ब्रिटेन का सवाल है संविधान भले ही अलिखित है, किंतु परंपराएँ और मान्यताएँ इतनी ठोस हैं कि इनकी लोकतांत्रिक व्यवस्था विगत छः सौ वर्षो से चल रही है। इंग्लैंड में न तो दलबदल होता है और दलबदल कराया जाता है। दलबदल के लिए वहाँ कोई गुँजाइश नहीं है।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने जब इंग्लैंड की संसदीय प्रणाली को अपनाया, तो उनके दिमाग में भी यह बात शायद रही होगी कि नैतिकता का जो स्तर इंग्लैंड में है, वही भारत में भी रहेगा, किंतु ऐसा हुआ नहीं। उन दिनों केंद्र और राज्यों में काँग्रेस की सरकारें थीं, किंतु दलबदल करने की शुरुआत और उसे प्रोत्साहित कराने की घटनाएँ भी काँग्रेस की ओर से ही शुरू हुई थी।

लोकतंत्र की नींव को हिला देने वाली एक बड़ी घटना 1977 में हुई। आपातकाल की प्रतीक श्रीमति इंदिरा गाँधी की सरकार को अपदस्त करने के लिए पाँच राजनीतिक दलों ने मिलकर जनता पार्टी बनाई और जनता पार्टी की बहुमत की सरकार भी बन गई तथा श्रीमति इंदिरा गाँधी सरकार भी अपदस्त हो गई। यहाँ तक कि इंदिरा गाँधी स्वयं भी हार गई तथा काँग्रेस संसदीय दल भी दो फाड़ हो गया। लेकिन विडंबना यह कि आपसी टकराव की वजह से जनता पार्टी बँट गई और उसकी सरकार भी गिर गयी। 1989 में वी.वी. सिंह ने तमाम विपक्षी दलों के विलय से जनता दल का गठन किया और उसकी सरकार भी बन गयी, मगर अगले ही साल चंद्रशेखर ने दलबदल किया और काँग्रेस की मदद से उनकी भी सरकार बन गयी, लेकिन मात्र छह महीनों मे ही राजीव गाँधी ने काँग्रेस का समर्थन वापस ले लिया। इस प्रकार दलबदल और विचारधाराओं की मान्यता समाप्त होने लगी और आज की तिथि में लोकतंत्र में विशेषकर 2017 में पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों में तो न केवल विचारधाराओं में गिरावट दिखाई दी, बल्कि गिरावट के सभी कीर्तिमान तोड़ दिए और यह स्थापित कर दिया कि न किसी दल का कोई है और न कोई किसी दल से हमेशा के लिए बँधा है। मतलब यह कि दलों एवं नेताओं की पहचान आज न तो दलों की मर्यादा रह गई है और न नेताओं की। यह स्थिति लोकतंत्र के संवैधानिक ढाँचे को कब जर्जर बना देगी और उसके बाद का क्या होगा, यदि अभी से नहीं सोचा गया तो देश में कोई भी अनहोनी हो सकती है।

(८७)प्रश्नः शरद यादव जैसे कद्दावर नेता द्वारा बेटी की इज्जत को वोट की इज्जत से कमतर आँकना क्या जायज कहा जाएगा? अगर नहीं, तो क्यों?

उत्तर : जद(यू) के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष और राज्य सभा के सदस्य शरद यादव जैसे तेज-तर्रार और कद्दावर नेता द्वारा बेटी की इज्जत को वोट की इज्जत से कमतर आँकना कतई जायज नहीं कहा जाएगा। शरद यादव ने

पटना में दिए गए अपने एक भाषण में कहा था कि बेटी की इज्जत की तुलना में वोट की इज्जत ज्यादा बड़ी है। जब बेटी की इज्जत जाती है, तो इससे उसका परिवार, उसका गाँव और उसका समुदाय आहत होता है, लेकिन जब वोट की इज्जत जाती है यानी जब वोट की खरीद-फरोख्त होती है तो इससे समूचा देश आहत होता है। बेटी की इज्जत को वोट की इज्जत से कमतर आँकने पर शरद यादव की चहुँतरफा निंदा हुई और महिला आयोग ने उनके बयान को घोर नारी-विरोधी मानकर उन्हें नोटिस भी जारी कर दिया।

दरअसल, शरद यादव जैसे प्रगतिशील व्यक्ति को वोटों की इज्जत के लिए बेटी की इज्जत का पैमाना जिस ढंग से आँका वह लाजिमी इसलिए नहीं था, क्योंकि बेटी के स्वैच्छिक यौन संबंध से न उसकी इज्जत जानी चाहिए, न उसके परिवार की, न गाँव की और न उसके समुदाय की। हाँ, अगर बेटी को कोई जबरिया यौन संबंध का शिकार बनाता है तो इज्जत बेटी की नहीं, उस व्यक्ति की जानी चाहिए जिसने बेटी को शिकार बनाया। उस परिवार की इज्जत जानी चाहिए जिसमें बेटी को शिकार बनाने वाला व्यक्ति पैदा हुआ। उस गाँव की होनी चाहिए जिसमें बेटी का यौन उत्पीड़न करने वाला व्यक्ति रहता है। उस समुदाय की जानी चाहिए जो समुदाय इज्जत का ठीकरा बेटी की दैहिक निजता का अपहरण करने वाले व्यक्ति की बजाय स्वयं बेटी पर फोड़ देता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अपना वोट बेचना देश की इज्जत को बेचना है, लेकिन शरद यादव ने इज्जत की तुलना में बेटी को खड़ा करके औरत की इज्जत के उस रूढ़ पैमाने को वैधता दी जिसे अबतक पूरी अवैध हो जाना चाहिए था। मुझे तो लगता है कि आज यह सोचने की जरूरत है कि आखिर, बेटी की इज्जत कब तक उसकी नारी योनि से चिपकी रहेगी?

(८८)प्रश्नः विपक्षी पार्टियाँ द्वारा २०१७ में पाँच राज्यों में बजट को परंपरागत समय से करीब चार सप्ताह पहले या एक फरवरी २०१७ को पेश करने के मोदी सरकार के फैसले को चुनाव में मतदाताओं को प्रभावित करने का जो आरोप लगाया गया था, क्या वह आधारहीन और संकीर्ण राजनीतिक सोच से प्रेरित नहीं था? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, विपक्षी दलों ने पाँच राज्यों में बजट को परंपरागत समय से करीब चार सप्ताह पहले पेश करने के केंद्र सरकार के फैसले पर चुनाव में मतदाताओं को प्रभावित करने का जो आरोप लगाया था वह न केवल

आधारहीन निकला, बल्कि संकीर्ण राजनीतिक सोच से प्रेरित भी नजर आया, एक फरवरी, 2017 को संसद में प्रस्तुत 2017-18 के बजट ने यह साबित कर दिया कि मोदी सरकार के एजेंडे में देश का आर्थिक उत्थान पहले है और लोकलुभावनवाली राजनीति बाद में।

बजट प्रस्तुत करने के बाद कोई विरोधी नेता यह कहने की स्थिति में नहीं थे कि मोदी सरकार ने बजट के जरिए चुनाव वाले राज्यों की जनता को लुभाने की कोशिश की। कुल मिलाकर देखा जाए, तो विपक्षी नेताओं ने एक व्यर्थ का मसला खड़ा करने का काम किया। दरअसल, इन नेताओं को पता नहीं क्यों नहीं यह दिख रहा कि बजट लाने का एक मकसद वित्तीय अनशासन कायम करना था। सच तो यह है कि बजट सरकार के वित्तीय आँकड़ों का वह लेखा-जोखा होता है, जिसमें अगले वित्तीय वर्ष के लिए मंत्रालयों और योजनाओं के लिए धन का आवंटन किया जाता है। वित्त मंत्री के बजट भाषण में अमीरों की चिंता न कर गरीबों और किसानों की मदद के लिए आवंटित राशि से सरकार की स्पष्ट सोच की झलक साफ देखी जा सकती है।

मजेदार बात तो यह है कि राष्ट्रपति के अभिभाषण के बाद धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा का जवाब देने के क्रम में बनारस से सांसद हुए पीएम 'बनारसी' ने 'काका हाथरसी' की कविता और शास्त्रों से श्लोक चुन-चुनकर विपक्ष को आईना दिखाया। प्रधानमंत्री ने काका हाथरसी की कविता के अंश के जरिए काँग्रेस पर परोक्ष प्रहार करते हुए कहा-

अंतर पट में खोजिए, छिपा हुआ है खोट,
मिल जाएगी आपको, बिल्कुल सत्य रिपोर्ट।

विपक्ष के शोर-शराबे के बीच प्रधानमंत्री ने कई बार अपने भाषण के दौरान चार्वाक ऋषि से लेकर महाभारत तथा शास्त्रों तक से दृष्टांत देकर विपक्ष को जवाब दिया। प्रधानमंत्री ने महाभारत का जिक्र करते हुए कहा कि पूर्ववर्ती सप्रंग सरकार धर्म और अधर्म में अंतर समझते हुए भी अधर्म का मार्ग छोड़ने का साहस नहीं कर सकी।

यह वक्त की माँग और जरूरत है कि आर्थिक मामलों में विरोध के लिए विरोध की राजनीति से बचा जाए। यदि राजनीतिक दल यह समझ सकें तो बेहतर कि आर्थिक मामलों में संकीर्ण राजनीति कुल मिलाकर आम जनता के हितों को ही नुकसान पहुँचाती हैं। संसद में नोक-झोंक और आरोप-प्रत्यारोप में तब तक कोई हर्ज नहीं जबतक राजनीतिक दल अपना

मूल काम भी करते रहें। लोकसभा और राज्यसभा में आखिर जो साझा स्वर उभरा कि डिजिटल को भी वक्त की जरूरत है।

(८९)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि लोकतंत्र में सरकार को तानाशाह बनने से रोकने की अहम भूमिका होने के बावजूद विपक्ष अपने इस नैतिक अधिकार की गरिमा को तार्किक सोच और पूर्वाग्रहरहित व्यवहार से मजबूत नहीं कर पा रहा है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि लोकतंत्र में सरकार को तानाशाह बनने से रोकना विपक्ष की न केवल उसकी जिम्मेदारी है, बल्कि उसका नैतिक अधिकार भी है, लेकिन भारतीय लोकतंत्र की राजनीति में विपक्षी पार्टियाँ अपने उस नैतिक अधिकार की गरिमा को तार्किक सोच और पूर्वाग्रहरहित व्यवहार से मजबूत नहीं कर पा रही हैं। वे सिर्फ आरोप-प्रत्यारोप लगाने में फँसी हैं। उदाहरण के लिए 2017 के संसद का बजट सत्र को लें, तो आप पाएँगे कि राष्ट्रपति के अभिभाषण पर जवाब के दौरान जब लोकसभा में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अहम सवाल उठाए, तो उन्होंने देश का भविष्य आगे बढ़ाने के लिए सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ने की बात की, मगर विपक्षी पार्टियों में खासतौर पर काँग्रेस के सांसद इतिहास में देश के लिए किसने किया और किसने नहीं किया के आरोप-प्रत्यारोप लगाने में फँसे रहे जिससे कोई फायदा नही है। सच तो यह है कि आज कौन देष्ठा के भविष्य को आगे बढ़ाने की बात कर रहा है, यह महत्वपूर्ण है।

काँग्रेस सांसद खड़गे ने संसद में कहा था कि इंदिरा गाँधी तथा महात्मा गाँधी ने देश के लिए जान दे दी थी। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी देशभक्ति का दावा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि उनके परिवार से किसी कुत्ते ने भी ऐसा नहीं किया। इसी प्रकार काँग्रेस के उपाध्यक्ष राहुल गाँधी ने नोटबंदी के बाद कितना कालाधन बरामद होने का सवाल उठाया।

विपक्षी पार्टियों के सवाल का जवाब देते हुए प्रधानमंत्री ने तो ठीक ही कहा कि जिसका जन्म आजादी के बाद हुआ हो उसकी तुलना स्वतंत्रता आंदोलन के नायकों से करना न्याय नहीं है। अगर किसी को आजादी की लड़ाई में भाग लेने का अवसर नहीं मिला तो इससे इसकी देशभक्ति पर प्रश्नचिह्न नहीं खड़ा होता। इस तरह से तो आज किसी भी पार्टी में एक भी सक्रिय सदस्य नहीं मिलेगा जिसने आजादी के आंदोलन में भाग लिया हो। सच तो यह है कि पार्टियों का आकलन उनके आज का प्रदर्शन होना चाहिए न कि उनके पुरखों के इतिहास से। महात्मा गाँधी के योगदानों को

आज की काँग्रेस से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। आज की काँग्रेस आज के नेताओं से जानी जाएगी। ठीक वैसे ही आज की भाजपा आज के उसके नेताओं से जानी जाएगी।

दरअसल, सच कहा जाए तो लोकतंत्र में विपक्ष की भूमिका बहुत अहम है। वो सरकार को तानाशाह बनने से रोकता है, लेकिन विपक्ष को इस नैतिक अधिकार की गरिमा को तार्किक सोच और पूर्वाग्रहरहित व्यवहार से मजबूत करना चाहिए। संसद में कामकाज सुचारू रूप से चलना लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त है। पिछले सत्र की बरबादी के बाद बजट सत्र में बजट प्रस्तुतीकरण से लेकर राष्ट्रपति के अभिभाषण पर प्रधानमंत्री के संबोधन तक संसद का सुचारू रूप से संचालन यों तो बहुत अच्छा संकेत है, लेकिन विपक्षी पार्टियों के अनर्गल और नकारात्मक प्रलाप से उनकी भूमिका पर सवाल खड़े हो जाते हैं। संसद की गौरवशाली परंपरा के मद्देनजर विपक्षी पार्टियों को अपने अधिकार और व्यवहार को सकारात्मक दिशा की ओर ले जाना लाजिमी है।

सुप्रीम कोर्ट ने न्यायाधीश कर्णन के किसी भी न्यायिक और प्रशासनिक काम पर रोक लगा दी है। ऐसा पहली बार हुआ है जब सुप्रीम कोर्ट ने किसी न्यायाधीश के कामकाज पर रोक लगाई हो। पूर्व जजों और मद्रास उच्च न्यायालय के मौजूदा न्यायाधीशों पर भ्रष्टाचार के आरोप लगने को अवमानना मानकर सुप्रीम कोर्ट ने सुनवाई करने का फैसला किया। सुनवाई के दौरान अटॉर्नी जनरल मुकुल रोहतगी ने कहा कि वक्त आ गया है कि अब सुप्रीम कोर्ट इस मामले में वर्तमान जज के खिलाफ कार्रवाई कर एक उदाहरण पेश करे। इस तरह जजों पर भ्रष्टाचार के आरोप का पत्र प्रधानमंत्री को लिखना सीधे-सीधे न्यायिक प्रक्रिया में बाधा पहुँचाना है।

वर्ष 2014 में मद्रास उच्च न्यायालय में न्यायाधीश की नियुक्ति को लेकर न्यायाधीश कर्णन तब के मुख्य न्यायाधीश के चैंबर में घुस गए थे और बदसलुकी करने की बात सामने आई थी। इसी प्रकार वर्ष 2016 के फरवरी में न्यायाधीश कर्णन ने भारत के मुख्य न्यायाधीश टी एस ठाकुर की अगुवाईवाले कॉलेजियम के मद्रास उच्च न्यायालय से कोलकाता उच्च न्यायालय के स्थानांतरण आदेश पर खुद ही रोक लगा दी थी।

(९०)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि बिहार कर्मचारी चयन आयोग (बीएसएससी) के प्रश्न पत्र और पेपर लीक का मामला परत-दर-परत सामने आ रहा है, उससे जाहिर है कि पर्दे के पीछे सियासत के नकाबपोश चेहरे हैं? ऐसा क्यों?

उत्तर : हाँ, मुझे भी लगता है कि बिहार कर्मचारी चयन आयोग (बीएसएससी) के प्रश्न पत्र और पेपर लीक का मामला जिस तरह परत-दर-परत सामने आ रहा है, उससे जाहिर है कि पर्दे के पीछे सियासत के नकाबपोश चेहरे हैं, क्योंकि बिहार कर्मचारी चयन के अध्यक्ष और भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी सुधीर कुमार की जब गिरफ्तारी हुई, तब उनकी गिरफ्तारी के साथ ही, सत्ता में शामिल बड़े ही रसूखदार नेता को यह बयान देना पड़ा कि सुधीर कुमार की गिरफ्तारी गलत हुई है।

दरअसल, इस पूरे घोटाले का तार सियासी गलियारे से जुड़ता नजर आ रहा है। इसमें सत्ता में शामिल एक बड़े ही रसूखदार नेता से जुड़े निजी स्कूल के संचालक को पुलिस ने गिरफ्तार किया, तो बीएसएससी के सचिव परमेश्वर राम ने जिनकी गिरफ्तारी पहले ही हो चुकी थी, उन्होंने कुछ ऐसे विधायकों व मंत्रियों का नाम लिया जो सत्ता में शामिल दूसरे बड़े रसूखदार नेता से जुड़े हुए माने जाते हैं। परमेश्वर राम ने तो पुलिस को साफ चुनौती दी है कि अगर हिम्मत है तो उन विधायकों और मंत्रियों को गिरफ्तार करो।

सच तो यह है कि वर्ष 2016 में इंटरमीडियट के टॉपर घोटाले का जो पर्दाफाश हुआ था उसकी याद अभी लोगों के जेहन में धूमिल भी नहीं हो पाई थी कि बीएसएससी के प्रश्नपत्र और पेपर लीक का मामला सामने आ गया और एक बार फिर नीतीश कुमार के सुशासन पर बड़ा सवाल उठ गया। इस पेपर लीक के मामले ने सरकार में शामिल राजद को भी अपना बयान देने को बाध्य कर दिया। बीएसएससी पेपरलीक घोटाला के सामने आते ही मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने आनन-फानन में एसआईटी का गठन किया और वही फिर अपना पुराना राग दुहरा दिया कि कानून अपना काम करेगा और जो भी दोषी होंगे, उन्हें बख्शा नहीं जाएगा। जब जाँच शुरू हुई तो इस घोटाले में भी उँगलियाँ कई रसुखदारों पर उठ गई, मगर जिस तरह घोटाले का मॉडस अपरेंडी सामने आ रहा है उससे जाहिर है कि पर्दे के पीछे सियासत के नकाबपोश चेहरे हैं।

(९१)प्रश्न: क्या सेनाध्यक्ष के कथन का विरोध करने वाले घटिया एवं देशघाती राजनीति का परिचय नहीं दे रहे हैं? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, सेनाध्यक्ष के कथन का विरोध करने वाले घटिया और देशघाती राजनीति का परिचय दे रहे हैं। सेनाध्यक्ष ने पिछले दिनों यह बयान दिया था कि मुठभेड़ के दौरान सुरक्षा बलों के काम में बाधा डालने वालों को आतंकियों का समर्थक मानकर उनके खिलाफ कार्रवाई की जाएगी। उनके

इस कथन में क्या अनुचित या आपत्तिजनक है कि काँग्रेस समेत कई अन्य दलों के नेताओं ने सेनाध्यक्ष के खिलाफ मोर्चा खोल दिया। किंतु-परंतु का सहारा लेकर सेनाध्यक्ष के कथन का विरोध करने वाले न केवल घटिया एवं देशघाती राजनीतिं का परिचय दे रहे हैं, बल्कि कश्मीर के पत्थरबाजों और उन्हें सड़कों पर उतारने वाले पाकिस्तानपरस्त तत्वों का दुस्साहस भी बढ़ा रहे हैं। अगर यही राजनीति है, तो उसके प्रति केवल जगुप्सा ही पैदा हो सकती है।

क्या सेनाध्यक्ष के बयान का विरोध करने वाले नेता ऐसा कुछ चाह रहे हैं कि आतंकियों से मुठभेड़ के दौरान सुरक्षाबलों के खिलाफ नारेबाजी के साथ ही उनपर पथराव का सिलसिला भी जारी रहे? यदि नहीं तो फिर वे पत्थरबाजों के खिलाफ दो शब्द कहने की जरूरत क्यों नहीं समझ रहे हैं? उल्लेख्य है कि इसके पहले भी इन नेताओं की आपत्ति पत्थरबाजी पर नहीं, बल्कि इस पर थी कि सुरक्षा बल उनके खिलाफ छर्रेवाली बंदूकों का इस्तेमाल क्यों कर रहे हैं? इस सवाल के सहारे संसद तक में तमाशा खड़ा किया गया था। क्या दलगत राजनीति इस कदर अँधता से ग्रस्त हो चुकी है कि अब नेताओं को यह दिखना भी बंद हो गया है कि कश्मीर में हमारे जवानों की शहादत का सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा है।

सेनाध्यक्ष के खिलाफ तरह-तरह के कुतर्क पेश कर रहे नेताओं को यह पता होना चाहिए कि हंदवाड़ा में आतंकियों से मुठभेड़ के दौरान घायल मेजर यदि समय पर अस्पताल नहीं पहुँच पाए, तो इस कारण भी कि उग्र भीड़ ने न केवल सेना की गाड़ियों का रास्ता रोका, बल्कि उन पर पथराव भी किया। यह कितना शर्मनाक है कि जब ऐसी घटना के बाद पत्थरबाजों की एक स्वर में भर्त्सना होनी चाहिए तब उनका मनोगल बढ़ाने की कोशिश हो रही है? धिक्कार है ऐसे लोगों पर जो सैनिकों की शहादत पर तो मुँहसिले रहते हैं, लेकिन सेना और सुरक्षाबलों की नाक में दम करने वाले तत्वों को चेताए जाने के खिलाफ मुखर हो उठते हैं। आखिर, सेनाध्यक्ष के बयान के विरोध करने वाले किस मुँह से यह कह सकते हैं कि उन्हें सैनिकों की परवाह है? इसका कोई औचित्य नहीं कि सेनाध्यक्ष उन नेताओं की रत्तीभर परवाह करें जिन्होंने उनके बयान का विरोध किया। उन्हें यह सुनिष्ठिचत करना चाहिए कि उनकी चेतावनी पर अमल हो। इसके लिए केंद्र एवं राज्य सरकारों को भी जरूरी कदम उठाने चाहिए।

(९२)प्रश्न: क्या आज की राजनीति में तमाशे और दिखावे के लिए गुंजाइश पहले से कहीं अधिक हैं? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, लखन जी, इस बात में दो राय नहीं कि आज की राजनीति में तमाशे और दिखावे के लिए गुंजाइश पहले से कहीं अधिक है, क्योंकि राजनीतिक पार्टियाँ अब आम जनता और मीडिया का ध्यान आकर्षित करने के लिए जानबूझकर तमाशेबाजी करते हैं। संसद के दोनों सदनों में तो यह कई बार देखने को मिल चुका है, लेकिन तमिलनाडु विधानसभा में विगत 18 फरवरी, 2017 को नए मुख्यमंत्री पलानीस्वामी द्वारा विश्वासमत हासिल करने के दौरान जो कुछ हुआ, उसने न केवल लोकतंत्र को शर्मसार किया, बल्कि सारी सीमाओं को तोड़ दिया। विधायकों ने विधानसभाध्यक्ष ओ. धनपाल से जमकर धक्का-मुक्की की, यहाँ तक कि उनकी कमीज फाड़ दी। दो-दो विधायक उनकी कुर्सी पर भी जा बैठे। बाद में मार्शल ने घेरा बनाकर, अध्यक्ष को सुरक्षित बाहर निकाला। विधानसभा में हंगामें का नजारा ठीक वैसा ही था, जैसा 29 साल पहले एमजीआर के निधन के बाद जयललिता के विधानसभा के पटल पर विश्वासमत प्राप्त करने के वक्त हुआ था।

विधानसभा में हंगामा देखकर कोई नहीं कह सकता था कि ये जनता के वे प्रतिनिधि हैं जिन्हें जनता ने राज्य के विकास के लिए चुनकर भेजा है। सदस्यों ने विधानसभा की गरिमा का भी ख्याल नहीं रखा। कानून अपना काम करेगा, लेकिन जनता को भी ऐसी घटनाओं से सबक लेना चाहिए और हंगामे में शामिल नेताओं का बहिष्कार करना चाहिए, ताकि जनता के लिए और जनता की बात करने के लिए चुने गए विधायक ऐसी शर्मसार करने वाली हरकतों का हिस्सा बनने के पहले सौ बार सोचें।

(९३)प्रश्न: क्या रोहित वेमुला के परिवार को उन नेताओं ने ही नहीं छला जिन्होंने उसकी आत्महत्या पर खूब आँसू बहाए थे या और किसी छात्र संगठनों ने भी उसकी आत्महत्या का इस्तेमाल किया?

उत्तर: हाँ, करीब एक साल पहले यानी 2016 में जो रोहित वेमूला सुर्खियों मे था उसकी अब न तो कोई राजनीतिक दल या ना ही कोई उसके नेता कोई सुध लेता और वह भी तब जब बीते सप्ताह यानी फरवरी, 2017 के 14.15 तारीख को आँध्रप्रदेश के गुंटूर के जिलाधिकारी ने उसके परिवार को इस आशय का एक नोटिस जारी किया कि वह खुद को अनुसूचित जाति का साबित करे नहीं तो उसे हासिल इस जाति का दर्जा समाप्त कर दिया जाएगा। पता नहीं, रोहित वेमूला का परिवार वस्तुत: दलित है या नहीं, लेकिन मुझे इस पर आश्चर्य होता है कि एक साल पहले जो तमाम नेता

रोहित वेमूला को शहीद करार देने के लिए हैदराबाद की दौड़ लगा रहे थे वे इस तरह चुप हैं, मानों उन्हें सांप सूंघ गया हो। रोहिता वेमूला के पक्ष में इन नेताओं का कोई बयान खोजने से भी नही मिल रहा हैं।

हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय के छात्र रोहित ने पिछले साल यानी 2016 के 17 जनवरी को विश्वविद्यालय के निकट आत्महत्या कर ली थी। आत्महत्या की वजह विश्वविद्यालय से उसका 'अनुचित' निष्काषण मानी गई थी। रोहित के साथियों और विपक्षी दलों का आरोप था कि उसका निष्काषन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिपद के छात्र नेताओं के 'दबाव' में किया गया था। बस क्या था विपक्षी नेताओं ने हैदराबाद कूच करना शुरू किया। राहुल गाँधी, अरविंद केजरीवाल, सीताराम येचूरी, मायावती समेत ढेर नेताओं ने रोहित वेमूला के परिवार से सहानुभूति जताने के लिए अपने आँसू बहाए थे, मगर आज स्थिति यह है कि जनवरी, 2017 में हैदराबाद में रोहित की बरसी पर हुए एक आयोजन में मुश्किल से ही किसी नेता या वामपंथी छात्र संगठन का सदस्य दिखा। ऐसा नहीं है कि रोहित के परिवार का उन नेताओं ने ही छला जिन्होंने उसकी आत्महत्या पर खूब आँसू बहाए थे, बल्कि वामपंथी छात्र संगठनों ने भी उसका इस्तेमाल किया। यह रोहित के साथियों का भी कहना है।

नेताओं का ऐसा व्यवहार कोई नया नहीं कहा जाएगा, लेकिन इससे यह सबक नए सिरे से मिलता है कि वे किसी के प्रति सहानुभूति दिखाने के नाम पर उसके साथ छल करते हैं और उनका एकमात्र मकसद राजनीतिक लाभ बटोरना या फिर अपने राजनीतिक विरोधियों पर हमले का मंच हासिल करना होता है। सच तो यह है कि वे दुखी लोगों की पीड़ा भुनाते हैं और उनकी भावनाओं से खेलते हैं।

नेताओं को ऐसे रूख को देखकर इस नतीजे पर क्यों न पहुँचा जाए कि एक साल पहले दलितों के सबसे बड़े हितैषी होने का मुखौटा लगाकर हैदराबाद की दौड़ लगाने वाले नेता रोहित वेमूला की आत्महत्या पर ग़मजदा नहीं, बल्कि मन ही मन खुश थे और खुशी का कारण यही था कि उन्हें राजनीतिक रोटियाँ सेंकने का एक अच्छा अवसर हाथ लग गया। शायद इसी वजह से उन्होंने रोहित वेमूला को 'शहीद' और 'क्रांतिकारी' बताने में कोई संकोच नहीं किया जबकि उसकी एक मात्र 'उपलब्धि' यही थी कि उसने आतंकी याकूब मेमन की फाँसी पर उसके पक्ष में नारेबाजी की थी। शायद रोहित वेमूला का यही कृत्य उसके 'सेक्युलर' होने का प्रमाण था और

संभवत: इसी वजह से हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय में 'दुखी' नेताओं की भीड़ बढ़ गई थी। गौरतलब यह भी है कि कथित तौर पर दुखी नेताओं की ऐसी ही भीड़ गुजरात के उना में भी देखने को मिल चुकी है। क्या इन नेताओं की सियासी गिद्ध के अलावा अन्य कोई संज्ञा दी जा सकती है?

दरअसल, कुछ दलों एवं उसके नेताओं को धर्म और जाति पर राजनीति करने की गंदी आदत लग गई है। पूर्व राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम ने अपनी एक पुस्तक 'पाथवेज टू ग्रेटनेस' में लिखा है कि 'नेताओं को देश के लिए एक दृष्टिकोण अपनाकर और विकासात्मक राजनीति का हिस्सा बनकर सभ्य समाज के लिए उदाहरण पेश करना चाहिए, लेकिन अफसोस की बात है कि हमारे देश में बहुत से राजनेता इन दिनों हर मुद्दे को सियासत की नजरों से देखने लगे हैं। यंहाँ तक कि किसी की मौत पर भी ओछी राजनीति करने से बाज नहीं आते हैं।' आपने देखा नहीं रोहित वेमूला की आत्महत्या पर राजनेताओं ने ऐसी ही ओछी राजनीति तो की।

इसी प्रकार देखा जाता है कि विश्वविद्यालयों में हुड़दंग या विरोध-प्रदर्शन करने वालों के तार किसी न किसी राजनेता या पार्टी से जुड़े होते हैं।

(९४)प्रश्न: क्या आप भी ऐसा महसूस करते हैं कि कागजों तक ही सिमट कर रह गए सिद्धांत और आदर्श के कुछ थोड़े ही हिस्से को साहस करके राजनीतिक पार्टियाँ अगर व्यवहार में लागू करें, तो विवादित बोल और नेताओं की अनर्गल भाषाओं का प्रदूषण काफी हदतक कम हो जाएगा?

उत्तर: हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कागजों तक ही सिमट कर रह गए सिद्धांत और आदर्श के कुछ थोड़े ही हिस्से को साहस करके राजनीतिक पार्टियाँ और संस्थाएँ अगर व्यवहार में लागू करें, तो विवादित बोल और नेताओं की अनर्गल भाषाओं एवं बयानों का प्रदूषण काफी हद तक कम हो जाएगा। आपने देखा नहीं उज्जैन में राष्ट्रीय सवयं सेवक संघ के सह प्रचारक कुंदन चंद्रावत ने केरल के मुख्यमंत्री पिनराई विजयन का सिर कलम करने पर एक करोड़ रुपए के इनाम की जब घोषणा की, तब संघ ने सख्ती दिखाते हुए अपने इस पदाधिकारी को बर्खास्त कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

आमतौर पर कई सियासी दल और संगठन ऐसी हिम्मत नहीं कर पाते हैं। नेताओं के बयान आते जाते हैं और भुला दिए जाते हैं, मगर आरएसएस ने अपने पदाधिकारी पर तुरंत कार्रवाई की। एक धर्म विशेष से जुड़ाव की वजह से आरएसएस की खूब आलोचना होती है। हालांकि, संघ

विरोधी भी उसकी कार्यशैली और अनुशासन की तारीफ करते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि केंद्र एवं राज्य सरकार को भी ऐसी जघन्य घटनाओं का तत्काल संज्ञान लेना चाहिए। ऐसा नहीं होने से ही तो कई छुटभैये नेता तो अपने विवादित बोल को लेकर मीडिया की कृपा से राष्ट्रीय नेता हो गए। दल यदि हिम्मत कर कार्रवाई करे तो विवादित बोल का प्रदूषण काफी हद तक कम हो जाएगा।

(९५)प्रश्न: क्या आप मानते हैं कि मनोहर पर्रिकर ने गोवा की राजनीति में पुन: लौट कर अच्छा किया है? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, लखन जी, मैं मानता हूँ कि पूर्व रक्षा मंत्री मनोहर पर्रिकर ने गोवा की राजनीति में लौटकर अच्छा किया है, क्योंकि इनकी छवि एक ईमानदार और अच्छे प्रशासक के रूप में जानी जाती है। रक्षा मंत्री के पद पर रहकर भी उन्होंने अपनी छवि को धुमिल होने नहीं दिया और पाकिस्तान को पानी पिलाते रहे।

स्कूली दिनों में संघ से जुड़े और जब वे 26 वर्ष के हुए तो संघ चालक बने और 1988 में भाजपा से जुड़कर राजनीति में कदम रखा तथा 24 अक्टूबर, 2000 से 27 फरवरी, 2002 तक पहली बार गोवा के मुख्यमंत्री बने। फिर 5 जून, 2002 को दोबारा मुख्यमंत्री बने। मनोहर पर्रिकर आईआईटी डिग्रीधारक पहले मुख्यमंत्री हुए जिनके कार्यकाल में गोवा का विकास हुआ। मगर 9 नवंबर, 2014 को जब केंद्र में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में सरकार बनी, तो वे रक्षा मंत्री बने। 10 जून, 2015 को म्यांमार में उग्रवादियों के खिलाफ भारतीय सेना की स्ट्राइक, वन रैंक वन पेंशन लागू कराने में भी उन्होंने मुख्य भूमिका निभाई। 29 सितंबर, 2016 को भारतीय सेना द्वारा गुलाम कश्मीर में की गई सर्जिकल स्ट्राइक में भूमिका के अतिरिक्त अमेरिका से 22 बोइंग अपाचे लॉन्गबो लड़ाकू हेलीकॉप्टर और 15 चिनूक हेलीकॉप्टर का सौदा कराने में भी मनोहर पर्रिकर की अहम भूमिका रही। लंबे समय से रक्षा सौदे के अटके कई अहम मामलों को पर्रिकर के कार्यकाल में न केवल अंजाम दिया गया, बल्कि तीनों सेनाओं के आधुनिकीकरण और हथियारों की जरूरतों को पूरा करने की दिशा में भी सद्धांतिक निर्णय लिए गए।

ऐसे कर्मठ और ईमानदार छवि के नेता मनोहर पार्रिकर के पुन: गोवा के मुख्यमंत्री बनने और गोवा की सियासत में लौट आने से गोवा के लोगों में उम्मीद जगना स्वाभाविक है।

(१६)प्रश्न: क्या यह शर्मनाक नहीं है कि २०१७ के फरवरी-मार्च में हुए पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों में बुरी तरह पराजित नेता और राजनीतिक दल अपने समर्थकों को दिलासा देने के लिए अपनी हार का दोष इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (इवीएम) पर मढ़ रहे हैं?

उत्तर: हाँ, यह शर्मनाक है कि 2017 के फरवरी-मार्च में हुए पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों में बुरी तरह पराजित नेता और राजनीतिक दल अपने समर्थकों को दिलासा देने के लिए अपनी हार का दोष इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) पर मढ़ रहे हैं। वे ऐसा इसलिए भी करते हैं, ताकि अपनी गलतियों पर पर्दा डाल सकें। पहले मायावती ने ईवीएम से छेड़छाड़ का आरोप मढ़ा और यह कहने की कोशिश की बसपा हारी नहीं, बल्कि उनकी पार्टी को हराया गया है। फिर आम आदमी पार्टी के संयोजक और दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल ने इसी बचकाने आरोप के साथ उन्हें मात देने की कोशिश की कि जब अमुक-अमुक राजनीतिक पंडितों और विश्लेषकों ने यह कहा था कि पंजाब में आम आदमी पार्टी की लहर चल रही थी तब फिर उन्हें इतनी कम सीटें कैसे मिल सकती हैं? इसी प्रकार काँग्रेस के कुछ नेताओं ने भी ईवीएम पर अविश्वास जताया है। सच तो यह है कि मायावती सहित अरविंद केजरीवाल और कुछ काँग्रेसी नेताओं ने कुतर्क की पराकाष्ठा का परिचय दिया। अगर मोदी सरकार के लिए ईवीएम में छेड़छाड़ करना संभव होता तो फिर वह पंजाब में आम आदमी पार्टी के खाते में 20 सीटें देने की मेहरबानी क्यों दिखाती? इससे भी बड़ा सवाल यह है कि पंजाब में अकाली शिरोमणी दल को हारने ही क्यों देती और गोवा एवं मणिपुर में बहुमत से पीछे रहकर संतुष्ट क्यों होती ?

अगर ईवीएम का दुरुपयोग किया जाना संभव होता तो आखिर बसपा को उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में 19 सीटें कैसे मिल गई जबकि इसके पहले 2014 के लोकसभा चुनाव में एक भी सीट उसे नहीं मिल पाई थी, लेकिन तब मायावती को ईवीएम में कोई खराबी नहीं दिखी थी। इसी प्रकार 2015 के दिल्ली विधानसभा के चुनाव में जब आम आदमी पार्टी को 70 में से 67 सीटें मिली थीं, तब ईवीएम में सबकुछ ठीक-ठाक था, लेकिन पंजाब में मनमाफिक नतीजा न आते ही ईवीएम में छेड़छाड़ हुई। दुर्भाग्यपूर्ण है कि जब भारत नीर्मित ईवीएम की लोकप्रियता और विश्वसनीयता विगत कई दशक से भारत में ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया में बढ़ रही है तब हमारे ही कुछ नेता उसपर अविश्वास जता रहे हैं। यह निंदनीय है कि अपने

संकीर्ण स्वार्थ पूरा करने के फेर में मायावती, अरविंद केजरीवाल और काँग्रेस के कुछ नेता ईवीएम के साथ-साथ चुनाव आयोग की प्रतिष्ठा से भी खेल रहे है और अपने समर्थकों को गुमराह कर रहे हैं, संभवत: वे आत्ममंथन करने से बचना चाह रहे है और इस सच्चाई को स्वीकार करने से भी कि अपनी पराजय के लिए वे खुद ही जिम्मेदार हैं। यह और कुछ नहीं, मुझे तो ऐसा लगता है कि वे 'खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे' वाली कहावत को ही चरितार्थ कर रहे हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह कि ज्यादा पारदर्शी ईवीएमवाली जगहों में भी तो भाजपा का ही डंका बजा है। ऐसी 20 सीटों में 17 सीटों पर भाजपा ही आगे रही है, जिससे विभिन्न दलों द्वारा लगाए गए आरोपों का आधार खिसकता जा रहा है।

(९७)प्रश्न: क्या योगी आदित्यनाथ को उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनाना सही फैसला है?

उत्तर: हाँ, लखन जी, योगी आदित्यनाथ को उत्तरप्रदेश का मुख्यमंत्री बनाना सही फैसला है या नहीं इस सवाल का जवाब देने के पूर्व मैं आपको यह बताना वाजिब समझता हूँ कि भाजपा ने लोगों को 2017 के विधानसभा चुनाव के वक्त लोगों को यह भरोसा दिलाया था कि वह उत्तरप्रदेश को बदहाली से उबारकर सही मायने में उत्तरप्रदेश बनाने का सपना साकार करेगी। भाजपा की जीत के बाद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने लोगों को यह भरोसा भी दिलाया था कि नई सरकार सभी वर्गो को साथ लेकर चलेगी। उत्तर प्रदेश में भाजपा को प्रबल जनादेश मिला है और भारी-भरकम जनादेश आम जनता की उम्मीदें को बढ़ा देता है। योगी आदित्यनाथ सरकार की उम्मीदों को पूरा करने के साथ-साथ आशंकाओं को दूर करने का भी काम करना होगा।

योगी आदित्यनाथ को मुख्यमंत्री बनाने के फैसले को सही या गलत के आपके सवाल से भी आशंका प्रकट होती है जिसे मैं दूर करना चाहूँगा। योगी आदित्यनाथ एक तेजतर्रार छविवाले नेता हैं इसलिए उन्हें अब अपनी तेजी उत्तरप्रदेश को तेजी के साथ सही दिशा की ओर ले जाने में दिखानी होगी। आपकी आशंका इसलिए भी है, क्योंकि भाजपा ने उत्तरप्रदेश के प्रचंड जनादेश की कमान प्रखर हिंदूवादी चेहरे योगी आदित्यनाथ को सौंपी हैं। केंद्रीय मंत्री वैंकेया नायडू ने तो अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए यह कहा है कि योगी आदित्यनाथ की अगुआई में नई सरकार सिर्फ विकास और सुशासन के लिए काम करेगी। स्वयं को संशयमुक्त करने के लिए योगी

आदित्यनाथ को बिना किसी भेदभाव के नरेन्द्र मोदी की विकास नीति को उत्तरप्रदेश के बड़े फलक पर उतारने की अहम जिम्मेदारी निभानी होगी।

उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री बनाए गए योगी आदित्यनाथ के बारे में मैं बता दूँ कि गोरक्षापीठाधीश्वर योगी आदित्यनाथ के लिए हिंदुत्व जितना महत्वपूर्ण है उतना ही सामाजिक समरसता का ताना-बाना भी। यही कारण है कि हिंदुत्व का पताका फहराने वाले गोरखनाथ मंदिर में मुसलमान भी भाईचारे एवं सद्भावना के साथ आते-जाते हैं। मंदिर परिसर में स्थित दुकानों में अनेक मुस्लिम परिवारों की है जिनमें वे पीढ़ियों से रहकर कारोबार चलाते हैं। योगी की पहचान जितना गोरक्षापीठ के महंत के रूप में है उतना ही जुझारू संघर्षशील राजनेता की भी है। यही कारण है कि 1998 में गोरखपुर से पहली बार सांसद चुने गए योगी आदित्यनाथ लगातार पाँचवी बार यह सीट बड़े अंतर से जीत चुके हैं। 1998 में मात्र 26 साल की उम्र में देश का सबसे युवा सांसद बनने का उन्हें गौरव मिला था। इसके बाद तो उन्होंने सियासत की पथरीली राह पर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। ऐसे तेजतर्रार राजनेता को भाजपा ने उत्तरप्रदेश का मुख्यमंत्री बनाने का जो फैसला किया है वह मेरे ख्याल से बिल्कुल सही है। और फिर मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को सहयोग करने के लिए केशव प्रसाद मौर्य तथा डॉ. दिनेश शर्मा जैसे कर्मठ एवं ईमानदार राजनेता को दो-दो उपमुख्यमंत्री की नियुक्ति एक नया प्रयोग है।

मुख्यमंत्री बनने के बाद खुद योगी आदित्यनाथ ने घोषणा की कि सबका साथ सबका विकास का उद्येश्य पूरा करने में सफल होना उनकी पहली प्राथमिकता है। अपने पहले संवाददाता सम्मेलन में उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि किसी के साथ कोई भेदभाव नही किया जाएगा।

(९८)प्रश्नः २०१७ के फरवरी-मार्च में पाँच राज्यों के विधानसभा चुनाव नतीजों को आप किस रूप में आँकते हैं? क्या इन नतीजों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव २०१९ के लोकसभा चुनाव पर पड़ेगा?

उत्तरः विगत फरवरी-मार्च, 2017 में पाँच राज्यों उत्तरप्रदेश, उत्तराखंड, गोवा, पंजाब तथा मणिपुर विधानसभा चुनाव के होली के दो दिन पूर्व यानी 11 मार्च को आए नतीजे ने सभी को चौकाए, क्योंकि राजनीतिक दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण राज्य उत्तरप्रदेश में भाजपा विपक्षी दलों के सपा-काँग्रेस गठबंधन तथा बसपा को चारों खाने चित्त कर दिए। 403 सीटों में 325 सीटों पर कब्जा करने से वहाँ भाजपा सरकार बनने से न केवल राज्य की सत्ता में

उसका 14 साल का बनवास खत्म हुआ, बल्कि राष्ट्रीय राजनीति में भी उसकी धमक बढ़ेगी। इस प्रचंड जीत का श्रेय जाता है प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की लोकप्रियता के साथ-साथ भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह की रणनीति को। इसके साथ ही उत्तराखंड के नतीजों ने इस पर नए सिरे से मोहर लगा दी कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की लोकप्रियता का जादू सिर चढ़कर बोल रहा है।

उत्तराखंड विधानसभा के कुल 70 सीटों में से रिकार्ड 57 सीटें हासिल कर भाजपा ने जहाँ एक इतिहास कायम किया वहीं काँग्रेस महज 11 सीटों तक सिमट गई और उसके मुख्यमंत्री हरीश रावत तराई की दोनों सीटों – हरिद्वार ग्रामीण और किच्छा से चुनाव हार गए। इसी प्रकार पंजाब में दस साल बाद 117 सीटों में से 77 सीटें जीतकर काँग्रेस ने कैप्टन अमरेन्द्र सिंह के नेतृत्व में सरकार बनाई।

पंजाब में काँग्रेस की जीत से आमजन को खुशी इसलिए हुई, क्योंकि प्रकाश सिंह बादल जब मुख्यमंत्री रहे तब उनके परिवार भ्रष्टाचार में लिप्त रहे और उनके परिवार की शानो-शौकत के किस्से आए दिन सुर्खियाँ बटोर रहे थे। और भाजपा वैसे भी प्रत्यक्ष रूप से वहाँ राजनीति नहीं कर बादल सरकार के अकाली दल के साथ गठबंधन में थी। बादल सरकार की अलोकप्रियता ही हार की वजह बनी। गोवा में भी बदलाव की बयार चली और किसी भी पार्टी को बहुमत नहीं आ सका।

मणिपुर के परिणाम भी भाजपा के लिए उत्साहित करने वाले इसलिए रहे, क्योंकि वहाँ पहली बार भाजपा ने काँग्रेस के किले पर जोरदार दस्तक देकर चार सीट से आगे बढ़ी और 21 सीटों पर कब्जा किया।

इन चुनावों में बसपा की दुर्दशा यह संकेत देती है कि मायावती की नई दलित-मुस्लिम सोशल इंजीनियरिंग बिल्कुल असफल रही। दयाशंकर सिंह प्रकाश के बाद बसपा के नसीमुद्दीन सिद्दीकी ने उनकी पत्नी व बेटी के लिए जैसी अभद्र भाषा का प्रयोग किया, उससे न केवल ठाकुर, बल्कि ब्राह्मण भी बसपा से खिसक गए। उत्तर प्रदेश में मिले नतीजों से अब एक बात तो बिल्कुल स्पष्ट हो गयी कि जाति-पाति, धर्म-संप्रदाय धारणा के दरवाजे अब टूट चुके हैं। इन परिणामों में एक और संकेत बेहद साफ है कि केंद्र सरकार द्वारा नोटबंदी के फैसले की जितनी आलोचनाएँ हुई उसे जनता ने नकार दिया। नोटबंदी और सर्जिकल स्ट्राइक जैसे फैसलों पर जनता ने जिस तरह मोहर लगाई उससे यह स्पष्ट हो गया कि विपक्षी दलों ने

जनभावना को समझने में भूल की। केवल खुद को दुध का धुला बताकर नकारात्मक राजनीति करने वालों का प्रजातंत्र में बहुत महत्व नहीं होता यह स्पष्ट हो गया। चुनावों के नतीजों ने परिवारवाद की राजनीति को नकारकर एक नए दौर की राजनीति शुरू की है। उम्मीद है कि आगे आने वाले चुनावों में राजनीतिक दल इससे सबक लेते हुए योग्य उम्मीदवारों को वरीयता देंगे।

जहाँ तक पाँच राज्यों के चुनावों के नतीजे का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से 2019 के लोकसभा चुनाव पर असर का सवाल है, धीमी ही सही, लेकिन निश्चित रूप से भारतीय जनता पार्टी सही मायने में पूरे देश का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टी बनने की तरफ तेजी से बढ़ती दिख रही है और ठीक इसके विपरीत देश की सबसे पुरानी भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस पार्टी के हाथ से एक के बाद एक प्रदेश निकलते जा रहे हैं। इसलिए आने वाले समय में भारतीय राजनीति एक नई करवट ले सकती है। जाति-धर्म से उठकर विकास की राजनीति का मर्म लोगों की समझ में आ गया है। धनबल-बाहुबल को धता बताने वाला मतदाता भी अब विकास की राह निहार रहा है। जो भी राजनीतिक दल जनता की दिक्कतें दूर करने की बात करेगा, बटन उसी दल का दबेगा। आपने देखा नहीं 2014 में अल्पसंख्यक बहुल संसदीय क्षेत्रों में भी भाजपा को उत्तरप्रदेश में जिताने के बाद राज्य ने फिर यह संदेश दिया है कि बहुसंख्यकों की नाराजगी भी किसी एक दल के पक्ष में जा सकती है।

विपक्ष को अब खुले दिल से मानना होगा कि मतदाता भाजपा के पक्ष में उसकी सांप्रदायिकता की वजह से नहीं गए , बल्कि उन्होंने उसे चुना तो इसलिए, क्योंकि वे कानून व्यवस्था में गिरावट, परिवारवाद और भ्रष्टाचार से लोग उब गए थे। उन्होंने उसे चुना जो मजबूती से इन सभी पर संघर्ष करता दिखा। विपक्षी नेता यह भी भूलते रहे कि बीमारी से मुक्ति के लिए लोग कड़वी दवा की घूँट खुशी-खुशी पीते हैं और नोटबंदी, भ्रष्टाचार, कालेधन और गिरती अर्थव्यवस्था रूपी बीमारी की ऐसी ही कड़वी दवा थी। इन सभी चीजों को देखते हुए ऐसा लगता है कि 2019 के लोकसभा चुनावों पर इसका असर पड़ेगा।

नरेन्द्र मोदी ने जो इस चुनाव में ऐतिहासिक जीत दिलाई उससे उनकी ताकत तो बढ़ी ही, साथ ही वह 2019 में दोबारा जीत दर्ज करने के लिए मजबूत स्थिति में आ जाएँ, इसकी संभावना बढ़ गयी है। इस चुनाव में भाजपा की जीत नरेन्द्र मोदी के विश्वास की पुष्टि की है, क्योंकि

मुख्यमंत्री चेहरे के बिना उत्तरी भाजपा का सबसे बड़ा चेहरा प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ही थे। उत्तर प्रदेश सहित तीन राज्यों में भाजपा को प्रचंड बहुमत का मिलना इस बात का संकेत हैं कि पार्टी ने 2019 में होने वाले लोकसभा चुनाव का सेमीफाइनल जीत लिया है। इस प्रचंड बहुमत का असर आगामी लोकसभा चुनाव में दिखना तय है।

नि:संदेह नोटबंदी के अहम फैसले के बाद नरेन्द्र मोदी ने भारतीय जनता का दिल और दिमाग जीत लिया। सच तो यह है कि जो लोग इस नीति व फैसले से परेशान हुए उन लोगों का मानना है कि मोदी एक संजीदा व्यक्ति हैं जिसने भ्रष्ट और अमीर लोगों पर चोट किया है। कॉउंसिल ऑन फॉरेन रिलेन्स में भारत, पाकिस्तान और दक्षिण एशिया मामलों की वरिष्ठ शोधार्थी एलीसा आयर्स का मानना है कि अब भारत उन आर्थिक सुधारों को बढ़ाएगा जो जनता को सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। इसलिए मोदी अब सबसे लोकप्रिय जननेता बन गए हैं और यह सब उन्होंने किसी विरासत पर निर्मित न करके अपने प्रयासों से कमाया है। उनके पास वह महानतम ब्रहमास्त्र है जो जननेता के पास होता है वोट खींचने की क्षमता। अब मुस्लिम मतदाता भविष्य पर विचार करेगा। मोदी-शाह की रणनीति ने उसे अलग-थलग कर उसकी अप्रासंगिकता को साबित कर दिया है। यदि हमें मुस्लिम कट्टरपंथी दलों का उदय, कई लीग और लामबंदी नहीं देखना चाहते तो 'धर्मनिरपेक्ष' दलों को अपनी राजनीति को पूरी तरह नया रूप देना होगा।

इस प्रकार कुल मिलाकर देखा जाए तो मजबूत मोदी, कमजोर काँग्रेस और लोकसभा की दृष्टि से महत्वपूर्ण राज्यों में अप्रासंगिक होती क्षेत्रीय पार्टियों को देखते हुए 2019 के लोकसभा चुनाव में नरेन्द्र मोदी की जीत आसान नजर आ रही है। मैं तो यहाँ तक कहने के लिए तैयार हूँ कि सारे इकट्ठा होकर शेर पर हमला करने के लिए तैयार भी हो जाएँ तो पर भी 2019 का चुनाव जीतने में विपक्षी पार्टियाँ कामयाब नहीं हो सकतीं, क्योंकि मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति में भाजपा के विरोध में जो पार्टियाँ खड़ी हैं उनमें अपवादस्वरूप कुछ को छोड़कर वे भी अवसरवादी गठबंधन ही बना पाएँगी जिनके चेहरे देश विरोधी और जन विरोधी के रूप में आम मतदाताओं की नजर में दिखते हैं इसलिए नरेन्द्र मोदी को हराने के उनके प्रयास भी विफल होंगे। यदि ऐसा कोई गठबंधन खुदा-न-खास्ते जीत भी गया, तो वह इस देश के लिए बुरा होगा।

(९९)प्रश्न: लोकतंत्र में जनता ही सर्वोच्च है, लेकिन गायकवाड़ जैसे जनप्रतिनिधि खुद को लोकतंत्र में जनता और व्यवस्था से ऊपर क्यों मान बैठते हैं?

उत्तर: हाँ, लोकतंत्र में जनता ही सर्वोच्च है, लेकिन शिवसेना के सांसद रविंद्र गायकवाड़ से जुड़ा ताजा मामला फिर जनप्रतिनिधियों के आचरण व व्यवहार से जनता हतप्रभ है, क्योंकि उन्होंने कहासुनी के बाद एयर इंडिया के एक कर्मचारी की पिटाई कर दी। कहा तो यहाँ तक जाता है कि उन्होंने कर्मचारी को पच्चीस चप्पलें मारीं। यह उनसे जुड़ा पहला विवाद नहीं है। इसके पहले भी वे ऐसा करते रहे हैं।

बहरहाल, सबसे बड़ी बात तो यह है कि खुद को जनता का सेवक कहलाने वाले जन-प्रतिनिधि चुने जाने के बाद यह बात भूल जाते हैं। नागरिकों से लिए गए कर के पैसे से मिलने वाली अतिविशिष्ट व्यक्ति की सुविधाएँ उन्हें उनकी सेवा के लिए मिलती हैं, जिन्हें अक्सर वे अपना हक समझ लेते हैं। जन प्रतिनिधियों से मर्यादित आचरण की अपेक्षा की जाती है। सार्वजनिक जीवन में अपने व्यवहार के प्रति उन्हें सतर्क व सजग रहना चाहिए जबकि ऐसा देखने में कम ही आता है। इसलिए गायकवाड़ जैसे जनप्रतिनिधियों पर कड़ी कार्रवाई जरूरी है। उन राजनीतिक दलों को भी ऐसे लोगों पर सख्त कार्रवाई करनी चाहिए, जिनके टिकट पर चुनकर वह संसद या विधानसभा से पहुँचते हैं। उनके आचरण को जनता बेहद करीब से देख रही है। इसलिए अमर्यादित आचरण की छूट किसी को नहीं दी जानी चाहिए जो जनता के प्रतिनिधि है।

देखा यह गया कि अपने सांसद रविंद्र गायकवाड़ को जनप्रतिनिधि की गरिमा को बरकरार रखने के लिए शिवसेना उन्हें सुधारने का प्रयास करती, मगर उसने तो इस मुद्दे को संसद से लेकर सड़क तक उठाते हुए एयर इंडिया समेत 7 एयरलाइन्स कंपनियों द्वारा गायकवाड़ के हवाई यात्र पर बैन लगाने के मुद्दे को गलत बताया। शिवसेना को इस सांसद के खिलाफ कदम उठाते हुए कार्रवाई करनी चाहिए थी, लेकिन जिस तरह दलीलों द्वारा सांसद को सही ठहराने की कोशिश की गई, उससे पार्टी की छवि ही खराब होगी। बेहतर होता अगर शिवसेना अतार्किक तरीके से अपने सांसद का सही और एयरलाइन्स को गलत साबित करने की जगह इस मामले में सांसद पर कार्रवाई करती, मगर अपने अराजक सांसद के खिलाफ कोई कार्रवाई करने की बजाय तरह-तरह के कुतर्कों के जरिए उनका साथ दे रहा है। शिवसेना

के इस रवैए से इसकी ही पुष्टि होती है कि अराजकता इस दल के डीएनए में घुल गई हैं और उसने दादागीरी को राजनीति का पर्याय समझ लिया है। संसद के पिछले सत्र में रविन्द्र गायकवाड़ ने खुद कों विनम्र बताने का जो स्वांग रचा और उनके पक्ष में खड़े शिवसेना के अन्य नेताओं ने जिस तरह से धमकी दी कि यदि उनपर लगे यात्रा प्रतिबंध को जल्द नहीं हटाया गया तो मुंबई से विमान नहीं उड़ पाएँगे वह अराजक राजनीति कराए ऐसा उदाहरण है जिसकी मिसाल मिलना मुश्किल है।

(१००)प्रश्नः जेटली द्वारा अरविंद केजरीवाल पर किए गए मानहानि के मुकदमे की फीस दिल्ली सरकार द्वारा वहन किया जाना आपकी नजर में क्या उचित है?

उत्तरः नहीं, अरुण जेटली द्वारा अरविंद केजरीवाल पर किए गए मानहानि के मुकदंमे की फीस दिल्ली सरकार द्वारा वहन किया जाना कतई उचित इसलिए नहीं है क्योंकि सवाल पैसे के भुगतान का नहीं है, आम आदमी पार्टी और उसके संयोजक तथा दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल की मंशा और नैतिकता का है। अगर मुख्यमंत्री के रूप में कार्य करते हुए किसी फैसले के खिलाफ कोई मुकदमा होता है, तो भुगतान सरकारी खजाने से किया जाना जायंज है, लेकिन मुख्यमंत्री के बयान के परिणामस्वरूप कोई संकट आता है, तो करदाता उसे क्यों झेले?

यह बात तो हर राजनीतिज्ञ पर लागू होती है, लेकिन अरविंद केजरीवाल से नैतिकता के पालन की ज्यादा उम्मीद लोग करते हैं, क्योंकि केजरीवाल का उदय ही राजनीति बदलने और भ्रष्ट व्यवस्था से लड़ने की उम्मीद के रूप में हुआ था। ऐसे लोगों के भरोसे को कायम रखना उनकी जिम्मेदारी है। परंपरागत राजनीति के खिलाड़ी जो दल हैं उन्हें इस तरह के मामलों में इतने दबाव का सामना नहीं करना पड़ेगा, पर जिस दल का उदय ही व्यवस्था परिवर्तन के लिए हुआ हो अगर वो पुरानी व्यवस्था के अनुसार भी चलने लगा, तो जनता निराशं होगी।

(१०१)प्रश्नः क्या आपको भी ऐसा लगता है कि भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सियासत की नब्ज पर हाथ रखने का फन जानते हैं? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सियासत की नब्ज पर हाथ रखने का फन जानते हैं, क्योंकि राजनीतिज्ञ के तौर पर मोदी जी की यह खासियत है कि वह आने वाले कल की

अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों को बड़ी शिद्दत से भांप लेते हैं और अपनी स्ट्रैटजी उसी हिसाब से तय करते हैं। अब यही आप देखिए न आज की तारीख में जब भारतीय राजनीति में सक्रिय पार्टियाँ आज के लिए कार्यक्रम नहीं तलाश पा रही हैं, तब नरेन्द्र मोदी ने 2019 के लोकसभा चुनाव की स्ट्रैटेजी पर काम करना, कराना शुरू कर दिया है। आखिर तभी तो भाजपा संसदीय दल के सांसदों की एक बैठक में जब वह यह कहते हैं कि अगला चुनाव मोबाइल पर लड़ा जाएगा तो यह मानिए कि उन्होंने अपनी स्ट्रैटजी तय कर ली है और अब इसे पार्टी में डाउन द लाइन पहुँचाया जाने लगा है। जबकि इस पैमाने पर दूसरी पार्टियों और भाजपा के प्रतिद्वंद्वियों को आँकने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ अभी चुनाव या उसके कार्यक्रम को लेकर कोई सुगबुगाहट तक नहीं है।

2019 तक भारत में 10 करोड़ से ज्यादा नए मतदाता, 120 करोड़ मोबाइल और 73 करोड़ इंटरनेट इस्तेमाल करने वाले लोग हो जाएँगे। नरेन्द्र मोदी ने इस गेमचेंजर फैक्टर को केंद्र में रखकर 'मोबाइल राजनीति' का आगाज कर दिया है। उनकी प्रतिद्वंदी पार्टियाँ या उसके नेता इस मामले में कहाँ हैं, इसका कोई अनुमान शायद उन्हें खुद भी नहीं है। वर्तमान दौर में हम सबों की जो जिंदगी है हम भोजन-पानी, घर-परिवार तक भले भूल जाएँ, पर अपना मोबाइल नहीं भूलते। नरेन्द्र मोदी ने इसी हरकत की नब्ज पर हाथ रख दिया है और उनकी इसी विशेषता ने उन्हें न सिर्फ भारतीय राजनीति का सिरमौर बनाया, बल्कि वैश्विक कूटनीति और वैश्विक नेताओं की लोकप्रियता के ग्राफ पर भी वह सबसे आगे गिने जाते हैं। दूसरे समकालीन राजनीतिज्ञ जब तक कुछ नया सोचते हैं, मोदी उस सोच से आगे नई लकीर खींचकर खड़े हो जाते हैं। इसलिए मुझे भी यह सोचने के लिए विवश होना पड़ता है कि सियासत की नब्ज पर हाथ रखने का फ़न वह जानते हैं।

(१०२)प्रश्नः चुनाव आयोग जैसी संवैधानिक संस्थाओं के लिए असंसदीय भाषा का प्रयोग क्या चिंता का विषय नहीं है?

उत्तर: हाँ, निश्चित रूप चुनाव आयोग जैसी संवैधानिक संस्थाओं के लिए असंसदीय भाषा का प्रयोग चिंता का विषय है, लेकिन जब स्वयं संवैधानिक पद पर बैठा कोई व्यक्ति किसी दूसरी संवैधानिक संस्था के बारे में अशोभनीय टिप्पणी करे तो यह राजनीति और भाषाई शालीनता का पतन ही कहा जाएगा। आपने देखा नहीं हाल ही में पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों के नतीजे निकलने के बाद बसपा प्रमुख मायावती तथा आम आदमी पार्टी

के संयोजक एवं दिल्ली सरकार के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल के साथ-साथ काँग्रेसी नेताओं ने भी इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन पर ऊँगलियाँ उठाई जबकि चुनाव आयोग ने ईवीएम में किसी तरह की छेड़छाड़ को साबित करने की खुली चुनौती भी आरोप लगाने वाली पार्टियों को दी थी। फिर भी अरविंद केजरीवाल ने विगत 10 अप्रैल, 2017 को जिस तरह प्रेस सम्मेलन बुलाकर चुनाव आयोग को धृतराष्ट्र की संज्ञा दी, वह किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कही जाएगी। इसे भारतीय राजनीति और भाषाई शालीनता का पतन ही कहा जाएगा, जो चिंता का विषय है।

(१०३)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि विपक्षी दलों द्वारा ईवीएम की जगह मतदान पत्र से चुनाव की माँग अतार्किक है? ऐसा क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि काँग्रेस, सपा, बसपा और आम आदमी पार्टी द्वारा ईवीएम की जगह मतदान पत्र से चुनाव की माँग बहुत ही अतार्किक है, क्योंकि देश ने मतदान पत्र के जरिए चुनाव का दौर भी देखा है और उसकी दुश्वारियाँ भी। 2017 के फरवरी-मार्च में हुए पाँच विधानसभा चुनावों के परिणामों के बाद खासतौर पर पहले तो बसपा प्रमुख मायावती ने ईवीएम में गड़बड़ी का मुद्दा उठाकर सनसनी फैला दी और फिर काँग्रेस, सपा तथा आम आदमी पार्टी ने भी मायावती के आरोप का समर्थन करते हुए यहाँ तक कि भारत के राष्ट्रपति का दरवाजा भी खटखटाया और ईवीएम की जगह मतदान पत्र के जरिए चुनाव कराने की माँग रखी। हालांकि इस मामले में निर्वाचन आयोग ने ईवीएम से छेड़छाड़ की खुली चुनौती देकर पूरे प्रकरण को एक गेम में बदल दिया है। वैसे सच कहा जाए तो वैज्ञानिक तौर पर मतदान पत्र की माँग बहुत ही अतार्किक इसलिए लगती है, क्योंकि पहले जब मतदान पत्रों के जरिए चुनाव होते थे, तो मतदान बक्से में पानी डालने, मतदान पत्र फाड़ने, मतदान केंद्र पर कब्जा करने जैसी घटनाएँ अब इतिहास हो चुकी है। यह सब संभव हुआ ईवीएम से ही। अब ईवीएम के चलते ही इसे 10 घंटे में चुनाव नतीजे आ जाते हैं। मतपत्रों की गिनती के वक्त विवाद भी न के बराबर होते हैं।

इन सभी हालातों को देखते हुए भी विपक्षी पार्टियाँ किस सोच के साथ मतदान पत्र के जरिए चुनाव कराने की वकालत कर रही हैं, यह सोच से परे है। हर मतदान केंद्र पर मतदान शुरू होने से अभिकर्ताओं को ईवीएम चलाकर दिखाया जाता है। शिकायत तब क्यों नहीं हुई? नतीजे आने के बाद

ही आरोप क्यों? गड़बड़ी होती तो पंजाब में काँग्रेस के कैप्टन अमरिंदर सिंह कैसे मुख्यमंत्री बन गए? ये सवाल खुद अमरिंदर सिंह ने उठाया है। खासतौर से पढ़े-लिखे और अभियंत्रण की डिग्री और डिप्लोमा लिए नेताओं को तो इस पर ज्यादा सोच-विचार करने की जरूरत है।

आपको याद होगा वर्ष 2009 में भी ऐसी ही चुनौती पेश की थी चुनाव आयोग ने, मगर तब भी कोई यह साबित नहीं कर सका था कि ईवीएम में छेड़छाड़ हो सकती है। इस प्रकार उनकी क्षमता-विश्वसनीयता पर कोई सवाल नहीं उठा। इस दौरान दुनिया के कई देशों में ईवीएम का सफल प्रयोग भी उसके पक्ष में एक मजबूत दलील देता है। एक ओर जहाँ इन मशीनों के आगमन से मतदान केंद्रों का कब्जाने जैसी विकराल समस्या से निजात पाने में खासी कामयाबी मिली है, वहीं दूसरी ओर अदालती आदेश भी मतपत्र युग की वापसी के समर्थन का संकेत नही करते। इसलिए मजबूत अदालती फैसलों और पूरी तरह पर्चीवाली मशीनों की ओर बढ़ते हुए कदमों के मद्देनजर ईवीएम के खिलाफ अभियान पर निश्चित रूप से विराम लगना चाहिए।

(१०४)प्रश्नः क्या देश में लालबत्ती के प्रयोग नहीं करने के फैसले से आप सहमत हैं? क्या आपको ऐसा लगता है कि लालबत्ती के इस्तेमाल में कटौती करने से देश से वीआईपी संस्कृति खत्म हो जाएगी?

उत्तरः हाँ, देश में लालबत्ती के प्रयोग नहीं करने के फैसले से हम सहमत हैं, क्योंकि राज्य एवं केंद्र के सभी मंत्री, अधिकारी व अन्य लालबत्तीधारी ने इसे स्टेटस सिम्बल बना लिया है जबकि वास्तव में यह लालबत्ती आकस्मिकता या आपातस्थिति का संकेत होती है। इस फैसले के पीछे केंद्र सरकार ने तर्क दिया है कि देश का हर व्यक्ति वीआईपी है। यह हृदय को स्पर्श करने वाली बात है। व्यावहारिक धरातल पर ऐसी समानता की स्थिति हासिल करने में अभी समय लगेगा यद्यपि यह उम्मीद जगाने वाली बात है कि राजनीतिक नेतृत्व कम से कम सिद्धांत में ऐसा मानता है।

जहाँ लालबत्ती इस्तेमाल में कटौती करने से देश से वीआईपी संस्कृति खत्म होने का सवाल है, मुझे नहीं लगता कि लालबत्ती के इस्तेमाल कम करने से देश में वीआईपी संस्कृति खत्म हो जाएगी, पर इतना जरूर है कि सदियों से छुआछूत, सामाजिक उत्पीड़न, गरीबी, अशिक्षा और शोषण के शिकार सामाजिक वर्गों के दिल-दिमाग पर ऐसा मरहम लगाकर ही देश को

अखंडित रखा जा सकता है। केंद्र सरकार समाज के सभी वर्गो को ताकत और आत्मविश्वास देने के लिए कई कदम उठा चुकी है।

दरअसल, लालबत्ती विषमता का प्रतीक है। इसे प्रतिबंधित करके केंद्र सरकार ने इस दिशा में अहम कदम उठाया है। लालबत्ती की बाधा हटने से आम आदमी और उसके प्रतिनिधियों के बीच कुछ हद तक दूरी घटेगी। लोकतंत्र की मजबूती के लिए भी यह जरूरी है।

आपको याद दिलाऊँ कि बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने वर्ष 2008 के 14 सितंबर की रात 10 बजे जब दूरभाष पर बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व मेरे कंधे पर सौंपने का मुझपर दबाव बना रहे थे, तो मुझे हिचकिचाहट हो रही थी, परंत जब मेरी श्रीमति जी ने मुख्यमंत्री की बात स्वीकार करने को कहा, तो मैंने उन्हें बड़ी झिझक के साथ स्वीकार किया। वह भी दो कार्यकाल के लिए नहीं, बल्कि तीन साल के एक कार्यकाल के लिए ही। फिर पद ग्रहण करने के कुछ ही माह बाद जब पहली बार बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष के पद को राज्यमंत्री का दर्जा दिया गया तो मेरी गाड़ी में भी लालबत्ती लगायी गयी, पर मुझे यह गंवारा नहीं लगा, क्योंकि मै अतिमहत्वपूर्ण व्यक्तियों के समूह का नहीं, बल्कि भीड़ का आदमी हूँ। आखिर तभी तो संध्या समय संस्कृत बोर्ड कार्यालय से जब पुरन्दरपुर स्थित अपने 'बसेरा' निवास के लिए सरकारी गाड़ी से प्रस्थान करता था, तो पटना सचिवालय के सामने स्थित शहीद स्मारक के निकट गाड़ी को छोड़ पैदल अपने निवास पर जाता था, क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि लालबत्ती लगी गाड़ी का अपने निवास के सामने या गैरेज में रखकर वी.आई.पी. कहलाऊँ। इसके लिए बोर्ड के सचिव ने शिक्षा विभाग में एक बार प्रधान सचिव से शिकायत भी की थी कि अध्यक्ष जी गाड़ी शहीद स्मारक छोड़कर पैदल ही अपने निवास जाते है जो सुरक्षा की दृष्टि से उचित नहीं है। मैने प्रधान सचिव से कहा भी था कि लिखित रूप में भी मैं कहना चाहूँगा कि मैं एक सामाजिक व्यक्ति हूँ जिसे समाज के लोगों से कोई भय नहीं है और तभी तो सरकार की ओर से दी गई छह पुलिस की स्कॉर्ट पार्टी को अपने साथ लेकर चलने से मैंने इंकार किया था और बिना सुरक्षा गार्ड के ही कार्यालय जाता-आता रहा।

अपने विषय में इतना सब कुछ कहने का लबोलुआब यह कि लालबत्ती दरअसल, गाड़ी के ऊपर नहीं, बल्कि दिमाग में जलती है। लालबत्ती सामंतवादी सोच का प्रतीक चिन्ह है, जिसे केंद्र सरकार ने खत्म

कर दिया, लेकिन प्रतीक नष्ट होने से सोच नष्ट नहीं होगी। हमारे समाज की रगों में सामंतवाद है। हमारा सामाजिक विभाजन ही अभिजात्य वर्गीय है, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के पदसोपान से शुरू होता है। फिर भी केंद्र सरकार ने अतिविशिष्ट व्यक्ति संस्कृति को नष्ट करने की शुरुआत की है। शुरुआत कहीं से हो अच्छा है, लालबत्ती से ही सही, लेकिन यह फैसला सही दिशा में एक छोटा सा उदय भर है। अभिजात्य वर्गीय निशानियाँ अभी भी बहुत-सी बाकी हैं।

सच तो यह है कि वीआईपी संस्कृति जनता को पसंद नहीं है, तबतक जबतक उसे खुद वो सुविधा न मिल जाए। यह वैसी ही है, जैसे महाराष्ट्र की कहावत है कि सब चाहते हैं कि शिवाजी पैदा हों, लेकिन पड़ोसी के घर में। ऐसे समाज को बत्तीबाज, झंडेबाज और डंडेबाज ही मिलेंगे। एक बुराई रोकेंगे, तो दूसरी शुरू हो जाएगी।

(१०५)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है वर्ष २०१५ के दिल्ली विधानसभा चुनाव में अपार बहुमत से चुनकर आई आम आदमी पार्टी दिल्ली की सत्ता पाते ही नेपथ्य में विलीन हो गई?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि समाजसेवी अन्ना हजारे के भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन की पृष्ठभूमि से राजनीति में आने वाले अरविंद केजरीवाल और उनकी आम आदमी पार्टी 2015 के दिल्ली विधानसभा चुनाव में 70 में से 67 सीटें जीतकर विकास के अंतिम छोर पर खड़े जिस 'आम आदमी' के मुरझाए चेहरे को केंद्र में रखकर आम आदमी पार्टी का गठन किया गया था, वह दिल्ली की सत्ता पाते ही नेपथ्य में विलीन हो गया और उसके प्रतिस्थापन उनके स्वयं के अहंभाव पार्टी पर हावी होता चला गया जिसके परिणामस्वरूप कई नेता खासकर दिल्ली महानगरपालिका के चुनाव परिणाम के बाद उनका साथ छोड़ने को विवश हो गए। दिल्ली की जनता के प्रति अपने शासकीय दायित्वों की अनदेखी हुई खोखली विरोधात्मक राजनीति करना केजरीवाल के हित में नही रहा। शायद इसी वजह से दिल्लीवासी उनका साथ छोड़ने के लिए मजबूर हुए।

(१०६)प्रश्नः क्या आप भी ऐसा मानते हैं कि भारत के लोगों का उचित प्रतिनिधित्व संसद में नहीं हो पा रहा है?

उत्तरः विजय जी, आपको याद होगा भारत के राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने लोकसभा में सींटे बढ़ाने के मुद्दे की तरफ देश का ध्यान खींचा था, क्योंकि उनका मानना था कि लोगों का उचित प्रतिनिधित्व संसद में नहीं हो पा रहा

हैं, क्योंकि देश में अभी भी 1971 की जनगणना के तहत ही लोकसभा के सीटों के बँटवारे के अनुसार प्रतिनिधित्व है जबकि तब से लेकर आजतक में देश की आबादी 54.8 करोड़ से बढ़कर तकरीबन सबा अरब हो गई है, मगर संसद में सीटों की संख्या वही है।

भारतीय संसद में सीटों की संख्या कम है, इसका अंदाजा आप इस बात से लगा सकते हैं कि ब्रिटेन में भारत की तुलना मे जनसंख्या अत्यधिक कम होने के बावजूद वहाँ की संसद में प्रतिनिधियों की संख्या 600 है।

यदि भारत की जनसंख्या के हिसाब से संसद की सीटें बढ़ती हैं, तो नए सांसदों के वेतनभत्तों का खर्च, सस्ता खाना, दिल्ली में बंगला, उच्च सुरक्षा अतिविशिष्ट व्यक्तियों की संस्कृति को बढ़ावा तथा उनकी संभावित निष्क्रियता इस विचार को शक की दृष्टि से देखने पर तो अवश्य विवष्ठा करते हैं, मगर सिर्फ संदेह की वजह से इसे नजरअंदाज किया जाना भारतीय लोकतंत्र के साथ नाइंसाफी होगी। भारतीय लोकतंत्र की मजबूती के लिए यह आवश्यक है कि दलगत राजनीति से ऊपर उठकर देशहित में इसपर विचार किया जाना लाजिमी होगा।

(१०७)प्रश्न: भारत जैसे सबसे बड़े लोकतंत्र में आखिर क्यों विपक्षी पार्टियाँ अप्रांसगिक हो गई हैं?

उत्तर: रामप्रताप बाबू, यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत जैसे सबसे बड़े लोकतंत्र में विपक्षी पार्टियाँ अप्रासंगिक हो गयी हैं, क्योंकि पिछले एक वर्ष में जहाँ देश की सबसे बड़ी और पुरानी पार्टी काँग्रेस ने छह राज्यों में अपनी सरकार गंवा दी, वहीं नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा और उसके सहयोगी दलों ने 31 में से 17 राज्यों में सरकार बना ली है। इस प्रकार भाजपा और उसके सहयोगी देश के 60 प्रतिशत से अधिक आबादी का नेतृत्व कर रहे हैं।

मामा जी, आपको याद होगा आज से दो वर्ष पहले दिल्ली के मतदाताओं ने 2015 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को चेतावनी दी थी। दिल्ली विधानसभा चुनाव में 70 में से 67 सीटें भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन की अगवाई कर रही आम आदमी पार्टी को प्रचंड बहुमत देकर भाजपा को मात्र तीन सीटों से ही संतोष करना पड़ा था। कहा जाए तो भाजपा के लिए यह जोर का झटका था, लेकिन 2017 आते-आते भाजपा संभल गई, क्योंकि 20 करोड़ से अधिक की आबादीवाले राज्य उत्तरप्रदेश विधानसभा के चुनाव में अंतत: भाजपा ने 403 में से 325 सीटें जीतकर देश के लोगों को हैरत में

डाल दिया। मेरे ख्याल से उत्तरप्रदेश में मुलायम सिंह यादव की पार्टी समाजवादी पार्टी का जहाँ जातिवादी राजनीति से नुकसान हुआ, वहीं आम आदमी पार्टी को केंद्र के खिलाफ बयानबाजी से।

जहाँ तक भाजपा का सवाल है नरेन्द्र मोदी ने अपने कार्यकलापों से निश्चित रूप से भारतवासियों के बीच अपनी एक अलग छवि बनाई है और इस देश को अंतरराष्ट्रीय पटल पर विकसित देशों के बराबर लाकर खड़ा किया है जिसपर देशवासियों को गर्व होता है। भारत में भाजपा अपने अनुशासन और संगठन के बल पर तेजी से आगे बढ़ रही है और हाल के दौर में विपक्ष को जिस तरह हार का सामना करना पड़ रहा है, इसके लिए वह खुद को जिम्मेदार ठहरा सकता हैं। हर मोड़ पर न केवल उनसे गलतियाँ हुई हैं, बल्कि भाजपा ने बड़ी चालाकी और संयम से उसे मात दी है। मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे विपक्षी पार्टियों ने अपने ही गोलपोस्ट में बॉल डालने वाला काम किया है, क्योंकि देश के मतदाताओं की बदली मानसिकता पर उनका ध्यान कतई नहीं जा सका। भ्रष्टाचार-घोटाले, अपराधियों को टिकट व पद, आंतरिक विवाद-साजिशें और हार के कारणों का विश्लेषण नहीं करने जैसी बातें भी हुई हैं। इस स्थिति का लाभ भाजपा को मिला और उसने बहुत हासिल की। इसके ठीक विपरीत विपक्ष किंकर्तव्यविमूढ़ सा नजर आ रहा है। यह राजनीति का ऐसा दौर है जिसमें भाजपा का प्रसार बढ़ता जा रहा है और अन्य पार्टियाँ सिमटती जा रही हैं जो लोकतंत्र के लिए एक नए तरह का संकट पेश कर रहा है। काँग्रेस भी भाजपा से लड़ने की स्थिति में नजर नहीं आती है।

(१०८)प्रश्न: क्या आप मोदी सरकार के तीन साल के कार्यकाल को आम जनता के नजरिए से अच्छा मानते हैं?

उत्तर: मामा जी, मोदी सरकार के तीन साल के कार्यकाल को हम आम आदमी के नजरिए से अच्छा मानते हैं, क्योंकि पिछले 45 साल में यानी 1971 से अबतक केंद्र की यह पहली सरकार है जो तीन साल पूरे करने के बाद अलोकप्रिय होने की बजाय पहले से ज्यादा लोकप्रिय नजर आ रही है। कम से कम चुनाव नतीजे तो यही संदेश दे रहे हैं।

दरअसल, मेरा मानना है कि राजनीति में वास्तविकता से ज्यादा अहमियत धारणा की होती है। आम धारणा है कि पिछले तीन साल में समाज के गरीब तबके में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के प्रति विश्वास बढ़ा है जिसकी वजह उनके वादे ही नहीं, सरकार का जमीन पर पहुँचा काम भी है। सरकार

की उज्ज्वला जैसी योजना को कामयबी मिली है। एक साल में डेढ़ करोड़ रसोई गैस के कनेक्शन दिए जाने का लक्ष्य था, मगर सवा दो करोड़ गरीबों के घर रसोई गैस पहुँच गई हैं और सबसे ज्यादा अहम बात तो यह है कि इतने बड़े पैमाने पर गैस कनेक्शन दिए जाने के बाद एक भी मामले में भ्रष्टाचार की शिकायत नहीं आई।

दूसरी बड़ी बात यह है, कि पिछले तीन सालों के दौरान मोदी के विरोधी भी दबी जबान से ही सही, यह मानते हैं कि तीन साल में केंद्रीय मंत्रिपरिषद के किसी भी सदस्य अथवा ऊँचे पदों पर बैठे किसी अधिकारी के खिलाफ भ्रष्टाचार का कोई आरोप नहीं लगा है। इस प्रकार प्रधानमंत्री पद का इकबाल कायम हो गया है। 500 रुपए और 1000 रुपये की नोटबंदी किए जाने के कड़े फैसले से अर्थव्यवस्था चौपट होने की आशंकाएँ निर्मूल साबित हुई हैं। नरेन्द्र मोदी ने एक ऐसे देश में जहाँ औसत राजनेता से भ्रष्ट होने और देश को लूटने की अपेक्षा रहती है, किसी ऐसे नेता को देखना जो कालाधन खत्म करने का सच्चा इरादा रखता हो, बहुत सकारात्मक तथ्य है। नरेन्द्र मोदी ने सत्ता में बैठकर काला धन और बेनामी संपत्ति को खत्म करने की जैसी पहल करने की कोशिश की। इनके पूर्व सत्ता में बैठे किसी व्यक्ति ने ऐसी किसी पहल की कोशिश नहीं की। चूँकि नरेन्द्र मोदी को ऐसा करने के लिए बाधय नहीं किया गया था और उन्होंने खुद यह पहल की तो इस तथ्य से उनकी स्थिति और मजबूत होती है।

ऐसा नहीं है कि तीन साल में सब कुछ अच्छा ही हुआ है। दीपक तले अँधेरा तो होता ही है। देश में अपराध की घटनाएँ कम होने का नाम नहीं ले रहीं। यह सही है कि विधि-व्यवस्था राज्य का मामला है, लेकिन उच्चतम न्यायालय के आदेश के बावजूद पुलिस सुधार के मामले पर कुछ खास नहीं हुआ है।

इसी प्रकार देश के युवायों के लिए रोजगार सबसे बड़ा मुद्दा है, मगर संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसर कम हो रहे हैं, क्योंकि हर क्षेत्र में ऑटोमशन बढ़ रहा है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि नरेन्द्र मोदी ने जब सत्ता संभाली थी तो उन्हें विरासत में लगभग खाली खजाना और घपले-घोटाले के साथ अकर्मण्यता से ग्रस्त नौकरशााही मिली थी। देश में हताशा और निराशा का माहौल था। जो राजनीतिक कौशल मोदी और अमित शाह के नेतृत्व में भाजपा ने दिखाया उसका विपक्षी दलों के पास कोई जवाब नहीं है। मोदी के शुरुआती कार्यकाल के बड़े फैसलों में योजना आयोग की जगह

नीति आयोग की स्थापना और मंत्री समूहों को खत्म कर नौकरशाही को प्रेरित करना था। कई बुनियादी बदलाव के साथ मोदी सरकार ने मेक इन इंडिया, डिजिटल इंडिया, स्मार्ट सिटी, स्वच्छता अभियान, कौशल विकास योजना, आदि शुरू करके एक नए भारत के निर्माण को दिशा दी।

मोदी सरकार ने प्रारंभ से ही सबका साथ सबका विकास को अपना जो ध्येय वाक्य बनाया वह उसकी योजनाओं से भी स्पष्ट हुआ। यह भी स्पष्ट है कि यह सरकार समाज के हर वर्ग तक अपनी पहुँच बनाना चाहती है। मोदी सरकार में प्रधानमंत्री कार्यालय की साख और गरिमा को बहाल करने में सफल रही। शासन के स्तर में आए सुधार और भ्रष्टाचार में कमी से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की छवि बेहतर हुई है। मोदी सरकार विदेश नीति के मोर्चे पर काफी सफल मानी जा रही है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि कोई भी प्रधानमंत्री इस तरह देश को तभी प्रेरित-प्रोत्साहित कर सकता है जब उसका व्यक्तित्व करिश्माई हो और जनता उसके प्रति भरोसा रखती हो। नेरन्द्र मोदी ने प्रधानमंत्री के रूप में ऐसा कर दिखाया है। आखिर तभी तो सात फीसद से अधिक की आर्थिक वृद्धि दर बनाम मुद्रास्फीती, काबू में राजकोषीय घाटा और पिछले तीन वर्षो के दौरान 150 अरब डॉलर से अधिक कर प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) के अतिरिक्त आर्थिक कुप्रबंधन भ्रष्टाचार और सरकारी खजाने के दुरुपयोग को रोकने के लिए इस सरकार ने कई क्रांतिकारी निर्णय किए हैं। जीएसटी और नोटबंदी जैसे सरकार के दो अहम फैसलों को पारित करना वाकई एक बड़ा पड़ाव है। नोटबंदी के बाद 91 लाख नये करदाता सामने आए हैं जो पिछले साल के मुकाबले 80 प्रतिशत अधिक है। इस प्रकार कई दशकों से पहली बार ऐसा लग रहा है कि हमारी सरकार सही नेतृत्व के साथ सही दिशा में जा रही है।

(१०९)प्रश्नः आखिर नेताओं में संवेदना तभी क्यों जगती है जब कहीं किसी घटना में जनहानि हो जाती है?

उत्तरः हाँ, ऐसा देखने में आता है कि राजनेताओं में संवेदना तभी जगती है जब कहीं किसी घटना में जनहानि हो जाती है। इस परिप्रेक्ष्य में आपका यह कहना सही है कि आखिर नेताओं में संवेदना तभी क्यों जगती है जब कहीं किसी घटना में जनहानि हो जाती है। ऐसा नहीं है कि किसान यकायक समस्या से ग्रस्त हो जाते हैं। वे एक लंबे अरसे से समस्याओं से घिरे हैं। विडंबना यह है कि क़र्जमाफी की तमाम योजनाएँ असरहीन होने के बावजूद ज्यादातर नेता इसी उपाय यानी कर्जमाफी का किसानों की समस्याओं का हल मान रहे हैं। यह

दिखावे के साथ छलावे की राजनीति नहीं तो और क्या है?

गौरतलब है कि मध्यप्रदेश के मंदसौर और उसके आसपास पिछले 8 जून, 2017 को किसान आंदोलन के दौरान पुलिस के गोली चलाने से छह किसानों की मौत हो गई और सरकार द्वारा गोपनीय रिर्पोट माँगे जाने के बाद संबंधित जिलाधिकारी और आरक्षी अधीक्षक की लापरवाही उजागर होने के बाद दोनों अधिकारियों को सरकार ने वहाँ से हटा दिया गया।

इसी बीच मंदसौर जिले के छह मृत किसानों के परिजनों से मिलने जा रहे या यों कहा जाए कि घड़ियालू आँसू बहाने के लिए काँग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गाँधी सहित पार्टी के अन्य नेताओं ने नीमच से जैसे ही मध्यप्रदेश में प्रवेश किया उन्हें हिरासत में ले लिया गया। बाद में सभी को जमानत पर रिहा कर दिया गया। काफी हंगामें के बाद राहुल गाँधी को मृतकों के परिजनों से राजस्थान के निम्बाहेड़ा में मुलाकात की अनुमति मिल गई।

भले ही इस तरह राजनीतिक दौरों का घोषित उद्येश्य पीड़ितों को न्याय दिलाना और उनकी माँगों को समर्थन देना होता हो, लेकिन मेरा मानना है कि ऐसे नेताओं का मूल मकसद प्रचार पाना और खुद को पीड़ितों का हितैषी दिखाना अधिक होता है। जो हो, राहुल गाँधी के मंदसौर पहुँचने की कोशिश पर भाजपा केवल यह कहकर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं कर सकती कि विपक्षी नेता राजनीतिक रोटियाँ सेंकने की ताक में रहते हैं। उसे यह देखना होगा कि क्या कारण है कि उसके द्वारा शासित राज्यों में रह-रहकर ऐसी अप्रिय घटनाएँ घट रही हैं जिनसे विपक्षी नेताओं को उसे घेरने का अवसर मिलता है? मंदसौर और आसपास के जिलों में किसानों के आंदोलन के इतना उग्र एवं अराजक हो जाने की जिम्मेदारी से मध्यप्रदेश सरकार बच नहीं सकती। दूसरी तरफ यों तो नेतागण अपने कार्यक्रम के हिसाब से अपनी राजनीति करने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन कम से कम उन्हें ऐसे समय तो अशांत इलाके में जाने से बचना ही चाहिए, जब माहौल अनुकूल न हो। सच तो यह है कि वे ऐसे इलाके में जल्द पहुँच कर अपना चेहरा चमकाने की कोशिश में स्थानीय पुलिस प्रशासन के लिए सिरदर्द ही बनते हैं। ऐसे वक्त कवि ओमप्रकाश तिवारी की ये दो पंक्तियाँ नेताओं पर सटीक बैठती हैं –

'नेतागण घर में रहें ना भड़काएँ आग,
तो समझो इस देश में सुलझ जाए हर राग।'

(११०)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि चुनाव दर चुनाव हार के बाद पस्त हौसलों की वजह से विपक्षी दल अलग-अलग सियासी जमीन पर राजनीति करने वाले दल एकजुट होने की कोशिश कर रहे हैं?

उत्तर: हाँ, मामा जी, मुझे भी ऐसा लगता है कि चुनाव दर चुनाव हार के बाद पस्त हौसलों की वजह से विपक्षी दल अलग-अलग सियासी जमीन पर राजनीति करने वाले दल एकजुट होने की कोशिश कर रहे हैं। आपने देखा नहीं पाँच राज्यों के विधान सभा चुनावों में से चार में सरकार बनाने और दिल्ली नगर निगम के चुनाव में तीन बार लगातार जीत हासिल करने के बाद जहाँ भाजपा के हौसले बुलंद हैं वहीं विपक्षी दलों के हौसले पस्त हैं। यही नहीं ओडिशा के स्थानीय निकाय चुनावों में भी भाजपा को जबरदस्त सफलता मिली है, तबसे नवीन पटनायक भी भाजपा विरोधी पाले में जाते दिखाई पड़ रहे हैं । काँग्रेस का विरोध करने वाले सपा के मुलायम सिंह यादव हों या तृणमूल काँग्रेस की ममता बनर्जी या फिर जद(यू) के नीतीश कुमार अथवा बसपा की मायावती सभी भाजपा के विरोध में जाते दिख रहे हैं।

मुझे लगता है विपक्षी दलों को एकजुट करने की कोशिश करना वैसा ही है जैसे अलग-अलग दिशाओं में जाने वाले घोड़ों के रथ को सवारी करना है। दरअसल, राष्ट्रपति के चुनाव के बहाने विपक्षी पार्टियाँ एकजुट होने की कोशिश कर रही हैं जबकि आँकड़ों के हिसाब से राष्ट्रपति के चुनाव में भाजपा की जीत निश्चित है, फिर भी 2019 के लोकसभा चुनाव के लिए महागठबंधन की संभावनाओं की तलाश कर रहे हैं और इस बहाने गठबंधन की जमीन तैयार कर रहे हैं।

(१११)प्रश्नः भारत में लोकतंत्र विरोधी स्थितियाँ कैसे पैदा हुई? लोकतंत्र में आस्था रखने वालों से कहाँ कमी रह गई है और उसे पूरा करने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए?

उत्तर: पिछले दिनों सरकार, नेतृत्व और शासन पद्धति के बारे में प्यू रिसर्च सेन्टर द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के आधार पर एक रिपोर्ट आई है जिसके अनुसार एक ओर जहाँ भारत के 85 प्रतिशत लोग अपनी राष्ट्रीय सरकार पर भरोसा करते हैं, वहीं दूसरी ओर भारत के 53 प्रतिशत लोग सैनिक शासन और 55 प्रतिशत लोग निरंकुशता पसंद करते हैं। ऐसी पसंदवालों में युवाओं की संख्या अधिक है। इसी के साथ भारत में एक और प्रवृत्ति बढ़ती हुई बताई जा रही है कि लोग जन प्रतिनिधियों की बजाय तकनीकी विशेषज्ञों के

शासन को पसंद करते हैं। ऐसा सोचने वाले भारत में 65 प्रतिशत हैं जिसकी वजह से ही यह सवाल उठता है कि ये लोकतंत्र विरोधी स्थितियाँ कैसे पैदा हुई? यह संभव है कि यह बाजार में व्याप्त अनिश्चितता और वैश्विक पटल के लोकतंत्र विरोधी हालात की वजह से बनी हैं या फिर भारतीय समाज में जाति-धर्म की असमानता और टकरावपूर्ण ढाँचे के नाते ऐसी स्थितियाँ पैदा हुई। इन कारणों के गहन विश्लेषण की आवश्यकता है।

उपेन्द्र नाथ सागर जी, आपकों मैं यह जानकारी दे दूँ कि लोकतंत्र धीमीगति से काम करने वाली प्रणाली है और यहाँ लोगों के जीवन स्तर में सुधार तीव्रता से नहीं होता और न ही अन्याय पर त्वरित कार्रवाई होती है। बावजूद इसके इस देश के लोगों का भरोसा जब अपनी केंद्र सरकार पर बरकरार है तो यह उम्मीद बँधती है कि लोग अपनी समस्याओं के समाधान के लिए बाजार और समाज की बजाय सरकार के मुखापेक्षी हैं।

इस सर्वेक्षण रिपोर्ट के परिणाम पर यह ध्यान देने लायक यह भी है कि दुनिया भर में 26 प्रतिशत लोग चाहते हैं कि ऐसा मजबूत नेतृत्व उभरे जिसके काम में अदालत और संसद का हस्तक्षेप न हो। यह संकेत चौकाते जरूर हैं, लेकिन जब सर्वेक्षण यह बताता है कि 71 प्रतिशत लोग ऐसी सरकार को खराब मानते हैं तो आश्वासन मिलता है कि लोकतंत्र की आस्था रखने वालों से कहाँ कमी रह गई है। दरअसल, देखा जाए तो भारत के लोकतंत्र की आज जो स्थिति है उसमें प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और उनके सिपहसलार भाजपा के अध्यक्ष अमित शाह पर तो लोगों का भरोसा है, परंतु सत्तापक्ष के कुछ बड़े-बड़े राजनेताओं तथा विपक्षी पार्टियों के अधिकांश राजनेताओं पर ही लोगों का विश्वास खत्म होता जा रहा है। मुझे तो लोकतंत्र में यही सबसे बड़ी कमी दिखती है। इसलिए इसे पूरा करने के लिए ऐसे अविश्वसनीय नेताओं को अपने में सुधार लाने की आवश्यकता है, ताकि लोगों को उनपर भरोसा हो। इस संदर्भ में दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि आज के नेता चुनावों, राजनीतिक गठबंधन और जोड़-तोड़ के जरिए राजनीतिक ताकत हासिल करने के लिए अभियान चलाते हैं। आखिर तभी तो विगत 2014 के लोकसभा चुनाव और 2017 में पाँच राज्यों की विधान सभा के चुनावों में विपक्षी दलों को इतनी अपमानजनक पराजय का सामना करना पड़ा। दूसरी तरफ सत्ताधारी दल के कुछ राजनेताओं के बड़बोलेपन से भी स्थितियाँ बिगड़ जाती हैं। विपक्षी पार्टियों में भी ऐसे राजनेताओं की कमी नहीं है जिसके परिणामस्वरूप ही तो उनमें निराशा है।

सच तो यह है कि कोई भी सफल नेता अतीत की उपलब्धियों से संतुष्ट नहीं रहता। इसलिए यह नहीं कह सकते कि नरेन्द्र मोदी को राजनीतिक विस्तार रोक देना चाहिए था। महान नेता में हमेशा यह कौशल और धैर्य होता है कि वे अपनी प्राथमिकताएँ तय कर सकें। यही तो नरेन्द्र मोदी कर रहे हैं। सबसे कड़े फैसले वे तब लेते हैं, जब जनता का जबर्दस्त समर्थन मिल रहा होता है और उनके प्रयासों का प्रतिफल देखने को मिलता है। नि:संदेह 2014 और उसके बाद राज्यों में मिली चुनावी जीत ने भाजपा को दूसरे कार्यकाल का यकीन दिला दिया है। राजनीति में ढिलाई के लिए कोई जगह नहीं है इसलिए तो नरेन्द्र मोदी के साथ अमित शाह भी सतर्क और लगातार अभियान में लगे हैं।

(११२)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि भाजपा नेता संगीत सोम ने ताजमहल को कलंक बताकर अनावश्यक विवाद खड़ा कर दिया?

उत्तर: हाँ, सुलेमान साहब, मुझे भी ऐसा लगता है कि भाजपा नेता संगीत सोम ने ताजमहल को कलंक बताकर अनावश्यक विवाद खड़ा कर दिया। हालांकि उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री योगी ने ताजमहल को पर्यटन की दृष्टि से देश-विदेश में लोकप्रिय बताकर इसे महत्वपूर्ण कहा है और प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी ताजमहल जैसे धरोहरों पर गर्व किए जाने की बात कही है, लेकिन संगीत सोम अभी तक औरंगजेब को ही शाहजहाँ समझे बैठे हैं और उन्हें मुगल बादशाह शाहजहाँ से परेशानी है, क्योंकि उसने अपने पिता को कैद किया था। सोम साहब को शायद ये नहीं पता कि पिता को कैद शाहजहां ने नहीं, बल्कि औरंगजेब ने किया था और वो बदनसीब पिता खुद शाहजहां था। शाहजहां ने उत्तराधिकार के प्रश्न पर पिता जहांगीर के खिलाफ घेरेबंदी जरूर की थी, लेकिन यकीन मानिए यह बात संगीत सोम को कतई नहीं पता होगी इसलिए वो औरंगजेब को ही शाहजहां समझे बैठे हैं।

सोम जी को मालूम होना चाहिए कि ताजमहल आज के वक्त में देश में सर्वाधिक राजस्व अर्जित करके देने वाला पर्यटन सथल है। इमारत भले ही मुगलों ने बनवाई हो, राजपूतों ने बनवाई हो या अँग्रेजों ने, मगर ताजमहल इस देश की है और इतिहास की धरोहर है जिसे मिटाया नहीं जा सकता। घड़ी की सुई को वापस नहीं मोड़ा जा सकता, सिर्फ आज का वक्त बेहतर बनाया जा सकता है। इसलिए सोम जी को इतिहास पर अनावश्यक विवाद कर राजनीति को फायदा नहीं दिला सकते।

सुलेमान साहब, आप भी हमारी तरह यह महसूस कर रहे होंगे कि ताजमहल को लेकर संगीत सोम तथा अन्य नेताओं द्वारा विवाद छेड़ दिए जाने से दुनिया के करोड़ों लोग उद्वेलित हो गए हैं। मुझे अफसोस होता है कि जंगली सभ्यता के सदियों बीतने के बावजूद कुछ लोग ताजमहल जैसे अद्‌भुत कलाकृति को मजहब के चश्मे से देखते हैं और इसे बनवाने वाले बादशाह शाहजहां के आसमानी इश्क को आरोपित करते है। दुनिया के इस सातवे आश्चर्य को संगीत सोम जैसे कुछ लोग जब किसी खास साँचे में बाटते हैं तो दुनिया उन पर हँसती है। होना तो यह चाहिए कि हम सभी देशवासियों को शाहजहां की बेमिसाल आशिकी और अपने महबूब के प्रति उसकी रूहानी सोच को अपने दिलों में पैबस्त करते, लेकिन इस धरोहर को संजोने की बजाय उसे ढहाने की बात करने लगे है। ताजमहल को बनाने में लगे कारीगरों के हुनर की तारीफ करने की बजाय नस्ली तरीके से उसका विश्लेषण करते हैं। क्या हमें इस बात का जरा भी इल्म नहीं हैं कि ताजमहल सिर्फ मुमताज बेगम की मजार ही नहीं है, बल्कि वो आज हमारी आमदनी का एक बड़ा जरिया भी है? मुझे तो लगता है कि पैसे कमाने की होड़, अय्याशी व खुद को आधुनिक दिखाने की चाहत और झूठी तसल्ली से पूरे समाज में एक गंध उत्पन्न कर रही है और मजहब को एक खास साँचे में ऐसा बाँटा कि सारी तहजीब भूल गए।

(११३)प्रश्न: प्रत्येक पाँच साल के अंतराल पर आने वाला राजनीतिक पर्व आखिर क्यों प्रदूषित होता जा रहा है?

उत्तर: सुलेमान साहब, आप तो बिहार सरकार के एक वरिष्ठ प्रशासनिक पदाधिकारी के पद पर रहकर एक लंबे अरसे से प्रत्येक पाँच साल के अंतराल पर आ रहे राजनीतिक पर्व को देखते रहे हैं, मुझे लगता है कि आप भी मेरे इस विचार से सहमत होंगे कि यह राजनीतिक पर्व चुनाव लगातार प्रदूषित होता जा रहा है, क्योंकि चुनाव के वक्त मतदाता जिस उम्मीदवार को वोट देकर जिताता है उनसे अपेक्षा करता है कि वे उनके जीवन में खुशहाली लाएँगे, पर मतदाता जिन्हें वोट देता है पाँच साल के बाद वह खुद उनमें खोट निकालता है, क्योंकि वह यह महसूस करता है कि उनके द्वारा चुने गए प्रतिनिधि जनता की सुख-सुविधा कुछ न कर अपने और अपनी दो-चार पीढ़ियों के लिए धनार्जन कर लेते हैं और ऐशो आराम की जिंदगी बिताते हैं। इसलिए बेचारी जनता यह जिम्मेदारी किसी और को पाँच साल के बाद देने की सोचता है।

लंबे समय तक सत्ता में रहने के बाद फायदे और नुकासन दोनों ही होते हैं इस मायने में कि जनप्रतिनिधि द्वारा अच्छा काम किए जाने पर उन्हें दोबारा भी मौका देती है जनता, मगर खराब या काम नहीं करने पर मंतदाता उबकर उन्हें हरा देते हैं।

मेरी समझ से मौजूदा दौर की राजनीति में केंद्र सरकार द्वारा विकास किए जाने के मुद्दे को विपक्षी पार्टियों में खासतौर पर काँग्रेस पार्टी उसका मजाक उड़ा रही है जिसके परिणामस्वरूप उसका पतन होता जा रहा है। गुजरात में तो काँग्रेस का नारा ही है विकास पागल हो गया है। उसका दूसरा नारा है विकास बदतमीज हो गया है। भला बताइए आप ही सुलेमान जी, विकास तो अच्छा या बुरा हो सकता है, मगर पागल और बदतमीज कैसे हो सकता है? इसके बरक्स 22 साल से गुजरात प्रदेश में सत्तारूढ़ भाजपा काँग्रेस को चुनौती दे रही है कि वह विकास के मुद्दे पर चुनाव लड़े। काँग्रेस विकास का मजाक तो उड़ा रही है, पर वह यह नहीं बता रही है कि मतदाता ने उसे सत्ता सौंपी तो उसका विकास का एजेंडा क्या होगा? क्या वह कर्नाटक का मॉडल होगा या हिमाचल का? केरल का होगा या महाराष्ट्र का? पाँच दशक से ज्यादा समय तक केंद्र और राज्यों में सत्ता में रही काँग्रेस आखिर विकास का अपना कोई वैकल्पिक मॉडल मतदाताओं के सामने क्यों प्रस्तुत नहीं कर रही? किसी के काम में गलती निकालना आसान है, पर उससे बेहतर करके दिखाना कठिन। इस दृष्टि से देखा जाए तो विकास 'पागल हो गया है' का नारा देकर कहीं काँग्रेस के लिए उसका हश्र 'मौत के सौदागर' का न हो जाए। ऐसे नारों को पलट देने में नरेन्द्र मोदी माहिर हो चुके हैं। यही हाल तकरीबन सभी विपक्षी दलों का है। कुछ इन्हीं सब कारणों से पाँच साल के अंतराल पर आने वाला राजनीतिक पर्व चुनाव प्रदूषित हो गया है।

(११४)प्रश्नः आपराधिक कानून(राजस्थान अमेंडमेंट) अध्यादेश २०१७ को राजस्थान सरकार लागू करके क्या भारत के संविधान में प्रदत्त न्यायपालिका एवं मीडिया की स्वतंत्रता पर अंकुश नहीं लगाना चाहती है? इस तरह के कानून से भ्रष्टाचार और राजनीति एवं प्रशासन के क्षेत्र में तानाशाही को भी क्या बल नहीं मिलेगा? क्या वसुंधरा राजे ने विरोध के दबाव में बैकफुट पर जाकर सही कदम उठाया है?

उत्तरः हाँ, आपराधिक कानून (राजस्थान अमेंडमेंट) अध्यादेश, 2017 को राजस्थान सरकार लागू करके निश्चित रूप से भारत के संविधान में प्रदत्त

न्यायपालिका एवं मीडिया की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाना चाहती है, क्योंकि अध्यादेश के माध्यम से प्रान्तीय सरकार ने न्यायाधीशों, पूर्व न्यायाधीशों और समाहर्ताओं समेत अपने सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अपने कर्त्तव्य पालन के दौरान लिए गए फैसलों पर सुरक्षा प्रदान करने का जो कानून बनाया है वह वाकई आश्चर्यजनक है। इस तरह के कानून से न केवल भ्रष्टाचार को बल मिलेगा, बल्कि राजनीति एवं प्रशासन के क्षेत्र में तानाशाही को भी बल मिलेगा। यही नहीं, ऐसा करके राजस्थान सरकार पुलिस को अकर्मण्य बनाना चाहती है आखिर तभी तो पूरे राष्ट्र में राजस्थान सरकार का जमकर विरोध हो रहा है। विपक्षी पार्टियों, भ्रष्टाचार विरोधी लोगों समेत सोशल मीडिया पर आम जनता राजस्थान सरकार पर इस अध्यादेश को लेकर जमकर बरस रही है।

राजस्थान सरकार का यह अध्यादेश ज्वलंत सवालों से घिरा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजस्थान सरकार का यह अध्यादेश भ्रष्टाचार को संरक्षण देने की हाल के वर्षो में सबसे निर्लज्ज कोशिश है। लोकतंत्र में ऐसे किसी प्रावधान के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता, जो सरकारी अधिकारियों के कर्तव्य निर्वहण के दौरान लिए गए फैसलों और उनकी व्यावहारिक परिणति को लेकर खबरें देने पर रोक लगा दे।

दरअसल, स्वतंत्र भारत में राजनीति एवं सत्ता का इतिहास रहा है कि जब भी किसी शासनाध्यक्ष ने सत्ता के अहंकार में ऐसे अतिश्योक्तिपूर्ण एवं अलोकतांत्रिक निर्णय लिए, जनता ने उसे सत्ताच्यूत कर दिया। बिहार के मुख्यमंत्री रहे जगन्नाथ मिश्र ने भी ऐसी ही तानाशाही दिखाने की जुर्रत की थी, आज उन जगन्नाथ मिश्र का क्या हश्र रह गया है? वोट की राजनीति और सही रूप में लोकतांत्रिक उत्थान की नीति दोनों विपरीत ध्रुव है। एक राष्ट्र को जहाँ संगठित करती है, वहीं दूसरी विघटित। बुराई लोकतांत्रिक व्यवस्था में नहीं, बुरे तो राजनीतिज्ञ हैं, जो इन बुराईयों को लोकतांत्रिक व्यवस्था की कमजोरियाँ बताते हैं वे भयंकर भ्रम में हैं। उन्हें चेत जाना चाहिए।

यह तो अच्छा हुआ कि चौतरफा विरोध झेल रही राजस्थान सरकार को बैकफुट पर आकर अपने ही फैसले की समीक्षा के दायरे में लाकर वसुंधरा राजे ने सही कदम उठाया है, वरना उन पर राजे-रजवाड़ों की तरह मनमाने कानून लागू करने के आरोप लगते। भले ही सरकार का यह तर्क था कि यह अध्यादेश अधिकारियों को बिना दबाव के काम करने के लिए लाया गया है, लेकिन देश के लोकतंत्र के चौथे प्रहरी कहे जाने वाले

मीडिया पर अंकुश का उदाहरण तो सिर्फ आपातकाल में ही है। फिर सरकार खुद अपने इस कदम से साफ-सुथरे काम की गारंटी देने के लिए तैयार थी? सोशल मीडिया के जरिए सीधे जनता से जुड़ाव, जनता दरबार, मन की बात और सूचना के अधिकार के इस दौर में मीडिया ही नहीं, न्यायपालिका पर अंकुश का कदम निश्चित रूप से हैरान करने वाला फैसला है। इस कानून की आड़ में आरोपियों की मनमानी की आशंका से भी नहीं इनकार किया जा सकता। इस दृष्टि से वसुंधरा राजे ने विरोध के दबाव में बैकफुट पर जाकर सही कदम उठाया है इसलिए कि लोकतंत्र में विपक्षी पार्टियों और जनता की बात भी सुना जाना अच्छी परंपरा है।

(११५)प्रश्न: क्या हमारे देश के राजनेता अतीत के प्रसंगों को बेजा तरीके से पेश कर हिंदू और मुसलमान के बीच बैर बढ़ाने वाली गलत व्याख्याएँ कर रहे हैं? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि हमारे देश के राजनेता अतीत के प्रसंगों को बेजा तरीके से पेश कर हिंदू और मुसलमान के बीच बैर बढ़ाने वाली गलत व्याख्याएँ कर रहे हैं। आपने देखा नहीं ताजमहल के बारे में भाजपा नेता संगीत सोम के अनर्गल प्रलाप के बाद टीपू सुल्तान को लेकर बहस छिड़ जाना यह बताता है कि किस तरह लोग वर्तमान और भविष्य को छोड़कर अतीत की कथित गलतियों को ठीक करने में ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। पिछले दिनों कर्नाटक विधान सभा के 60 वर्ष पूरे होने पर राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने टीपू सुल्तान को अँग्रेजों के खिलाफ लड़ते हुए जान देने वाला जब बताया, तो टीपू सुल्तान को लेकर नए सिरे से बहस तेज हो गई। विवादों की आँच में स्वार्थो का तंदुर सुलगाने वाला राजनेता अक्सर ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के बारे में अधकचरे फैसले सुना देते हैं। यह इतिहास की मूल अवधारणा के साथ अन्याय है।

मुझे लगता है कि चूंकि भारतीय संविधान में राष्ट्रपति के भाषण की विषयवस्तु केंद्र सरकार की मानी जाती है लिहाजा मोदी सरकार को भी धन्यवाद का पात्र माना चाहिए। यह अलग बात है कि कर्नाटक में भाजपा के कुछ नेता राष्ट्रपति के इस भाषण को लेकर खफा हैं, क्योंकि वे टीपू सुल्तान को एक खराब शासक मानते हैं। हाल में केंद्र सरकार के इस राज्य से आने वाले एक मंत्री ने टीपू सुल्तान को आतताई और दुष्कर्मी तक कहा और कर्नाटक सरकार को आगामी 10 नवम्बर 2017 को सुल्तान का जन्म दिवस न मनाने की ताकीद भी की। इससे यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति के

उक्त भाषण को एक समुदाय से आने वाले प्रतिमानों को अतार्किक और बेजा दुराग्रह से नीचा दिखाने के प्रयासों से सहमत नहीं हैं। यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि जैसे ताजमहल के मामले में ठोस तथ्यों के बिना ही बात की गई वैसे ही टीपू सुल्तान के मामले में भी की जा रही है। जबकि सच्चाई यह है कि इस देश के 156 मंदिरों के रखरखाव के लिए टीपू सुल्तान शाही खजाने से हर माह पैसा मुहैया करवाता था। कहा जाता है श्रृंगेरीमठ के तत्कालीन शंकराचार्य से उसके करीबी रिश्ते थे।

दरअसल, हमने कभी भी यह जानने की कोशिश नहीं की कि अँग्रेजों ने किस तरह हिंदू और मुसलमानों के बीच वैमनस्यता फैलाने का काम किया। अँग्रेजों ने इतिहास बदल दिया है और तत्कालीन भारतीय इतिहासकारों का एक वर्ग उनके जाल में इस कदर फँस गया है कि आज तक उसका प्रभाव देखने को मिल रहा है। सच तो यह है कि हिंदू और मुसलमान दोनों समुदायों के पूर्वज और उनकी विरासत तथा संस्कृति एक ही है। तैमुर बाबा बाहर से आए थे, लेकिन आज के आम मुसलमान नहीं। क्या आज हमें यह तथ्य नहीं बताना चाहिए कि बाबा अलाउद्दीन खां मुसलमान होने के बावजूद सतना के समीप मैहर में नियमित रूप से मां शारदा के मंदिर में जाने के बाद ही अपना रोजमर्रा का काम शुरू किया करते थे? आज जरूरत इस बात की है कि दुराग्रहविहीन बुद्धिजीवी वर्ग आजादी के मकसद को कामयाब करने के लिए दोनों समुदायों के बीच नैसर्गिक एकता बहाल करने का प्रयास करें।

(११६)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आज की राजनीति भारत के जन-समुदाय को विवश बनाकर और उसे बाँटकर अपनी शक्ति बटोरती है?

उत्तर: हाँ, मुझे ऐसा लगता है आज की राजनीति भारत के जन-समुदाय को विवश बनाकर और उसे बाँटकर अपनी शक्ति बटोरती है, क्योंकि वही जनता जो सिर्फ आज से 80-85 साल पहले एक ऐसी शक्ति में बदल गई थी, जिसने विश्व के सबसे बड़े साम्राज्य को चुनौती दे दी थी, आज के दौर में वहीं जनता सिर्फ मतदाता है। आज वह शक्ति नहीं, एक चेतन राष्ट्र नहीं, सत्ता के हाथ का खिलौना है। हमारे आज के नेता इस जनता के अंतर्विरोध को जानते हैं और निहित स्वार्थ के लिए इन अंतर्विरोधों का इस्तेमाल करने का कौशल उनके पास है। यह कुल राजनीति है।

आपको याद होगा भारत की आजादी की लड़ाई में शामिल

क्रांतिकारी अथवा अहिंसावादी नेता अपने-अपने तरीकों से विदेशी सत्ता के खिलाफ सिर्फ संघर्ष ही नहीं किए थे, बल्कि इस देश को जानने का गहन व्यक्तिगत प्रयास भी कर रहे थे। यही नहीं, दुनिया और इतिहास के संदर्भ में भारत को पहचानने की भी कोशिश कर रहे थे, यही वजह थी कि फाँसी का इंतजार करते हुए भगत सिंह ने पूरे साल विश्व भर के इतिहास और समाज संबंधी किताबें पढ़ीं। अम्बेडकर और गाँधी देश ही नहीं, संसार भर के दार्शनिकों-समाजविज्ञानियों-इतिहासकारों के अध्ययन में मुब्तिला हुए। पूरी एक पीढ़ी ने अपने विचारों को जाँचा-परखा और निर्मित किया। उसके इतिहास और वर्तमान की समस्याओं को उजागर किया और उनकी जड़ों तक उन्हें पहुँचाया।

वर्तमान तौर की राजनीति इसके ठीक विपरीत न तो इस देश के इतिहास से वाकिफ है और न समाज से। आखिर तभी तो वे कभी ताजमहल पर अनर्गल बयान देते हैं तो कभी टीपू सुल्तान पर। वे जानने की जरूरत भी नहीं समझते। वे सिर्फ विवाद पैदा कर भारतीय जनसमुदाय को जाति, धर्म-सम्प्रदाय, भाषा और क्षेत्र के नाम पर बाँटने की ही कोशिश करते हैं। अज्ञानियों की तरह इतिहास का सरलीकरण करते हैं, जुमले उछालते हैं और जनता की भावनाओं से खेलते हैं। इस पूरी राजनीति को बदलने के लिए लोगों को खुद इतिहास के बोध से लैस होना होगा। उन्हें यह समझना होगा कि वे विकास के नाम पर वैश्विक अर्थव्यवस्था के ठीकरे पर जिबह की जाने वाली निरीह बलियाँ नहीं हैं। विश्व के पुरातनतम राष्ट्र की जीवंत जन-धाराएँ हैं, जो उड़ना भी जानती हैं और महापरिवर्तन के प्लावन भी ला सकती हैं।

(११७)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि काँग्रेस के वरिष्ठ नेता और पूर्व केंद्रीय मंत्री पी. चिदम्बरम ने कश्मीर के लिए और अधिक स्वायत्तता की वकालत करके अपने साथ-साथ अपनी पार्टी के लिए भी संकट पैदा करने का काम किया है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि काँग्रेस के वरिष्ठ नेता और पूर्व केंद्रीय मंत्री पी. चिदम्बरम ने कश्मीर के लिए और अधिक स्वायत्तता की वकालत करके अपने साथ-साथ अपनी पार्टी के लिए भी संकट पैदा करने का काम किया है, क्योंकि कश्मीर जैसे राज्य को औरं अधिक स्वायत्तता देने की पैरवी करने का क्या तुक जिसके पास पहले से अपना संविधान और ध्वज है। संविधान के अनुच्छेद 370 के तहत जम्मू-कश्मीर को जो अधिकार प्राप्त हैं वे कुल मिलाकर इस राज्य के भारत के साथ एकीकरण में बाधक ही अधिक हैं, क्योंकि इन अधिकारों का ही यह दुष्परिणाम है कि कश्मीर में

एक तबका खुद को भारत से अलग और विशिष्ट मानता है।

मेरा तो यहाँ तक मानना है कि कश्मीर की यह समस्या नहीं है कि उसे अन्य राज्यों की तुलना में कुछ कम अधिकार मिले हैं अथवा उसके पांस ऐसे अधिकार नहीं जिससे वह अपनी समस्याओं का सही ढंग से समाधान कर सके। इस भू-भाग की समस्या यह है कि उसके पास जरूरत से ज्यादा अधिकार हैं। इन अधिकारों की प्रकृति कुछ ऐसी है कि वे घाटी को भारत से जोड़ने में सहायक बनने की बजाय अलगाववादी भावना को उभारने में सहायक हैं। हाँ, इसकी आवश्यकता तो है कि कश्मीर समस्याओं का समाधान जल्द निकलने की कोई व्यवस्था बने, लेकिन इसके नाम पर और अधिक स्वायत्तता की वकालत खासतौर पर काँग्रेस जैसी सबसे बड़ी विपक्षी और राष्ट्रीय पार्टी के द्वारा किए जाने का मतलब नहीं और वह भी गुजरात विधानसभा चुनाव के सिलसिले में राजकोट जाकर कश्मीर की स्वायत्तता का राग अलापने की क्या जरूरत थी? यदि पी. चिदम्बरम जैसे वरिष्ठ नेता को कश्मीर के लिए और अधिक स्वायत्तता की इतनी ही चाह है, तो फिर केंद्रीय गृहमंत्री रहते समय वह क्या कर रहे थे? आखिर उस वक्त उन्होंने ऐसी कोई जरूरत क्यों नहीं जताई?

दरअसल, मेरी समझ से चिदम्बरम जी ने जैसे मौके पर कश्मीर के लिए और अधिक स्वायत्तता की वकालत की है उससे तो यही लगता है कि वह केंद्र सरकार की ओर से कश्मीर में सभी पक्षों के लिए नियुक्त वार्ताकार दिनेश्वर शर्मा की मुश्किलें बढ़ाना चाह रहे हैं और गुजरात विधान सभा चुनाव के ऐन वक्त पर तुष्टीकरण की नीति अपनाकर मुस्लिम समुदाय का वोट हासिल करना चाहते हैं। आखिर जब केंद्र सरकार अपनी ओर से पहल कर रही है तब काँग्रेस कश्मीर में अपना अलग एक दल भेजकर अपनी अलग खिचड़ी क्यों पका रही है? चिदम्बर ने अपने बेजा बयान से कश्मीर में अलगाववादी तत्वों को बल प्रदान करने के साथ जम्मू-कश्मीर सरकार के समक्ष भी मुश्किलें खड़ी करने का काम किया है। इसपर हैरत नहीं कि उनका बयान सामने आते ही नेशनल कांफ्रेंस ने आनन-फानन में बैठक बुलाकर इस आशय का प्रस्ताव पारित कर दिया कि कश्मीर को और अधिक स्वायत्तता मिलनी चाहिए।

(११८)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि अब भारतीय राजनीति में फिर कोई पटेल होगा? क्या आज आप ऐसा महसूस करते हैं कि सरदार पटेल की प्रासंगिकता हमेशा बनी रहेगी? आखिर क्यों?

उत्तर: डॉ. हेमंत जी, मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति को देखते हुए मुझे ऐसा नहीं लगता कि अब राजनीति में फिर कोई पटेल होगा, क्योंकि लोकतंत्र में अपेक्षित नेतृत्व के लिए सही रूप में जनाधार होना चाहिए। लौह पुरुषत्व का भी जनाधार होना, यह गाँधी युगीन स्वराज निर्माता के नाते सरदार पटेल की एक विशेषता थी, जो आज के दौर यह किसी राजनेता में नहीं दिखती।

लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल न केवल 565 देशी राजे-रजवाड़ों एवं रियासतों को भारत में विलय कराकर राष्ट्रीय एकता के स्तंभ बने, बल्कि संविधान सभा की चार समितियों के वे सदस्य, सलाहकार समिति और प्रांतीय संविधान समिति के अध्यक्ष तथा संचालन समिति व राज्य समिति में भी वे सदस्य की हैसियत से शामिल थे। इसी प्रकार सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय का दायित्व निभाते हुए सरदार ने जो एक प्रशासनिक पहल की थी, वह ऑल इंडिया रेडियो की उर्दू सर्विस के शुरू लेने की थी।

ऐतिहासिक विभूतियाँ अपने को एक ही रूप में बार-बार नहीं दुहरातीं और न ही परिस्थितियाँ ही खुद को वापस बुलाती हैं। इसलिए अब भारतीय राजनीति में फिर कोई पटेल होगा, ऐसा कहना मुश्किल है। भारत के भौगोलिक, राजनीतिक और एकता के रूप में आज जिस बात को देखने की हमें आदत पड़ गयी है, वह सरदार पटेल ने दी है। यह एक ऐसा काम था, जो शायद कोई और नहीं कर सकता था। नियति ने यह काम सरदार पटेल के कंधों पर डाला और जिस तरह से वी. पी. मेनन के साथ उन्होंने इसे पूरा किया, वह आज किसी भी देश के लिए ऐतिहासिक गर्व की बात है। दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि सरदार पटेल को किसी वाद या विचारधारा में बाँधकर देखना ऐतिहासिक अपराध होगा।

सरदार पटेल उन गिने-चुने लोगों में से थे, जो दो टूक में बात करते थे और किसी वर्ग विशेष की भावनाओं को तुष्ट करने या उन्हें खुश करने के लिए नहीं, बल्कि तथ्यों पर बात करते थे। उस समय पटेल और गाँधी जी ऐसे नेता थे, जो एक साथ हिंदुओं को भी डांट सकते थे और मुसलमानों को भी डांट सकते थे। और ये दोनों इनकी बात गौर से सुनते थे, लेकिन आज ऐसा नहीं है। आज या तो लोग हिंदुओं को खुश करने की बात करते हैं या मुसलमानों को। या तो दलितों को खुश करने की बात करते हैं या सवर्णों को। हमारी राजनीति और नेताओं का चरित्र ऐसा हो गया है कि वर्गीय हितों को ध्यान में रखकर ही बात करते हैं। इसलिए आज देश और समाज की समग्रता को सामने रखकर सबके हित की बात करने की जो

जरूरत है, वही चीज सरदार पटेल को प्रासंगिक बनाती है और उन्हें किसी खाँचे से मुक्त करती है।

(११९)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि २०१७ के गुजरात विधानसभा चुनाव में काँग्रेस इतिहास से सबक न लेकर इतिहास को दोहराने की कोशिश कर रही है? ऐसा क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि 2017 के गुजरात विधानसभा चुनाव में काँग्रेस इतिहास से सबक लेने की बजाय इतिहास को दोहराने की कोशिश कर रही है।

भाई विजय जी, आपको याद होगा 1985 में काँग्रेस के नेता माधव सिंह सोलंकी ने जातियों का एक गठजोड़ बनाया था जिसमें क्षत्रिय, हरिजन, आदिवासी और मुस्लिम थे। इसने काँग्रेस को ऐतिहासिक चुनावी जीत दिलवाई, क्योंकि काँग्रेस को रिकार्ड 149 सीटें मिली थीं। इसके विरोध में जो आंदोलन हुआ उसमें पाटीदार समाज के सौ से अधिक लोग मारे गए थे। एक वह दिन था और एक आज का दिन। पाटीदारों ने फिर काँग्रेस की ओर मुड़कर नहीं देखा और भाजपा का दामन थाम लिया। इस ऐतिहासिक जीत के बाद काँग्रेस फिर जातियों का एक गठजोड़ बनाने की कोशिश कर रही है। वह इस बात को याद करने की कोशिश नहीं करना चाहती कि उसकी पिछली कोशिश का दूरगामी असर क्या हुआ था? इस समय तो उसके पास माधव सिंह सोलंकी जैसा कोई कद्दावर नेता भी नहीं है।

इस बार के चुनाव में काँग्रेस पुनः तीन जातियों में से राज्य के तीन युवा नेता जो अलग-अलग वर्ग से आते हैं को हथियार बनाकर चुनाव लड़ रही है। हार्दिक पटेल जहाँ पाटीदारों के युवा नेता हैं, वहीं अल्पेश ठाकोर पिछड़े समुदाय के ठाकोर जाति के हैं और तीसरे नेता हैं जिग्नेश मेवानी, जो दलित वर्ग से आते हैं। तीनों ही पिछले दो साल में उभरे हैं और तीनों के राजनीतिक हित परस्पर टकराते हैं। हार्दिक पटेल पाटीदारों को आरक्षण दिलाना चाहते हैं और वे पाटीदारों का नेतृत्व कर रहे हैं। अल्पेश ठाकोर इसलिए नेता बने, क्योंकि पाटीदारों को आरक्षण की माँग के विरोध में पिछड़ा समुदाय लामबंद होने लगा। इसी प्रकार पाटीदारों और दबंग पिछड़ों द्वारा दलितों पर अत्याचार किए जाने के विरोध में जिग्नेश मेवानी की राजनीति चमकी। अब काँग्रेस इन तीनों नेताओं को अपने तंबू में लाना चाहती है।

विजय जी, आपको यह जानकारी दे दूँ कि गुजरात के पाटीदार जाति के लोग पिछले दो सालों से हार्दिक पटेल के नेतृत्व में आरक्षण की

माँग को लेकर आंदोलन कर रहे हैं जबकि असलियत यह है कि गुजरात के पाटीदार समाज के लोग न केवल गुजरात के सभी क्षेत्रों में प्रायः सभी जातियों से आगे हैं चाहे भारतीय प्रशासनिक सेवा हो या गुजरात प्रशासनिक सेवा में चयन का सवाल हो, शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक का सवाल हो या व्यापार जगत में बढ़ने का सवाल हो गुजरात ही नहीं विश्व के अधिकांश विकसित देशों में पाटीदारों का दबदबा है जिसके ख्याल से पाटीदारों को नौकरियों में आरक्षण देना संभव नहीं है, क्योंकि आर्थिक और शैक्षिक रूप से वे सभी जातियों से आगे हैं। इसके मद्देनजर संविधान के प्रावधान को बदलना काँग्रेस के बूते की बात नहीं है।

ऐसी विपरीत स्थिति में काँग्रेस और विभिन्न जातियों के तीनों नेता अपनी-अपनी जातियों को अँधेरे में रखकर अपनी नेतागिरी का लाभ उठाना चाहते हैं। ऐसे में काँग्रेस सहित इन तीनों नेताओं के डूबने की आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता। काँग्रेस जैसी एक राष्ट्रीय पार्टी की यह दशा विपक्ष की स्थिति बयान करने के लिए काफी है। दूसरी ओर नरेन्द्र मोदी का करिश्मा पिछले साढ़े तीन सालों में कम नहीं हुआ है। जमीनी स्तर पर नरेन्द्र मोदी और अमित शाह की तरह काम करने वाला नेता काँग्रेस के पास नहीं है। परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया के इस दौर में भी अमित शाह का संगठन कौशल नतीजे के बाद ही सबको दिखता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो मुझे नहीं लगता है कि भाजपा को काँग्रेस तीनों युवा नेताओं का साथ लेकर भी पराजित कर पाएँगे।

वैसे भी काँग्रेस के वरिष्ठ नेता और पूर्व केंद्रीय गृहमंत्री पी. चिदम्बरम कश्मीर को लेकर उसे और अधिक स्वायत्तता देने की वकालत कर रहे हैं तथा अहमद पटेल के अनर्गल बयान आ रहे हैं उससे काँग्रेस की मुसीबतें और बढ़ गयी हैं। आखिर तभी तो कवि ओम प्रकाश तिवारी को अपनी व्यंग्य कविता में यों कहना पड़ा-

'अहमद और चिदम्बरम की जब निकली बात
लगे हिमाचल जा रहा फिसल रहा गुजरात।
फिसल रहा गुजरात गई मति ऐसी मारी,
यदि हों ऐसे लोग पार्टी समझो हारी।
उल्टा-सीधा बोल फँसे खुद लुँगी-तहमद
लिए मुसीबत पाल स्वयं ही भाई अहमद।'

(१२०)प्रश्नः राजद प्रमुख लालू प्रसाद द्वारा तंत्र-मंत्र के जरिए अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों नरेन्द्र मोदी और नीतीश कुमार को परास्त करने की बात से क्या ऐसा नहीं लगता कि यह उनके जैसे कद्दावर नेता द्वारा लोकतंत्र का अपमान है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, राजद प्रमुख लालू प्रसाद द्वारा तंत्रमंत्र के जरिए अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों नरेन्द्र मोदी और नीतीश कुमार को परास्त करने की बात से ऐसा लगता है कि यह उनके जैसे कद्दावर नेता द्वारा लोकतंत्र का अपमान है, क्योंकि लालू प्रसाद ने अपने अबतक के जीवन में चाहे मुख्यमंत्री रहे हों या केंद्रीय मंत्री अथवा हर तरह की अभिव्यक्ति की आजादी तथा अपने परिवार के लिए अनंत सुख-साधन की उपलब्धियाँ सभी इसी लोकतंत्र की देन हैं जिसके प्रति आज वह अपनी अनास्था जता रहे हैं। मुझे तो लगता है कि अपने प्रतिद्वंद्वियों को तंत्र-मंत्र के जरिए परास्त करने का आशय है उनकी जनता-जनार्दन से भरोसा का उठ जाना जबकि भारतीय लोकतंत्र की ताकत का एक बड़ा उदाहरण खुद लालू प्रसाद ही हैं। उनके मन में चाहे जो बात घर कर गई हो, पर यह सत्य है कि आजादी के सत्तर साल गुजर जाने के बाद आज भी इस देश की जनता और मतदाताओं के अंतर्मन में लोकतंत्र की पवित्रता, गरिमा, ताकत और संवेदना की गहरी समझ है। यह मतदाताओं की समझ और लोकतंत्र की ताकत का ही प्रभाव है कि देश में कोई राजनीतिक तानाशाही विकसित नहीं हो सकी। जिन राजनीतिक दलों और राजनेताओं ने इस शासन प्रणाली पर भरोसा रखा, उन्हें मतदाताओं ने बार-बार मौके दिए, पर जनमत को ढेंगा दिखाने वाले मिट्टी में मिल गए।

लालू प्रसाद जिस प्रकार रोजाना सरकार गिरने या गिराने की जो भविष्यवाणी और प्रतिद्वद्वियों को अराजनीतिक तरीकों से परास्त करने की धमकियाँ दे रहे हैं वह उनके जैसे कद के नेता की कार्यशैली से मेल नहीं खातीं। उसमें भी तब जब वह और उनके परिवार के कई सदस्य बेनामी संपत्ति तथा रेलमंत्री के पद पर रहते हुए जो उन्होंने कारनामें किए हैं उसके लिए उन्हें जो परेशानी उठानी पड़ रही है उसे देखते हुए हड़बड़ी करने में गड़बड़ी होने की आशंका इसलिए है, क्योंकि मतदाता तथा आमजन उनके कारनामों को देख रहे हैं। बेहतर होगा कि वह अपना राजनीतिक कार्यक्रम निर्धारित करके जनता के बीच जाएँ और मतदाताओं का विश्वास जीतें।

सूचना और तकनीक ने आज सबकुछ बदल दिया है जिसमें मतदाताओं की मंशा भी अब बदल गई है इसलिए इसकी ताकत को राजनेता

पहचानें और समय को नए सिरे से पहचानने का प्रयास करें तभी कुछ बात बन सकती है। बहुत कुछ परिवर्तनकारी हो सकता है, लेकिन शर्त यह है कि वर्तमान राजनीति के उन रहस्य-मार्गों से खुद को निकालना। उसका आधार बनने से दृढ़ता से मना करना। जन-राजनीति आनें वाले समय की बेहतरी का एकमात्र सिंहद्वार है जिसे खोलना लोगों को स्वयं होगा, क्योंकि राजनेताओं का मसीहा या मुक्तिदाता की भूमिका में अब व्यक्ति, जाति या संप्रदाय नहीं, बल्कि जनशक्ति स्वयं ही हो सकती है। कुल मिलाकर देखा जाए तो भारतीय लोकतंत्र की भावना से मुद्दे की पटरियों पर जाने का यह समय है जिसके पूरे होते ही भारत का लोकतंत्र इतिहास के एक नए चरण में दाखिल हो जाएगा। यह मुश्किल और लंबा कालखंड है, परंतु सारतः इस कालखंड के पास एकमात्र ऐतिहासिक दायित्व है। इसके मद्देनजर लालू प्रसाद जैसे कद्दावर नेता को दिवार सामने लिखे हुए को पढ़ लेना चाहिए और उसी के अनुसार अपना कदम बढ़ाना चाहिए।

(१२१)प्रश्नः क्या लोकतांत्रिक व्यवस्था ऐसा लाइसेंस है जिसकी आड़ में जो कोई चाहे देश और समाज के अस्तित्व से खिलवाड़ करे?
उत्तरः आजादी के बाद इस देश में लोकतांत्रिक संसदीय प्रणाली इसलिए अपनाई गई, ताकि देश का संचालन अपने देश के लोगों द्वारा सही ढंग से हो सके। लोकतत्र को इसलिए सराहा जाता है कि इसमें नागरिक स्वतंत्रता के अविछिन्न अधिकार होते हैं और खुद देश का संविधान और कानून इसकी हिफाजत करता है। किंतु दुखद स्थिति यह है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और संविधान में प्रदत्त अधिकार के नाम पर कुछ मुट्ठी भर लोग खुलेआम इस देश व समाज के अस्तित्व से खिलवाड़ कर रहे हैं। जिस लोकतांत्रिक अधिकार के चलते लोगों को रोजी-रोटी दी गई, प्रतिष्ठा और पहचान मिली वही लोग देश की प्रतिष्ठा और गरिमा को ध्वस्त करने पर तुले हैं। हुर्रियत के कट्टरपंथी नेता सैयद गिलानी हों या लेखिका अरुंधती राय सभी इसी श्रेणी में आती हैं जो लोकतांत्रिक व्यवस्था का फायदा उठाते हुए अलगाववादियों और आतंकवादियों को भड़काते हैं। देश की राजधानी में देश विरोधियों को खुलेआम भारत के खिलाफ जहर उगलने की इजाजत देना क्या लोकतांत्रिक व्यवस्था का अंग है? कतई नहीं। दुनिया में शायद हम अकेले देश होंगे, जो अपनी बर्बादी का समां खुद तैयार करते हैं।

(१२२)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि देश की बदलती राजनीतिक सोच और मतदाताओं की बढ़ती ताकत का परिणाम लेकर आया उत्तरप्रदेश निकाय चुनाव? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि हाल में हुए उत्तर प्रदेश का निकाय चुनाव देश की बदलती राजनीतिक सोच और मतदाताओं की बढ़ती ताकत का परिणाम लेकर आया, क्योंकि 16 नगर निगमों में से 14 पर भाजपा की जीत हुई और बसपा ने सिर्फ दो पर कब्जा जमाया है। समाजवादी पार्टी ने अपने समर्थनवाली एक सीट भी गंवा दी। जबकि काँग्रेस पहले जैसी ही खाली हाथ रही। और तो और गाँधी परिवार के गढ़ अमेठी और समाजवादी पार्टी के गढ़ मैनपुरी व आसपास से आए नतीजे इसलिए चौंका रहे हैं, क्योंकि दशकों का उनका वर्चस्व खत्म हुआ है। नतीजे बताते हैं कि मतदाताओं की जीत तो हुई ही है देश की बदलती राजनीतिक सोच और मतदाताओं की बढ़ती ताकत का भी एहसास दिलाते है।

उ.प्र. के निकाय चुनाव परिणामों से ऐसा लगता है कि मोदी की आलोचना करके उन्हें और उनकी भाजपा को नहीं हराया जा सकता है, क्योंकि देश की जनता को अब भी उनपर विश्वास है। विपक्ष बार-बार दाँत के स्वाद में दुशाला काट रहा है।

नरेन्द्र मोदी पर विश्वास और योगी आदित्यनाथ के हिंदुत्व ने मिलकर बहुसंख्यकों को संतुष्ट कर रखा है। ऐसे में विधवा विलाप से चुनाव नहीं जीते जा सकते, गंभीर चिंतन करके राजनीति बनाने की दरकार है, लेकिन अबतक विपक्षी पार्टियाँ विरोध के लिए विरोध की नीति से बाहर नहीं आ पा रही हैं और यही चीज भाजपा के लिए खाद और वरदान है। इस चुनाव नतीजों से यह बात सामने आई है कि मतदाताओं को अब लगने लगा है कि शहरों के लिए बेहतर और काम करने वाली सरकारें होना जरूरी है। अब जरूरत इस बात की है कि केंद्र, राज्य और शहर की सरकारों के बीच समन्वय बेहतर हों।

भाजपा की इस जीत से मुझे यह भी अहसास हो रहा है कि भाजपा के अलावा प्राय: सभी विपक्षी पार्टियाँ मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति अपनाती रही हैं जिसे मतदाता नहीं पसंद कर रहे हैं। अयोध्या में दिवाली मनाना हो या गौसेवा से जुड़े मामले, मतदाता को यही लगता है कि विपक्षी दल मुस्लिम को खुश करने से बाज नहीं आते। सामाजिक ताने-बाने के संतुलन से उन्हें कोई वास्ता नहीं दिखता। आखिर तभी तो विपक्षी पार्टियों पर

कटाक्ष करते हुए व्यंग्यकार ओम प्रकाश तिवारी ने अपनी व्यंग्य कविता में यों कहा है–

'दिल्ली से गल़्ली तलक बीजेपी का जोर,
मोदी जी के नाम का नहीं थम रहा शोर।
नहीं थम रहा शोर शहर में मारी बाजी,
सारे हुए शहीद बन हरे जो गाजी।
प्रतिद्वंद्वी सब आज बने हैं भींगी बिल्ली,
चले उसी का जोर साथ में जिसके दिल्ली।'

(१२३)प्रश्नः आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बाद भी क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आज भारतीय राजनीति संस्कारहीनता के घने कोहरे में घिरी नजर आने लगी है? ऐसा क्यों?

उत्तर: हाँ, भाई मुरारी जी, आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बाद भी आज भारतीय राजनीति संस्कारहीनता के घने कोहरे में घिरी नजर आने लगी है, क्योंकि मुद्दे और विचारों से समाज को नई दिशा देने की बजाय राजनेताओं की सियासी सोच तो जैसे जीत-हार, अपने-पराए के भंवर में ही जकड़ सी गई है। सियासत के इस काल में कोई नेता देश के प्रधानमंत्री की खाल उधेड़ने की धमकी देता दिखाई देता है तो कहीं हाथ कटवा देने जैसे धमकियाँ सुनाई देती हैं। यही नहीं, नेता एक-दूसरे पर नितांत निजी हमले करने का भी कोई मौका नहीं छोड़ रहे। नेताओं की बदजुबानी का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वोटों की खातिर वे जाति-धर्म से लेकर इतिहास तक को अपने नफे-नुकसान के तराजू में तौलने से बाज नहीं आ रहे।

मुझे लगता है कि भारतीय राजनीति के मौजूदा दौर में राजनेता शायद यह भूल रहे हैं कि सत्ता, विपक्ष, विरोध और समर्थन तो लोकतंत्र के सबसे मजबूत स्तंभ हैं, जिनके बिना एक स्वस्थ लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती है। दूसरी ओर भाषा, व्यवहार और संस्कार भी लोकतंत्र के मूल में है। ये भाषा ही है जो राजनीति को मर्यादा की सांस्कारिक चादर में लपेटकर रखती है, लेकिन आज के नेता तो जैसे मर्यादा शब्द का अस्तित्व ही मिटाने को आतुर दिख रहे हैं। ऐसा आभास होने लगा है जैसे राजनीति में अशिक्षितों, असभ्यों, संस्कारहीन लोगों की तादाद बढ़ती जा रही है।

भारतीय राजनीति के इतिहास के पन्नों पर जब हम एक नजर डालते हैं, तो पाते हैं कि भारतीय राजनीति की एक गौरवशाली परंपरा रही है। एक समय था जब विपक्ष के प्रति भी आदर और सम्मान का भाव

नेताओं में न सिर्फ दिखता था, बल्कि मौके-बेमौके वह परिलक्षित भी होता था। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू से अटल बिहारी वाजपेयी तक के दौर की राजनीति बेहद मर्यादित थी, संस्कारवान थी। विपक्ष में रहकर भी डॉ. राममनोहर लोहिया ने जवाहर लाल नेहरू के प्रति कभी अमर्यादित भाषा का प्रयोग नहीं किया। सरदार पटेल, जे.पी., लाल बहादुर शास्त्री, चंद्रशेखर जैसे नेताओं की सियासत शुचिता, संयम और सामाजिक सुधार के लिए होती थी, उनके भाषणों में देश को नई ऊँचाई पर पहुँचाने की ललक थी न कि सिर्फ कुर्सी हथियाने की होड़। मगर आज के नेता कुर्सी के मोह में संस्कारहीन होते दिख रहे हैं जो देश के लोकतंत्र के लिए खतरनाक है।

(१२४)प्रश्न: भारत के अधिकांश राजनीतिक दलों के अध्यक्ष पद के लिए चुनाव के नाम पर जैसा दिखावा होता है वैसा क्या कोई और किसी लोकतांत्रिक देश में होता है?

उत्तर: नहीं, भाई मुरारी प्रसाद सिंह जी, भारत के अधिकांश राजनीतिक दलों के अध्यक्ष पद के लिए चुनाव के नाम पर जैसा दिखावा होता है वह वैसा किसी और लोकतांत्रिक देशों में नहीं होता है। और तो और आजादी के बाद भारत की सबसे पुरानी और सबसे बड़ी राष्ट्रीय स्तर की काँग्रेस पार्टी के अध्यक्ष के लिए हुए चुनाव में केवल आज तक दिखावा ही होता रहा है और आज जब सोनिया गाँधी के बाद काँग्रेस पार्टी के अध्यक्ष पद का चुनाव हुआ तो वह भी केवल दिखावे के लिए हुआ, क्योंकि काँग्रेस में कोई भी नेता राहुल गाँधी को चुनौती देने का साहस नहीं जुटा सकता। यही नहीं इसके आगे भी कोई संभावना नहीं दिखती है। आपने देखा नहीं काँग्रेस पार्टी के अध्यक्ष के लिए सम्पन्न चुनाव प्रक्रिया पर सवाल उठाने वाले पार्टी के एक कार्यकर्ता शहजाद पूनावाला को काँग्रेस के नेता काँग्रेसी मानने से ही इनकार कर दिए। जब राहुल गाँधी के अलावा अन्य किसी के अध्यक्ष बनने की दूर-दूर तक कहीं कोई गुंजाइश नहीं थी तब फिर चुनाव का दिखावा क्यों किया गया? आखिर ऐसे चुनाव का क्या मतलब जिसमें केवल एक ही उम्मीदवार था? ऐसी चुनावी प्रक्रिया को आखिर आंतरिक लोकतांत्रिक कैसे कहा जाएगा? हालांकि यह भी सच है कि इस देश के अधिकांश राजनीतिक दलों में भी काँग्रेस पार्टी जैसा ही अध्यक्ष के चुनाव में दिखावा हो रहा है। खुद राहुल गाँधी का भी यह मानना रहा है कि भारत में तो ऐसा ही होता आया है। हालांकि उन्होंने यह बात भारत में नहीं, बल्कि अमेरिका में जाकर

कही जहाँ ऐसा बिल्कुल भी नहीं होता। सच तो यह है कि अमेरिका के साथ ब्रिटेन एवं अन्य कई लोकतांत्रिक देशों में भी राजनीतिक दलों के अध्यक्ष पद के लिए चुनाव के नाम पर वैसा कोई दिखावा नहीं होता जैसा भारत के अधिकांश राजनीतिक दलों में होता है।

(१२५)प्रश्नः भाजपा के पास कौन सी ऐसी शक्ति है जो उसे चुनावों में विजय दिलाती है?

उत्तरः भाजपा के पास संगठन के स्तर पर एक दुर्जेय शक्ति है जो उसे चुनावों में विजय दिलाती है। लोकतांत्रिक दुनिया में भाजपा सर्वाधिक शक्तिशाली राजनीतिक दलों में से एक है। जमीनी स्तर पर देश की बड़ी आबादी तक उसकी पहुँच है, जिसकी व्यवस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ-लाखों सदस्योंवाला विश्व का सबसे बड़ा गैर-सरकारी संगठन देखता है। इसके पास प्रतिबद्ध, समर्पित और प्रशिक्षित लोग हैं जो मतदान केंद्र स्तर तक फैले हैं, जिन्हें नरेन्द्र मोदी के करिश्माई नेतृत्व की वजह से काफी प्रोत्साहन भी मिलता है। किसी भी कड़ी स्पर्धा की स्थिति में भाजपा की यही सांगठनिक शक्ति उसकी जीत सुनिश्चित करती है।

मेरे विचार से दूसरी बात यह है कि भाजपा के पास विकास का मुद्दा सामने रहता है। तीसरी बात यह है भाजपा की पहुँच समाज के सबसे निचले स्तर तक हो गई है। लोकमत बनाने का जो काम समाज के रचनाकार, व्याख्याता, समाजशास्त्री, विधिवेत्ता, राजनीति विज्ञान के अध्येता करते थे वह काम अब राजनीति का क-ख-ग भी नहीं जानने वाला कर रहा है, क्योंकि उसे अब विश्वास हो गया है कि इस देश में पहली बार प्रधानमंत्री के रूप में नरेन्द्र मोदी जैसा नेता मिला है जो समर्पित भाव से समाजहित व देशहित में अग्रसर है। सर्वशक्तिशाली देश अमेरिका के साथ-साथ जापान, जर्मनी, फ्रांस, ऑस्ट्रेलिया तथा ईरान, ईराक, सऊदी अरब अमीरात जैसे इस्लामिक विकसित देश भारत के विकास में दिलचस्पी ले रहे हैं तथा चीन और पाकिस्तान की चाल को समझते हुए उसे अलग-थलग कर दिया गया है।

इनके अतिरिक्त चौथी बात यह है विपक्षी पार्टियों में सबसे बड़ी राष्ट्रीय पार्टी काँग्रेस पार्टी अपनी कमजोरियों की वजह से भाजपा का मुकाबला नहीं कर पा रही है। जहाँ तक राज्य स्तर की जो विपक्षी पार्टियाँ है वे भाजपा का विरोध के लिए विरोध कर रही हैं जिनकी चाल को देश की बड़ी आबादी समझ चुकी है। काँग्रेस पार्टी तो अपना एजेंडा तक तय

करने में अबतक विफल रही है। काँग्रेस सहित सपा, राजद, लोजपा, द्रमुक, बीजू जनता दल जैसी क्षेत्रीय पार्टियाँ वंशवाद और परिवारवाद से आगे नहीं निकल पा रही है।

(१२६)प्रश्नः आखिर यह क्या पहेली है कि काँग्रेस एक ओर तो वह आरोप लगाती है कि भाजपा अयोध्या विवाद मसले के बहाने राजनीति करना चाहती है और दूसरी ओर उसके एक वकील नेता यह नहीं चाह रहे कि इस प्रकरण का शीघ्र ही पटाक्षेप हो?

उत्तरः सुप्रीम कोर्ट में अयोध्या मामले की सुनवाई टालने और यहाँ तक कि उसे अगले लोकसभा चुनाव 2019 के बाद सुने जाने की दलील देने वाले वकील और काँग्रेसी नेता कपिल सिब्बल इस प्रकरण के बहाने राजनीतिक रोटियाँ सेकते रहना चाहते हैं। अगर इस मामले का अदालत से शीघ्र निपटारा हो जाए तो फिर भाजपा या अन्य किसी के लिए राजनीति करने की गुंजाइश ही नहीं बचेगी। जब दोनों पक्ष और एक तरह से सारा देश यह चाह रहा है कि इस मसले का निपटारा जितनी जल्दी हो जाए उतना ही बेहतर होगा, तब कपिल सिब्बल द्वारा उसे ठंढे बस्ते में डालने वाली दलील प्रस्तुत करने का कोई मतलब नहीं दिखता। उनका रवैया संकीर्ण राजनीति से भी ग्रस्त दिखा और देश की भावनाओं के विपरीत भी। आखिर वह इस नतीजे पर कैसे पहुँच गए कि अयोध्या मसले का जल्द निपटारा ठीक नहीं?

कपिल सिब्बल की वह दलील मुझे अजीब लगती है कि वह एक ओर तो संकीर्ण राजनीतिक कारणों से अयोध्या मामले की सुनवाई जुलाई 2019 तक टलवाना चाहते हैं और दूसरी ओर यह सवाल भी कर रहे हैं कि इस मसले पर राजनीति क्यों हो रही हैं? इस पर हैरत नहीं कि उनकी वजह से काँग्रेस को जवाब देने में कठिनाई हो रही है, क्योंकि एक समय उसके एक और वकील नेता जब केरल के लॉटरी संचालकों का केस लड़ रहे थे तो काँग्रेस पार्टी ने उन्हें इसके लिए बाध्य किया था कि वह यह केस कैसे छोड़ें?

सबसे बड़ी बात तो यह है कि सुन्नी वक्फ बोर्ड के सदस्य हाजी महबूब भी इससे सहमत नहीं कि अयोध्या मसले की सुनवाई 2019 में होनी चाहिए। भले ही बाद में हाजी महबूब कपिल सिब्बल के रवैए पर अपनी आपत्ति वापस लेते नजर आए हों, लेकिन यह एक तथ्य है कि वह यह भी चाहते हैं कि इस मसले का निपटारा शीघ्र हो। अतएव आपका यह कहना वाजिब है कि काँग्रेस एक ओर तो यह आरोप लगाती है कि भाजपा अयोध्या

मसले के बहाने राजनीति करना चाहती है और दूसरी ओर उसके एक वकील नेता यह नहीं चाह रहे कि इस प्रकरण का जल्द पटाक्षेप हो?

(१२७)प्रश्नः क्या आप भी ऐसा महसूस करते हैं कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और उनकी करिश्माई अदा पर फिदा होने वालों की तादाद बढ़ती जा रही हैं? यदि हाँ, तो कैसे?

उत्तर: हाँ, मैं भी ऐसा महसूस करता हूँ कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और उनकी करिश्माई अदा पर फिदा होने वालों की तादाद बढ़ती जा रही है, क्योंकि प्रधानमंत्री के रूप में उनके साढ़े तीन साल के कार्यकाल में मैंने देखा है कि नरेन्द्र मोदी की अपनी एक अलग सोच है। कई बार तो वह देश और समाज के मसलों पर पार्टी लाइन से ऊपर उठकर सोचते हैं। उन्हें पार्टी हित से ज्यादा समाजहित और देशहित की फिक्र है। वह इंसानियत को सामने रखकर चीजों को परखते हैं और तब कहीं जाकर उस पर अपना फैसला लेते हैं। सरकार की नीतियों को लागू करने के बारे में भी वो ऐसी ही सोच दिखाते हैं।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सुनते सबकी हैं, लेकिन करते वही हैं जो मनुष्यता के लिए आवश्यक है। आपने देखा नहीं पिछले दिनों तीन तलाक के मसले पर सुप्रीम कोर्ट में हलफनामा भरे जाने के दौरान उन्हें सलाह दी गई थी कि फिलहाल वह इस मुद्दे पर चुप रहें अन्यथा उत्तर प्रदेश के निकाय चुनाव में पार्टी को भारी नुकसान उठाना पड़ेगा, लेकिन नरेन्द्र मोदी कतई चुप नहीं रह सके, क्योंकि उनके लिए तीन तलाक का मसला किसी चुनाव से नहीं, बल्कि इंसानियत से जुड़ा मसला था।

कोई और पार्टी या राजनेता होते, तो शायद वह एक संवेदनशील चुनाव के ऐन पहले हो रही इस कवायद पर मौन साध लेता, लेकिन नरेन्द्र मोदी को यह गंवारा नहीं था। उन्हें पता था कि इसका चुनाव पर सीधे असर पड़ेगा। लेकिन उन्हें यह मंजूर नहीं था कि समाज व समुदाय में एक तबके की औरत को तलाक का दंश झेलना पड़े। इससे यह भी साबित होता है कि कई अहम मसलों पर वह पार्टी की बनी हुई लीक से अलग हटकर चलने की जोखिम उठाते हैं। उन्हें चुनाव हारना गंवारा है, लेकिन इंसानियत का हार जाना मंजूर नहीं। नरेन्द्र मोदी की इसी सोच की मुस्लिम समुदाय के लोग खासतौर पर महिलाएँ मुरीद हैं। उन्हें लगता है कि जिस मसले पर धर्मगुरु सैकड़ों साल से अपना उल्लू सीधा करते रहे हैं, उन्हें सुधारने का शायद यही मौजू वक्त है। कुछ इन्हीं सब कारणों से नरेन्द मोदी और उनकी करिश्माई अदा पर फिदा होने वालों की तादाद बढ़ती जा रही है।

(१२८)प्रश्न: जब ईवीएम(इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन) पर पहले लगे आरोपों पर चुनाव आयोग ने अपनी जाँच में यह साफ कर दिया था कि ईवीएम में कोई गड़बड़ी नहीं है, तब ऐसे आरोप क्यों बार-बार लगाए जा रहे हैं?

उत्तर: उ.प्र., बिहार, दिल्ली के बाद अब गुजरात में मतदान के बाद ईवीएम में गड़बड़ी का आरोप काँग्रेस, नेशनल कॉन्फ्रेंस, राजद, बसपा और आम आदमी पार्टी के नेताओं द्वारा जोर-शोर से लगाया जा रहा है बावजूद इसके कि इसके पूर्व निर्वाचन आयोग ने अपनी जाँच में यह साफ कर दिया था कि ईवीएम में कोई गड़बड़ी नहीं है। ईवीएम पर लगे आरोप निराधार साबित हो चुके हैं।

दरअसल, विपक्ष और टीआरपी के लिए कुछ टीवी चैनल्स मतदान शुरु होते ही ईवीएम में गड़बड़ी का आरोप लगाने लगे जो मेरे ख्याल से सही इसलिए नहीं दिखता, क्योंकि विपक्ष के लिए भले ही यह एक मुद्दा हो सकता है, लेकिन लोकतंत्र के सबसे बड़े पर्व चुनाव में यह जनता के भरोसे से जुड़ा मामला भी है।

हालांकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि ईवीएम में खराबी हो सकती है, क्योंकि यह एक मशीन है, लेकिन यहँ खराबी अगर पहली बार लगे कुल वीवीपैट में 1.90 प्रतिशत रही हो, तो इसके आधार पर विपक्षी पार्टियाँ क्या साबित करना चाहती हैं?

भाजपा के नेताओं का कहना है कि चुनाव के पहले ही हार मानकर ईवीएम में गड़बड़ियों की शिकायतें करना विपक्षी पार्टियों ने शुरू कर दी हैं। चुनाव आयोग के अनुसार शिकायतें आधारहीन इसलिए है, क्योंकि ब्लूटूथ के जरिए ईवीएम में संभावित गड़बड़ियों की शिकायतें जाँच के बाद आधारहीन पाई गई हैं। मुख्य चुनाव अधिकारी वी. वी. स्वैन ने बताया कि शिकायतकर्ता के मोबाइल फोन ने जिस ब्लूटूथ डिवाइस से डिटेक्ट किया था ईवीएम नहीं, बल्कि वह एक पोलिंग एजेंट का मोबाइल फोन था। विपक्षी पार्टियों खासतौर पर सपा और बसपा की टिप्पणियाँ तार्किक कम और भ्रम उत्पन्न करने वाली ज्यादा प्रतीत होती हैं। आपने देखा नहीं पिछले वर्ष सभी पार्टियों को ईवीएम हैक करने की चुनौती को स्वीकारते हुए चुनाव आयोग ने राजनेताओं को बुलाया, मगर किसी ने उसकी चुनौती को स्वीकार नहीं किया था। राजनेताओं का यह रवैया लोकतंत्र के प्रति हानिकारक है।

मुझे लगता है कि विपक्षी पार्टियों को ईवीएम में गड़बड़ी का अपना स्यापा बंद करना चाहिए और जनता से जुड़े कुछ अन्न मुद्दे तलाशने चाहिए, जिनमें तर्क हो, सबूत हो और जो सच के करीब हों। उन्हें यह मान लेना चाहिए कि ईवीएम पर संदेह पैदा कर वे सिर्फ जनता को भरमा सकते हैं, उनका भरोसा हासिल नहीं कर सकते। बेहतर हो वे जनता के लिए कुछ रचनात्मक करें, सोचें और जमीन पर उनके साथ जुड़ें। यह उन्हें चुनाव में सकारात्मक परिणाम दिला सकता है। इस बात को वे जितनी जल्दी समझ जाएँ, उनके भविष्य के लिए उतना ही अच्छा।

(१२९)प्रश्नः क्या दागी नेताओं के लिए विशेष अदालतों का गठन स्वच्छ राजनीति के लिए प्रभावी साबित होगा?

उत्तरः हाँ, दागी नेताओं के लिए केंद्र सरकार द्वारा आपराधिक गतिविधियों में लिप्तता के आरोपों का सामना कर रहे जनप्रतिनिधियों के मामलों का निस्तारण के लिए 12 विशेष अदालतों का जो गठन किया गया है उससे स्वच्छ राजनीति की उम्मीद की जा सकती है, क्योंकि विधानमंडलों में ऐसे नेताओं की मौजूदगी राजनीति के अपराधीकरण को बल प्रदान करने का ही काम करती है। एक आकड़े के अनुसार इस समय करीब डेढ़ हजार सांसद और विधायक ऐसे हैं जो आपराधिक मामलों से घिरे हैं और जिन पर संगीन आरोप हैं, लेकिन सभी को एक ही तराजू से नहीं तौला जा सकता। अच्छा हो आपराधिक मामलों के साथ-साथ अन्य किसी तरह के मामलों के त्वरित निस्तारण पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अभी तो 12 विशेष अदालतों में करीब 1571 आपराधिक मामलों पर सुनवाई कर उसका निपटारा एक साल के अन्दर किया जाना है। विशेष अदालतों में मामले तेजी से निपटने से दागी नेताओं का सच जल्दी सामने आएगा और वे चुनाव लड़ने के अयोग्य हो जाएँगे। दरअसल, देश की लंबी कानूनी प्रक्रिया का फायदा उठाकर हत्या, अपहरण जैसे गंभीर मुकदमों के आरोपी नेता सालों-साल पदों पर बने रहते हैं और जनता खुद को ठगा महसूस करती है। ऐसे में यदि विशेष अदालतों द्वारा आरोपी नेताओं के मामलों की सुनवाई एक साल में जाती है तो यह न केवल एक स्वागतयोग्य फैसला है, बल्कि साफ-सुथरी राजनीति में यह फैसला मील का पत्थर साबित होगा। फिर साफ-सुथरी छविवाले लोगों को चुनाव लड़वाना राजनीतिक दलों की मजबूरी होगी और जनता को भी बेहतर विकल्प मिल सकेंगे।

उल्लेख्य है कि विगत 2014 के लोक सभा चुनाव के दौरान

देशभर में 1581 सांसद और विधायकों पर संगीन अपराधों में 13500 मुकदमें दर्ज हैं। उम्मीद है कि केंद्र सरकार के इस कदम से ऐसे नेताओं की संख्या में कमी आ सकेगी और राजनीति का स्तर भी पहले की तुलना में सुधरेगा।

(१३०)प्रश्नः गुजरात विधानसभा चुनाव में भाजपा की वापसी और हिमाचल प्रदेश विधानसभा चुनाव में भाजपा की विजय उसके लिए क्या खुश होने वाली बात है? अगर नहीं, तो क्यों?

उत्तरः यह बात ठीक है कि 2017 के अंत में गुजरात विधानसभा चुनाव में भाजपा की वापसी और हिमाचल प्रदेश विधानसभा चुनाव में भाजपा की विजय हुई है और जिसने यह साबित कर दिया है कि भाजपा और उसके नेता प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी क्षेत्रीय अस्मिता, बहुसंख्सयक राष्ट्रवाद और ईमानदारी आदि के सभी मुद्दों को अपने पक्ष में मोड़ने की कला में माहिर हैं और जनता का उनमें विश्वास कायम है, लेकिन भाजपा के लिए पूरी तरह खुश होने वाली बात इसलिए नहीं है कि 150 के आँकड़े को निहार रही भाजपा दहाई अंकों पर सिकुड़ कर 99 पर ही अटक गई। अहमदाबाद, बड़ोदरा और सूरत जैसे औद्योगिक और व्यापारिक इलाकों में भाजपा का वर्चस्व रहा है, मगर भाजपा के लिए यह विकास मॉडल की जीत नहीं कही जा सकती, क्योंकि सौराष्ट्र और कच्छ के इलाकों तथा गाँवों में भाजपा को अधिक सफलता नहीं मिली। ग्रामीण क्षेत्रों में भाजपा को लेकर जो नाराजगी दिख गई है भाजपा के लिए यह स्पष्ट संकेत है कि अब उसे अपने विकास मॉडल का रूख गाँवों की ओर मोड़ना होगा, खासकर कपास उगाने वालों के लिए भाजपा को अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। भाजपा को इस सवाल का जवाब अवश्य खोजना होगा कि दो दशक से भी अधिक समय के शासन के बावजूद आदिवासी एवं ग्रामीण इलाकों की अपेक्षाएँ असंतोष के स्तर को क्यों छू रही हैं?

इसमें कोई संदेह नहीं कि भाजपा जहाँ अपने गढ़ में विगत 22 वर्षों के सत्ता विरोधी रूझान पर पार पाने में सफल रही, वहीं काँग्रेस पार्टी हिमाचल प्रदेश में पाँच साल के सत्ता विरोधी रूझान का भी सामना नहीं कर सकी। निःसंदेह गुजरात में भाजपा को 2012 के मुकाबले 16 सीटें कम मिलीं, लेकिन लगातार छठी बार सत्ता हासिल करना भी कम उल्लेखनीय नहीं है। इस संदर्भ में यह भी ध्यान देने की बात है कि सीटें कम पाने के बाद भी भाजपा का मत प्रतिशत 2012 के मुकाबले बढ़ा है। दरअसल,

भाजपा गुजरात में अपनी सत्ता सुरक्षित रखने में सफल रही तो इसलिए कि राज्य की जनता नरेन्द्र मोदी को चाहती है, क्योंकि मोदी का अपना व्यक्तित्व है और उसे वह न केवल गुजरात वरन वैश्विक पटल पर भी स्थापित करने में सफल हुए हैं। दूसरी ओर राहुल गाँधी नरम हिंदुत्व पर अमल करने के बावजूद वह न तो हिंदुओं को आकृष्ट कर सके और न ही मुस्लिम आधार बढ़ा सके।

अलग-अलग राजनीतिक दलों ने पहले भले ही अपनी हार का ठीकरा ईवीएम के सिर फोड़ने की कोशिश की हो, मगर गुजरात और हिमाचल प्रदेश विधानसभा चुनावों के नतीजों से ईवीएम की विश्वसनीयता एक बार फिर साबित हो गई है। साथ ही गुजरात चुनाव के नतीजों की अनिश्चितता ने लोकतांत्रिक संघर्ष को बहुत महत्वपूर्ण बनाया है। यह हमारे लोकतंत्र की विजय है। 2019 के सेमिफाइनल की तरह खेले गए गुजरात चुनाव में फिलहाल भाज़पा ने बाजी मार ली है।

(१३१)प्रश्नः आम आदमी पार्टी का सिद्धांत क्या सत्ता से चिपके रहना है या उस आंदोलन को आगे बढ़ाना है जिसकी लहर पर सवार होकर वह सत्ता में आई थी? क्यों?

उत्तरः आम आदमी पार्टी जिस आंदोलन की लहर पर सवार होकर सत्ता में आई थी उसे आगे बढ़ाना नहीं, बल्कि उसका सिद्धांत सत्ता से चिपके रहना है, क्योंकि वह आंदोलन जो देश के लोकतंत्र को जवाबदेह और पारदर्शी बनाने के लिए था वह 'आप' के लिए अप्रासंगिक हो गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि देश में भ्रष्टाचार उन्मूलन, व्यवस्था परिवर्तन और तमाम उच्च आदर्शों के साथ देश के तमाम आंदोलनकारियों, ईमानदार अधिकारियों और बुद्धिजीवियाँ की सहानुभूति लेकर सत्ता में आई आम आदमी पार्टी आज की तिथि में हम और तुम के झगड़े में उलझ कर रह गई है। आपने देखा नहीं पिछले दिनों दिल्ली के तीन राज्यसभा सीटों के लिए कुमार विश्वास और आशुतोष सरीखे जुझारू, सुलझे तथा स्वच्छ छवि के नेताओं का नामांकन न कर आम आदमी पार्टी ने दो अरबपति गुप्ता बन्धुओं का नामांकन कर आखिर क्या संदेश दिया है?

अगर आम आदमी पार्टी को पहला झटका योगेन्द्र यादव, प्रशांत भूषण, प्रो. आनंद कुमार और अजित झा के निष्कासन के साथ मिला था तो दूसरा बड़ा झटका अब कुमार विश्वास और आशुतोष को राज्यसभा का टिकट न देने और उसकी वजह से पार्टी में मचे विद्रोह के साथ मिलने वाला

है, क्योंकि कुमार विश्वास और आशुतोष जैसे पार्टी के दो दिग्गजों का पत्ता काटकर आम आदमी पार्टी ने अपनी छवि को जो बट्टा लगाया है उसकी भरपाई आसान नहीं है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि योगेन्द्र यादव जैसे कर्मठ नेता ने भी यह संदेह व्यक्त किया है कि आम आदमी पार्टी ने राज्यसभा के कम से कम दो सीटों पर किए गए नामांकन धन लेकर टिकट दिया है।

सवाल यह उठता है कि क्या आम आदमी पार्टी उस जनता और देश के बौद्धिक वर्ग का विश्वास जीत पाएगी जिसका वह कभी दावा कर सकती थी? मेरा ख्याल है कि उसने न सिर्फ जनता के यकीन को तोड़ा है, बल्कि इस देश के बारे में अच्छी नीयत से सोचने और संघर्ष करने वालों को भी उदास किया है।

(१३२)प्रश्नः जम्मू-कश्मीर में एक तरफ सेना आतंकियों के सफाए के अभियान में जुटी है, वहीं उसी सूबे में भाजपा के सहयोग से सरकार चला रही पीडीपी के विधायक एजाज अहमद मीर का यह बयान कि 'कश्मीर के आतंकी शहीद हैं और वे हमारे भाई हैं' क्या अटपटा नहीं लगता है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, जम्मू-कश्मीर में एक तरफ सेना आतंकियों के सफाए अभियान में जुटी हैं तो वहीं उसी सूबे में भाजपा के सहयोग से सरकार चला रही पीडीपी के विधायक एजाज अहमद मीर का यह बयान कि 'कश्मीर के आतंकी शहीद हैं और वे हमारे भाई हैं' निश्चित रूप से अटपटा लगता है और दुखद भी जिसकी निंदा होना लाजिमी है। इसके पहले भी पीडीपी नेताओं के बयान भाजपा को असहज करते रहे हैं, क्योंकि आतंकी और अलगाववादी कश्मीरियों, शांति और विकास के दुश्मन हैं। इसलिए वे किसी के भाई कैसे हो सकते हैं और उन्हें शहीद कहना तो और भी नाजायज है। इसके पूर्व भी कई नेता सांसद हमले के दोषी अफजल गुरु का गुणगान तक कर चुके हैं और काँग्रेस के एक नेता हाफिज सईद को हाफिज जी कहकर संबोधित कर चुके हैं।

नेताओं की जुबान फिसलना तो जैसे आम बात हो गई है, लेकिन जब मुँह से बात आतंक का साथ देने वाली या देश विरोधी हो तो यह काफी गंभीर हो जाती है। ऐसे नेताओं को सबक सिखाने की जरूरत है, क्योंकि उनके ऐसे अनर्गल और देशविरोधी बयानों से हमारे सैनिकों का मनोबल टूटता है।

(१३३)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि केंद्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट की निर्धारित मियाद से चार साल पहले ही हज यात्रा की सब्सिडी वापस लेकर अपने सख्त होने के साथ तुष्टीकरण विरोधी होने का संदेश दे दिया है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि केंद्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट की निर्धारित मियाद से चार साल पहले ही हज यात्रा की सब्सिडी वापस लेकर अपने सख्त होने के साथ तुष्टीकरण विरोधी होने का संदेश दे दिया है, क्योंकि सुप्रीम कार्ट ने 2012 में निर्णय दिया था कि इसे धीरे-धीरे 2022 तक खत्म कर दिया जाए, लेकिन केंद्र सरकार 2022 आने के पहले ही यानी चार साल पहले ही 2018 से हज सब्सिडी को खत्म करने का निर्णय लिया है जो निश्चित रूप से यह बताता है कि केंद्र सरकार यानी भाजपा के नेतृत्ववाली सरकार तुष्टीकरण की नीति के सख्त खिलाफ है।

वैसे भी सच कहा जाए तो हज यात्रा एक निजी धार्मिक यात्रा है और उसमें सरकार की तरफ से रियायत देने का कोई औचित्य नहीं है। सरकार ने हज यात्रा में रियायत दिए जाने वाला 700 करोड़ रुपए की बचत का इस्तेमाल अल्पसंख्यक समाज की शिक्षा में करना चाहती है। आने वाले समय में तीन तलाक, हज यात्रा में रियायत और मेहरम का नियम समाप्त करने के कदम को धर्मनिरपेक्ष कदम के रूप में पेश किया गया है जिसे सराहणीय कहा जाएगा।

(१३४)प्रश्नः आम आदमी पार्टी निर्वाचन आयोग पर निशाना साधकर क्या साबित करना चाहती है?

उत्तरः यह समझ से परे है कि आम आदमी पार्टी निर्वाचन आयोग पर निशाना साधकर क्या साबित करना चाहती है। राजनीतिक दल आयोग से आखिर इस बात की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं कि नियम कायदों को दरकिनार कर वह उनके पक्ष में फैसले सुनाता फिरे। अगर आम आदमी पार्टी कहती है कि उनका पक्ष नहीं सुना गया, तो उनसे पूछा जा सकता कि आयोग द्वारा अपने पक्ष रखने के लिए बार-बार बुलाने पर भी कोई नहीं आए तो इसका जवाब भी तो उन्हीं को देना होगा।

दरअसल, अपनी गलतियों के लिए किसी और को दोषी ठहराना इन दिनों राजनीतिक शगल बन गया है। जिन तर्कों के सहारे आम आदमी पार्टी स्वयं को सही साबित करने की कोशिश कर रही है वह आसानी से किसी के गले नहीं उतरने वाले हैं।

अध्याय : तीन

प्रष्टाओं का परिचय

(१)डॉ. एल. एन. शर्मा

जन्म तिथि : 1942

जन्म स्थान : ग्राम+पत्रा.-शम्यागढ़, जिला-पटना

शिक्षा : एम.ए., पीएच.डी., एल.एल.बी.

कार्यक्षेत्र : पूर्व विभागाध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र, स्नातकोतर, पटना विश्वविद्यालय, पटना
अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान एसोसियेशन, बिहार

प्रकाशित रचनाएँ : 'द इंडियन प्राइम मिनिस्टर', पौलिटिकल सोसियोलॉजी (अली अशरफ के साथ सहलेखक),'ह्युमन राईट्स एंड राजनीति
समाज शास्त्र: '21वीं शताब्दी के बदलते संदर्भ में'(सह लेखक कृष्ण मुरारी के साथ) 'पौलिटिक्स एंड गुड गवर्नेंस'

अभिरुचि : अध्ययन एवं अकादमिक विचार-विमर्श

वर्तमान पता : ए/32, पिपुल्स कोओपरेटीव सोसाइटी, लोहिया नगर, पटना, दूरभाष-0612-2350140

(२)डॉ. साधु शरण

जन्म स्थान : पटना जिला

शिक्षा : एम.ए.(राजनीति विज्ञान),

कार्यक्षेत्र : पूर्व विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान, जैतपुर महाविद्यालय, बि. आर. अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

अभिरुचि : अध्ययन, लेखन

वर्तमान पता : गीता भवन, रोड नं.-1, उत्तरी पटेल नगर, पटना

(३) श्री एन. डी. तिवारी

जन्मस्थान : बेतिया
शिक्षा : स्नातक
कार्यक्षेत्र : प्रदेश अध्यक्ष, भारतीय कृषक समाज, बिहार
अभिरुचि : राजनीति,
वर्तमान पता : पाटलीपुत्र कॉलोनी, पटना
मो.-7739477925

(४) श्री विजय कुमार सिंह

शिक्षा : एम.ए.
कार्यक्षेत्र : पूर्व प्राध्यापक,
नेता, भारतीय जनता पार्टी, बिहार, पटना
अभिरुचि : राजनीति
वर्तमान पता : यारपुर, पटना

(५) श्री मदन कुमार

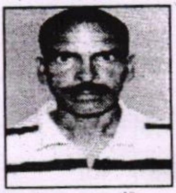

जन्मतिथि : 04.04.1976
जन्मस्थान : ग्राम+पो.-नेरुत, थाना-अस्थाँवा, नालन्दा
शिक्षा : स्नातक (राजनीति शास्त्र) मगध वि.वि.
कार्यक्षेत्र : राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यकर्ता और प्रकाशन
अभिरुचि : समाजसेवा
वर्तमान पता : श्रीकृष्ण बिहार कॉलोनी, बेउर, पटना-2

(६) डॉ. सूर्यभूषण प्रसाद सिन्हा

जन्मस्थान : ग्राम-रामपुर, पत्रा.-छतियाना, भाया-हरनौत, जिला-नालंदा
शिक्षा : एम.एससी.
कार्यक्षेत्र : प्रभारी प्रधानाध्यापक, रामस्वारथ सिंह +2 उच्च विद्यालय, बलबा, पटना
अभिरुचि : जन्म कुंडली रचना, हस्तरेखा एवं वास्तु विशेषज्ञ
वर्तमान पता : आवास सह ज्योतिष कार्यालय, सिन्हा मार्बल एवं सरस्वती विद्या मंदिर तीसरी मंजिल, एफ-5, विजय नगर, कंकड़बाग, पटना-26, मो.-9234871273, 9204026539

(७) श्री उपेन्द्रनाथ सागर

जन्मतिथि : 1 अक्टूबर, 1949

जन्मस्थान : भट्ठा बाजार, पूर्णिया-854301
मो.-9931467245, 9162326743

कार्यक्षेत्र : पूर्व सहायक, विधि विभाग, बिहार सरकार
पटना सचिवालय, पटना
पूर्व संस्थापक प्रमुख, अम्बेडकर सेवा सदन, पूर्णिया
संस्थापक सदस्य, कुशवाहा कल्याण परिषद, बिहार, पटना
जनवरी, 1995 में सरकारी सेवा से त्यागपत्र देकर राजनीति में सक्रिय
1995 में बिहार विधानसभा के पूर्णिया क्षेत्र से उम्मीदवार
पूर्व प्रदेश सचिव, जद(यू)
2004 में पूर्णिया लोकसभा क्षेत्र से उम्मीदवार
2005 में कसबा(पूर्णिया) क्षेत्र से विधानसभा के सदस्य हेतु राष्ट्रीय लोकदल उम्मीदवार,
बिहार प्रदेश काँग्रेस में शामिल

अभिरुचि : राजनीति एवं समाजसेवा

वर्तमान पता : भट्ठा बाजार, पूर्णिया-854301
मो.-9931467245, 9162326743

(८) श्री राजेन्द्र कुमार प्रसाद

प्रो. राजेन्द्र कु. प्रसाद

जन्मतिथि : 17.06.1960

जन्मस्थान : पटना

शिक्षा : स्नातक,

कार्यक्षेत्र : एजेंट, एल.आई.सी, विभिन्न बिमा कंपनी
सदस्य, राष्ट्रीय विचार मंच, वाहन चालक

अभिरुचि : समाज सेवा

वर्तमान पता : नेहरू लेन, मीठापुर बी एरिया, पटना-800001
मो.-9973096367

(९) श्री शिव बालक प्रसाद

जन्मतिथि: 12 जनवरी, 1953

जन्मस्थान: ग्राम-मिर्जापुर, पंत्रा.-बंगपुर,
भाया-परवलपुर, जिला-नालन्दा

शिक्षा: मध्यमा (प्रवेशिकोतीर्ण)

कार्यक्षेत्र: 1977 से सरकारी सेवा, बिहार स्टेट स्मॉल इन्डस्ट्रीज कॉरपोरेशन लि., पटना, वर्तमान में दैनिक सेवा के रूप में पदस्थापित।

अभिरुचि: संगीत, नाटक एवं ड्रामा

वर्तमान पता: श्री राम रेसीडेन्सी, निकट साधना होटल, गौड़या मठ के दक्षिण
खगौल रोड, पटना
मो.-9504334959

(१०) श्री लखन सिंह

कार्यक्षेत्र: महासचिव, जिला जनता दल(यू), पटना

अभिरुचि: राजनीति एवं सामाजिक कार्यकर्ता

वर्तमान पता: मीठापुर बी एरिया, पटना-800001

(११) श्री मुरारी प्रसाद सिंह

जन्मतिथि: 01.06.1964

जन्मस्थान: पटेल नगर (माधोपुर) पत्रा.-वासुदेव पुर,
जिला-मुंगेर, बिहार

शिक्षा: बी.एस.सी.(कृषि) एम.ए.
बी.एड. पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन रूरल डवलपमेंट एण्ड पंचायती राज

कार्यक्षेत्र: प्रभारी प्राचार्य, नृपराज राजकीय इण्टर कॉलेज, सरायकेला, सरायकेला-खरझावां, झारखंड

अभिरुचि: अध्ययन तथा कुछ नया करने की ओर अग्रसर

वर्तमान पता: गेस्ट हाउस, वार्ड नं.-9, क्वाटर नं.-सी4/1, सराय केला,
पो.+थाना-सरायकेला, जिला-सरायकेला, खरसावाँ,
झारखंड-833219

सिद्धेश्वर के शब्द-कर्म को चिंहित करती कृतियाँ

राष्ट्रीय विचार मंच के राष्ट्रीय महासचिव तथा दिल्ली से प्रकाशित उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के संस्थापक संपादक सिद्धेश्वर जी एक संघर्षशील संगठनकर्ता के रूप में तो हमलोगों के बीच परिचित हैं ही वैचारिक रूप से भी बौद्धिकजनों के बीच इन्होंने अपनी एक छाप छोड़ी है। अतीत की पड़ताल, वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक संकटों की समझ और आगे की दिशा निर्धारण में भी बहुत गंभीरता और जिम्मेदारी के साथ बाहर और भीतर की लड़ाईयों को ये समझ लेते हैं।

- पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि'

कृति में उभरा है राजनीति सहित समाज का विश्लेषणात्मक पक्ष

कोई भी व्यक्ति अनेक स्तरों पर सक्रिय रहकर सारे काम एक साथ कर सकता है, सिद्धेश्वर जी इसके ज्वलंत उदाहरण हैं, क्योंकि आप एक सम्मानित सामाजिक कार्यकर्ता तो हैं ही, साहित्य एवं पत्रकारिता में भी इनकी अभिरुचि सराहणीय है। देश के प्रबुद्धजन, साहित्यकार, पत्रकार और राजनेता बहुत सम्मान और आदरभाव से सिद्धेश्वर प्रसाद को 'सिद्धेश्वर जी' कहते हैं।

- डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

प्रश्नोत्तर एक साहसिक सर्जनात्मक स्फूरण

सिद्धेश्वर जी एक ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपनी सामाजिक मानसिकता की वजह से समाज में अपनी पहचान बनाते हुए आम आदमी से नजदीकी बनाई है। ऐसा भी नहीं कि उनके द्वारा निभायी जा रही भूमिका में केवल गंभीर विषयों पर इनका सृजन है, बल्कि कमजोर एवं आम आदमी की कमजोरियों एवं समस्याओं को देखते हुए वे उनमें क्षमता भरने की ताकत रखते हैं।

- डॉ. शाहिद जमील

निर्मित होती झूठ की बुनियाद पर गलत विचारों की राजनीति

इस देश के इतिहास के साथ इतनी छेड़छाड़ हुई कि उसके दुष्परिणाम भारत-विभाजन जैसी विभीषिकाओं के रूप में हमने देखे हैं। फिर आजादी के डेढ़-दो दशक के बाद से ही घृणा और झूठ पर टिकी राजनीति ने हमारे राष्ट्र की आत्मा में घृणा के खंजर घोपना जो शुरू किया है उससे झूठ की बुनियाद पर गलत विचारों की राजनीति निर्मित हो रही है जिसे सिद्धेश्वर जी ने साक्षात्कार के दौरान पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है।

- प्रो. (डॉ.) एल. एन. शर्मा

सोचने और कहने की निर्भीकता अद्वितीय

भारतीय समाज के मौजूदा माहौल में व्यावसायिक मानसिकता न रखने वाले सिद्धेश्वर जी का अनिवार्य योगदान साहित्य और उसके जरिए समाज में सकारात्मक बदलाव के लिए योगदान करना रहा है। वैसे हिंदी साहित्य की कविता, संस्मरण, निबंध आदि विधाओं में तो इनकी अबतक डेढ़ दर्जन पुस्तकें आ चुकी हैं, मगर साक्षात्कार जैसी महत्वपूर्ण विधा में हधर हाल के वर्षो में आई पाँच पुस्तकों में से प्रस्तुत पुस्तक-'इंसानियत की धुँआती आँखें' दूसरी है जिसमें जिज्ञासू विद्वत्‌जनों ने इनसे साक्षात्कार के दौरान सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आध्यात्मिक, नैतिक, वैचारिक तथा प्राकृतिक विषयों से संबंधित प्रश्न इनके समक्ष उत्तर हेतु प्रस्तुत किए हैं।

- डॉ. साधु शरण

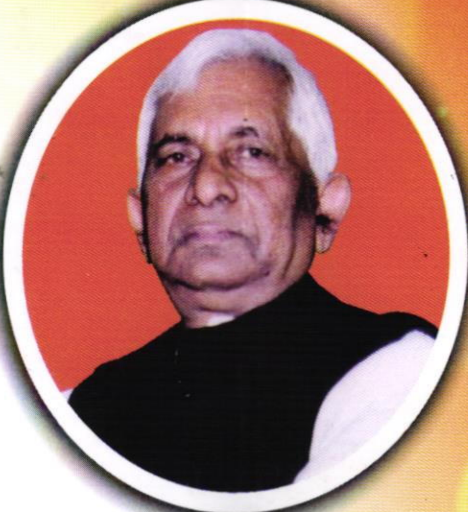

लेखक व संपादक

सिद्धेश्वर

प्रकाशक - सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली-92